अकबर

लेखक
राहुल सांकृत्यायन

किताब महल, इलाहाबाद
१६५७

Akbar (History) : Rahul Sankrityayan

प्रथम संस्करण, १९५०
द्वितीय संस्करण, १९६०

समर्पण

आधुनिक युगमें अकबरको ठीकसे समझनेका प्रयत्नकरनेवाले

भारतीय

शम्शुल्-उल्मा मौलाना महम्मद हुसेन "आजाद"

और

अकबरकी विशद जीवनीके लेखक

विन्सेन्ट स्मिथको

कृतज्ञतापूर्वक

प्राक्कथन

हिन्दीके स्वनामधन्य कवि रहीमकी कृतियोंके आकर्षण तथा उनके मकबरेके दर्शनने इस महाकविकी छोटी सी जीवनी लिखनेकी प्रेरणा दी। उस वक्त ख्याल नहीं था, कि "उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ने"की कहावत चरितार्थ होगी। अकबरके एक रत्नके बारेमें लिख लेनेपर दूसरे रत्नोंपर कलम उठने लगी। फिर सोचा, हिन्दीमें अकबरपर कोई ऐसी पुस्तक नहीं है, जिससे उस महापुरुषको ठीक तरहसे समझा जा सके। (श्री रामचन्द्र वर्माने आजादकी पुस्तक "दरबार-अकबरी" का हिन्दी अनुवाद काफी पहले कर दिया।) आजाद पहले भारतीय हैं, जिन्होंने अकबरके साथ न्याय करनेके लिए अपनी प्रभावशालिनी लेखनीको उठाया। उसमें अनेक गुण रहते भी कुछ कमियाँ थीं, क्योंकि वह बहुत-कुछ उन पाठकोंके सामने अकबरकी वकालत करना चाहते थे, जो अकबरको इस्लामका दुश्मन समझ कर उसके साथ घृणा करते थे। अकबरकी बढ़िया जीवनी विन्सेन्ट स्मिथने लिखी। यद्यपि पीछेकी पुस्तकें और जानकारी देनेवाली हैं, तो भी स्मिथकी पुस्तकका मूल्य कम नहीं हुआ है। मैंने इन दोनों पुस्तकोंसे बहुत अधिक सहायता ली है।

अशोकके बाद हमारे देशमें दूसरा महान् ध्रुवतारा अकबर ही दिखाई पड़ता है। कुषाण कनिष्क (ईसवी प्रथम सदी) अकबरसे भी बड़ा विजेता और भारतीय संस्कृतिसे अत्यन्त प्रभावित था। पर, उसे उन पहाड़ोंके तोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ी, जिनसे अकबरको मुकाबिला करना पड़ा। समुद्रगुप्त (ईसवी चौथी सदी) बहुत बड़ा विजेता था, संस्कृति और कलाका बड़ा प्रेमी तथा उन्नायक था। उसने करीब-करीब भारतके सारे भागको एकराष्ट्र कर दिया था। पर, उसके सामने भी वह दुर्लंघ्य भयंकर मार्ग-रोधक पर्वतमालायें नहीं आईं, जो अकबरके सामने थीं। यही बात हर्षवर्धन (ईसवी सातवीं सदी)के बारेमें है। उसके बाद तो कोई ऐसा पुरुष नहीं दीख पड़ता, जिसका नाम अकबरके सामने लिया जा सके।

अकबर सही अर्थोंमें देशभक्त, अपने राष्ट्रका परम उपासक था। अकबरसे साढ़े तीन शताब्दी पहले भारतके एक बड़े भागपर इस्लामिक शासन कायम हुआ। भारतकी बहुत-सी सामाजिक और राजनीतिक कमजोरियाँ थीं। इन्हीं कमजोरियोंके कारण उसे मुट्ठी भर विदेशियोंके सामने पराजित होना पड़ा, उनका जुआ अपनी गर्दनपर उठाना पड़ा। उससे पहले भी यवनों,शकों,हेफ्तालों (श्वेत हूणों)ने भारतपर

शासन किया था, पर थोड़े ही समयमें वह भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित हो यहाँके जन-
गणमें विलीन हो गये और उनकी उपस्थितिसे राष्ट्रीय जीवनके छिन्न-भिन्न होनेका डर
नहीं रह गया। पर, मुस्लिम विजेता भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित होकर जनगणमें
विलीन होनेके लिये तैयार होकर नहीं आये थे, बल्कि जनगणको अपनेमें विलीन
करना चाहते थे और इस शर्तके साथ, कि तुम अपनी संस्कृतिका चिह्न भी नहीं रहने
दोगे। भारत जैसे अत्यन्त उन्नत और प्राचीन संस्कृति के धनी देशकेलिये यह चेलेंज
ऐसा था, जिसे वह मान नहीं सकता था। इस प्रकार हमारा देश संस्कृतियोंके दो
दलमें बँट कर गुप्त या प्रकट भयंकर गृह-युद्धका अखाड़ा बन गया। मुस्लिम शासनने
अपने जीवनमें विरोधी संस्कृतिके दलसे लोगोंको खींच कर अपनेको मजबूत करनेका
प्रयत्न किया। तीन सदियाँ बीतते-बीतते भारतीय जनगणका काफी भाग उधर चला
गया। दोनोंका संघर्ष निरन्तर चलता रहा। यह मालूम होनेमें कठिनाई नहीं थी,
कि दूसरे को खतम करके केवल एक संस्कृतको यहाँ रहने देना आसान काम नहीं
था। इसके लिये युग चाहिये और जब तक वह समय नहीं आता, तब तक खूनी गृह-
युद्ध चलता रहेगा। हिन्दू सांस्कृतिक दलके सैनिक अगुवा अपनी फूटकी बीमारीसे
मुक्त होनेकेलिये तैयार नहीं थे और जब तक यह नहीं हो, तब तक उनकी वीरता
और कुर्बानीका कोई लाभ नहीं था। हिन्दू धर्मके धार्मिक अगुवोंके दिमागमें गोबर
भरा हुआ था। वह दूर तक सोचनेकी शक्ति नहीं रखते थे। आक्रमणात्मक नहीं
प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ना ही उनका ढंग था। जात-पाँतकी जंजीरोंको मजबूत करके
अपनी जनताके ८० प्रतिशत लोगोंको अपनी आनकेलिये मरनेका भी यह अधिकार
देनेको तैयार नहीं थे। म्लेच्छके हाथका एक घूँट पानी यदि किसीके गलेके नीचे
उतर गया, तो वह पतित है—जिसका अर्थ है शत्रुदलकी सेनाका सिपाही। उनके
पक्षमें सिर्फ यही कहा जा सकता है, कि उन्होंने देशकी सांस्कृतिक निधियोंकी बड़ी
तत्परतासे रक्षा की।

मुस्लिम पक्षके राजनीतिक अगुवा—सुल्तान, बादशाह—अपने प्रतिपक्षियोंसे
कुछ बेहतर स्थितिमें थे। वह सामरिक रूढ़िवादसे उतने ग्रस्त नहीं थे। राजवंशके
पुराने होनेपर उनमें भी हिन्दू राजनीतिक अगुवोंकी तरह ही भयंकर फूट पड़ जाती
थी, जिससे उनकी शक्ति निर्बल हो जाती थी। पर, इसी समय मध्य-एसिया से कोई
नया विजेता आ टपकता और सभी लड़नेवाले उसके पक्षमें हो जाते। इस प्रकार
इस पक्षका पलड़ा भारी हो जाता। मुस्लिम पक्षके धार्मिक अगुवा—मुल्लोंको कामके
लिये एक बड़ा सुभीता यह था, कि विरोधीके गलेमें एक बूँद पानी उतार कर वह
उसे अपना बना लेते थे। यही हुई फसल काटनेका उन्हें कितना सुभीता था! इसीसे
हिन्दू काफी संख्या में मुसलमान हो गये। लेकिन यह सौदा बड़ा मँहगा था। देशमें
[illegible] खूनकी नदियाँ बहती थी और एक ही देशके निवासी एक दूसरेके

ऊपर कभी विश्वास नहीं कर सकते थे। मुस्लिम पक्षके पास हथियार मौजूद थे, लेकिन उनमें नहीं, कि नजदीक भविष्यमें पूरी सफलताकी आशा हो।

जिस तरह चौबीस घंटे खुली या प्रकट लड़ाई, एक दूसरेके प्रति निराबाध घृणा चल रही थी, उससे हम मानवतासे दूर हटते जा रहे थे। हर वक्त विदेशी आक्रान्ताके आ जानेका खतरा रहता था। तैमूर, नादिरशाह, अब्दालीके आक्रमणोंने सिद्ध कर दिया, कि विजेताओं-आक्रान्ताओंकी तलवारें हिन्दू-मुसलमानका फर्क नहीं करतीं। मुसलमानों और हिन्दुओंके धार्मिक नेताओंमें कुछ ऐसे भी पैदा हुए, जिन्होंने रामखुदैयाके नाम पर लड़ी जाती इन भयंकर लड़ाइयोंको बन्द करनेका प्रयत्न किया। ये थे मुस्लिम सूफी और हिन्दू सन्त। पर इनका प्रेमसन्देश अपनी खानकाहों और कुटियोंमें ही चल सकता था, लड़ाईके मैदानमें उनकी कोई पूछ नहीं थी। लाखों आदमी अपने-अपने धर्मके झण्डेके नीचे कटने-मरनेकेलिये तैयार थे। धर्मके नामपर आग लगानेवालोंके इशारे पर जब दोनों ओरसे कटाकटी होने लगती, तो सन्तों-सूफियोंको कोई नहीं पूछता था। दोनों दल कहते थे—जो हमारे साथ नहीं, वह हमारा दुश्मन है। सन्तों-सूफियों के शान्ति और प्रेमके सन्देशने *हजारों-लाखोंके मनको शान्ति प्रदान की, पर वह देशकी सामाजिक समस्याको हल* करनेमें असमर्थ रहा।

भारतमें दो संस्कृतियोंके संघर्षसे जो भयंकर स्थिति पिछली तीन-चार शताब्दियोंसे चल रही थी, उसको सुलझानेकेलिये चारों तरफसे प्रयत्न करनेकी जरूरत थी और प्रयत्न ऐसा, कि उसके पीछे कोई दूसरा छिपा उद्देश्य न हो। संस्कृतियोंके समन्वय* का प्रयास हमारे देशमें अनेक बार किया गया। पर, जो समस्या इन शताब्दियोंमें उठ खड़ी हुई थी, वह उससे कहीं अधिक भयंकर और कठिन थी। यह इससे भी मालूम है, कि आखिर उन्हींके कारण बीसवीं सदीके मध्यमें देशके दो टुकड़े हुए और वह भी खूनकी नदियोंके बहानेके साथ।

अकबरने इसी महान् समन्वयका बीड़ा उठाया और आगेके पृष्ठोंमें हम देखेंगे, कि वह बहुत दूर तक सफल हुआ। अन्तमें उन सफलताओंको मिटा देनेके बाद भी उससे बढ़ कर कोई दूसरा रास्ता आज भी दिखाई नहीं पड़ता। हम देखेंगे, जिन बातोंकेलिये अकबरको दोनों दल बदनाम करते थे, उन्हें अब हम चुपचाप अपनाये जा रहे हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी संस्कृति—साहित्य, संगीत, कला, ज्ञान-विज्ञानका सब आदर करें, सभी उन्हें स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखें, यह पहला काम था, जिसे अकबरने सबसे पहले शुरू किया। फिर अकबरने चाहा, दोनोंकी मिलकर एक जाति हो जाय—एक हिन्दी या भारतीय जाति बन जाये। इसके लिये उसने दोनोंमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित किया। हिन्दू अपनी जड़ताके

* देखो परिशिष्ट २

शासन किया था, पर थोड़े ही समयमें यह भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित हो यहाँके जन-
गणमें विलीन हो गये और उनकी उपस्थितिसे राष्ट्रीय जीवनके छिन्न-भिन्न होनेका डर
नहीं रह गया। पर, मुस्लिम विजेता भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित होकर जनगणमें
विलीन होनेके लिये तैयार होकर नहीं आये थे, बल्कि जनगणको अपनेमें विलीन
करना चाहते थे और इस शर्तके साथ, कि तुम अपनी संस्कृतिका चिह्न भी नहीं रहने
दोगे। भारत जैसे अत्यन्त उन्नत और प्राचीन संस्कृति के धनी देशकेलिये यह वेलेंज
ऐसा था, जिसे वह मान नहीं सकता था। इस प्रकार हमारा देश संस्कृतियोंके दो
दलमें बँट कर गुप्त या प्रकट भयकर गृह-युद्धका अखाड़ा बन गया। मुस्लिम शासनने
अपने जीवनमें विरोधी संस्कृतिके दलसे लोगोंको खींच कर अपनेको मजबूत करनेका
प्रयत्न किया। तीन सदियाँ बीतते-बीतते भारतीय जनगणका काफी भाग उधर चला
गया। दोनोंका संघर्ष निरन्तर चलता रहा। यह मालूम होनेमें कठिनाई नहीं थी,
कि दूसरे को खतम करके केवल एक संस्कृतको यहाँ रहने देना आसान काम नहीं
था। इसके लिये युग चाहिये और जब तक वह समय नहीं आता, तब तक खूनी गृह-
युद्ध चलता रहेगा। हिन्दू सांस्कृतिक दलके सैनिक अगुवा अपनी फूटकी बीमारीसे
मुक्त होनेकेलिये तैयार नहीं थे और जब तक यह नहीं हो, तब तक उनकी वीरता
और कुर्बानीका कोई लाभ नहीं था। हिन्दू धर्मके धार्मिक अगुवोंके दिमागमें गोबर
भरा हुआ था। वह दूर तक सोचनेकी शक्ति नहीं रखते थे। आक्रमणात्मक नहीं
प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ना ही उनका ढंग था। जात-पाँतकी जंजीरोंको मजबूत कर
अपनी जनताके ८० प्रतिशत लोगोंको अपनी आनकेलिये मरनेका भी वह अधिकार
देनेको तैयार नहीं थे। म्लेच्छके हाथका एक घूँट पानी यदि किसीके गलेके नीचे
उतर गया, तो वह पतित है—जिसका अर्थ है शत्रुदलकी सेनाका सिपाही। उनके
पक्षमें सिर्फ यही कहा जा सकता है, कि उन्होंने देशकी सांस्कृतिक निधियोंकी बड़ी
तत्परतासे रक्षा की।

मुस्लिम पक्षके राजनीतिक अगुवा—सुल्तान, बादशाह—अपने प्रतिपक्षियोंसे
कुछ बेहतर स्थितिमें थे। वह सामरिक रूढ़िवादसे उतने ग्रस्त नहीं थे। राजवंशके
पुराने होनेपर उनमें भी हिन्दू राजनीतिक अगुवोंकी तरह ही भयंकर फूट पड़ जाती
थी, जिससे उनकी शक्ति निर्बल हो जाती थी। पर, इसी समय मध्य-एसिया से कोई
नया विजेता आ टपकता और सभी लड़नेवाले उसके पक्षमें हो जाते। इस प्रकार
इस पक्षका पलड़ा भारी हो जाता। मुस्लिम पक्षके धार्मिक अगुवा—मुल्लोंको कामके
लिये एक बड़ा सुभीता यह था, कि विरोधीके गलेमें एक बूँद पानी उतार कर वह
उसे अपना बना लेते थे। पकी हुई फसल काटनेका उन्हें कितना सुभीता था! इसीसे
हिन्दू काफी संख्या में मुसलमान हो गये। लेकिन यह सौदा बड़ा मँहगा था। देशमें
समय-समयपर खूनकी नदियाँ बहती थीं और एक ही देशके निवासी एक दूसरेके

ऊपर कभी विश्वास नहीं कर सकते थे। मुस्लिम पक्षके पास हथियार मौजूद थे, लेकिन उतने नहीं, कि नजदीक भविष्यमें पूरी सफलताकी आशा हो।

जिस तरह चौबीस घंटे खुली या प्रकट लड़ाई, एक दूसरेके प्रति निराधार घृणा चल रही थी, उससे हम मानवतासे दूर हटते जा रहे थे। हर वक्त विदेशी आक्रान्ताके आ जानेका खतरा रहता था। तैमूर, नादिरशाह, अब्दालीके आक्रमणने सिद्ध कर दिया, कि विजेताओं-आक्रान्ताओंकी तलवारें हिन्दू मुसलमानका फर्क नहीं करतीं। मुसलमानों और हिन्दुओंके धार्मिक नेताओंमें कुछ ऐसे भी पैदा हुए, जिन्होंने रामखुदैयाके नाम पर लड़ी जाती इन भयंकर लड़ाइयोंको बन्द करनेका प्रयत्न किया। ये थे मुस्लिम सूफी और हिन्दू सन्त। पर इनका प्रेमसन्देश अपनी खानकाहों और कुटियोंमें ही चल सकता था, लड़ाईके मैदानमें उनकी कोई पूछ नहीं थी। लाखों आदमी अपने-अपने धर्मके झण्डोंके नीचे कटने-मरनेकेलिये तैयार थे। धर्मके नामपर आग लगानेवालोंके इशारे पर जब दोनों ओरसे कटारियाँ चलने लगतीं, तो सन्तों-सूफियोंको कोई नहीं पूछता था। दोनों दल कहते थे—जो हमारे साथ नहीं, वह हमारा दुश्मन है। सन्तों-सूफियों के शांति और प्रेमके सन्देशने हजारों-लाखोंके मनको शान्ति प्रदान की, पर वह देशकी सामाजिक समस्याको हल करनेमें असमर्थ रहा।

भारतमें दो संस्कृतियोंके संघर्षसे जो भयंकर स्थिति पिछली तीन-चार शताब्दियोंसे चल रही थी, उसको सुलझानेकेलिये चारों तरफसे प्रयत्न करनेकी जरूरत थी और प्रयत्न ऐसा, कि उसके पीछे कोई दूसरा छिपा उद्देश्य न हो। संस्कृतियोंके समन्वय* का प्रयास हमारे देशमें अनेक बार किया गया। पर, जो समस्या इन शताब्दियोंमें उठ खड़ी हुई थी, वह उससे कहीं अधिक भयंकर और कठिन थी। यह इससे भी मालूम है, कि आखिर उन्हींके कारण बीसवीं सदीके मध्यमें देशके दो टुकड़े हुए और वह भी खूनकी नदियोंके बहानेके साथ।

अकबरने इसी महान् समन्वयका बीड़ा उठाया और आगेके पृष्ठोंमें हम देखेंगे, कि वह बहुत दूर तक सफल हुआ। अन्तमें उन सफलताओंको मिटा देनेके बाद भी उससे बढ़ कर कोई दूसरा रास्ता आज भी दिखाई नहीं पड़ता। हम देखेंगे, जिन बातोंकेलिये अकबरको दोनों दल बदनाम करते थे, उन्हें अब हम खुशीसे अपनाये जा रहे हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी संस्कृति—साहित्य, संगीत, कला, ज्ञान-विज्ञानका सब आदर करें, सभी उन्हें स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखें, यह पहला काम था, जिसे अकबरने सबसे पहले शुरू किया। फिर अकबरने चाहा, कि दोनोंकी मिलकर एक जाति हो जाय—एक हिन्दी या भारतीय जाति बन जाय, इसके लिये उसने दोनोंमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित किया। हिन्दू

* देखो परिशिष्ट २

कारण इसे अपनानेमें पीछे रहे । मुसलमानोंमें एकतरफा व्यापार पहले हीसे चला आता था, इसलिये उन्हें इसमें एतराज नहीं हो सकता था। अकबर अपनी सदिच्छाको साबित करनेकेलिये मुल्लोंके सामने काफिर तक होना स्वीकार किया । ऐसा कदम उठाया, जिससे उसके तख्त और सिर दोनों खतरेमें पड़ गये। पर, उसने दाँवपर सब कुछ रखना मंजूर किया । उसकी देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम अद्वितीय था। पर, जैसा कि आगेकी पंक्तियोंसे मालूम होगा, समस्या इतनी जबर्दस्त थी, कि अकबर जैसे अद्वितीय महापुरुषका दीर्घ जीवन भी उसके सुलझानेकेलिये पर्याप्त नहीं था। आगे ले चलनेकेलिये और वैसे दो महापुरुषोंकी आवश्यकता थी। काल और समाजसे वह उल्टे जाना चाहता था और दोनों उसका जीजानसे विरोध करनेकेलिये तैयार थे।

अकबरका रास्ता आज बहुत हद तक हमारा रास्ता बन गया है। अकबर १६वीं सदी नहीं, बल्कि २०वीं सदीका हमारे देशका सांस्कृतिक पैगम्बर है। पर, आज भी इसे समझनेवाले हमारे देशमें कितने आदमी हैं ? कितने यह माननेकेलिये तैयार हैं, कि अशोक और गांधीके बीचमें उनकी जोड़ीका एक ही पुरुष हमारे देशमें पैदा हुआ, वह अकबर था ? अकबरको इससे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसका ही रास्ता एकमात्र रास्ता था, जिसके द्वारा हमारा देश आगे बढ़ सकता था। आजसे ४०० वर्ष पहले (१४ फरवरी १५५६) अकबर भारतके शासन-का सूत्रधार हुआ। फरवरीमें किसीको मालूम भी नहीं हुआ, कि भारतकेलिये यह एक महान् घटना थी। आजसे आधी शताब्दी बाद २००५ ई०में अकबरका निर्वाण हुए ४०० वर्ष बीत जायेंगे। आशा करनी चाहिये, उस वक्त इस दिनके महत्वको हमारा देश मानेगा।

यदि इस पुस्तकसे हमारे लोग अकबरको कुछ पहचान सकें, तो मैं अपने प्रयत्नको सफल मानूँगा।

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

पूर्वार्ध

(अकबरके सहकारी और विरोधी)

अध्याय १

हेमचन्द्र (हेमू)

१. देश की स्थिति

मगध या पूर्वकी प्रभुताके साथ भारतका इतिहास आरम्भ होता है। प्रायः एक हजार वर्ष तक मगध (बिहार) भारतका राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र रहा। फिर ईसवी छठी शताब्दीसे १२वीं शताब्दीके अन्त तक कन्नौज केन्द्र बना, जिसके वैभवको लूटनेवाले तुर्कोंने दिल्लीको विशाल भारतीय राज्यकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्रदान किया। तुर्क असाधारण लड़ाकू थे, उनमें गजबकी एकता थी। यह भी निर्विवाद है, कि इस्लामके झण्डेने उनकी शक्तिको दुगुना कर दिया था। लेकिन, यह समझना अवश्य मुश्किल है, कि कैसे कुछ सैनिक भारतके इतने बड़े भागपर अधिकार जमानेमें सफल हुए। वस्तुतः जनसाधारण हड्डी-मासके ढेरसे अधिक महत्व नहीं रखते, यदि उनमें सैनिक-शक्ति और एकता नहीं। उस समय हमारा देश अधिकतर ऐसा ही था।

गुलाम, खिलजी और तुगलक तीन तुर्क राजवंशोंके बाद दिल्लीकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। मुसलमानोंके जौनपुर, बंगाल बहमनी जैसे शक्तिशाली अलग-अलग राज्य कायम हो गये। दिल्लीके तुर्क जैसे अपनेको एक मात्र इस्लामका अलमबर्दार कह सकते थे, वैसे यह छिन्न-भिन्न दिल्लीसे बने मुस्लिम राज्य नहीं कह सकते थे। दिल्ली भारतका इस्लामिक केन्द्र रही। बड़े-बड़े धर्माचार्य और आलिम दिल्लीके थे, वह दिल्ली छोड़ दूसरेका समर्थन नहीं कर सकते थे। दिल्ली यह बर्दाश्त करनेके लिये तैयार नहीं थी, कि जौनपुर आदिके शासक अपनेको बादशाह घोषित करके दिल्लीको अँगूठा दिखलायें। दिल्ली जहादके नामपर अपने झण्डेके नीचे लड़ाकू देशी मुसलमानोंको एकत्रित कर सकती थी। जौनपुर दिल्लीके मुकाबिलेमें ऐसा नहीं कर सकता था। उसने और उसकी तरह दूसरी मुस्लिम सल्तनतोंने अपने पक्षको मजबूत करनेके लिये एक दूसरा शक्ति-स्रोत ढूँढ़ निकाला : हम दिल्लीके विदेशियोंके खिलाफ हैं। मुसलमान ही नहीं हिन्दू भी मिल कर हम दिल्लीके अत्याचारका मुकाबिला करेंगे। जौनपुरने इस तरह हिन्दू तलवारों का सहारा लिया, और उसकी शक्ति इतनी मजबूत हो गई थी, कि एक शताब्दी से ऊपर तक दिल्ली उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकी। जौनपुरमें वर्तमान उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहारका अधिक

भाग शामिल था। मुहम्मद तुगलकका ही दूसरा नाम जौनाशाह था, जिसके नामपर जौनपुर शहर बसा था। हो सकता है, गोमतीके किनारे पहले भी यहाँ कोई नगर रहा हो, पर हमें उसका पता नहीं है। जौनपुर मुसलमान बादशाहतकी राजधानी थी। लेकिन, वह ऐसी बादशाहत थी, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों शामिल थे। हिन्दू दरबारमें बराबरका दर्जा रखते थे। अभी दिल्लीमें यह स्थान मिलनेमें डेढ़ सौ वर्षोंकी देर थी, जब अकबर शासनकी बागडोर अपने हाथमें सँभालता। लेकिन बागडोर सँभालते ही, उसने दिल्ली छोड़कर सीकरी और आगराको अपनी राजधानी बनाया। १५वीं शताब्दी जौनपुरके प्रतापकी शताब्दी थी। जौनपुरने उस भूमिको नहीं भुलाया, जिसमें वह अवस्थित था, वहाँकी संस्कृतिको नहीं भुलाया, जिसमें वह सांस ले रहा था। भारतीय संगीतको उसने प्रश्रय दिया। अवधी भाषा और साहित्यका भी कितना समर्थन किया, इसका प्रमाण यही है, कि अवधीके प्रथम महान् कवि मझन, कुतबन, जायसी जौनपुर दरबारके थे। सभी मुसलमान थे, लेकिन उन्होंने अपने देशकी भाषा, काव्य शैलीको अपनाया। जौनपुर हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रतीक बना। मुसलमानोंने अपने अहंको कम किया। हिन्दुओंने अपने खोये आत्मसम्मानको प्राप्त किया। एक ऊपरसे एक सीढ़ी नीचे उतरा, दूसरा नीचेसे एक सीढ़ी ऊपर उठा। दोनों कंधेसे कंधा मिला कर खड़े हो गये। सचमुच ही इनके सामने भला दिल्ली कैसे आँख दिखा सकती थी?

जौनपुरमें दूसरी जगहोंके भी कितने ही सूरमा लोग आ के बस गये थे। उनमें पठान भी थे, तुर्क भी थे, सैयद भी थे। इन्हींमें एक पठान नौजवान था, जिसने जौनपुर के वातावरणमें साँस लेकर उससे बहुत-कुछ सीखा। उसने समझ लिया, कि सिर्फ तलवार काफी नहीं है, सिर्फ हिम्मत काफी नहीं है, बल्कि देशकी मिट्टीसे एकता स्थापित करना अजेय बननेकेलिए आवश्यक है। देशकी मिट्टीसे एकता स्थापित करना तभी हो सकता है, जब कि वहाँके सभी लोगोंके साथ भाईचारा स्थापित हो। उस जवानको मालूम था, कि दिल्लीके आस-पासके लोग भले ही किसी समय आग-पानीसे खेलते रहे हों, वहाँके हिन्दू अनेक रणोंके सूरमा रहे हों; पर अब शताब्दियोंके संघर्षने उनको ढीला कर दिया। पूर्वमें अब भी यह आग मौजूद है। यहाँके लोग लाठी और तलवारके धनी हैं। हाँ, अवधी और भोजपुरी दोनोंके बोलने वाले लड़ने-भिड़नेमें सबसे आगे रहने वाले थे। अँग्रेजोंने इसी गुणको पहचान कर उन्हें सबसे पहिले बड़ी संख्यामें अपने फौजोंमें सिपाही रक्खा। इन्हींके बलपर वह काबुल और मांडले तक धावा बोलते रहे। १८५७में जब ये लोग बिगड़ गये, तो एक बार अँग्रेजों को चारों ओर अँधेरा दिखलाई पड़ने लगा था।

उक्त तरुणने आगे चल कर जौनपुरकी चाकरीपर सन्तोष नहीं किया और दुनियामें उसने अपनेलिये अमर स्थान बनाया। भोजपुरियोंका आरा जिलेका सहसराम उसका

अपना केन्द्र हुआ। उसकी वीरता और उदार विचारोंसे आकृष्ट होकर भोजपुरी सैनिक और सामन्त दौड़-दौड़ कर उसके झण्डेके नीचे खड़े होने लगे। बहुत समय नहीं बीता, कि वह बिहारका शाह बन गया और शेरशाहके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बाबरने हिन्दुस्तानको जीता था, लेकिन उसके लड़के हुमायूँको हरा कर शेरशाह ने हिन्दुस्तानसे भागनेके लिए मजबूर किया। एकके बाद एक हार खाते हुए सिन्धनदसे भी पश्चिम भाग कर हुमायूँको क्या आशा हो सकती थी, कि वह फिर हिन्दुस्तान लौट कर गद्दी पर बैठेगा। शेरशाहके जीते जी हुमायूँ को यह नसीब नहीं हुआ। भोजपुरियोंकी तरह अवधी-भाषी भी शेरशाहके सहायक हुये, क्योंकि शेरशाहको जौनपुरका अभिमान था।

शेरशाह जौनपुरसे भी एक कदम आगे बढ़ा। उसने उन बहुत सी बातोंको करनेमें पहल की, जिनमें हम अकबर को आगे बढ़ते देखते हैं। देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक सड़कके किनारे फलदार वृक्ष तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर सराय और कुएँ बनवानेका काम शेरशाहने शुरू किया था। सबसे जवाबदेह पदोंके लिए हिन्दुओं पर पूर्ण विश्वास रखनेका भी आरम्भ शेरशाहने किया था। उसके शासनमें हिन्दू बड़े से बड़े मन्त्री और सेनापतिके पद पर पहुँच सकते थे। लोग शेरशाहको न्याय और धर्म का अवतार मानते थे।

शेरशाह जनसाधारणमें पैदा हुआ और उन्हींके सहयोगसे ऊपर बढ़ा। बिहारका बेताज का शाह हो जानेपर भी वह एक साधारण सिपाही की तरह काम करनेके लिये तैयार था। जिस वक्त हुमायूँका दूत उसके पास पहुँचा था, उस समय वह अपने सिपाहियोंकी तरह फावड़ा लेकर खाईं खोद रहा था, और फावड़ा हाथमें पकड़े ही उसने हुमायूँके दूतसे बात की। वह बतलाना चाहता था, कि मेरेलिये तख्त और जमीन दोनों सुपरिचित चीज हैं। मुसलमानी सुल्तानोंने सरकारी सेवाओंके बदले जागीर देनेका नियम बनाया था। जागीरदार अपनी जागीरमें मनमानी करते और बेचारे किसान पिसते थे। शेरशाहने जागीर नहीं वेतन मुकर्रर कर दिया। उसके सिपाही प्रजाको सता नहीं सकते थे। इतना कड़ा नियम था, तो भी सिपाही इसके कारण नाराज नहीं थे, वे अपने नेताको भगवान् मानते थे। शेरशाहने ही वह सं.वे-स.दे लड़ाके सिपाही तैयार किये, जो पीछे कम्पनीकी सेनाके रीढ़ बने। शाहबाद-सहसरामको अपना गढ़ शेरशाहने जान-बूझ कर बनाया था। भोजपुरी तरुण लाठी और तलवार के गुणको जानते थे, अब उन्होंने फलीतेवाली बन्दूकें चलाना भी सीखा। चौसाके नामसे सभी लोग परिचित हैं। शाहबादके चौसा गाँवमें ही शेरशाहने हुमायूँका छुक्का भंग किया, वहाँसे पैर उखड़ा तो वह फिर जम न पाया।

२. कुल

प्राचीन कालसे ही व्यापारियोंके सार्थ (कारवाँ) और देशोंकी तरह भारतमें

भी चलते थे। [illegible] सार्थवाह [illegible] बंदरगाहोंसे [illegible] मार्ग हमारे देशकी नदियों और समुद्रोंसे चलती थी। जहाँ आज का [illegible] नहीं था, वहाँ [illegible] व्यापारी बैलगाड़ियों और बैलोंपर माल लादे [illegible] चलते हुए चलते थे। [illegible] बैलोंसे चलते पार [illegible] सार्थवाहोंकी बहुत अधिक [illegible] होती थी। [illegible] रौनियार [illegible] चौंसा या [illegible] गंगाके घाट। सन् १८०० से कुछ साल पहले [illegible] साथ [illegible] इसीलिये यह [illegible] लेनेके लिये वहाँ रह गये। आज भी [illegible] रहा है। [illegible] उनके [illegible] है। [illegible] लिए यह बिहार या उत्तर-प्रदेशके [illegible] जाते हैं, नहीं तो यह वैसे ही गुमनामी हैं, जैसे दूसरे।

रौनियार पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहारके सार्थवाह हैं। जिस प्रकार [illegible] पूर्वजोंकी तरह उनमें कुछ हजार-पूँजी वाले भी व्यापारी थे, और दूसरे [illegible] भी, जिनकी कोठियाँ पटना और [illegible] ही और [illegible] भी। इन्हें प्रदेशके बड़े-बड़े शहरोंमें भी उनका कारबार होता था। सार्थवाहका काम वह नहीं कर सकते थे, जिन्हें हम आजकल बनिया समझनेके आदी हैं। सार्थोंको जिन रास्तोंमेंसे गुजरना पड़ता था, उनमें सभी अपने यहाँ शांति स्थापित करनेमें समर्थ नहीं थे। जहाँ समर्थ शासक थे, वहाँ सार्थवाह भेंट-पूजा देकर अपना काम करते थे। जहाँ अशांति थी, वहाँ अपनी रक्षाका भार वह खुद अपने ऊपर लेते थे। इसके लिए वह सैकड़ों और कभी हजारोंकी संख्यामें चलते थे। इनके पास तलवार-भाले, तीर धनुष ही नहीं, बल्कि उस समयका सबसे जबर्दस्त हथियार पलीतेदार बन्दूकें भी होती थीं। नरम कलेजे वालोंका सार्थमें गुजर नहीं था; इसलिए बैलोंपर लादने, बैलगाड़ियोंको चलानेके लिये वही जवान लिये जाते, जो मौका पड़नेपर सिपाही बन जाते। भोजपुरियोंमें सिपाहीपनकी स्वाभाविक आदत थी।

सहसराम का एक ऐसा ही रौनियार सार्थवाह था, जो अपने प्रदेशमें धन-वैभव, उदारता और बहादुरीके लिये ख्याति रखता था। मामूली शासक नहीं, बल्कि अपने-अपने इलाकोंके प्रभु भी उसकी इज्जत करते और समय-समय पर सार्थवाह इनसे धनसे उन्हें मदद करके अनुगृहीत करता। यदि शेरशाह राजा होते भी चाकरी कर सकता था, तो करोड़पति सार्थवाह भी साधारण बैल लादने वाले अपने आदमीके हर्षों कामोंको करनेके लिये तैयार था। उसने अपनी जवानीमें यह किया था, और चाहता था कि उसका लड़का भी इसे अच्छी तरह सीखे। इतने भारी कारबारके लिये विद्या पढ़ना बहुत आवश्यक है। सार्थवाहने अपने लड़केको उसे भी सिखलाया था, और कई बार समुद्र (चटगाम) की ओर जाने वाले नदी सार्थों और कितनी ही बार

स्थलकी बैलगाड़ियोंके साथों के साथ भी भेजा था। उसने एक ओर अपनी विद्या-बुद्धिसे अपने पिताको प्रसन्न किया था, तो दूसरी ओर अपनी बहादुरीको उसने कई बार डाकुओंके सामने दिखलाया था। इस लड़केका नाम हेमचन्द्र था, जिसे प्यारसे लोग हेमू भी कहा करते थे।

३. कार्य-क्षेत्र में

इधर पिताके स्थानको हेमचन्द्रने सँभाला और उधर शेर खाँ भारतके छत्रपति बननेके प्रयत्नमें दूर तक आगे बढ़ चुका था तथा उसने सहसरामको अपनी राजधानी बनाया था। शेर खाँ गुनियोंका पारखी था, हमेशा उनको खोज निकालने की फिकरमें रहता था। हेमचन्द्र कैसे उसकी नजरसे ओझल रह सकता था? उसने बुलाकर हेमचन्द्र को अपना कोष-विभाग सौंप दिया। वह यह जानता था, कि हेमचन्द्रमें किसी भोजपुरीसे कम युद्ध-कलाकी निपुणता नहीं है। पर, राज्यके लिये कोष सेनासे कम आवश्यक नहीं था। हेमचन्द्रने कोषका इतनी योग्यतासे प्रबन्ध किया, कि शेरशाहकी बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें भी वह कभी खाली नहीं हुआ। हुमायूँका पीछा करते शेरशाह कन्नौज, दिल्ली और राजस्थानके रेगिस्तानों तक पहुँचा। वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था, कि उसके सैनिकोंको इस महीने का वेतन अगले महीने मिले और हेमचन्द्र कुबेर भण्डारी था। कोष क्यों कभी खाली होने लगा?

अपनी कार्यदक्षताके साथ-साथ हेमचन्द्र शेरशाहका बहुत विश्वासपात्र था। वह शेरशाहकी सभी सफलताओंको अपनी ही सफलता समझता था। शेरशाह मुसलमान था और हेमचन्द्र हिन्दू, लेकिन दोनों अपनेको एक देश, एक आदर्शकी सन्तान मानते थे। शेरशाहने जिस तरह दिल खोलकर हिंदुओं को आगे बढ़ाया था और सदियोंसे चले आते भेद-भावको अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था, उसके कारण सभी हिंदू शेरशाहके भक्त थे। भोजपुरी तो उसे अपने ही जैसा भोजपुरी मानते थे, इसलिये उसके साथ विशेष आत्मीयता रखते थे। यदि कम्पनीकी सेनाके साथ-साथ भोजपुरी सिपाही कलकत्तासे पेशावर तक पहुँचे थे, तो इस बातको उन्होंने चार सौ वर्ष पहले शेरशाहके समयको ही दोहराया था।

१५३९ ई०में शेरखाँ शेरशाहका नाम धारण कर गौड़में तख्त पर बैठा। १५४० ई०में हुमायूँ भारत छोड़ कर भागा। हुमायूँके भागनेके थोड़े ही दिनों बाद शेरशाह बंगालसे सिंध तकका बादशाह बन गया। जहाँ उसका शासन गया, वहाँ खुशहाली, शांति-व्यवस्थाके स्थापित होनेमें देर नहीं हुई। इसमें काफी हाथ हेमचन्द्रका भी था। शेरशाहको पाँच ही साल भारतका अधिराज रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिंजरमें अकस्मात् बारूदमें आग लगनेसे शेरशाहको प्राण खोना पड़ा। उसे दिल्ली नहीं, अपना सहसराम प्यारा था, यह सभी जानते थे। इसलिये उसे वहीं

भी चलते थे। कितने ही सार्थवाह उस समय सप्तग्राम-करांची आदि से, मालसे लदी किश्तियाँ हमारे देशकी नदियों और समुद्रोंमें चलती थीं। जहाँ नाव का सुभीता नहीं, वहाँ स्थलमार्गपर व्यापारी बैलगाड़ियाँ और बैलोंपर माल लादे एक जगहसे दूसरी जगह उन्हें बेचने जाते थे। कम्पनीके समयमें भी बलियाके रौनियार सार्थवाह बैलोंपर कपड़े लाद कर नेपालकी राजधानी काठमाण्डू पहुँचते थे। साधारण सार्थवाहोंके बैल साधारण होती थीं। कितने ही रौनियार गाढ़ा (खादी) का थुला, कोरा या रंगा कर नेपाल ले जाते। सन् १८५० से कुछ साल पहले उनका बहुत-सा माल बिका नहीं, माल लौटा लाना उनकेलिये घाटेकी चीज थी, इसलिये वह उन्हें बेचनेके लिये वहीं रह गये। आज भी उनके वंशज काठमाण्डूमें रहते हैं। श्री शिव प्रसाद जी रौनियार उनके मुखिया हैं। ब्याह करनेके लिए वह बिहार या उत्तर-प्रदेशके रौनियारोंके पास आते हैं, नहीं तो वह वैसे ही नेपाली हैं, जैसे दूसरे।

रौनियार पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहारके सार्थवाह हैं। शिव प्रसादके पूर्वजोंकी तरह उनमें कुछ हजार-पूँजी वाले भी व्यापारी थे, और दूसरे लाखोंके धनी भी, जिनकी कोठियाँ चटगाँव और समुद्रके कितने ही और बन्दरोंमें थीं। इस प्रदेशके बड़े-बड़े शहरोंमें भी उनका कारबार होता था। सार्थवाहका काम वह लोग नहीं कर सकते थे, जिन्हें हम आजकल बनिया समझनेके आदी हैं। सार्थोंको जिन राज्योंमेंसे गुजरना पड़ता था, उनमें सभी अपने यहाँ शांति स्थापित करनेमें समर्थ नहीं थे। जहाँ समर्थ शासक थे, वहाँ सार्थवाह भेंट-पूजा देकर अपना काम चलाते थे। जहा अशान्ति थी, वहाँ अपनी रक्षाका भार वह खुद अपने ऊपर लेते थे। इसलिए वह सैकड़ों और कभी हजारोंकी संख्यामें चलते थे। इनके पास तलवार-भाले, तीर धनुष ही नहीं, बल्कि उस समयका सबसे जबर्दस्त हथियार पलीतेदार बन्दूकें होती थीं। नरम कलेजे वालोंका सार्थ में गुजर नहीं था; इसलिए बैलोंपर लदे बैलगाड़ियोंको चलानेके लिये वही जवान लिये जाते, जो मौका पड़नेपर सिपाही बन जाते। भोजपुरियोंमें सिपाहीपनकी स्वभाविक आदत थी।

सहसराम का एक ऐसा ही रौनियार सार्थवाह था, जो अपने प्रदेशमें अपने वैभव, उदारता और बहादुरीके लिये ख्याति रखता था। मामूली शासक नहीं, बल्कि अपने-अपने इलाकोंके प्रभु भी उसकी इज्जत करते और समय-समय पर सार्थवाह अपने धनसे उन्हें मदद करके अनुगृहीत करता। यदि शेरशाह राजा होते भी कारबार कर सकता था, तो करोड़पति सार्थवाह भी साधारण बैल लादने वाले अपने आदमीके से कामोंको करनेके लिये तैयार था। उसने अपनी जवानीमें यह किया था, और चाहता था कि उसका लड़का भी इसे अच्छी तरह सीखे। इतने भारी कारबारके लिये विद्या पढ़ना बहुत आवश्यक है। सार्थवाहने अपने लड़केको उसे भी सिखलाया था और कई बार समुद्र (चटग्राम) की ओर जाने वाले नदी सार्थों और कितनी ही

सकी पैलगाड़ियोंके साथों के साथ भी भेजा था। लड़केने एक ओर अपनी विद्यासे अपने पिताको प्रसन्न किया था, तो दूसरी ओर अपनी बहादुरीको उसने कई बार डाकुओंके सामने दिखलाया था। इस लड़केका नाम हेमचन्द्र था, जिसे प्यारसे लोग हेमू भी कहा करते थे।

१. कार्य-क्षेत्र में

इधर पिताके स्थानको हेमचन्द्रने सँभाला और उधर शेर खाँ भारतके भूपति बननेके प्रयत्नमें दूर तक आगे बढ़ चुका था तथा उसने सहसरामको अपनी राजधानी बनाया था। शेर खाँ गुनियोंका पारखी था, हमेशा उनको खोज निकालने की फिकरमें रहता था। हेमचन्द्र कैसे उसकी नजरसे ओझल रह सकता था? उसने बुलाकर हेमचन्द्र को अपना कोष-विभाग सौंप दिया। वह यह जानता था, कि हेमचन्द्रमें किसी भोजपुरिये कम युद्ध-कलाकी निपुणता नहीं है। पर, राज्यके लिये कोष सेनासे कम आवश्यक नहीं था। हेमचन्द्रने कोषका इतनी योग्यतासे प्रबन्ध किया, कि शेरशाहकी बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें भी वह कभी खाली नहीं हुआ। हुमायूँका पीछा करते शेरशाह कन्नौज, दिल्ली और राजस्थानके रेगिस्तानों तक पहुँचा। वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था, कि उसके सैनिकोंको इस महीने का वेतन अगले महीने मिले और हेमचन्द्र कुबेर भण्डारी था। कोष क्यों कभी खाली होने लगा?

अपनी कार्यदक्षताके साथ-साथ हेमचन्द्र शेरशाहका बहुत विश्वासपात्र था। वह शेरशाहकी सभी सफलताओंको अपनी ही सफलता समझता था। शेरशाह मुसलमान था और हेमचन्द्र हिन्दू, लेकिन दोनों अपनेको एक देश, एक आदर्शकी सन्तान मानते थे। शेरशाहने जिस तरह दिल खोलकर हिंदुओं को आगे बढ़ाया था और सदियोंसे चले आते भेद-भावको अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था, उसके कारण सभी हिंदू शेरशाहके भक्त थे। भोजपुरी तो उसे अपना ही जैसा भोजपुरी मानते थे, इसलिये उसके साथ विशेष आत्मीयता रखते थे। यदि कम्पनीकी सेनाके साथ-साथ भोजपुरी सिपाही कलकत्तासे पेशावर तक पहुँचे थे, तो इस बात को उन्होंने चार सौ वर्ष पहले शेरशाहके समयको ही दोहराया था।

१५३६ ई०में शेरखाँ शेरशाहका नाम धारण कर गौड़में तख्त पर बैठा। १५४० ई०में हुमायूँ भारत छोड़ कर भागा। हुमायूँके भागनेके थोड़े ही दिनों बाद शेरशाह बंगालसे सिंध तकका बादशाह बन गया। जहाँ उसका शासन गया, वहाँ सुशासन, शांति-व्यवस्थाके स्थापित होनेमें देर नहीं हुई। इसमें काफी हाथ हेमचन्द्रका भी था। शेरशाहको पाँच ही साल भारतका अधिराज रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिंजरमें अकस्मात् बारूदमें आग लगनेसे शेरशाहको प्राण खोना पड़ा। उसे दिल्ली नहीं, अपना सहसराम प्यारा था, यह सभी जानते थे। इसलिये उसे वहीं

लाकर दफनाया गया। आज भी तालाबके बीचमें अपने विशाल मकबरेके भीतर वह बहादुर सो रहा है, जिसने अकबरका पथ-प्रदर्शन किया। कुछ बातोंमें यदि अकबर बढ़-चढ़ कर था, तो कितनी ही बातोंमें शेरशाह भी।

शेरशाहके मरनेके बाद उसका पुत्र इस्लामशाह गद्दीपर बैठा। उसके नौ बरसके (१५४५-५४) ईसवी शासनमें शेरशाही शासन-व्यवस्था चलती रही और उसमें हिन्दू-मुसलमानका भेद नहीं रहा। योग्य पुरुषका मान होता, उसको पूरा अपना काम का मौका था। इस सारे कालमें हेमचन्द्रको और भी अपना जौहर दिखलानेका मौका मिला। पहले शेरशाहकी छायामें होनेके कारण वह उतना प्रकाशमान नहीं होता था, अब वह शासनका सबसे बड़ा स्तम्भ था। भू-कर-व्यवस्थामें ही नहीं, बल्कि सामरिक सूझ-बूझमें भी वह असाधारण समझा जाता था। हेमचन्द्रके बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था। इस्लामशाह अपने पिताके इस योग्य अनुचरको बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखता।

४. विक्रमादित्य

इस्लामशाहके मरनेके बाद घरमें फूट पड़ गई। उसके नाबालिग पुत्रको मार कर शेरशाहके भतीजे आदिलशाहने गद्दी सँभाली। हेमचन्द्रको यह पसन्द नहीं आया, लेकिन युद्ध करना सम्भव नहीं था। पठानों के आपसी झगड़े से जो कमजोरी पैदा हुई, उससे वह और भी चिन्तित था। हेमचन्द्रकी योग्यताको देखकर आदिलशाहने अपना वजीर और सेनापति बनाया। घरमें पठानोंने आग लगा दी थी, इसलिये हेमचन्द्रको पहले बिहारको सँभालना था। आखिर वहींकी सेना सूरी वंशकी सेनाका मुख्य अंग थी। दिल्लीमें हेमचन्द्रके न रहनेपर वह खाली हो गई और हुमायूँने आक्रमण करके उसपर अधिकार कर लिया। इसके छ महीने बाद (१५५५ में) हुमायूँ पुस्तकालयकी सीढ़ियोंसे गिर कर दिल्लीमें मर गया और उसके १३ वर्षके पुत्र अकबरको बैरम खाँकी अतालीकीमें गद्दी सँभालना पड़ा। हेमू अपने वीरोंकी सेना लेकर दिल्लीकी तरफ दौड़ा और मुगलोंको भागनेमें ही खैरियत मालूम हुई।

हेमचन्द्रको मालूम हुआ, जिस वंशकेलिए वह लड़ रहा है, वह अब इस योग्य नहीं है, कि इस बड़े भारको अपने कन्धेपर उठा सके। सभी सूरी नहीं, बल्कि सभी पठान शाहंशाह बननेकेलिये तुले हुए थे। ऐसी स्थितिमें सेना का विश्वास छिन सकता था। उसके सेनानायकों और सैनिकोंने जोर दिया, और हेमचन्द्र विक्रमादित्यके नामसे १५५५ में दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। पिथौरा और जयचन्दके समय खोये सिंहासनको फिर हेमचन्द्रके रूपमें हिन्दू शासक मिला। अब भी मुगल शक्तिका उच्छेद नहीं हुआ था। यदि पठानोंमें शेरशाहके समयकी एकता होती,

तो हेमचन्द्रको यह कदम न उठाना पड़ता। पठान भी उसपर विश्वास रखते थे, इसलिये उसके झण्डेके नीचे लड़नेकेलिये तैयार थे। हेमचन्द्रने मुगलोंकी सेनाको हार पर हार दी। तुगलकाबादमें हेमूकी साधारण सफलता नहीं थी। एक लेखकके अनुसार बड़े-बड़े कलेवाले जंगी तजर्बेकार अफगान और जंगके भारी सामान, राजपूत, पठान और मेवातियोंकी ५० हजार सिपाहियोंकी जबर्दस्त फौज, एक हजार हाथी, ५१ दुर्गध्वंसक तोपें, ५०० धकनाल और ऊँटनाल, जम्बूरक उसके साथ थे। यह दरिया अपने स्थानसे हिला और जहाँ-जहाँ मुगल हाकिम बैठे थे, सबको रौंदता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

आखिरी फैसला पानीपतके मैदानमें हुआ, जहाँ अकबरका सेनापति खानजमाँ अली कुल्ली खाँ सीस्तानी अपनी फौज लिये खड़ा था। इस युद्धके बारेमें शम्सुल-उलमा मौलाना आजादने अपनी "दरबार अकबरी" में लिखा है—"हेमू अपने हवाई नामक हाथीपर सवार हो सेना के मध्यको सँभाले खड़ा फौजको लड़ा रहा था। अन्तमें दानका रंग-ढंग देखकर उसने हाथी हौल दिये। काले पहाड़ोंने अपनी जगहसे रफ्त की और काली घटाकी तरह आये। अकबरी नमकख्वार दिलमें नहीं लाये, भागे, लेकिन अपने होश-हवासके साथ। काले पानीके बाढ़को उन्होंने रास्ता दिया। लड़ते-भिड़ते हटते चले गये। लड़ाईके समय सेनाका रुख और नदीका बहाव एक हुक्म रखता है, जिधरको फिर गया, फिर गया। शत्रुके हाथियोंकी पाँती बादशाही फौजके एक पार्श्वको रेलती ले गई। खानेजमाँ अपनी जगह खड़ा था और सेनापतिकी दूरबीनसे चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा, कि काली आँधी जो सामनेसे उठी, बराबरको निकल गई। अब हेमू सेनाके मध्यको लिए खड़ा है। हरावल सेनाको ललकार कर हमला किया। शत्रु हाथियोंके घेरेमें था। उसके चारों ओर बहादुर पठानों का झुण्ड था। उसने फिर भी घेरेको ही रेला। तुर्क तीरोंकी बौछार करते हुए बढ़े। उधरसे हाथी तलवारें सूँड़ोंमें फिराते और जंजीरें झुलाते आगे आये।...हाथियोंके हमलेको हौसले और हिम्मतसे रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियों से बिदकते हैं, तो कूद पड़े और तलवारें खींच कर शत्रुकी पाँतियोंमें घुस गये। उन्होंने तीरोंकी बौछारसे काले राक्षसोंके मुँह फेर दिये और काले पहाड़ों को मिट्टी का ढेर-सा बना दिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। हेमूकी बहादुरी तारीफके लायक है। वह तराजू-बाँटका उठाने वाला, दाल-चपातीका खानेवाला हौदेके बीचमें नंगे सिर खड़ा। सेनाकी हिम्मत बढ़ा रहा था।... जीत और हार भगवान्के हाथमें है।...शादीखान पठान हेमूके सरदारोंकी नाक था, कट कर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाजके दानों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथीपर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारोंके नाम ले-लेकर पुकारता था, कि समेट कर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतनेमें एक मौतका

। हेमचन्द्रको यह कदम न उठाना पड़ता। पठान भी उसपर विश्वास रखते थे, इसलिये उसके झण्डेके नीचे लड़नेकेलिये तैयार थे। हेमचन्द्रने मुगलोंकी सेनाको र पर हार दी। मुगलकालमें हेमूकी साधारण सफलता नहीं थी। एक लेखकके नुसार बड़े-बड़े कमरेवाले चंगी तलवारोंवाले अफगान और जंगके भारी सामान, जपूत, पठान और मेवातियोंकी ५० हजार सिपाहियोंकी जबर्दस्त फौज, एक हजार थी, ५१ दुर्गध्वंसक तोपें, ५०० घड़नाल और ऊँटनाल, जम्बूरक उसके साथ थे। ह दरिया अपने स्थानसे हिला और जहाँ-जहाँ मुगल हाकिम बैठे थे, सबको रौंदता या दिल्ली पहुँच गया।

आखिरी फैसला पानीपतके मैदानमें हुआ, जहाँ अकबरका सेनापति खानजमाँ ली कुल्ली खाँ शीस्तानी अपनी फौज लिये खड़ा था। इस युद्धके बारेमें शम्सुल-लमा मौलाना आजादने अपनी "दरबार अकबरी" में लिखा है—"हेमू अपने हवाई मक हाथीपर सवार हो सेना के मध्यको सँभाले खड़ा फौजको लड़ा रहा था। अन्तमें दानका रंग-ढंग देखकर उसने हाथी होल दिये। काले पहाड़ोंने अपनी जगहसे रकत की ओर काली घटाकी तरह आये। अकबरी नमकख्वार दिलमें नहीं लाये, ागे, लेकिन अपने होश हवासके साथ। काले पानीके बादको उन्होंने रास्ता दिया। ड़ते-भिड़ते हटते चले गये। लड़ाईके समय सेनाका रुख और नदीका बहाव एक हुक्म रखता है, जिधरको फिर गया, फिर गया। शत्रुके हाथियोंकी पाँती बादशाही ौजके एक पार्श्वको रेलती ले गई। खानेजमाँ अपनी जगह खड़ा था और सेनारक्षिकी ्रबीनसे चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा, कि काली आँधी जो ामनेसे उठी, बराबरको निकल गई। अब हेमू सेनाके मध्यको लिए खड़ा है। ्धारक सेनाको ललकार कर हमला किया। शत्रु हाथियोंके घेरेमें था। उसके ारों ओर बहादुर पठानों का झुण्ड था। उसने फिर भी घेरेको ही रेला। तुर्क तीरोंकी ौछार करते हुए बढ़े। उधरसे हाथी तलवारें सूँड़ोंमें फिराते और जंजीरें झुलाते ागे आये।...हाथियोंके हमलेको हौसले और हिम्मतसे रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियों से भिड़कते हैं, तो कूद पड़े और तलवारें खींच र शत्रुकी पाँतियोंमें घुस गये। उन्होंने तीरोंकी बौछारसे काले राक्षसोंके मुँह फेर देये और काले पहाड़ों को मिट्टी का ढेर-सा बना दिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। ेमूकी बहादुरी तारीफके लायक है। वह तराजू-बाटका उठाने वाला, दाल-चपातीका ाने वाला होदेके बीचमें नंगे सिर खड़ा। सेनाकी हिम्मत बढ़ा रहा था।... ीत और हार भगवान्के हाथमें है।...शादीखान पठान हेमूके सरदारोंकी नाक ा, कट कर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाजके दानों की तरह बिखर गई। फिर भी ेमू ने हिम्मत न हारी। हाथीपर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारोंके नाम ले-लेकर पुकारता था, कि समेट कर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतनेमें एक मौतका

की आँखमें लगकर आरपार हो गया। उसने अपने हाथसे तीर खींच कर
और आँखपर रुमाल बाँध लिया, मगर घावसे इतना बेहोश और बेक़रार
कि हौदेमें गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियोंकी हिम्मत टूट गई, सब
-बियर हो गये।"

पानीपतका मैदान अकबरके हाथमें रहा। खानेजमाँने मुगल सल्तनतकी
दुस्तानमें नींव रख दी। शुक्रवार मुहर्रम महीनेकी दूसरी तारीख हिजरी सन् ६१८
नवम्बर १५५६ ई०)का पानीपतका रन भारतके भाग्यके निपटारेकी तारीख है।

सेना भाग गई। तुर्कोंने हाथीको घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे।
उन्हें अकबरके सामने ले जाया गया। किसी सवालका जवाब देना हेमचन्द्रने अपनी
शानके खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस यही था, कि युद्ध-क्षेत्रसे मैं जिन्दा क्यों
यहाँ आया। बैरमखाँने अकबरसे कहा : अपने हाथसे इस काफिरको मार कर
गाजीकी पदवी धारण कीजिये। अकबरने मरणासन्नके ऊपर तलवार उठानेसे इन्कार
कर दिया। यदि अकबर अभी १४ वर्षका छोकरा न होता और उसका ज्ञान और
तजर्बा परिपक्व होता, तो इसमें शक नहीं, हेमचन्द्रको वह अपनी तरफ करनेकी
कोशिश करता और वह अकबरके नौ रत्नोंमें होते।

हेमचन्द्रको मुसलमान इतिहासकारोंने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना
आज़ादने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आजकल अपनेको भार्गव ब्राह्-
कहते हैं। समकालीन और अकबरके पुत्र जहाँगीरके इतिहासकार हेमचन्द्रके जन्म-
स्थानके बारेमें कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारोंने उन्हें
पश्चिमका ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहारके रौनियार
वैश्योंमें दूसरी ही परम्परा पाई जाती है, जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है।
उसके अनुसार हेमचन्द्र रौनियार थे, सहसरामके आस-पासके ही रहने वाले थे और
अपनी योग्यतासे इतने ऊँचे पदपर पहुँचे थे। श्री रामलोचन शरण बिहारी स
रौनियार हैं। उन्होंने लेखकको बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयोंमें हे
गीत गाती हैं। मैंने उनसे उस गीत को जमा करनेके लिये कहा। ऐसे महत्व
गीतोंकी गायिकायें अब कुछ बूढ़ी ही रह गई हैं जो दिन पर दिन खतम हो रही
हेमचन्द्रका भोजपुरीभाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिये भी मालूम
कि शेरशाहकी प्रभुताका आरम्भ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेरशाह
के वशजोंका यहाँके लोगोंको अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभावि
दाल-चपाती खानेवाले बनिये नहीं थे, रौनियार आज भी मास मछ
, और जैसा पहले कहा, सार्थवाह होनेके कारण उनमें सैनिक की हि
भोजपुरी इलाकेके तो हरेक बातका तरुण लाठी और हिम्मतका धनी होता

अध्याय २

मुस्लिम साम्यवादी

भारतका मुस्लिम-शासन हिन्दू-शासनकी तरह ही परम निरंकुशताका शासन था। उसी तरह क्रूर और अखण्ड दास-प्रथा मुस्लिम शासनमें भी चलती थी और हमारी अधिकांश जनताकेलिये सामाजिक न्यायकी जगह भीषण अन्धेरनगरी मची थी। हमारे सोचने-समझने वाले मस्तिष्क और हृदय इसे जरूर देखते थे, पर अज्ञाके रेलमें नख लगानेकेलिये हिन्दुओंमें कोई नहीं दीख पड़ता था। इसी कालमें कबीर और दूसरे बड़े-बड़े सन्त हुए, जिन्होंने कुछ शीतल बयार चलानेकी कोशिश की, पर ठोस पृथ्वीके नहीं बल्कि आसमानी। पृथ्वीकी ठण्डी बयार का चलाना बहुत खतरेकी बात थी, सिरकी बाजी लगानी पड़ती, जिसके लिए कौन तैयार होता! अपने विचारोंकेलिये मुसलमान सन्तोंने सिर की बाजी लगाई, सरमदका उदाहरण हमारे सामने है। इतना ही नहीं, आर्थिक विषमता दूर करनेका प्रयत्न भी उनमेंसे कुछने किया, जिसकेलिए सिर देने या उससे भी अधिक सासत सहनेके सिवा उन्हें कुछ नहीं मिला। उनकी कुर्बानियों को लोगोंने भुला दिया, क्या इतिहास भी उसे भुला देगा! ऐसे तीन महापुरुष हमारे सामने हैं—सैयद महम्मद जौनपुरी, मियाँ अब्दुला नियाजी और शेख अल्लाई।

१. सैयद महम्मद जौनपुरी

गुलाम, खिलजी और तुगलक—तीन तुर्क-वंश दिल्लीके तख्तसे भारतपर शासन कर चुके थे। तीनों के वंशधर विदेशी थे। उनकी कोशिश यही थी, कि हिन्दुस्तानी-पनका रंग उनपर न चढ़ने पाये। जनताके शोषण और उत्पीड़नसे जो सम्पत्ति प्राप्त होती थी, वह विदेशसे आये तुर्की शासकोंकेलिये थी। कुछ जूठे टुकड़े भारतीय मुसलमानोंको मिल जाते थे, और उनके छोड़े हुए टुकड़े हिन्दू लग्गू-भग्गू पाते थे। आर्थिक तौरसे नहीं, बल्कि सांस्कृतिक तौर से भी तुर्क-वंश अपनेको भारतसे निर्लिप्त रखना चाहते थे। यदि उसमें वह पूरी तौरसे सफल नहीं हुए, तो अपने कारण नहीं। ११९२ ई०में दिल्ली तुर्कों की राजधानी बनी। उसके दो सौ वर्ष बाद १३९८ ई० में मध्य एसियाका एक तुर्क—तैमूर लंग—उसके पतनका कारण हुआ। इस प्रहारके कारण तुर्क-शासन सँभल नहीं सका और मुसलमानी सल्तनत कई टुकड़ोंमें बँट

गई। दक्षिणके बड़े भागको बहमनी सल्तनतने सँभाला। इसी समय गुजरातमें अलग गुजराती मुस्लिम सल्तनत, बंगालमें भी एक मुस्लिम सल्तनत कायम हुई। सबसे जबर्दस्त सल्तनत जौनपुरकी थी, जिसे शर्की (पूर्वी) सल्तनत कहते थे। दिल्ली-से बागी होकर अस्तित्वमें आईं ये सभी मुस्लिम सल्तनतें भारतकी मिट्टीसे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़नेकेलिए तैयार थीं। वस्तुतः उसीके बलपर वह दिल्लीसे लोहा ले सकी थीं, क्योंकि बड़े-बड़े मुल्ले, शासक और सेनापति दिल्लीके समर्थक थे।

यह आश्चर्यकी बात नहीं है, यदि हिन्दू नहीं, बल्कि ये मुस्लिम सल्तनतें हमारे प्रादेशिक साहित्यके निर्माणमें सबसे पहले आगे आईं। इस्लाम-प्रभावित हिन्दी अर्थात् उर्दूका साहित्य बहमनियोंके समय शुरू हुआ। बंगालकी भी यही बात है। जौनपुर की शर्की सल्तनतने हमें कुतुबन, मझन, जायसी जैसे रत्न प्रदान किये। जौनपुरने हमारी धरतीमें बहुत नीचे तक घुसनेकी कोशिश की। १५ वीं सदीमें, एक सौ साल-से ऊपर तक, वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहारकी सांस्कृतिक और राजनीतिक राजधानी जौनपुर रही। उसके महत्वको आज बहुत कम लोग समझते हैं। इसी जौनपुरमें सैयद मुहम्मद जौनपुरीका जन्म हुआ था। इनकी मृत्यु १५०४-५ ई० (हिजरी ९११) में हुई। जान पड़ता है, यह १५ वीं शताब्दीके मध्यमें पैदा हुए। उनकी जवानीके समय देशकी अवस्था बड़ी ही दयनीय थी। चारों ओर बदअमनी छाई हुई थी। जौनपुरने काफिरोंके साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ कर कुफ्रकी ओर एक कदम उठा लिया था। हिन्दू-मुस्लिम दूध-पानीकी तरह मिलें, इसे कोई भी मुस्लिम शासक या धर्माचार्य पसन्द नहीं करता था। चावल-उड़दकी तरह उनका मेल हो, इसके मानने वाले भी बहुत नहीं थे, तो भी उसका उतना विरोध नहीं होता था। शेरशाहने जौनपुरमें हिन्दू-मुसलमानकी एकता देखी, वहीं उसका बचपन बीता था। यही शेरशाह प्रायः हर बातमें अकबरका मार्ग-प्रदर्शक रहा।

जौनपुरके अपेक्षाकृत उदार वातावरण और आर्थिक-राजनीतिक दुरवस्थाने सैयद मुहम्मद पर प्रभाव डाला था। इस्लामसे पहले ईरानमें साम्यवादकी लहर बड़े ज़ोर-शोर से आई थी। ईसाकी तीसरी सदीमें सन्त मानी धार्मिक सुधार और समन्वयके साथ-साथ आर्थिक समानताके सिद्धांतको लेकर चले थे, जिसकेलिये उन्हें देशसे बाहर मारा मारा फिरना पड़ा। पाँचवीं-छठी सदीमें मानीके ही मार्ग-को आगे लेकर मज्दक बढ़े और एक बार आर्थिक साम्यवाद ईरानमें जंगलकी आगकी तरह बढ़ा। स्वयं सासानी शाहंशाह कवाद उसके प्रभावमें आ गया, और सिंहासनसे वंचित होना पड़ा। अन्तमें वह और उसका पुत्र नौशेरवाँ ही मज्दकके मजदूर-पन्थको क्रूरतापूर्वक नष्ट करनेके कारण हुए। उसके सौ वर्ष बाद ईरान इस्लामके झंडेके नीचे आने लगा, और सातवीं शताब्दी बीतते-बीतते एक ... ईरानके रूपमें परिवर्तित हो गया। जर्दुश्ती-धर्म अब बहुत कम ही रह-

गया था, लेकिन मज्दक और उसके लाखों शिष्यों की कुर्बानियाँ बेकार नहीं गईं। इस्लामके दीर्घ शासनमें, दूरसे उस सुहावने युग और उससे भी बढ़ कर सुन्दर सदेशकी प्रतिध्वनियाँ विचारशीलों के कानोंमें पड़ती थीं। मज्दकी पथ अब जिन्दीक के नामसे पुकारा जाने लगा था। जिन्दीक बाहरसे दूसरे मुसलमानों ही की तरह थे, पर उनके भीतर आर्थिक साम्यवादकी भावना काम करती थी, जिसके ही कारण इस्लामके दूसरे पथोंकी अपेक्षा जिन्दीकोंमें कम असहिष्णुता होती थी।

सैयद महम्मद जौनपुरी जैसे विद्वान्‌केलिए जिन्दीक अपरिचित नहीं हो सकते थे। शासकों और शोषकोंकेलिए खतरनाक विचार उस समय धर्मकी जबर्दस्त आड़में ही पनप सकते थे। सैयद महम्मदने उसीकी आड़ ली। कबीर उनके समकालीन थे। कबीरने पैगम्बरसे कम होने का दावा नहीं किया, लेकिन उन्होंने इस्लामके पारिभाषिक शब्दको अपने लिए इस्तेमाल नहीं किया। मुसलमानोंको भी खींचनेकी कोशिश जरूर की, पर सफलता हिन्दुओंमें ही मिली। कबीरकी भाषा और रीतिसे अपरिचित मुल्ला उनकी तरफ अँगुली नहीं उठा सकते थे। कबीरने आर्थिक साम्यवादको भी नहीं हाथमें लिया। महम्मद जौनपुरीने शायद तल्लीन होते समय आवाज सुनी—अन्त-ल्-मेहदी (तू मेहदी है)। मेहदी का शब्दार्थ शिक्षक या अधिम है। इस्लाममें हजरत महम्मदके बाद आनेवाले सबसे अन्तिम पैगम्बरको मेहदी कहा जाता है। मेहदीका इस्लाममें वही स्थान है, जोकि हिन्दुओंमें कल्कि अवतार का। मुल्लोंके लिये यह बड़ी कड़वी घूँट थी। सौभाग्यसे सैयद महम्मद दिल्लीमें नहीं, जौनपुरमें पैदा हुए, जहाँ अधिक खुलकर साँस ली जा सकती थी।

मेहदीके प्रचारका ढंग और उनकी बातें ऐसी थीं, कि लोग उनकी तरफ आकृष्ट होने लगे। अनुयायियोंको बढ़ते देख इस्लामके झण्डेबरदार चुप कैसे रह सकते थे? जौनपुर में उनका रहना असम्भव हो गया। वह वहाँसे चलकर गुजरात पहुँचे। गुजरात में भी दिल्लीसे बागी होकर जौनपुरकी तरहकी ही एक सल्तनत कायम हुई थी। वहाँ मेहदीके उपदेशों का प्रभाव केवल मुस्लिम जनसाधारणपर ही नहीं पड़ा, बल्कि अबुलफजलके अनुसार सुल्तान महमूद स्वयं उनका अनुयायी हो गया। बहुत दिनों तक वहाँ भी वह न टिक सके। अन्तमें वहाँसे अरब गये। मक्का मदीना देखा। घूमते-घामते ईरानमें निकल गये। वहाँपर भी उनके पास भक्तोंकी भीड़ लगने लगी। शाह इस्माईलने ईरानकी राष्ट्रीयताको उभाड़नेकेलिये और उसके द्वारा अपने राजवंशको मजबूत करनेके लिए शिया धर्मको राजधर्म स्वीकृत किया था। शिया धर्मने कट्टर इस्लामकी बहुत-सी बातें छोड़ दी थीं। मेहदी जौनपुरी वहाँ एक और शाख लगाना चाहते थे। यह न पसन्द कर शाह इस्माईलने कड़ाई की। सैयदको ईरान छोड़ना [illegible] [illegible]ायी जिन्दीकके नामसे उस समय भी [illegible] [illegible]ुरी के मुँहसे सुन कर

यह यदि उनकी शिष्य मण्डलीमें शामिल होने लगे, तो आश्चर्य नहीं। और पीछे भी मेहदीसे मिलती-जुलती विचारधारा यदि ईरानमें मौजूद रही, तो उसका श्रेय मेहदी को नहीं, बल्कि गजदकी कुर्बानियों को देना होगा।

मेहदी ईरानसे लौट आये। फरा या फड़ामें १५०५ या १५०६ ई०में उनका देहान्त हो गया। लोग उनकी कब्र पूजने लगे। उनके अनुयायी मेहदीके सन्देशको जीवित रखनेमें सफल हुए।

२. मियाँ अब्दुल्ला नियाजी

मियाँ अब्दुल्ला नियाजी अफगान (पठान) शायद हिन्दुस्तानमें आकर बस गये थे। मेहदीकी तरह उनके बारेमें भी नहीं कहा जा सकता, यह किस सन्में पैदा हुए। शेरशाहके जमाने (१५४०-४५ में काफी वृद्ध हो चुके थे। हो सकता है, उनका जन्म सैयद महम्मद जौनपुरीके अन्तिम वर्षोंमें हुआ हो। वह कई साल मक्का मदीना—में रहे। वहाँ ही वह जिन्दीक या मेहदी पंथके प्रभावमें आये। भारतमें आकर बियाना (राजस्थान)में उन्होंने गरीबोंके मुहल्लेमें डेरा डाला। स्वयं शरीर से मेहनत करनेमें नहीं झिझकते, मेहनत करने वालोंसे ही बहुत आत्मीयता रखते थे। मुसलमानोंमें भिश्ती और दूसरे मेहनत-मजदूरी करके जीनेवाले लोग नियाजी पास जाते। नियाजी उन्हें लेकर नमाज पढ़ते। अपने पास जो कुछ होता, वह उनमें बाँट कर खाते। वह बड़े आलिम (विद्वान्), इस्लामके अच्छी तरह ज्ञाता थे। इस्लाम की जन्म-भूमिमें वर्षों रहे थे। ऐसे व्यक्तिके सादा और गरीबीके जीवनको देखकर लोगोंका हृदय उनकी ओर खिंचना स्वाभाविक था। इन्हींमें बियानाके एक गुरु-घरानेके गद्दीधर (सज्जादानशीन) शेख अल्लाई थे। शेख अल्लाईने खोत से खोत लगा ली। अब गुरु-चेलेका जीवन-प्रवाह एक होकर चला।

३. शेख अल्लाई

बंगालमें सन्तों (शेखों)का एक परिवार कितने ही समयसे बस गया था। इसीमें शेख हसन और शेख नसरुल्ला दो भाई पैदा हुए, जिनमें नसरुल्ला बहुत विद्वान् थे। दोनों देश छोड़कर हज करने गये। वहाँसे १५२८-१५२६ ई (हिजरी ६३५) में लौटकर बंगाल जानेकी जगह बयानामें रहने लगे। गुरुओं का सम्मान करना हमारे देशकी मिट्टी-पानीमें था। बयानामें भी उन्हें चेलोंकी कमी नहीं हुई। बड़े भाई शेख हसन अपनी आध्यात्मिक शक्तिके कारण बनानाके मुसलमानोंके एक सम्माननीय गुरु बन गये। उनका बेटा शेख अल्लाई बचपनसे ही "होनहार बिरवानके होत चीकने पात।" परिवार में ज्ञान-ध्यानका वातावरण और शिक्षा-दीक्षाका पूरा सम्मान था। विद्वताके साथ-साथ असाधारण वाग्मी अल्लाई बापके

मरनेपर गद्दीपर बैठा। सादगीका जीवन उसे पसन्द था, लेकिन उसमें भारी परिवर्तन लानेके कारण मियाँ नियाजी हुए। बूढ़े नियाजीने उसे अपनी तरफ खींचा। जान पड़ा; किसी चीजको वह भीतरसे चाहता था, जिसे वह जान नहीं पाता था। नियाजीके जीवनने अल्लाईकी आँखें खोल दीं। उसने अपने शिष्यों और मित्रोंसे कहा "वस्तुतः खुदाका रास्ता यह है। हम जो कर रहे हैं, वह थोथी, अहमन्यता है।"

मनुष्यमात्र और उनमें भी गरीबोंका हित अल्लाईके धर्म और जीवनका लक्ष्य बन गया। किसीके साथ यदि कभी कोई गुस्ताखी हो गई थी, तो उसके लिए वह क्षमा माँगते। लोगोंके जूतोंको अपने हाथों सीधा करते। बाप-दादोंके जमानेसे पीरी-मुरीदी चली आती थी। मुसलमान शासकोंने जागीर दी थी। खानकाह (गुरुद्वारा) थी, जिसमें आये-गयेके भोजनके लिए रात-दिन लंगर चला करता था। अल्लाईको अब वह काट खाने लगी। उन्होंने अपना सब माल-असबाब गरीबों में बाँट दिया। पुस्तकों तकको भी अपने पास रखना पसन्द न कर चाहने वालोंको दे दिया। पत्नीसे कहा—"मेरा तो यही रास्ता है। तुम गरीबी और भुखमरीके लिये तैयार हो, तो मेरे साथ रहो; नहीं तो इस घरमेंसे अपना हिस्सा लेकर आरामसे रहो।" पत्नी पतिके रास्ते पर चलनेकेलिए साथ हो गई।

शेख अल्लाई अब्दुल्लाके कदमोंमें आ गये। गुरुने मेहदीके पंथकी बातें बतलाई। कैसे ज्ञान-ध्यान करना चाहिये, यही नहीं बताया, बल्कि गरीबी और अत्याचारकी चक्कीमें पिसे जाते बहुजनके दुःखके लिये जो आग उनके हृदयमें चल रही थी, उसे अल्लाईके हृदयमें जला दी। अल्लाईके हित, मित्र और शिष्य-मंडली भी अब नियाजीकी माला जपने लगी। लोग नियाजी और अल्लाईके पीछे दौड़ने लगे। अल्लाईकी वाणीमें जादूका असर था, लोग अपना सब कुछ उनकी बातपर लुटानेकेलिये तैयार थे। एक बार जो उनके उपदेशोंको सुन लेता, वह फिर कहाँ अपने आपमें रह पाता! वहाँ हालत यह थी "कभी घनी घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना।" शामको जो भोजन बच रहता, उसे अपने पास रखना अल्लाई के धर्मके खिलाफ था। "का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर विश्वम्भरो गीयते" (जब भगवान् सबके भरण-पोषण करने वाले हैं, तो मुझे चिन्ताकी क्या जरूरत) यही कह लीजिये, या यह, कि पेटकी चिन्ता मनुष्यको बराबर बनी रहनी चाहिये, तभी वह सुपथ पर चलनेकी चिन्ता कर सकता है। रोटी ही नहीं, नमक तक भी हर रात खतम कर दो, पानी भी घड़ेमें मत रक्खो। रातको सारे बासन खाली करके औंधे रख दिये जाते थे। हर रोज नया जीवन आरम्भ होता था, हर रोज खट्टा मीठा, नया तजर्बा हासिल किया जाता। गुरु और परमगुरुको इसमें आनन्द आता था। उनका अनुयायियोंका वृहत् परिवार भी इसीमें आध्यात्मिक आनन्द अनुभव करता था।

सभी हथियारबन्द, सभी कवच और शिरस्त्राणधारी थे। सलीमशाहने उस समयके बड़े-बड़े आलिमों सैयद रफीउद्दीन, अबुल्फतह थानेसरी आदिको दरबारमें बुलाया। अल्लाईने दरबारमें आकर दरबारी कायदेके अनुसार वन्दना न कर पैगम्बर इस्लामके जमानेके कायदेके मुताबिक लोगोंको "सलाम अलेकुम्" (तुम्हारे ऊपर सलाम) कहा। सलीमशाहको बुरा लगना ही था, लेकिन सलामका जवाब दिया। मुल्ला सुल्तानपुरीने शाहके कानमें भरा—"देखा, कितना सर्कश है। मेंहदीका मतलब संसारका बादशाह है। यह विद्रोह किये बिना नहीं रहेगा। इसे कत्ल करवा देना उचित है।" शेख अल्लाईने मौका पाकर व्याख्यान शुरू किया। व्याख्यान कुरानकी आयतोंकी व्याख्याके रूपमें था। संसारकी विषमता और धनके बँटवारेमें भारी भेदको दिखलाते हुये बतलाया, "हमारा जीवन कितना निकृष्ट है। निकृष्ट स्वार्थोंके लिये धर्माचार्य क्या-क्या नहीं कर डालते। दूसरोंको वह क्या रास्ता दिखलायेंगे, जबकि अपने ही उन्हें रास्ता मालूम नहीं है।" अल्लाईने गरीबोंका चित्रण किया। मेहनत कर-करके मरने वाले लोग भी हमारे और तुम्हारे जैसे ही अल्लाके प्यारे बच्चे हैं। चित्रण इतना सजीव और हृदयद्रावक था, कि लोगोंकी आँखोंमें आँसू भर आये। सलीमशाह खुद अपनेको सँभाल नहीं सका। दरबारसे महलमें गया। वहाँ दस्तरखानपर तरह-तरहके स्वादिष्ट भोजन सजे हुए थे, पर बादशाहने उसमें हाथ तक न लगाया। दूसरों से कहा—आप जो चाहो खा लो। खाना क्यों नहीं खाते, यह पूछने पर कहा—इस खानेमें गरीबोंका खून दिखलाई पड़ता है। फिर सभा हुई। सैयद रफीउद्दीनने मेंहदी पंथके बारेमें एक पैगम्बर वचनपर बातचीत शुरू की। अल्लाईने कहा—तुम शाफई सम्प्रदायके हो और हम हनफी हैं। तुम्हारे और हमारे स्मृति-वचनों और उनकी प्रामाणिकतामें अन्तर है। बेचारे चुप रह गये। मुल्ला सुल्तानपुरीके लिये तो जबान खोलना मुश्किल था। अल्लाई कहते थे—"तू दुनियाका पण्डित है, लेकिन दीनका चोर है। एक नहीं अनेक धर्म-विरोधी कार्य खुल्लम-खुल्ला करता है।" कई दिनों तक सभाएँ होती रहीं। इन सभाओंमें फैजी और अबुल-फजलके पिता शेख मुबारक भी शामिल होते थे, उनकी सारी सहानुभूति अल्लाईके साथ थी, जिसे कभी-कभी वह प्रकट करनेके लिये भी मजबूर हो जाते थे। शेख मुबारक गरीबीके शिकार थे। उनकी सारी प्रतिभा उनकी दुनियामें बेकार सिद्ध हुई थी; इसलिये भी वह अल्लाईके साम्यवादीको पसन्द करते थे।

आगरामें अल्लाईकी धूम थी। कितने ही अफसर अपनी नौकरियाँ छोड़ कर उनके साथ हो लिये। कितने ही दूसरे घरबार लुटा कर मेंहदीके पंथके पथिक बन गये। बादशाहके पास रोज-रोजकी खबरें पहुँचती रहती थीं। मुल्ला सुल्तानपुरी उनमें और नमक-मिर्च लगाता था। आखिर सलीमशाहने दिक होकर हुकुम दिया—यहाँ न रह दक्षिणमें चले जाओ। अल्लाईने सुन रक्खा था, दक्षिणमें मेंहदी पंथके मानने

वाले बहुतसे हैं। उन्हें देखनेकी इच्छा थी, जिसकी पूर्ति इस समय हो सकती थी। अल्लाकी जमीन विशाल है, कह कर वह दक्खिनकी ओर चल पड़े। दक्खिनकी बहमनी रियासतें सूरी सल्तनतमें स्वतंत्र थीं। मुगल ही उन्हें लेनेमें आंशिक सफलता पा सके।

सीमान्तके नगर हँडिया में पहुँचे। हाकिम आजम हुमायूँ शिरवानी अल्लाई-का वचन सुनते ही गुलाम हो गया, बराबर उपदेशमें आने लगा। उसकी आधीसे अधिक सेना भी मेंहदीपथी बन गई। साम्यवाद बहुजन-हितके लिये ही सोता, उसीके लिये जागता है। फिर जब उसकी सेवामें अल्लाईकी वाणी मिले, तो वह क्यों न आदमीके हृदयको मथ कर बेकाबू बना दे। शिरवानी सूरी हाकिम था, उसकी इस कार्रवाईको मुल्ला सुल्तानपुरी बढ़ा-चढ़ाकर सलीमशाहके कानोंमें पहुँचाया। सलीम-शाहने दरबारमें हाजिर करनेका हुकुम जारी किया।

१५३६-३७ ई० की बात है। पंजाबमें नियाजी पठानोंने विद्रोह कर दिया। सलीमशाह बियानाके पास पहुँचा, तो मुल्ला सुल्तानपुरीने कहा—"छोटे फितनेका मैंने बन्दोबस्त कर लिया है। बड़े फितनेकी आप खबर लीजिये।" बड़ा फितना मियां अबदुल्ला नियाजी थे, जो कि अल्लाईके गुरू थे। पीर नियाजीके पास हमेशा तीन-चार सौ हथियारबन्द चेले बियानाके पहाड़ोंमें तैयार रहते थे। पंजाबके निया-जियों की बगावतसे सलीमशाह जला-भुना बैठा था। दूसरे नियाजीके बारेमें सुनकर उसका गुस्सा भड़क उठा, और बियानाके हाकिमको लिखा—अबदुल्लाको उसके शिष्योंके साथ पकड़ कर तुरन्त हाजिर करो। हाकिम अबदुल्लाका भगत था। चाहता था, गुरू कहीं हट जायें, तो अच्छा। लेकिन, बूढ़े गुरूने इसे पसन्द नहीं किया। बादशाहके दरबारमें बूढ़े साम्यवादी सन्त पहुँचे "सलाम अलैक" की, दरबारी कायदेके मुताबिक कोर्निश नहीं बजाई। दरबारीने पूछा—"शैखा, ब-बादशाहाँ ईंचुनी सलाम मी कुनन्द?" (शेख, क्या बादशाहोंके साथ ऐसे ही सलाम करते हैं?) शेखने मुँहतोड़ जवाब दिया। अल्लाके रसूलको इसी तरह सलाम करते थे "मन् ग़ैर-ईं नमिदानम्" (मैं इससे दूसरा नहीं जानता।) सलीमशाहने जान-बूझकर पूछा—"पीरे अल्लाई हमीं अस्त?" (अल्लाईका गुरू यही है?) मुल्ला सुल्तानपुरी तो घातमें मौजूद ही था, बोला—"हमीं (यही)।" सलीमशाहने संकेत किया। बूढ़े संत पर लात, मुक्का, लाठियाँ, कोड़े बरसने लगे। जब तक होश रहा, तब तक वह कुरान-की एक आयत पढ़ते दुआ माँग रहे थे—"रब्बना अफ़र लना जनूबेना व असा-फ़ेना।" (हे मेरे भगवान्, माफ कर हमें, हमारे गुनाहोंको, हमारे दुष्कर्मों को)।

बादशाहने पूछा—"चि मीगोयद्?" (क्या कहता है?) मुल्लाने बादशाहके अरबीके अज्ञानसे लाभ उठाकर कहा—"शुमारा व मारा काफिर मीख़ानद।" (… और मुझे काफिर कह रहा है।) बादशाहको और गुस्सा आया, उसने और

भी कड़ाई करनेका हुकुम दिया। घटे भरसे ज्यादा बूढ़ेके शरीरपर प्रहार किये जाते रहे। मुर्दा समझ कर छोड़ दिया। जालिमोंके हटते ही लोग दौड़े। खालमें लपेट कर बूढ़े सन्तको अन्यत्र ले जाकर रक्खा। प्राण गये नहीं थे। कितनी ही देर बाद होश आया।

सन्त बियाना से अफगानिस्तानकी ओर गये। फिर पंजाबमें बेलबाड़ा और दूसरी जगहोंपर घूमते रहे। अन्तमें सरहिन्द पहुँचे और वहीं उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। मालूम नहीं सरहिन्दमें अब भी इस साम्यवादी सन्तकी कोई कब्र है या नहीं।

इधर हँडियामें अल्लाईके बारेमें जो खबर मिली, उसके कारण सलीमशाह-की नींद हराम हो गई। वह अब उसके पीछे पड़ा। आगमें घी डालनेके लिये मुल्ला सुल्तानपुरी मौजूद था। शेरशाहके समयसे मियाँ बुड्ढेकी बड़ी इज्जत थी। इस्लाम-के वह बड़े आलिम और दरबारके माननीय व्यक्ति थे। बुढ़ापेके कारण अब अधिक-तर एकान्तवास करते थे। अल्लाई उनके पास पहुँचे। मियाँ बुड्ढे प्रभावित हुये। उन्होंने सलीमशाहके पास पत्र लिखा, कि यह बात ऐसी नहीं है, जिसके कारण इस्लामकी जड़ कटती हो। मियाँ बुड्ढेके बेटेने समझाया—सुल्तानपुरी इससे आप पर नाराज होगा। डर गये, पिण्ड छुड़ानेके लिये अल्लाईसे चुपकेसे कहा—"तू तनहा दर गोशेमन बगो, कि अर्जी दावा तायब शुदम्।" (तू अकेले मेरे कानमें कह, कि मैंने इस दावासे तोबा कर लिया।) भला जानके लोभसे अल्लाई ऐसा कर सकते थे? वह तो सिरसे कफन बाँधकर इस रास्तेपर चले थे।

अल्लाई सलीमशाहके दरबारमें पहुँचे। सन् १५३६ ई० का अन्तिम महीना था। मुल्ला सुल्तानपुरी और दूसरे मुल्लोंको क्यों न घबराहट होती? अल्लाई जादूगर था, उसकी जबान चले और सलीमशाहका दिल न बदले, यह कैसे हो सकता था? अल्लाईको लोगोंने हटानेकी बहुत कोशिश की, लेकिन वह जानते थे, कि जिस स्वर्ग-को हम पृथ्वीपर उतारना चाहते हैं, वह इतनी आसानीसे नहीं उतर सकता। इसके लिये लाखों कुर्बानियाँ देनी पड़ेंगी। मैं उसमें पीछे रहनेका पाप नहीं कर सकता। गुरूके ऊपर गुजरी बातोंको जानते थे। तैयार होकर दरबारमें गये। बादशाहने मुँह खोलनेका मौका न दे हुकुम दिया: तब तक कोड़े लगाओ, जब तक कि इसके देहमें प्राण है। तीसरे कोड़ेमें अल्लाईका शरीर निष्प्राण हो गया। इतनेसे भी मुल्ला सुल्तानपुरी और सलीमशाहको सन्तोष नहीं हुआ। अल्लाईके शरीरको हाथीके पाँव-में बाँधकर आगराकी सड़कोंपर घुमाया गया। हुकुम था, लाशको कोई दफन न करने पाये। थोड़ी देरमें जबर्दस्त आँधी आई। जान पड़ता था, महाप्रलय आ गई है। नागरिक और बादशाही सेना इसे बड़ा अपशगुन मानने लगी। सभी कहने लगे,

अब सलीमशाहकी सल्तनत कायम नहीं रह सकती। लाशको वहीं छोड़ दिया गया। रातों रात उसपर इतने फूल चढ़े, कि वह ही उसके लिए कब्र बन गये। सलीमशाह और उसके वंशकी सल्तनतकी कब्र सचमुच ही खुद गई। इस्लामने केवल मुल्ला सुल्तानपुरीको ही नहीं, बल्कि ऐसे सन्तोंको भी हमारे देशमें पैदा किया। मज्दक, मेंहदीका स्वप्न आज दुनियाके आधे भागमें सजीव हो चुका है। हमारा देश भी उसी साम्यवादके रास्तेकी ओर जा रहा है, जिसके लिये चार सदियों पहिले अल्लाई-ने अपने प्राणोंकी आहुति दी।

अध्याय ३

मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी (मृ० १५८२ ई०)

१. प्रताप आसमान पर

अब्दुल्ला सुल्तानपुरी हुमायूँके प्रथम शासनमें दरबारमें आये। शेरशाह, सलीमशाहके समय उनका प्रभाव और भी बढ़ा। हुमायूँने दुबारा तख्त लेनेपर उनको वही सम्मान और अधिकार दिये रक्खा। जब तक अकबरने अपनी नीतिमें भारी परिवर्तन करके हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये गम्भीर कदम नहीं उठाया, तब तक यह धार्मिक मामलों में सर्वेसर्वा रहे। इनके फतवोंके सामने लोग थर-थर काँपते थे। न जाने कितने निरपराधोंको इन्होंने मौतके घाट उतरवाया, न जाने कितनोंको खाना-खराब किया।

यह अन्सारी, अर्थात् इस्लामके पैगम्बरके मक्कासे मदीना हिजरत कर जाने पर वहाँके जिन लोगोंने पैगम्बरके धर्मको मानकर उनकी सहायता की थी, उन्हीं लोगोंके वंशके थे। पहले इनके पूर्वज मुल्तानमें आकर बसे, इसके बाद सुल्तानपुर (पंजाब) में आबाद हो गये। इसीके कारण इनके नामके साथ सुल्तानपुरी लगता था। आलिमोंके खानदानके थे। अरबी-साहित्य और धर्मशास्त्र उनके घरकी चीज थी। इसमें उन्होंने असाधारण योग्यता प्राप्त की थी। अब्दुल्कादिर सरहदी इनके गुरुओंमें थे। कुरान की आयतें और पैगम्बर-वाक्य (हदीस) जीभपर थे। इनकी ख्याति फैलनेमें देर न लगी। हुमायूँ (१५३०-४० ई०) मुस्लिम आलिमों (विद्वानों) की बड़ी इज्जत करता था। मुल्ला अब्दुल्ला उसके दरबारमें पहुँचे, और उन्हें हुमायूँने मखदूमुलमुल्क (देश-पूज्य)की उपाधि प्रदान की, मखदूमके नामसे ही यह ज्यादा प्रसिद्ध थे। किसी-किसीका कहना है, "शेखुल् इस्लाम" (इस्लाम धर्मराज) की पदवी भी हुमायूँने इन्हें दी, और कुछका कहना है, शेरशाहका अपनी पद और मर्यादाको दो राजपरिवर्तनों के बाद भी अक्षुण्ण रखना इन्हींका काम था। जब हुमायूँ १५४० ई०में शेरशाहसे हारकर ईरानकी ओर भागा, तब उन्होंने अपनी भक्ति शेरशाहमें परिवर्तन कर दी। उसके बेटे सलीमशाहके वक्तमें तो धर्मके मामलेमें इनका कोई समकक्ष न था। मेंहदी पंथी (साम्यवादी) शेख अल्लाईको इन्होंने अपने फतवेसे मरवाया। कट्टर मुल्ले थे, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

सलीमशाहके जमानेमें लाहौरसे हुमायूँके बदली गाँवमें एक दूसरे सन्त शेख दाऊद चहनी रहते थे। उनके ज्ञान-ध्यानकी बड़ी ख्याति थी और लंगर (मठ) में ऐसे भिखारियोंकी भीड़ रहती थी। मुल्ला सुल्तानपुरीको इसमें कुफ्रकी गन्ध मालूम हुई। उस वक्त सलीमशाह ग्वालियरमें था। मखदूमने फरमान निकलवा कर शेख दाऊदको बुला भेजा। शेख दो अनुयायियोंको लेकर चल दिये। ग्वालियरके रास्ते मुल्ला सुल्तानपुरीसे भेंट हुई। उसने पूछा, "फकीरोंको बुलानेका क्या कारण था?"

सुल्तानपुरीने कहा—"मैंने सुना है, तुम्हारे चेले 'या दाऊद, या दाऊद' कह जप और कीर्तन करते हैं।" शेखजीने कहा—"सुननेमें गलती हुई होगी। या दाऊद नहीं, या वदूद कहते हैं।" वदूद अल्लाहका नाम है, इसलिये उसपर क्या एतराज हो सकता था? एक बात रह। सुल्तानपुरीपर उनके व्यक्तित्वका भारी प्रभाव पड़ा और सम्मानके साथ उन्हें बिदा कर दिया।

शाह आरिफ हुसैनी बड़े सिद्ध सन्त माने जाते थे। अहमदाबाद-गुजरातसे लौट कर लाहौर आये। उन्होंने अपनी गुदड़ीसे गुजरातके जाड़ेके फलोंको दे कर लोगोंको खिलाया। मुल्लोंकी सन्तों-सूफियोंसे अक्सर खटपट रहती थी। उनके पास आध्यात्मिक शक्ति प्रदर्शन करनेकी क्षमता थी, जब कि मुल्ले केवल फतवा और शरीयतकी रूखी-सूखी बातें लोगोंके सामने रख सकते थे। शाह हुसैनीने दूर काठियावाड़-गुजरातके फलोंको लाहौरमें लोगोंको खिलाया था; यह बड़ा भारी चमत्कार था, जिसका जवाब मुल्ला सुल्तानपुरीके पास क्या था? उन्होंने दूसरा दाँव निकाला—आखिर यह फल दूसरेके बागोंसे तोड़कर आये हैं। शाहने बिना मालिकोंकी इजाजतके इन्हें खर्च किया, जो हराम है, खाने वालोंका खाना भी हराम है। लेकिन, इसके पहले कि मुल्ला सुल्तानपुरी कुछ और कर पाते, शाह हुसैनी काश्मीर चले गये।

सलीमशाह मुल्ला सुल्तानपुरीकी कितनी इज्जत करता था, यह इसीसे मालूम होगा, कि एक बार बिदाई देते फर्शके किनारे पर आया, इनकी जूतियाँ अपने हाथसे सीधी करके सामने रख दीं। पर, यह दिखावेकी बातें थीं। वह समझता था, लोगोंपर इस मुल्लाका बहुत प्रभाव है, ऐसा करनेसे हमारी लोकप्रियता बढ़ेगी। एक बार पठानोंकी यात्रामें मुसाहिबोंके बीच बैठा था। मुल्ला सुल्तानपुरीको दूरसे आते देखकर बोला—"हेच मी दानीद् कि ईं कि आयद्? (कोई जानता है, कि यह कौन आ रहा है?) एक मुसाहिबने कहा—"ब-फर्मायन्द" (आज्ञा कीजिये।) सलीमशाहने कहा—"बाबर बादशाहरा पंज पिसर बूद। चहार पिसर अज् हिन्दुस्तान रफ्तद्, एके मान्दा।" (बाबर बादशाहके पाँच लड़के थे, चार हिन्दुस्तानसे चले गये, एक रह गया।) मुसाहिब ने पूछा—"आँ कीस्त्" (वह कौन है?) सलीमशाह बोला—"ईं मुल्ला कि मीआयद्।" (यह मुल्ला जो आ रहा है।) लेकिन जब मुल्ला अब्दुल्लाके पास पहुँचा, तो उसको तख्तपर बिठाया, और मोतीकी सुमिरनी (तस्बीह) भेंट की, जो बीस हजारकी थी।

सलीमशाहको मुल्ला सुल्तानपुरीपर जो सन्देह था, वह निराधार नहीं था। जब हुमायूँने ईरानसे लौटकर काबुलको जीत लिया, तो हाजी.. पराचा नामक सौदागरकी मार्फत मुल्लाने एक जोड़ी मोजा और एक कोड़ा भेंटके तौर पर भेजा, जिसका अर्थ था—पैरोंमें मोजा पहनो और चाबुक हाथमें ले घोड़ेपर सवार हो हिन्दुस्तान चले आओ, मैदान साफ है।

हुमायूँने हिन्दुस्तानपर अधिकार कर लिया। अब मुल्ला सुल्तानपुरी धर्म सर्वेसर्वा था। जिस वक्त अकबर राज्य और प्राणकी बाजी लगाकर लड़ रहा था, उसी समय सिकन्दर खाँ अफगान—जो अपने लोगोंके साथ काँगड़ाकी पहाड़ियोंमें छिपा हुआ था—बाहर निकल आया और मुगल-इलाकेसे कर वसूल करने लगा। लाहौरके हाकिम हाजी मुहम्मद खाँ सीस्तानीको पता लगा, कि इसके पीछे मुल्ला सुल्तानपुरीका हाथ है। मुल्ला सुल्तानपुरीने लूट-लूटकर खूब धन जमा किया था। हाजीको एक पथ दो काज करनेको मिला। इन्हें पकड़ कर आधा जमीनमें गाड़ दिया, और जो धन इन्होंने जमा किया था, उसपर हाथ साफ कर लिया। बैरम खाँ खानखाना सिपाही ही नहीं भारी कूटनीतिज्ञ भी था। विजयके बाद वह इस बातपर नाराज हुआ। जब अकबरके साथ लाहौर आया, तो हाजी सीस्तानीके वकीलको मुल्ला सुल्तानपुरीके घरपर कसूर माफ करनेके लिये भिजवाया और मानकोट इलाकेमें एक लाख बीघे की जागीर दी। कुछ ही दिनोंमें मुल्लाके अधिकार पहलेसे भी अधिक बढ़ा दिये गये।

मुल्ला सुल्तानपुरीका प्रताप फिर मध्याह्नकी ओर दौड़ा। बादशाह अभी बच्चा था। वह स्वप्न अभी उसके सामने भी नहीं थे, जिसमें सबसे ज्यादा बाधक मुल्ले साबित हुये; इसलिये मुल्ला सुल्तानपुरीका प्रभाव पहलेसे ज्यादा बढ़ जाये, तो आश्चर्य क्या? आदम खाँ झेलमके इलाकेके लड़ाकू घक्करोंका सरदार था। वह मुगलोंके सामने सिर झुकानेके लिये तैयार नहीं था। मुल्ला सुल्तानपुरीके बीचमें पड़नेसे वह खानखानाके पास आया, जिसने आदम खाँसे भाईका सम्बन्ध जोड़ते अपनी पगड़ी बदली। खानखानाकी जब अकबरसे बिगड़ गई। उस वक्त भी दोनोंमें मेल करानेके लिये मुल्ला सुल्तानपुरीने बड़ी कोशिश की, और बैरम खाँको ले जाने वालोंमें वह एक था। इसी तरह अकबरके एक दूसरे सेनापति मुनअम खाँ खानखानाको समाधान करानेमें भी इसके प्रभावने काम किया।

२. अवसान

अकबरने सल्तनतकी बागडोर ही अपने हाथमें नहीं सँभाली, बल्कि देशके भविष्यको नई बुनियादपर रखनेका निश्चय किया। उसने राज्यके संविधानको शरीयतपर नहीं, बल्कि प्रजाके हितपर रखना चाहा। मुल्ला भला शरीयतको नीचे

गिरते कैसे देख सकते थे ! आखिर उनकी सारी महिमा शरीयतके ऊपर आधारित थी। जिसने हुमायूँ, शेरशाह, सलीमशाहको अपनी उँगलियोंपर नचाया, वह उसके पोतेको क्या समझता ! लेकिन, दुनियामें सभी बड़ेके ऊपर बड़े हुआ करते हैं, फिर आगे बढ़ जाते हैं। अकबरके दरबारमें अब कैसे मखदूमुल्मुल्क-मुल्ला और सदरुस्सुदूरका नाम पवित्र था। अबुल्फ़ज़ल उनके चरित्रमें दिखानेके लिये आ गया था। दोनों मुबारकने बताया था, उनमें कितने कालिमे हैं। अकबरने झूठोंको नंगा करनेका निश्चय कर लिया। इतिहासकार बदायूनी लिखता है—"अकबर प्रत्येक शुक्रवारकी रातको आलिमों-फाजिलों, सैयदों-शेखों और दूसरे विद्वानोंको बुलाता, खुद भी उनमें सम्मिलित होकर ज्ञान-विज्ञानके वार्तालापको सुना करता। यह १५७४ ई०के आस-पास शुरू हुआ।" मुल्लाओंकी धर्मांध दाढ़ियोंमें आग लगानेके लिये अकबरके पास अबुल्फ़ज़ल, फैज़ी, अब्दुल्क़ादिर बदायूनी जैसे नौजवान मौजूद थे, जो इस्लामी धर्मशास्त्र-की रग-रग पहचानते थे, और मिर्चोंकी धूनी मिर्चासे दूर करनेके लिए तैयार थे। मुल्ला बदायूनी लिखते हैं—"अकबर मखदूमुल्मुल्क मौलाना अब्दुल्ला सुल्तानपुरीको बेइज़्ज़त करनेके लिये बुलाता था। हाजी इब्राहीम और नये धर्मके अनुयायी अबुल्फ़ज़लके साथ कुछ दूसरे नये आलिमोंको बहस करनेके लिए छोड़ देता। वह मुल्लाकी हरेक बात पर नुक्ताचीनी करते। बादशाहके नज़दीकके कितने ही अमीर भी साथ देते। मुल्ला सुल्तानपुरीके बारेमें बहुत-सी कहानियाँ गढ़कर उड़ाया करते। एक बार खानजहाँने अर्ज किया, मखदूमुल्मुल्कने फतवा दिया है: इन दिनों हजके लिये जाना कर्तव्य (=फर्ज) नहीं, बल्कि गुनाह (=पाप) है।" बादशाहने कारण पूछा, तो बतलाया, वह कहते हैं, "स्थल मार्गसे जायँ, तो ईरानके राफ़ज़ियों (शियों)के देशसे जाना पड़ेगा, सामुद्रिक मार्गसे जायँ, तो फिरंगियोंसे काम पड़ता है। वह भी बेइज्जती है, क्योंकि जहाज़के प्रतिज्ञा-पत्रपर हज़रत मरियम और हज़रत ईसाकी तस्वीरें बनी रहती हैं, जो कि मूर्ति-पूजा है। इस तरह दोनों मार्गोंसे जाना हराम है।

बेचारे मुल्ला सुल्तानपुरी किसका मुँह बन्द करते ! बादशाहका रुख बदला देखकर, दुनियाँकी हवा बदल गई थी।

मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी बड़े ही लोभी और लुच्चे थे। दूसरे भी मुल्ले उनसे बेहतर होंगे, इसकी आशा नहीं करनी चाहिये। फर्क था, तो उन्नीस-बीसका ही। शरीयत (मुस्लिम धर्मशास्त्र)के अनुसार हरेक अच्छे मुसलमानको अपनी आमदनीपर ज़कात (धार्मिक कर या दान) देना अवश्य कर्तव्य है। इससे बचनेके लिए मुल्ला सुल्तानपुरी सालके अन्तमें अपने तमाम रुपयेका हिब्बा (दानपत्र) अपनी बीबीको कर देते, और अगले साल फिर वापस ले लेते। उनकी नीचता, धोखाबाजी, आडम्बर और ज़ुल्म लोगोंमें प्रसिद्ध थे, इसलिये दरबार और नौजवान सहकारियोंको झूठी गढ़नेकी अधिक जरूरत नहीं थी।

अबुल्फ़ज़ल बहस-मुबाहिसेमें गजबकी ताकत रखते थे। उनकी ज़बान कैंची-तरह चलती थी। नौजवान बादशाह उनकी पीठपर था, फिर उनको किसका डर! र (सर्वोच्च न्यायाधीश) हों या काजी, हकीमुल्मुल्क (देशदार्शनिक) हों या मख़दू-मुल्क (देशपूज्य), किसीकी भी इज्जत धूलमें मिलानेमें वह कसर नहीं करते थे। ~७२ के बुड्ढोंने मीर बख्शी (प्रधान-लिपिक) के द्वारा चुपकेसे उनके पास सन्देश ा—"चिरा बा-मा दर् मी उफ्ती!" (क्यों हमारे साथ उलझते हो!) बरख़ ुल्फ़ज़लने बादशाह और बैगनोंका किस्सा सुना दिया। बादशाहने कहा—बैगन अच्छे हैं। मुसाहिबने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—तभी तो खुदाने उसके सिर-मोर-मुकुट और कृष्ण-कन्हैयाका रंग दे दिया है। दूसरी बार बादशाहने कहा—न बुरे हैं। मुसाहिबने कहा—तभी तो इसके सिरमें कील ठोंक दी गई है। किसी-कहा—क्यों दो तरहकी बात करते हो। मुसाहिबने कहा—मैं बादशाहका नौकर बैगनोंका नहीं। यद्यपि यह बैगनोंकी कहावत मुल्ला बदायूनीकी अपनी गढ़ी हुई। अबुल्फ़ज़लको ऐसा कहनेकी जरूरत नहीं थी, वह दिलसे जानता था, कि बाद-ाहने जो रास्ता लिया है, वही देश और जातिकी भलाईका रास्ता है।

मुल्लोंसे असंतुष्ट हो अकबरने एक नये मुल्ला शेख अब्दुन् नबी से भलाई-ी आशा समझ उन्हें सदर (सर्वोच्च मुल्ला) का पद प्रदान किया। मुल्ला ल्तानपुरी अब्दुन् नबीको आगे बढ़ते देखकर कैसे चैनकी साँस लेते! मुल्तानपुरीने क पुस्तिका लिखकर अब्दुन् नबीपर अपराध लगाया—"उसने खिज़िरख़ाँ रवानीके ऊपर पैगम्बरको बुरा-भला कहने और मीर हबशपर शिया होनेके झूठे पराधको लगा कर नाहक मरवा डाला। ऐसे आदमीके पीछे नमाज पढ़ना विहित हीं है। इसे खूनी बवासीर भी है, जिसकी वजहसे भी यह नमाजका इमाम नहीं हो कता।" अब्दुन् नबीने भी ईंटका जवाब पत्थरसे दिया। दोनों मुल्लोंकी छिड़ गई। ई-नई बातोंको लेकर वह आपसमें झगड़ने लगे। यह दो मूजियोंकी खटपट थी। जवान बादशाह और उसके सहायक इसका मजा ही नहीं ले रहे थे, बल्कि अकबर-के ऊपर शरीयतका जो रहा-सहा रोब था, वह भी खतम हो गया। समझ लिया, केसीके वचनको प्रमाण मान कर चलना बेवकूफी है।

अब शेख मुबारक का जमाना था। बादशाहने मुल्लोंके अवेरगर्दीकी बात की, तो उन्होंने कहा—इनकी पर्वाह क्यों करते हैं। जहाँ भी मतभेद हो, वहाँ बाद-शाहकी बात सबके ऊपर प्रमाण है। शेख मुबारकने एक छोटा किन्तु बहुत गम्भीर अर्थोंसे भरा व्यवस्था-पत्र तैयार किया। सब मुल्ले दरबारमें तलब किये गये और कहा गया—इसपर अपनी-अपनी मुहर लगाओ। मुल्ला मुल्तानपुरीने मुहर लगाई, अब्दुन् नबीने भी मुहर लगाई, दूसरे मुल्ले भी ऐसा करनेके लिए मजबूर हुए।

शरीयत का तीर हाथसे निकल गया, और बादशाह धर्मके मामलोंमें इनसे पूछनेकी भी जरूरत नहीं समझता था। अगर जरूरत समझता था, तो यही कि शास्त्रार्थमें बुलाकर इनकी मिट्टी पलीद करवाये।

खिसियानी बिल्लीकी तरह अब्दुल्ला सुल्तानपुरीने फतवा दिया, "हिन्दुस्तान कुफ्रका मुल्क हो गया। यहाँ रहना उचित नहीं है।" यह कहते उन्होंने अकबरके मुल्कको छोड़कर खुदाके घर—मस्जिद—में डेरा डाला। वहाँसे तीर छोड़ने लगे। कभी कहते अकबर शिया हो गया, कभी कहते हिन्दू हो गया, आदि-आदि। बादशाह ने कहा—"क्या मस्जिद मेरे मुल्क में नहीं है?" सचमुच ही यह बेहूदी बात थी। अकबर भरसक चरम दण्ड देनेके पक्षमें नहीं था। अभी वह लड़का ही था, जबकि दुश्मन हेमूको पकड़ कर उसके सामने लाया गया। बैरम खाँने उसे अपने हाथसे मार कर गाज़ी बननेके लिये कहा, पर उसने इन्कार कर दिया। मुल्ला सुल्तानपुरी और मुल्ला अब्दुन् नबीकी बातें और हरकतें अकबरके पास पहुँच रही थीं। उसने दोनोंको १५७९-८० ई० (हिजरी ९८७)में खुदाके वास्तविक घर मक्कामें भेज दिया, और कह दिया : बिना हुक्मके वहाँसे लौटकर न आना।

हिन्दुस्तानके दोनों सैयद आलिम मक्का पहुँचे। वहाँके एक महाविद्वान् शेख इब्न-हजर मक्कीने उनके साथ बहुत स्नेह और सम्मान दिखलाया। यद्यपि वह समय नहीं था, तो भी काबाके दरवाजेको खुलवा कर मुल्ला सुल्तानपुरीको दर्शन कराया।

लेकिन हिन्दुस्तानके मौज-मेले वहाँ कहाँ थे? हुमायूँ, शेरशाह और आधे अकबरके शासन तक जो राज भोगे थे, वह याद आने लगे। मजलिसोंमें बैठ कर कुछ दिन अकबरको काफ़िर कह कर कोसते, लेकिन उससे पुराने समयको भूल थोड़े ही सकते थे? इन्होंने मर-मार कर जिस अरबीपर अधिकार प्राप्त किया था, वह वहाँके बच्चोंकी मातृभाषा थी। इस्लामके बारेमें भला अरब इन हिन्दियोंको किस खेतकी मूली समझते? तड़पते लाचार वहाँ पड़े हुए थे। फिर आज़ादके अनुसार—"इस बोझको न मक्केकी ज़मीन उठा सकी, न मदीनेकी। जहाँके पत्थर थे, वहीं फेंके गये।" काबुलका राज्यपाल अकबरका सौतेला भाई महम्मद हकीम मिर्ज़ा बागी हो गया। वह हिन्दुस्तानके तख्तके लिए पंजाबकी ओर दौड़ा। अकबरके एक बहादुर सेनापति खानेजमाँने पूर्वी सूबोंमें विद्रोह कर दिया। जब यह खबर दोनों मुल्लोंके पास मक्कामें पहुँची, तो उन्होंने समझा : अब अकबरके दिन खतम हो चुके हैं, कुफ्रकी उसकी जड़ कट गई है। हमारे ज़रा-सा हाथ लगनेकी देर है, सारी इमारत ढह गिरेगी।

अकबर की फूफी गुलबदन बेगम, सलीमा सुल्तान बेगम और दूसरी बेगमें हज करके हिन्दुस्तान लौट रही थीं। उन्हींके साथ मुल्ला सुल्तानपुरी भी लौटे

खम्भात (गुजरात) के बन्दरगाह पर उतर कर पता लगाने लगे। हकीम मिर्जा का मामला खतम हो चुका था। डरके मारे पछताने लगे। बेगमोंसे दरबारमें सिफारिश करवाई। आखिर बेगमें अकबरकी तरह शरीअतको नीची निगाहसे नहीं देखती थीं। यह लोग काबामें बैठ कर जो कुछ कहने-सुनने थे, वह सारी बातें अकबरके पास पहुँच चुकी थीं। वह औरतों की सिफारिश को क्या मानता ! गुजरातके हाकिमोंके पास हुकुम आया, मुल्लाको पकड़ कर गुजरात में रक्खें, और चुकेसे जंजीरोंमें बाँध कर दरबारमें भेज दें। यह खबर सुनते ही मुल्ला मुल्तानपुरी के होश उड़ गये। दरबार की ओर प्रस्थान करनेसे पहले ही अल्ला मियाँका बुलौआ आ गया, और १५८२ ई० में मुल्ला मुल्तानपुरीने बहिश्तका रास्ता लिया। लोगोंका कहना है, बादशाहके हुकुमसे किसीने जहर दे दिया। सचमुच—"क्या खूब सौदा नक्द है, उस हाथ से दे इस हाथ ले!" निर्दोष सन्त शेख अब्लाईको इसी शैतानने मरवाया था और अब खुद इस तरह जलील होकर मौतके मुँहमें पड़ा। पीछे लाश लाकर जलन्धरमें दफनाई गई।

लाहौरमें मुल्ला मुल्तानपुरीकी भारी सम्पत्ति और घर-हवेली थी। घरमें बड़ी-बड़ी कबरें थीं, जिनके लम्बे-चौड़े आकार मुल्लाके बुजुर्गोंके प्रतापको बतलाते थे। कब्रके ऊपर हरी चादर पड़ी रहती थी। बुजुर्गोंके सम्मानके खयालसे दिन रहते ही दिये जला दिये जाते थे। हर वक्त ताजे फूल चढ़े रहते थे। किसीने चुगली लगाई, कि कब्र बनावटी हैं, वस्तुतः इनके भीतर खजाने छिपाये हुए हैं। राजधानी फतहपुर-सीकरीसे गाजी अलीको लाहौर भेजा गया। सचमुच ही उन कब्रोंके भीतर इतना खजाना निकला, जिसका किसीको अनुमान नहीं हो सकता था। कुछ सन्दूकोंमें निरी सोनेकी ईंटें चिनी हुई थीं। तीन करोड़ रुपये नकद निकले। सारा धन बादशाही खजानेमें दाखिल किया गया। मुल्लाके बेटे कुछ दिन बड़े घरकी हवा खाते रहे।

अध्याय ४

बीरबल (मृ० १५८५ ई०)

१. दरबारी

शम्सुल उलमा आजाद कहते हैं—"बीरबलके मरनेपर अकबरको इतनी अधीरता और शोक हुआ, जिसे देखकर लोग ताज्जुब करते थे। ऐसे आलिम-फाजिल, अनुभवी, बहादुर सरदार और दरबारी बीर मौजूद थे और उनमेंसे कितने ही अकबरके सामने ही मरे थे। क्या कारण था कि बीरबल के बराबर किसीके मरनेका रंज उसे नहीं हुआ।...इनका नाम अकबरके साथ वैसे ही आता है, जैसे सिकन्दरके साथ अरस्तूका। लेकिन, जब उनकी प्रसिद्धिको देखकर विचार करो, तो मालूम होता है, कि अकबाल उनके पास अरस्तूसे भी बहुत ज्यादा था।"

अकबर बीरबलको अपना अभिन्नहृदय समझता था और उनकी इज्जत यहाँ तक करता था, कि "राजा" और "बीरबल" की उपाधि प्रदान करके भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। वही ऐसे थे, जिनको अन्तःपुरमें भी वह अपने साथ रखता था। लेकिन, अकबर और बीरबलके नामसे जितने किस्से मशहूर हैं, उनसे बीरबल सिर्फ जबर्दस्त मसखरे और बादशाहको खुश करनेवाले एक कुशल भांडसे ज्यादा नहीं मालूम होते। पर, यह बात माननेको दिल नहीं चाहता, कि केवल भँड़ैतीके भरोसे वह अकबर जैसे महान् प्रतिभाके धनीके इतने स्नेहपात्र बन गये।

बीरबलका असली नाम महेशदास था। वह कालपी (जिला जालौन) में एक ब्रह्मभटके घर पैदा हुए। मुल्ला बदायूनी भाट कहते हुए उनका नाम ब्रह्मदास बतलाते हैं। पहले रामचन्द्र भटके यहाँ नौकर थे, जगह-जगह अपनी कविताएँ सुनाते घूमा करते थे। अकबरके प्रथम राज्य वर्ष (१५५६ ई०) में वह कहीं मिल गये। महेशदासकी बात सुनकर बादशाह इतना प्रसन्न हुआ कि उन्हें अपने साथ ले लिया। मुल्ला बदायूनी कहते हैं—"बादशाहको लड़कपनसे ही ब्राह्मणों, भाटों और हिन्दुओंके भिन्न-भिन्न लोगोंके साथ विशेष मुहब्बत थी। आरम्भिक समयमें कालपीका ...ने वाला एक मँगता बरहमन भाट सेवामें आ गया, जिसका पेशा ही था हिन्दुओं-... गाना। तरक्की करते-करते वह बहुत ऊँचे दर्जेपर पहुँचा और बादशाहकी ... यह हुई, कि—

मन् तू शुदम् तू मन शुदी मन तन् शुदम् तू जाँ शुदी।
(मैं तू हो गया, तू मैं हो गया, मैं तन हो गया, तू जान हो गया।)"

पहले बादशाहने उन्हें कविराय (मलकुशशोअरा) की उपाधि दी, फिर राजा बीरबल की।

६८० हिजरी (१५७२-७३ ई०) में अकबरके सेनापति हुसेन कुल्ली खाँने नगरकोट(कांगड़ा) को जीता। बादशाहके सोलह सालके घनिष्ठ मित्र बीरबलको यह इलाका जागीरमें देनेका हुकुम हुआ। कांगड़ाके पहाड़ी लड़ाकू लोग आजकी तरह तब भी इस्लामसे बहुत कम प्रभावित थे। बादशाहने सोचा, एक ब्राह्मण के जागीरदार बनानेसे लोग संतुष्ट हो जायेंगे। कांगड़ाकी लड़ाई हमेशा दुश्मनके दाँत खट्टे करने वाली रही है। ऋग्वेदके समय राजा दिवोदासको यहींके राजा शम्बरने नाकों चने चबवाये और चालीस वर्ष बादही आर्योंकी सारी शक्तिको इस्तेमाल कर दिवोदास उसे मारनेमें सफल हुआ। अकबर और जहाँगीर ही नहीं, बल्कि पहाड़ी लड़ाईमें अद्वितीय गोरखोंको भी सारे हिमालयपर विजय कर कांगड़ामें जाकर भारी क्षति उठा वहाँसे पीछे लौटना पड़ा। अकबरकी सेनाने कांगड़ा पर जबर्दस्त आक्रमण किये। सेनामें हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही थे। प्रहार जबर्दस्त था। फैसला पूरी तौरसे नहीं हो पाया था, इसी समय शाहजादा इब्राहीम मिर्जा बागी होकर पंजाबपर चढ़ दौड़ा। मुगल सेनापति हुसेन कुल्ली खाँको राजासे सुलह करके मुहासिरा उठाना पड़ा। सुलहकी शर्तोंमें एक यह भी था : चूँकि यह इलाका राजा बीरबलको बादशाह ने प्रदान किया है, इसलिए इसके बदले में पाँच मन सोना उन्हें मिलना चाहिये। बीरबल उससे संतुष्ट थे, इन पहाड़ियोंके रोज-रोजके झगड़ेसे जान तो बची। बीरबल वहाँसे प्रस्थान कर अकबरके पास अहमदाबाद (गुजरात) पहुँचे।

अकबरकी बड़ी इच्छा थी, कि अपने साथियों और सलाहकारोंके घरोंमें जाकर उनके स्वागत-सत्कारको स्वीकार करें। बादशाहके लिये ऐसा करना पहले ठीक नहीं समझा जाता था, लेकिन अकबर घुल-मिल जाना चाहता था। बादशाहके लिये दावतें होतीं, लोग दिल खोल कर तैयारी करते। घरको खूब सजाते। मखमल जरबफ्त-कमख्वाबका पायंदाज बिछाते। बादशाहकी सवारी आनेपर सोने-चाँदीके फूल बरसाते, थालके थाल मोतियाँ निछावर करते। सवा लाख रुपया नीचे रख कर चबूतरा बाँधते, जिसके ऊपर बादशाहके बैठनेके लिये गद्दी तैयार की जाती। लाल-जवाहर, थाला-दुशाला, मखमल-जरबफ्त, कीमती हथियार, सुन्दर लौंडियाँ और गुलाम, एकसे एक अच्छे हाथी-घोड़े आदि लाखों रुपयेकी भेंट बादशाहके हुजूरमें हाजिर करते। लोगोंने बीरबलको भी कहा—सब बादशाहकी दावत करते हैं, तुम भी करो। बीरबल बेचारे लड़ाइयोंमें सेनापति होकर नहीं जाते थे, कि वहाँसे लूटमें लाखों-करोड़ों का माल ले आते। उन्होंने अपनी औकातके मुताबिक तैयारी की। बादशाह की दावतोंमें मिलने वाली भेंटोंके सामने वह कुछ नहीं थी। पर, बीरबलके पास वह वाणी थी, जो

और उतराईमें, पहाड़की धारों पर दोनों ओर गहरे-गहरे गड्ढ दिखलाई पड़ते हैं, जिन्हें देखनेको दिल नहीं चाहता। ज़रा पाँव बहका और गये, पातालमें पहले ठिकाना नहीं मिल सकता। कहीं मैदान आता, कहीं कोस दो कोस जिस तरह चढ़े थे, उसी तरह उतरना पड़ता, कहीं बराबर चढ़ते गये। रास्तेमें जगह-जगह दायें-बायें दर्रे (घाटे, डाँडे) आते हैं, कहीं दूसरी तरफ रास्ता जाता है। इन दर्रोंके भीतर कोसों तक लगातार आदमियों की बस्ती है, जिनका हाल किसी को मालूम नहीं। कहीं दो पहाड़ोंके बीचमें कोसों तक गली गली चले जाते हैं। चढ़ाई (सराबाला), उतराई (सराशेब), डाँडा (कमरेकोह) द्वार (गरीवानेकोह), गलियारा (तंगियेकोह), धार (तेजियेकोह), तराई (दामनेकोह) इन शब्दोंका अर्थ वहाँ जानेपर मालूम होता है।...यह सारे पहाड़ बड़े-बड़े, छोटे छोटे वृक्षोंसे ढँके हुए हैं। दाहिने-बायें पानीके चश्मे ऊपर से उतरते हैं, जमीन पर कहीं नाला और कहीं नहर होकर बहते हैं। कहीं दो पहाड़ियोंके बीचमें होकर बहते हैं, जहाँ पुल या नावके बिना पार होना मुश्किल है। पानी ऊँचाईसे गिर कर आता पत्थरोंसे टकराता हुआ बहता है, इसलिए इस जोरसे आता है, कि पैरसे चलकर पार होना सम्भव नहीं। थोड़ा हिम्मत करे, तो पत्थरोंपर से पैर फिसले बिना न रहे।"

इसी पर्वतस्थली (स्वात) में अफगान आबाद हैं। अफगानोंको पख्तून भी कहते हैं, जिन्हीं को ऋग्वेदिक आर्य पख्त कहते थे। पख्त आर्योंकी एक बहुत वीर जाति थी और ऋग्वेदके समय वह सिन्धसे पश्चिममें रहती थी। हो सकता है, स्वात तब भी उनका निवासस्थान रहा हो। अफगानोंका इस भूमिसे बहुत प्रेम है। सीमान्त गांधी खान गफ्फार खाँ पख्तूनोंकी इस आदि भूमिकी प्रशंसा करते नहीं थकते। एक बार कह रहे थे—"वहाँका पानी और दूसरी जगहका दूध बराबर है। वहाँके मेवों जैसा मजा दूसरी जगह नहीं मिलता।" स्वातके अफगान दुम्बों और ऊँटोंके ऊनके कम्बल, नमदे, दरियाँ और टाट बुनते हैं। ऊनकी छोटी-छोटी छोलदारियाँ बनाते हैं। पहाड़के अञ्चलमें अपने-अपने कोठे-कोठरियाँ तैयार कर पासमें खेती करते हैं। यहाँके जंगलोंमें जंगली सेब, बिही, नाशपाती और अंगूर होते हैं। पठानोंको अपनी स्वतन्त्रता बहुत प्रिय है। दुश्मन आता है, तो अपने पहाड़ोंके स्वाभाविक दुर्गोंकी सहायता लेकर मुकाबिला करते हैं। किसी ऊँची पहाड़ीपर बाजा बजाकर वह दुश्मनके आनेकी खबर देते हैं। उस समय हरेक स्वातीको युद्धमें आना आवश्यक हो जाता है। दो-दो, तीन-तीन वक्तके खानेके लिये कुछ रोटियाँ, कुछ आटा धरसे बाँधे, हथियार लिये वह वहाँ आ मौजूद होते हैं।

अकबर अपनेको काबुलका स्वामी, काश्मीर का मालिक मानता था। स्वातको वह कैसे छोड़ सकता था? जैन खाँ कोकलताशको चढ़ाई करने का हुकुम हुआ। गाज़ी बड़ी बहादुरीसे लड़े। मुकाबिला करनेकी गुंजाइश नहीं रही, तो अड़ने पड़े।

भाग गये। अकबरकी पलटन मैदानी लोगोंकी थी। उनकेलिये पहाड़ें चढ़ना आसा[न]
की बात थी। जैन खाँने कुछ सफलता पाई, जिसकी खबर देते हुए और सेना माँगी।
दरबारमें सलाह हो रही थी, किस अमीरको सेनाके साथ भेजा जाये, जो ऐसे दुर्गम
पहाड़ोंमें आसानीसे पहुँच सके। अबुल्फ़ज़लने स्वयं जानेके लिए इजाज़त माँगी।
बीरबलने कहा—"मैं जाऊँगा।" गोटी डाली गई और बीरबलका नाम निकल
आया। बादशाह यह आशा नहीं रखता था। अब बीरबलको अलग करनेका ख़याल
आया, तो उसे यह असह्य मालूम होने लगा। लेकिन मजबूर था। हुक्म दिया, बादशाह
का अपना तोपख़ाना भी साथ जाये। जब बीरबल विदा होने लगे, तो उनके कन्धे
पर हाथ रखकर अकबरने कहा—"बीरबल, जल्दी आना।" रवाना होने सम[य]
शिकारसे लौट कर अकबर स्वयं उनके तम्बूमें गया, कितनी ही बातें समझाईं
बहुतसी सेना और सामानके साथ उन्हें रवाना किया।

३. मृत्यु

बीरबल सेना लेकर स्वातकी तरफ रवाना हुए। अटकके पास सिन्ध पार
किया। फिर आगे बढ़ते (ढोकके पड़ावपर) पहुँचे। सामने पहाड़ोंके बीचसे तंग रास्ता
जा रहा था। अफ़गान दोनों ओर पहाड़ोंपर छिपे हुये थे। यहीं मुकाबला हुआ।
बहुत-से अफ़गान मारे गये, लेकिन शाही फौजको भी भारी हानि उठाकर पीछे हटना
पड़ा। हकीम अबुल्फ़तहके नेतृत्वमें बादशाहने और कुमक भेजी, जिसे मलाकन्दकी
उपत्यकासे होकर जैन खाँकी सेनासे मिलना था। जैन खाँ आगे बढ़ता बाजौरमें
पहुँचे। वहाँकी शान्त बस्तियोंको नष्ट करता, लोगोंको मारता इतना तंग किया, कि
कितने ही स्वाती सरदार अधीनता स्वीकार करनेके लिये उसके पास हाजिर हुये।
अब उसकी नजर मुख्य स्वात-उपत्यकापर थी। वह उधर बढ़ा। पठानोंने इतनी
गोलियाँ और पत्थर बरसाये, कि शाही हरावलको पीछे हटना पड़ा। जैन खाँ ने
दुश्मनोंको रास्तेसे हटाते जाकर चकदरामें छावनी डाली और वहाँ मोर्चाबन्दी की—
चकदरा स्वातके बीचोंबीच है। अब स्वात का कराकर पहाड़ और बुनेरका इलाका
बाकी रह गया, बाकी पर अकबरका अधिकार हो गया था।

यही समय है, जबकि थोड़ा आगे-पीछे बीरबल और हकीम अबुल्फतह यहाँ
पहुँचे। जैन खाँकी बीरबलके साथ पहले हीसे कुछ खटपट थी, लेकिन जब बादशा[ह]
ने उन्हें सेनाका नेतृत्व देकर भेजा था, तो जैन खाँने स्वागत करने के लिए आ[गे]
आवश्यक समझा। उसने अपने खेमेमें बहुत तैयारी करके उनका स्वागत किया
हकीम, बीरबल और जैन खाँका यह मिलन मतभेदको और बढ़ानेमें कारण हुआ
कोई एक दूसरेकी बात माननेके लिये तैयार नहीं था। इतिहास लेखक जैन खाँ
"सैनिक का पुत्र, सिपाहीकी हड्डी, बचपनसे लड़ाइयोंमें ही जवानीतक पहुँचा" क[र]

उसकी प्रशंसा करते हैं। हकीम अबुलफ़ज़ल अक़लमन्द थे, मगर दरबारके बहादुर थे। इन दुर्गम पहाड़ियोंमें रास्ता निकालना उनके बसकी बात नहीं थी। बीरबलके ब्रह्मभट्ट होनेके कारण "दरबारे-अकबरी" के लेखक आज़ाद भी उनके साथ न्याय करनेके लिये तैयार न हो, कहते हैं—"बीरबल जिस दिनसे सेनामें शामिल हुए थे, जंगलों और पहाड़ोंको देख-देखकर घबराते थे। हर वक्त चिढ़े रहते थे और अपने मुसाहिबोंसे कहते थे: देखिये, हकीमका साथ और कोकाकी पर्वत कटाई कहाँ पहुँचाती है। जब उनसे मुलाकात हो जाती, तो बुरा-भला कहते और लड़ते।" आज़ाद दूसरे मुस्लिम इतिहासकारोंकी बातको यहाँ उद्धृत करते हैं, "इसके दो कारण थे। पहले तो यह, कि वह मालोंके शेर थे, शम्शीरके मर्द नहीं थे। दूसरे, बादशाहके लाड़ले थे। उन्हें इस बातका घमण्ड था, कि हम उस जगह पहुँच सकते हैं, जहाँ कोई नहीं जा सकता।" जैन खाँकी राय थी: मेरी सेना बहुत समयसे लड़ रही है। तुम्हारी सेनामें से कुछ लोग चकदराकी छावनीमें रहें, और आस-पासका बन्दोबस्त करें, कुछ मेरे साथ होकर आगे बढ़ें, या तुममेंसे जिसका जी चाहे, आगे बढ़े। राजा और हकीम दोनोंमेंसे एक भी उसकी बातपर राजी न हुये। उन्होंने कहा—"हुजूरका हुकुम है, कि इन्हें लूट-मारकर बरबाद कर दो। देशके जीतने और उस पर अधिकार करने का ख्याल नहीं है। हम सब एक सेना बनकर मारते-धाड़ते इधरसे आये हैं। ऐसा ही करते दूसरी तरफसे निकलकर हुजूरकी खिदमतमें जाकर हाजिर हों।"

बात न मान अपने ही रास्ते बीरबल सेना लेकर रवाना हुये। मजबूर हो जैन खान और दूसरे सेनापति भी फौज और सामान की व्यवस्था कर पीछे-पीछे चले। दिन भरमें पाँच कोसका रास्ता तै किया। दूसरे दिनके लिये निश्चय हुआ "रास्ता कठिन है, तंग घाटियाँ और सामने बड़ा पहाड़ है, तेज चढ़ाई है।...... इसलिये आध कोसपर चल कर पड़ाव डालें। अगले दिन सबेरे रवाना हो आराम से हिमाच्छादित पहाड़पर होते पार चलें, और खातिरजमा हो पड़ावपर उतरें। यह निश्चय करके सभी सरदारोंको चिट्ठियाँ दे दी गईं।"

उषाकालको सेना हिली। हरावलकी सेनाने एक टीले पर चढ़कर फरहरा दिखाया। इसी समय अफ़गान प्रकट हुये। एकाएक ऊपर-नीचे, दायें-बायेंसे उन्होंने हमला कर दिया। बादशाही सेनाने मुकाबिला किया और मारती-हटाती आगे बढ़ी। निश्चित स्थानपर पहुँच कर हरावल और उसके साथके लोगोंने पड़ाव डाल दिया।

बीरबलको किसीने खबर दी—यहाँ रातको अफ़गानोंके छापा मारनेका डर है, चार कोस आगे निकल जानेपर फिर खतरा नहीं है। वह पड़ाव पर न ठहर आगे बढ़ते चले गये। सोचा, दिन बहुत है, चार कोस चलना क्या मुश्किल है, वहाँ पहुँच कर निश्चिन्त हो जायेंगे। मैदान आ जायेगा और किसी बातकी चिंता नहीं रहेगी।

पीछे आनेवाले अमीर अपने ही आ जायेंगे। लेकिन, यह चार कोस मैदानी रास्ता के नहीं, बल्कि पहाड़के भी सबसे कठिन मार्गके थे। "चारों तरफ के पहाड़ों पर वृक्षों का वन था। घाटी ऐसी तंग थी, कि दो-तीन आदमी मुश्किलसे चल सकते थे। रास्ता क्या पत्थरोंकी चढ़ाई-उतराईपर एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा थी। थोड़ों हीकी हिम्मत थी, और उन्हींके कदम थे, जो चले जा रहे थे।" कभी बायें, कभी दाहिने, कहीं दोनों तरफ ऐसे खड्ड थे, जिन्हें देखने को जी नहीं चाहता था। दिन भरकी मंजिल मारकर पहाड़के ऊपर पहुँचे। वहां कुछ मैदान-सा आया। दूर-दूर चोटियाँ दिखाई पड़ीं। उतरते हुए एक और घाटीमें पहुँचे, फिर आगे आकाशसे बातें करने वाली पहाड़ी दीवार थी। कितने ही कोस चलकर एक दर्रा आया। इसी निर्जन भयंकर दर्रेसे अज्ञात दिशाकी ओर वह बढ़े।

पीछेकी सेना जब पहलेके निश्चित किये पड़ावपर पहुँची और अपने डेरे भी लगा लिये, तो मालूम हुआ, बीरबल आगे चले गये। वह भी रवाना हुई। रास्तेमें उसे पठानोंकी मारका जबर्दस्त मुकाबिला करना पड़ा। बहुत हानि उठाकर सेर किसी तरह आगे पहुँचे। सलाह होती रही, लेकिन दोनों सेनापति एकराय न हो सके। अगले दिन डेरे उखाड़ कर फिर रवाना हुये। पड़ाव छोड़ते ही लड़ाई शुरू हो गई। पठान चारों ओरसे हमला कर रहे थे। रास्ता इतना सँकरा था, जिससे मुगल सेना अपनी संख्या बलका पूरा उपयोग नहीं कर सकती थी। शाम हुई, तो अफगानोंकी हिम्मत और बढ़ी, क्योंकि वह उनका देश था, इन पहाड़ोंकी एक-एक अंगुल जमीन को वह भली प्रकार जानते थे। तीर और पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। अँधेरा होनेपर यह वर्षा और भी बढ़ गई। बहुतसे आदमी मारे गये। तंग रास्तेमें आदमी, घोड़े, हाथी पड़कर रास्ता बन्द हो गया, घोड़ेपर चढ़कर आगे बढ़ा नहीं जा सकता था। जैन खाँ घोड़ा छोड़कर पैदल चला। बड़ी मुश्किलसे अगले पड़ावपर पहुँचा। अबुलफतह भी किसी तरह वहाँ पहुँच गये, लेकिन बीरबलका पता नहीं था। यूसुफजई तुले हुये थे। बादशाही सेनाके ५० हजार आदमियोंमें बहुत थोड़े बचकर निकल पाये। जैन खाँ और हकीम अबुलफतह जान बचाकर जो भागे, तो उन्होंने अटकमें ही आकर दम लिया।

बादशाहको जब पता लगा, कि स्वातकी लड़ाईमें बीरबल काम आये, तो उसके दुःखका ठिकाना नहीं रहा। इतना अफसोस, गद्दीपर बैठनेसे आज तक उसे नहीं हुआ था। दो दिन-रात चुपचाप बैठा रहा, खाना तक नहीं खाया। माँ मरियम मकानीने बहुत समझाया, बहुत रोना-धोना किया, तब जाकर खानेकेलिये तैयार हुआ। जैन खाँ और हकीम अबुलफतहसे बहुत नाराज हुआ, उनको सलाम करनेसे मना कर दिया। बीरबलकी लाशकी बड़ी खोज करवाई, लेकिन वह न मिली। नाराजी देर तक कैसे रहती, दोनों सेनापतियोंका कोई कसूर नहीं था। लेकिन, बीरबल जैसा हर समयका

दोस्त अकबरको कहाँ मिल सकता था ? उसको इस बातका और भी दुःख था, कि अपने मित्रके शवका अग्नि-संस्कार नहीं कर सका। फिर अफसोस करते अपने आप तसल्ली देते कहता—"खैर, (अब) वह सारी पाबन्दियोंसे स्वतन्त्र, शुद्ध और निर्लेप है।" लोग तरह-तरहकी बातें अकबरके पास पहुँचाते। कोई कहता—वह मरा नहीं, सन्यासी होकर घूम रहा है। किसीने बीरबलको कथा करते देखनेकी भी बात बताई। अकबर खुद कहता—वह दुनियाँसे बेलगाव और बड़ा सकोची आदमी था। आश्चर्य नहीं, यदि पराजयसे लज्जित हो साधु होकर निकल गया। अकबर लाहौरमें था, उसी समय किसीने कहा, कि बीरबल कांगड़ामें है। ढूँढनेकेलिये आदमी भेजे, लेकिन वह तो स्वातकी उपत्यकामें हमेशाकेलिये सो चुके थे। कालन्जर बीरबलकी जागीर थी। वहाँके बीरबलके पूर्वपरिचित ब्राह्मणने कहा—मैंने उसे पहचान लिया, वह जिन्दा है, पर छिपा हुआ है। उसने झूठे ही किसी मुसाफिरको बीरबल बना कर अपने पास रख रक्खा था। बादशाहका हुकुम जब उसे भिजवानेकेलिये आया, तब ब्राह्मणकी अक्ल ठिकाने आई। नकली बीरबलको भेजनेसे आफत आती, उसीलिये उसे मरवा डाला, और जिस हज्जामने कहा था, कि मैंने मालिश करते उसके शरीर को बीरबलका पाया, उसे दरबारमें भेज दिया। बीरबलके दूसरी बार मर जानेकी खबर सुनकर दरबारमें दूसरी बार मातम मनाया गया। कालन्जरसे करोड़ी और नौकर बुलवाये गये। हुजूरको क्यों नहीं खबर दी, यह अपराध लगाकर उन्हें जेलमें डाल दिया गया। हजारों रुपये जुर्मानेके देने पड़े, फिर जा करके वह छूटे।

बीरबलका मनसब दोहजारी ही था, लेकिन इससे उनके दर्जेको आँका नहीं जा सकता।

मुल्ला बदायूनी बीरबलको लानती, काफिर, बेदीन, कुत्ता आदि कहकर अपना गुस्सा ठण्डा करते हैं। बीरबल हँसी-मजाकमें इस्लाम और मुल्लोंकी दुर्गति बनाते थे, उससे मुल्ला बदायूनीको नाराज होना ही चाहिये। इनके जैसे लोग विश्वास करते थे, कि बीरबल हीने बादशाहको हिन्दुओंके धर्मकी ओर खींचा।

अकबरके वक्त आगराकी बाजारोंके बरामदोंमें रण्डियाँ इतनी नजर आने लगीं, "कि आसमान पर उतने तारे भी न होंगे।" अकबरने उन सबको शहरसे बाहर निकलवाकर एक मुहल्ला आबाद करवा दिया और उसका नाम शैतानपुरा रक्खा। वहाँ आने-जानेवालोंको अपना नाम-धाम लिखाना पड़ता था। बीरबल भी कभी वहाँ पहुँच गये। यह खबर बादशाहको लगी। जानते ही थे, इससे बादशाह बहुत नाराज होगा। शरमके मारे अपनी जागीर कोड़ा-घाटमपुर चले गए। मालूम हुआ, बादशाहने सब सुन लिया। बहुत घबराये, कहा—मैं जोगी होकर निकल जाऊँगा। बादशाहको पता लगा तो ठण्डा करते हुये फरमान भेजकर बुला लिया।

बीरबलके साथ उनके समकालीन इतिहासकारों ने न्याय नहीं किया और न उनकी बातों और कृतियोंका उल्लेख किया, पर जनसाधारणने उनकी जो कदर की, उसने कमीको पूरा कर दिया।

बीरबलके दो लड़कों—लाला और हरमराय का पता मिलता है। लालाने १०१० हिजरी (१६०१-२ ई०) में नौकरीसे इस्तीफा दे, इलाहाबादमें जाकर सलीम की नौकरी कर ली। बीरबल कविराय थे, पर अफसोस उनकी कोई कृति नहीं मिलती।

अध्याय ५

तानसेन (मृ० १५८५ ई०)

अकबरके दरबारके नवरत्नोंमें तानसेन एक थे। नवरत्न थे—१. राजा बीरबल, २. राजा मानसिंह, ३. राजा टोडरमल, ४. हकीम हुमाम, ५. मुल्ला दोपियाजा*, ६. फैज़ी, ७. अबुलफ़ज़ल, ८. रहीम और ६. तानसेन। विन्सेन्ट स्मिथके अनुसार तानसेन १५६२ ई०के आस-पास बान्धवगढ़ (बाघा, रीवाँ) के राजा रामचन्द्रके दरबारसे अकबरके पास पहुँचे। चित्तौड़ और रणथम्भौरके अभेद्य दुर्गोंपर अधिकार करके जब अकबरका ध्यान कालंजरकी तरफ गया, तो राजा रामचन्द्रने खुशीसे उसे मजनूँ खाँ काकशालके हाथमें दे दिया। यह खुशखबरी जब अगस्त १५६६ ई०में अकबरको मिली, तो उसने खुश होकर रामचन्द्रको प्रयागके पास एक बड़ी जागीर दे दी। भारतीय संगीतके मर्मज्ञ श्री दिलीपचन्द्र वेदीके अनुसार तानसेन रामचन्द्रके दरबारमें हा ५० वर्ष के हो चुके थे। वह १५६२ ई०के आस-पास अकबरके दरबारमें पहुँचे थे। इसका अर्थ है, उनका जन्म १५१२ ई०के आस-पास हुआ था। वेदीजीके कथनानुसार अकबरके मरने (१६०५ ई०)के बाद तानसेन ग्वालियर चले गये और वहाँ राजा मानसिंहके संगीत-विद्यालयमें प्रमुख गायनाचार्य नियुक्त किये गये। इसका अर्थ है, १६०५ ई०में ६० वर्षकी उमरमें तानसेन ग्वालियरमें जाकर संगीत अध्यापन करने लगे। और इस प्रकार वह सौ वर्षसे कुछ ऊपर जिये। पर, विन्सेन्ट स्मिथने तानसेनका जो समकालीन चित्र अपनी पुस्तक में (पृष्ठ ४२२ के सामने, द्वितीय संस्करण) दिया है, उसमें वह बिल्कुल नौजवान मालूम होते हैं। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि ग्वालियर के मानसिंह अकबरसे पहले १५१७ ई०में मर चुके थे। दिल्ली सल्तनतके निर्बल होनेपर जो जौनपुर, बंगाल, बहमनी, गुजरात आदि स्वतन्त्र राज्य कायम हुए थे, उसमें ग्वालियर भी एक था। उसे हिन्दू साहित्य, संगीत और कलाके केन्द्र बननेका

*मुल्ला दोपियाजा—अकबरके नवरत्नोंमें इनकी गिनती है। अरबमें पैदा हुए थे। हुमायूँके एक सेनापतिके साथ हिन्दुस्तान आये और अपनी विनोदभरी बातोंके कारण अकबरके अत्यन्त प्रिय विदूषक हो गये। अकबरके समकालीन नौ रत्न चित्रोंमें उनके कितने ही चित्र मिलते हैं। पर, इनका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं लगता।

बीरबलके साथ उनके समकालीन इतिहासकारों ने न्याय नहीं किया और न उनकी बातों और कृतियोंका उल्लेख किया, पर जनसाधारणने उनकी जो कदर की, उसने कमीको पूरा कर दिया।

बीरबलके दो लड़कों—लाला और हरमराय का पता मिलता है। लालाने १०१० हिजरी (१६०१-२ ई०) में नौकरीसे इस्तीफा दे, इलाहाबादमें जाकर सलीम की नौकरी कर ली। बीरबल कविराय थे, पर अफसोस उनकी कोई कृति नहीं मिलती।

अध्याय ५

तानसेन (मृ० १५६५ ई०)

अकबरके दरबारके नवरत्नों में तानसेन एक थे। नवरत्न थे—१. राजा बीरबल, २. राजा मानसिंह, ३. राजा टोडरमल, ४. हकीम हुमाम, ५. मुल्ला दोपियाजा*, ६. फैज़ी, ७. अबुल्फ़ज़ल, ८. रहीम और ९. तानसेन। विन्सेन्ट स्मिथके अनुसार तानसेन १५६२ ई०के आस-पास बान्धवगढ़ (बाघा, रीवाँ) के राजा रामचन्द्रके दरबारसे अकबरके पास पहुँचे। चित्तौड़ और रणथम्भौरके अजेय दुर्गोंपर अधिकार करके जब अकबरका ध्यान कालजरकी तरफ गया, तो राजा रामचन्द्रने खुशीसे उसे मजनूँ खाँ काकशालके हाथमें दे दिया। यह खुशखबरी जब अगस्त १५६९ ई०में अकबरको मिली, तो उसने खुश होकर रामचन्द्रको प्रयागकेपास एक बड़ी जागीर दे दी। भारतीय संगीतके मर्मज्ञ श्री दिलीपचन्द्र वेदीके अनुसार तानसेन रामचन्द्रके दरबारमें हो ५० वर्ष के हो चुके थे। वह १५६२ ई०के आस-पास अकबरके दरबारमें पहुँचे थे। इसका अर्थ है, उनका जन्म १५१२ ई०के आस-पास हुआ था। वेदीजीके कथनानुसार अकबरके मरने (१६०५ ई०)के बाद तानसेन ग्वालियर चले गये और वहाँ राजा मानसिंहके संगीत-विद्यालयमें प्रमुख गायनाचार्य नियुक्त किये गये। इसका अर्थ है, १६०५ ई०में ९० वर्षकी उमरमें तानसेन ग्वालियरमें जाकर संगीत अध्यापन करने लगे। और इस प्रकार वह सौ वर्षसे कुछ ऊपर जिये। पर, विन्सेन्ट स्मिथने तानसेनका जो समकालीन चित्र अपनी पुस्तक में (पृष्ठ ४२२ के सामने, द्वितीय संस्करण) दिया है, उसमें वह बिल्कुल नौजवान मालूम होते हैं। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि ग्वालियर के मानसिंह अकबरसे पहले १५१७ ई०में मर चुके थे। दिल्ली सल्तनतके निर्बल होनेपर जो जौनपुर, बंगाल, बहमनी, गुजरात आदि स्वतन्त्र राज्य कायम हुए थे, उनमें ग्वालियर भी एक था। उसे हिन्दू साहित्य, संगीत और कलाके केन्द्र बननेका

---

*मुल्ला दोपियाजा—अकबरके नवरत्नोंमें इनकी गिनती है। अरबमें पैदा हुए थे। हुमायूँके एक सेनापतिके साथ हिन्दुस्तान आये और अपनी विनोदभरी बातोंके कारण अकबरके अत्यन्त प्रिय विदूषक हो गये। अकबरके समकालीन नौ रत्न चित्रोंमें उनके कितने ही चित्र मिलते हैं। पर, इनका असली नाम क्या था, इसका

गोपाल प्राप्त हुआ था। यहीं बड़े-बड़े कवि और संगीतकार हुए, इसी कारण ब
पंथके अध्यक्षताके कारणसे पहले मानसिंहकी ग्वालियरकी ख्याति बड़ी बनी
ग्वालियर और जौनपुरका सम्बन्ध १४५८-६० ई०में ही स्थापित कर लि
क्योंकि मानसकी बागडोर वैवाहिक हाथमें थी।

विन्सेन्ट स्मिथने तानसेनको ग्वालियरका बतलाया है। सम्भव ग्वालियर
या गुरुपरम्पराके कारण उन्हें ग्वालियरी कहा गया। यह तो निश्चय ही है, कि १
५६ ई० तक—जब तक कि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व था—ग्वालियर उत्तरी भा
मूर्धन्य कलाकेन्द्र रहा। यहाँ दूर-दूरसे लोग संगीत सीखनेके लिए आया करते
वैदीकी तानसेनके जन्मस्थान आदिके बारेमें कहते हैं। एक परम्पराके अनुसार तान
जीके पूर्वज ब्रह्मभट्ट वंशमेंसे थे, लाहौर छोड़कर दिल्लीमें आकर बस गये
तानसेनका जन्म दिल्लीमें हुआ। इनके पिताका नाम मकरन्द भाट था। बादशा
कविता सुनाना इनकी आजीविका थी। तानसेन और ठाकुर बाबा रामदास, नायक
स्वामी हरिदासजीके योग्य शिष्य थे। जिन दिनों यह ग्वालियरमें थे, वहीं बालक
मुलका प्राथमिक संगीत शिक्षण हुआ। ग्वालियर निवासी पीर मुहम्मद गौस सा
जिनका पहला नाम अमरदासजी था—रामदासजीके परम मित्र थे। इनके कह
रामदासजीने तनसुखको अपने पूज्य गुरु स्वामी हरिदासजीकी सेवामें भेज दिया,
उन्होंने यहाँ संगीत-साधनाके साथ-साथ साहित्यका अध्ययन भी किया। स्वामी
दासजीके शिष्य तानसेन केवल संगीताचार्य ही नहीं थे, अपितु साहित्यिक भी
इसी कारण वह उच्चकोटिके कवि भी हो पाये।

पं० हरिहरनिवास द्विवेदीने "मध्यदेशीय भाषा" (पृष्ठ ८५) में तानसे
बारेमें लिखा है—"अकबरके कालमें कोई भी गायक संगीतशास्त्रके सिद्धान्तोंमें र
मानके कालके गायकोंको नहीं पाता था।...सम्राट् अकबर के समय बहुधा अ
व्यक्ति थे, जिन्हें गायनका व्यावहारिक ज्ञान तो था, परन्तु वे गायनके सिद्धान्तसे अप
चित थे। मियाँ तानसेन, सुभान खाँ फतेहपुरी, दोनों भाई—चाँद खाँ और सूरज
मियाँ चाँद (तानसेनके शिष्य), तानतरंग खाँ तथा विलास खाँ (तानसेनके पुत्र
रामदास मुँडिया ढाढी, मदन खाँ, मुल्ला इसहाक खाँ ढाढी, लिजर खाँ, इनके भ
नवाब खाँ, हसन खाँ तलबनी—सभी अताई श्रेणीमें आते हैं। बाजबहादुर (नव
मालवा), नायक चर्चू, नायक भगवान, सूरतसेन (तानसेन-पुत्र) लाला और दे
(दोनों ब्राह्मण भाई), बाद खाँका लड़का आकिल खाँ—ये किसी न किसी मात्र
संगीतके सिद्धान्तोंसे परिचित थे, परन्तु फिर भी नायक बैजू, नायक पांडे तथा नाय
बख्शूकी भाँति संगीतके आचार्य नहीं थे। नायक बैजूका उल्लेख फकीरुल्लाने मारव
नायक गोपालके समकक्ष किया है। बख्शूकी ख्याति भी अद्वितीय है। बख

मानसिंहके पश्चात् भी ग्वालियरमें रहा। मानसिंहके पुत्र विक्रमाजीत के पानीपतमें मरने (१५२६ ई०) के पश्चात् ही वह कालिंजरके राजा कीरतके आश्रयमें चला गया। कालिंजरसे उसे गुजरातके सुलतान बहादुरशाह (१५२६-३६ ई०)ने बुला लिया।"

इसके बाद द्विवेदीजी तानसेनके बारेमें लिखते हैं—

"तानसेन मकरन्द पाडेके पुत्र थे। उनका जन्म ग्वालियरके पास बेहट*नामक ग्राममें हुआ था। इनका पूर्व नाम त्रिलोचन पाडे था। इन्होंने स्वामी हरिदाससे पिंगल सीखा तथा संगीतकी भी शिक्षा ली। कुछ समय मुहम्मद गौससे भी गायन विद्या सीखी, जिसके कारण वे त्रिलोचनसे तानसेन बने और उन्हें ईरानी संगीतकी चपलता भी मिली। यहाँसे वह शेरशाहके पुत्र दौलत खाँके पास चले गये। उसके पश्चात् वे रीवाँ नरेश राजा रामचन्द्र बघेलाकी राजसभामें चले गये। इनके संगीत-की ख्याति सम्राट् अकबर तक पहुँची। अकबरने रामचन्द्रको विवश किया, कि वे तानसेनको उसकी सभामें भेज दें। इस प्रकार सन् १५६४ ई०में ग्वालियरका यह महान् कलावन्त उस समयके संसारकी सबसे महान् राजसभाकी नवरत्नमालाकी मणि बना।"

शायद जन्मस्थानके बारेमें द्विवेदीजीका लिखना अधिक ठीक है। तानसेन बालगन्धर्व थे। यह उनके चित्रसे भी मालूम होता है। संगीतकला और शास्त्रमें पारं-गत होनेमें उन्हें बहुत वर्ष नहीं लगे होंगे। द्विवेदीजीका भी इशारा उसी तरफ है, और विन्सेन्ट स्मिथ भी लिखते हैं, (पृष्ठ ५०) कि तानसेनने अन्तिम सूरी बादशाह मुहम्मदशाह आदिल (अदली) से संगीतकी शिक्षा पाई, जिससे मालवाके सुल्तान बाजबहादुरने भी संगीत सीखा था। शेरशाहका उत्तराधिकारी सलीमशाह सूरियोंका अन्तिम प्रतापी बादशाह था। उसके बाद तख्तकेलिये सगे और चचेरे भाइयोंमें खूनखराबी होती रही। फीरोज खाँ सलीमशाहका १२ वर्षका बेटा गद्दीपर बैठा। उसका मामा मुबारकशाह सलीमशाहका चचेरा भाई तथा साला दोनों था। सलीम ने अपनी पत्नी बीबीबाईको कहा था—अगर बेटेकी जान प्यारी है, तो भाईके सिरसे हाथ उठा, और भाई प्यारा है, तो बेटेसे हाथ धो।" वेवकूफ औरतने हर बार यही कहा: मेरा भाई ऐशका बन्दा है, उसे इन बातोंकी पर्वाह भी नहीं है। लेकिन, वही बात हुई, जिसका डर था। भांजेके गद्दीपर बैठनेके तीसरे दिन तलवार सूत कर मुबारक खाँ घरमें घुस आया। बहिन हाथ जोड़ती पाँवमें लोटती थी "भाई बेचारा बच्चा है। मैं इसे

*श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र भी कहते हैं—"तानसेन ग्वालियरके निकटस्थ बेहट ग्राम निवासी थे। मकरन्द पाडेय ब्राह्मणके पुत्र तानसेनका जन्मकाल १५३२ ई० है।"—"मध्यभारत सन्देश", ग्वालियर ३ मार्च १९५६।

लेकर ऐसी जगह निकल जाती हूँ, जहाँ कोई इसका नाम भी न लेगा, और न यह सल्तनतका नाम लेगा।" पर, मुबारिक ख़ाँ कब सुनने वाला था! उसने भानेको वहीं टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और स्वयं मुहम्मद आदिलशाह बनकर (१५५४ई०) तख्तपर बैठा। आदिलशाह शेरशाहके छोटे भाई निजाम ख़ाँका बेटा था। वह आदिल या अदली (न्यायप्रिय) कहलाना चाहता था, लेकिन उसके अन्यायपूर्ण कामोंके कारण लोग उसे अँधली कहते थे। वह अपने समयका वाजिदअलीशाह था। दिन-रात ऐश-इशरत, राग-रंग, शराब-कबाबमें मस्त रहता था। दोनों हाथ ख़ज़ाना लुटानेका उसे शौक़ था। एक तोला सोनेके फलका कुत्तावाली एक प्रकारका तीर होता था, जिसे वह चलते-फिरते इधर-उधर फेंकता था। जो कोई उसे लाकर देता, उसे दस रुपया इनाम देता।

पर, यही अँधली अपने समयका संगीतका महान् ज्ञाता था। आज़ादके अनुसार "बड़े-बड़े गायक और नायक उसके आगे कान पकड़ते थे। अकबरी युगमें मियाँ तानसेन इस कामके जगत्गुरू थे, वह भी उसको उस्ताद मानते थे।"

वह कहते हैं—"दक्खिनका एक वादक हिन्दुस्तानमें आया। उसने उस्तादीका नगाड़ा बजाया। सबको मालूम पड़ा। उसने एक पखावज तैयार की। इसके दोनों तरफ दोनों हाथ नहीं पहुँच सकते थे। एक दिन बड़े दावेसे दरबारमें आया और पखावज भी लाया, कि कोई उसे बजाये। जो गवैये और कलावन्त उस वक्त हाजिर थे, सब चकित रह गये। अदलीने उसे देखा, भेद ताड़ गया। आप तकिया लगाकर लेट गया, और उसे बराबर लिटा लिया। एक तरफ हाथसे बजाता, दूसरी तरफ पाँवसे ताल देता गया। सारे दरबारी चिल्ला उठे, और जितने गवैये उपस्थित थे, सब 'लोहा' मान गये।"

कहते हैं, अदलीके पाखानेमें सुगन्धके फैलाने और दुर्गन्धको दबानेके लिये इतना कपूर बिखेरते थे, कि हलालख़ोर रोज दो-तीन सेर कपूर समेट कर ले जाते थे। फिर भी जब वहाँसे निकलता था, तो रंग कभी पीला होता था, कभी हरा—वह बदबू बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

अदलीकी अँधली ज्यादा दिनों नहीं चली। गद्दीपर बैठनेके दूसरे ही महीने चारों ओर गड़बड़ी मच गई। वह बलवाइयोंको दबानेके लिये ग्वालियरसे बंगाला गया। इस बीच शेरशाहके एक सम्बंधी इब्राहीम सूरने आकर आगरा आदि पर अधिकार कर लिया। अदलीने हेमूके संचालनमें एक बड़ी सेना भेजी। बड़ा संघर्ष हुआ और हेमू आगरा और दिल्लीको लेनेमें सफल हुए।

ऊपरके कथनसे मालूम होगा कि ग्वालियर कलाका एक महान् केन्द्र था और शायद उसीके प्रसादसे अदली और बाजबहादुरके दरबारमें भी संगीतका बहुत मान

हुआ। हो सकता है, अदलीको कलाके आचार्य होनेका शौक ग्वालियरके साथ चिपकानेमें सफल हुआ हो, और वह वहाँ संगीतभी सिखलाता हो।

तानसेन अपने साथ एक लम्बी परम्परा रखते हैं। वह पहले हिन्दू थे। अकबरके दरबारमें उस समय पहुँचे थे, जब कि वह अभी सुन्नी मुसलमान था और हिन्दुओंमें उदारताकी कमी थी। जान पड़ता है, किसी यवनी नवनीत-कोमलांगीके प्रेममें पड़कर वह मुसलमान हो गये। वेदीजी उनका मुसलमान होना बुद्दामर्श बात बतलाते हैं, जिसकी सम्भावना कम है। अकबर अपने अन्तिम २३ वर्षोंमें मुसलमान नहीं रह गया था। उसका "दीन-इलाही" हिन्दू और पारसी धर्मकी खिचड़ी थी, जिसका वह इतना आग्रह रखता था, कि मुसलमान उसे पूरा काफिर मानते थे। वह किसीको मुसलमान धर्म छोड़ता देखकर खुश होता था; फिर, तानसेन उस समय मुसलमान क्यों होते? अबुलफ़ज़लने तानसेनके बारेमें ठीक ही लिखा है—"गत एक हजार वर्षमें ऐसा संगीतका आचार्य कोई नहीं पैदा हुआ।"

संगीतज्ञ श्री दिलीपचन्द्र वेदी तानसेनकी कलापर अधिकारपूर्वक कह सकते हैं। उनका कहना है—

"तानसेनने अनेक प्राचीन रागोंके मुख्य स्वरूपमें किंचित् परिवर्तन किया और सैकड़ों नवीन गीत रचकर उन्हें रागोंमें निबद्ध किया तथा नये रागोंकी रचना भी की। अनेक रूढ़िवादियोंने उनका विरोध भी किया, परन्तु अन्तिम विजय तानसेनकी ही हुई। तानसेनके साथ बैजू बावराका मुकाबिला और तानसेनका तानीसे इश्क करना इत्यादि दंतकथाओंका कहीं पता नहीं मिलता।"

"भाव-कल्पना एवं रस-माधुर्यकी दृष्टिसे संस्कृतका गीति-काव्य भारत ही नहीं, अपितु विश्वका परम श्रेष्ठ संगीत है। गीति-काव्यकी परम्परा...संस्कृतके महान कवियोंसे शुरू होकर हिन्दीके विद्यापति, हितहरिवंश, स्वामीहरिदास, तानसेन, बैजूबावरा, सूरदास, तुलसीदास इत्यादि महान् कवियोंकी सरस वाणीमें छनकर संगीतज्ञोंके लिए गीतोंका भण्डार भरती चली आ रही है। संगीतको अमरपद प्रदान करनेमें, गीतोंके साहित्य-सौष्ठवका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी ध्येय की पूर्तिके लिए स्वामी हरिदास तथा उनके सुयोग्य शिष्य तानसेनजी अन्तिम श्वास पर्यन्त प्रयत्न करते रहे। आजका अलाप, ध्रुपद-धमार गान—इन्हीं अद्वितीय आचार्योंकी देन है। यही नहीं, अपितु हिन्दुस्तानी 'खयालगान' भी अलाप एवं ध्रुपद गानका ही मिश्रण है, जिसके प्रथम आचार्य नेमतखाँ सदारंगजी थे।" सदारंगजी तानसेनजीकी पुत्रीके वंशज थे।

गीतिकाव्यकेलिए संस्कृत काव्य और कवियोंको श्रेय देना बेकार है। संस्कृतमें मर-मारकर "गीत गोविन्द" ही एक उल्लेखनीय गीति-काव्य है। इसका अर्थ यह

नहीं, कि पहिले गीतका प्रचलन नहीं था। आजके प्रसिद्ध रागोंमेंसे बहुतोंका उल्लेख
अपभ्रंश-काल (५५०-१२०० ई०) के साहित्यमें मिलता है। प्राकृत-काल (१-५५०
ई०) में गीति-काव्य रहे होंगे, यही बात पालि-काल (६००-१ ई० पू०) तथा पहलेके
बारेमें भी कही जा सकती है। हरेक कालमें, जान पड़ता है, गेय गान प्रचलित
भाषामें बनाये जाते थे। यह उचित भी था, क्योंकि संगीत कुछ पंडितोंके ही मनो-
रंजनकी चीज नहीं था। उसका स्वाद दूसरे भी उठाना चाहते हैं, जो तभी हो सकता
है जब कि गेयपद प्रचलित भाषामें हों।

संगीत जहाँ उदयन, अदली, बाजबहादुर (सुल्तान बायेजीद), रंगीले मुहम्मद
शाह और वाजिदअली शाह जैसे ऐशपसन्द बिगड़े हुए दिमागोंको अपने हाथोंमें
करनेमें सफल हुआ, वहाँ सम्राट् समुद्रगुप्त और बाबर, अकबर जैसे वीरोंको भी उसने
अपनी ओर खींचा और उनके पराक्रममें जरा भी कमी नहीं आने दी। इस प्रकार
विलासिताका दोष संगीतपर नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि उसके लिये इसका उप-
योग पहले भी हुआ और आज भी फिल्मोंमें बड़े जोर-शोरसे किया जा रहा है।

तानसेन अदलीके दरबारमें शिष्यके तौरपर ही नहीं, बल्कि कलावन्तके तौर-
पर रहे होंगे और वहींसे १५५० ई०के आस-पास, अदलीके शासन खतम होनेके
बाद रामचन्द्रके दरबारमें गये, जहाँ वह दस-बारह सालसे ज्यादा नहीं रहे, क्योंकि
१५६२ ई०के आसपास वह अकबरके दरबारमें पहुँच गये।

रामचन्द्रने तनसुखकी जगह उनका नाम तानसेन रक्खा, यह भी कहा जाता है
और इसपर तो विश्वास करना चाहिये, कि रामचन्द्रने तानसेनके साथ अत्यन्त आत्मी-
यता दिखलाई था। इसका कारण रामचन्द्रके दरबारका छोड़ना तानसेनको अच्छा नहीं
लगा होगा। हो सकता है, उसके सामने अकबरी दरबारकी इज्जत उन्हें फीकी मालूम
होती हो, इसलिये वह सुखी न रहते हों और दिल लगानेके लिये उन्हें यहाँ प्रेमपाश
बाँधा गया हो। बीरबल अकबरके शासनके आरम्भ होमें उनके पास पहुँच गये थे।
वह भी कवि, कलाकार थे। इसलिये दोनोंकी पटरी अच्छी जमती होगी। तानसेन
लड़कीका ब्याह अकबरके दरबारके प्रसिद्ध वीणावादक ठाकुर सम्मुनसिंह उर्फ मि
सिंहसे हुआ। इन्हींके वंशज प्रसिद्ध कलावन्त नमत खां "सदारंग" हुये।

"नादब्रह्मके इस अद्वितीय पुजारीका शरीरपात लगभग ६२ वर्षकी अ
(१५८८ ई०)में हो गया।" यह बात अधिक युक्तियुक्त मालूम होती है। इससे
होता है, तानसेन अकबरके दरबारमें २० वर्षकी उमरमें पहुँचे और २२ वर्ष त
सर्वांगमें वह मियाके नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं। मियाकी टोड़ी, मि
र जैसा धन-शालिनकी उनके आविष्कार हैं। उनके कवित्वकी परिचायक
दीवने उद्धृत का है—

प्रभाकर भास्कर, दिनकर हिमाकर भानु प्रगटे बिहान ।
तेरे उदयसे पाप-ताप छुटे, कर्म धर्म प्रेम नेम,
होय गुरु ज्ञान और ध्यान ।
जगमगात जगतपर जगचक्षु, ज्योतिरूप कश्यप-सुत जगतके प्राण ।
तेरे उदयसे जग कपाट खुलत, तानसेन कीजिये कृपा-विद्या-निधान ।

अकबर सूर्यका महान् भक्त था। प्रातः मध्याह्न, सांय और अर्ध-रात्रि चार बार सूर्यकी पूजा करता था। उसको यह कविता कितनी प्रिय होगी, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

तानसेन प्रकृतिप्रेमी थे—

सघन वन छायो री द्रुम बेली,
माधव भवन गति प्रकाश बरनबस पुष्प रंग लायौ ।
कोकिला कीर कपोत खंजन अतिहि,
आनन्द करि चहुँ ओर रंग भरि लायौ ।

अध्याय ६

शेख अब्दुन् नबी (मृ० १५८२ ई०)

१. प्रताप-सूर्य

अब्दुन्-नबी अकबरके समयके बहुत प्रभावशाली मुल्ला और मुल्लोंके सद्र (प्रधान) थे। आरम्भमें अकबरने यही समझकर इनको आगे बढ़ाया, कि इनके द्वारा मेरे सुधारोंमें सहायता मिलेगी। लेकिन कुत्तेकी पूँछ कहाँ सीधी हो सकती थी!

शेख अब्दुन् नबी शेखों (सन्तों, सूफियों)के खानदानसे सम्बन्ध रखते थे। इनके बाप शेख अहमद शेख अब्दुल कुद्दुस- [illegible] घर गंगोहके इलाकेमें [illegible] (सहारनपुर जिला)में था। घरमें ज्ञान-ध्यानका वातावरण था। कहते हैं, यह एक पहरकी समाधि (हब्सदम) लगा लेते थे। मक्का-मदीनाकी जियारत कई बार कर आये थे और वहीं हदीस (पैगम्बर-वचनावली)का अध्ययन किया था। चिश्ती सूफी-सम्प्रदायके थे। बाप-दादोंके समयसे गान-कव्वालीका रवाज चला आया था। लेकिन, जब मक्कासे हदीस पढ़ करके आये, तो इसे अधार्मिक समझा और शरीयतकी पाबन्दीमें कड़ाई शुरू की। साथ-साथ पढ़ने-पढ़ाने और धर्मोपदेशमें भी सरगर्मी दिखलाई। अकबरको अपने शासनके पहले अठारह वर्षोंमें इस्लाम पर विशेष श्रद्धा थी और वह आलिमोंकी बड़ी कदर करता था। अमीर और वजीर कुल (सर्वोच्च प्रतिनिधि) मुजफ्फर खाँने शेखकी बड़ी तारीफ की और १५६४-६५ ई० (हिजरी ९७२)में अकबरने अब्दुन्-नबीको "सद्रस्सुदूर" (धर्माध्यक्षोंका अध्यक्ष) बना दिया। उस समय अकबरको गद्दीपर बैठे आठ वर्ष हुये थे और उसकी उमर २१ सालसे अधिक नहीं थी।

मुल्लोंकी तबाहीका कोई सवाल नहीं था, पर मुल्ला सुल्तानपुरीका भाग्य-सूर्य ढलने लगा था। इसी समय अब्दुन्-नबीका सितारा ऊपर उठा। अब्दुन्-नबीकी इतनी धाक् थी, कि अकबर खुद कभी-कभी हदीस सुनने सदरके घर जाता था। एक बार सदरके जूतोंको भी उसने अपने हाथसे सीधा करके रक्खा। उसने युवराज सलीमको भी हदीस सीखनेके लिये उनके पास भेजा। शेखके उपदेशका इतना प्रभाव पड़ा, कि अकबर शरीयतकी बड़ी कड़ाईसे पाबन्दी करनेकी कोशिश करता, स्वयं मस्जिदमें अजान देता और नमाज पढ़ानेके लिये इमाम बनता, अपने हाथों मस्जिदमें झाड़ू लगानेको अहोभाग्य समझता। एक दिन अकबरका जन्म-दिवस था। वह केसरिया जामा पहनकर

हलसे बाहर आया। शेख अब्दुन्-नबीने यह देखकर कहा—"यह रंग और केसरिया
ोशाक शरीयतके सख्त खिलाफ है। इसको नहीं पहनना चाहिये।" जोशमें मुल्ला
तने उतावले हो गये, कि उनका डंडा बादशाहके जामे पर पड़ गया। अकबर वहाँ
छ नहीं बोला, लेकिन अन्तःपुरमें आकर माँसे इसकी शिकायत की। माँने कहा—
कुछ नहीं, जाने दो। यह रंजकी बात नहीं, बल्कि मुक्तिका उपाय है। किताबोंमें
लिखा जायेगा, कि एक पीरने ऐसे महामहिम बादशाहको डंडा मारा और प्रबल
ारीयतके सम्मानके ख्यालसे चुप रह कर वह उसे बर्दाश्त कर गया।"

हिन्दुस्तानमें मुस्लिम सल्तनतोंकी परम्पराके अनुसार मस्जिदोंके इमामोंकी
नियुक्ति बादशाह किया करते थे। इस प्रकार हर मस्जिदके इमामके रूपमें सल्तनतके
एजेन्ट हर जगह मौजूद रहते थे। वह मुसलमानोंके धर्म और ईमानकी ही देख भाल
नहीं करते थे, बल्कि शासकोंके लिए खुफिया पुलिसका भी काम देते थे। इमामोंकी
नियुक्ति बहुत देख-भाल कर की जाती थी। सल्तनतकी ओरसे उन्हें जागीर मिलती
थी। इस वक्त देखा गया, कि जागीरें बेतहाशा बढ़ गई हैं। पहलेके सारे बादशाहोंने
मिलकर जितनी जागीरें दी थीं, उतनी इन चंद वर्षोंमें और हो गईं। इसमें धाँधली
भी थी। दरबारसे फरमान जारी हुआ, कि जब तक सदरसुदूरका हस्ताक्षर और
प्रमाण-पत्र न प्राप्त हो, तब तक करोड़ी (पर्गनाहाकिम) और तहसीलदार जागीरकी
आमदनीको मुजरा न दें। काबुलसे बंगाल और दक्खिनसे हिमालय तक फैले हुए
विशाल साम्राज्यके सभी ऐसे जागीरदारोंको अब दस्तखत और प्रमाण-पत्र लेनेके
लिए फतहपुर-सीकरी दौड़ना पड़ा। सभी सदरके पास कैसे पहुँच सकते थे? जिनकी
सिफारिश लगी, वही वहाँ पहुँचे और मनोरथमें सफल हुए। सदरके वकीलों और
मुसाहिबों ही नहीं, बल्कि उनके फर्राशों, दरबानों, साईसों और भंगियों तकको लोगोंने
रिश्वतें दीं। जो इमाम ऐसा नहीं कर सके, उन्हें डंडे खाकर बाहर हटना पड़ा। उनमें
कितने ही गर्मीमें लूसे मर गये। हाहाकार मच गया। अकबर तक इसकी खबर
पहुँची। लेकिन, शरीयतका अकबाल जोरपर था, इसलिये वह कुछ करनेमें असमर्थ रहा।

शेख अब्दुन् नबीके दबदबेका क्या कहना! दरबारके बड़े-बड़े अमीर उनकी
खुशामद करनेके लिए पहुँचते। शेखका दिमाग इतना आसमान पर था, कि किसी-
के प्रति सम्मान दिखानेकी जरूरत नहीं समझते थे। सिफारिशें सुनी गईं, तो अच्छे
आलिमोंको सौ बीघा जमीन मिल गई, इसे बहुत समझिये। सालोंसे कब्जेमें मौजूद
जमीनोंको भी काट दिया गया। अयोग्य इमामों ही नहीं हिन्दुओं तकको भी जागीर
मिल गई। इसके कारण आलिमोंमें बहुत असन्तोष फैला।

सदर अपने दीवान (दफ्तर)में दोपहरके बाद नमाजके लिए वजू (हाथ-पैर
धोना) करते। वहाँ बैठे अमीरों और दूसरोंके सिर और मुँहपर, उनके कपड़ोंपर पैरके

पानीकी छींटें पड़तीं। शेख उसकी कोई पर्वाह नहीं करते। गरजू लोग सब दु
बर्दाश्त करनेके लिए तैयार थे; लेकिन, दिलके भीतर तो उन्हें बुरा मालूम होता
था। जब शेखके बुरे दिन आये, तो उन्होंने उसका दाम चुका लेनेमें कोई क
नहीं उठा रक्खी। पर, अपने समयमें शेख अब्दुन् नबीकी जितनी तपी, उतनी श
ही किसी सदरकी तपी हो।

बारह वर्षसे अधिक तक शेख लोगोंकी छातीपर मूँग दलते रहे। अब फ़ैज़
और अबुल्फ़ज़ल दरबारमें पहुँच चुके थे। १५७७-७८ ई० (हिजरी ९८५) तक शेख-
का प्याला लबरेज हो गया। बादशाहके पास बराबर शिकायतें पहुँची। इस वक्
इतना ही हुकुम हुआ, कि जिनकी माफी जागीर पाँच सौ बीघासे ज्यादा हो, वह खुद
बादशाहके पास फरमान लेकर हाजिर हों। अब फरमानोंको देखनेपर भण्डाफोड़ शुरू
हुआ। शेखजीका सारी सल्तनत पर जो अधिकार था, उसे भी बाँट दिया गया और हर
सूबेका फैसला करनेके लिये एक-एक अमीर नियुक्त हुआ। पंजाबमें यह काम मुल्ला
अब्दुल्ला मुल्तानपुरीके हाथमें दिया गया। दोनोंकी पहले हीसे लगती थी, अ
आगमें घी पड़ गया। दोनों मुल्ला एक दूसरेकी पगड़ी उछालने लगे।

एक दिन बादशाह अमीरोंके साथ दस्तरख्वानपर बैठ कर खाना खा रहा
था। शेख सदरने एक प्यालेमें हाथ डाला। अबुल्फ़ज़लने व्यंग करते हुए कहा—
यदि कपड़ेपर लगी केसर अपवित्र और हराम है, तो उसका खाना कैसे हलाल हो
सकता है? हरामका प्रभाव तीन दिन तक रहता है। बेचारे शेखके पास इसका क्या
जवाब था? नौजवान बादशाहको जन्म-दिनके उपलक्षमें केसरिया पहने देखकर
उन्होंने फटकारा ही नहीं डंडा तक लगा दिया था।

एक दिन बादशाह और अमीर बैठे हुए थे। अकबरने पूछा—"बीबियों
संख्या कितनी उचित है? जवानीमें तो इसका कुछ ख्याल नहीं किया, जितने हो गये,
हो गये। अब क्या करना चाहिये।" हरेकने अपना-अपना विचार प्रकट किया। तब
अकबरने कहा—"एक दिन शेख सदर कहते थे, कि कुछ धर्मशास्त्रियोंने नौ बीबियाँ
विहित बतलाई हैं।" दरबारियोंमेंसे किसीने कहा—"हाँ, इब्न अबी-लैलाकी यही
राय है, क्योंकि कुरानकी आयत है—"फ़ अन्कह् मा ताब लकुम् मुसन्ना व सलास व
रुबाअ" (तो निकाह करो, जो सको तो दो, तीन और चार)। दो, तीन, चार जोड़ने-
से नौ होता है। किसीने इसे दो दो, तीन-तीन, चार-चार मानकर संख्या अठारह
भी मानी है। लेकिन इन परम्पराओंको विशेषता नहीं दी जा सकती।" बादशाहने
इसी वक्त शेखसे पुछवाया, तो उन्होंने कहा—"मैंने आलिमोंके मतभेदका उल्लेख
किया था, फतवा नहीं दिया था।" अकबरको यह बात बुरी लगी: एक बार ऐसा
कुछ और कहता है और दूसरी बार कुछ और। उसके दिल में गाँठ पड़ गई।

शेखके अरबी ज्ञान और हदीसके पांडित्यकी बड़ी धूम थी। वह समझते थे,
ने मदीनामें हदीसकी शिक्षा पाई है और मैं हदीसोंके जमा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ और
से पुरातन इमाम आज़मकी सन्तान हूँ। भला मेरा मुकाबिला कौन कर सकता है?
किन, एक दिन अकबरके दुधेरे भाई मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकाने एक शब्दमें गलती
कड़ी। शेखने एक शाहज़ादेको उलटा-पुलटा पढ़ा दिया था। आखिर अरबीमें दो
कारके ह और चार प्रकारके त होते हैं। हिन्दू-मुसलमान बहुत परिश्रमसे फर्कको
याद करनेकी कोशिश करते हैं, पर हमारी भाषामें इनका प्रयोग नहीं है, इसलिये
को हलकसे बोलना चाहिये, या मामूली तौरसे, यह ख्याल रखना मुश्किल है।
जिस हदीसका शेखको बहुत घमंड था और जिसके कारण वह इतने ऊँचे दर्जेपर
हुँचे थे, उसमें ही उनकी यह हालत थी। फैज़ी और अबुल्फ़ज़ल क्यों न चूरकर धूल
उड़ाते? उधर पुराने मुल्ला सुल्तानपुरी भी शेखको नीचे गिरानेके किसी मौकेपर
चूकते नहीं थे। यह साबित होने लगा, कि सदरने मीर हबशको निरपराध शिया कह
कर मरवाया और खिज़िर खाँको पैगम्बरका अपमान करनेका इल्ज़ाम लगाकर मौत-
के घाट उतारा। इसी समय कश्मीरके हाकिम (राज्यपाल)की ओरसे भेंट लेकर मीर
मुकीम अस्फ़हानी और मीर याकूब हुसैनखाँ आये। कश्मीरमें इसी समय शिया-
सुन्नियोंका झगड़ा हुआ था, जिसमें एक शिया कत्ल हो गया था। उसके लिये एक
सुन्नी मुफ़्तीके प्राण लिये गये। कहा गया, कि यह मीर मुकीमके कारण हुआ। शेख
सदरने मुकीम और याकूब दोनोंको शिया होनेके कारण बदला लेनेके लिये कत्ल
[illegible]

[illegible]

क स्थानपर शिवाला बनवाने लगा। जब उसे रोका गया, तो उसने पैगम्बरकी शान-
के विरुद्ध भी कुछ कह दिया और मुसलमानोंकी बेइज्जती की। ब्राह्मण प्रभावशाली
था, इसलिए मथुराके काज़ी कुछ कर न सकते थे। उन्होंने इस मामलेको सदरके पास
पेश किया। सदरने आनेके लिए हुकुम भेजा, तो ब्राह्मण नहीं आया। बात अकबर तक
पहुँची। उसकी सलाहपर बीरबल और अबुल्फ़ज़ल वचन देकर ब्राह्मणको फतहपुर-
सीकरी लाये। अबुल्फ़ज़लने जाँच करके बादशाहसे कहा, कि बेअदबी जरूर इसने की
है, लेकिन आलिमोंमें दो पक्ष हैं—एक पक्ष कत्लकी सजा उचित बतलाता है और
दूसरा जुर्मानेकी। शेख सदरने कत्लको उचित समझा और इसके लिए वह बादशाहसे
इजाज़त माँगने लगे। अकबर पक्षमें नहीं था और टालमटोल करते सिर्फ यही कहता था,
शरीयतके मामलोंका जिम्मा तुम्हारे ऊपर है। ब्राह्मण देर तक कैदमें रहा। अकबरके
अन्तःपुरमें हिन्दू रानियाँ भी थीं और उनका काफी सम्मान था। वह अपने धर्मके साथ
प्रेम रखती थीं। उन्होंने भी बादशाहसे ब्राह्मणकी जान बचानेके लिये सिफारिश की।

शेखके पास भी सिफारिशें गईं, पर वह अपनी बातपर डटे हुए थे। बादशाहने फिर पूछा, तो उसने अपनी वही बात दोहराई। शेखने आगा-पीछा कुछ नहीं सोचा और तुरन्त कत्लका हुक्म दे दिया।

ब्राह्मणके कत्ल होनेकी बात जब अकबरके पास पहुँची, तो वह बहुत नाराज हुआ। महलकी रानियों और बाहरके दरबारी राजाओंने कहना शुरू किया: हु[illegible] मुलटोंको हुजूरने इतना सिरपर चढ़ा लिया है, कि यह आपकी खुशीका भी ख्याल नहीं करते और अपना दबदबा दिखानेके लिए लोगोंको बेहुक्म कत्ल कर डालते हैं। बादशाहका पारा बहुत ऊँचा चढ़ गया, और बर्दाश्त करना उसके लिये मुश्किल हो गया। दरबारमें बैठा था। मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी भी वहीं थे। बादशाहकी नजर उनपर पड़ी, तो नाम लेकर आगे बुलाया। वह सामने गये। पूछा—"तुमने सुना है, कि अगर निन्नानबे वचन कत्लके पक्षमें हों और एक मुक्ति पक्षमें, तो मुफ्ती (कानूनशास्त्री)को चाहिये कि अन्तिम वचनको मान्य करे।" मुल्ला बदायूनीने कहा—"वस्तुतः जो हजरतने फरमाया, वही बात है।" अकबरने पूछा—"क्या इस बातकी खबर शेखको न थी, कि बेचारे ब्राह्मणको मार डाला! यह क्या बात है!" मुल्ला बदायूनी अपने मुल्ला भाईको मंझधारमें छोड़नेके लिये तैयार न थे और बोले—"शायद इसमें कोई मसलहत हो।"

अकबरने कहा—"वह मस्लहत क्या है?

"—यही फितना (धर्म विरोध) का दरवाजा बन्द हो और लोगोंमें साहस न देखा हो।" बादशाह मुल्लाकी बातोंको गुस्ताखी समझ रहा था और यह भी कि उस [illegible]का पक्ष ले रहा है। मुल्ला बदायूनीने अपने इतिहासमें लिखा है—"बादशा[illegible] को लोग देख रहे थे। उसकी मूँछें शेरकी तरह खड़ी थीं। पीछेसे लोग (मुझे) मना कर रहे थे, कि न बोलो।"

बादशाहने एकाएक बिगड़कर फरमाया—"क्या नामाकूल बातें करते हो!" मुल्ला बदायूनी तसलीम बजाकर तुरन्त पीछे हट गये। लिखते हैं—"उस दिनसे शास्त्रार्थकी सभाओं और ऐसे साहसोंसे मैं अलग रहने लगा। कभी-कभी दूरसे कोर्निश (दंडवत्) कर लेता था। शेख अब्दुन्नबीका काम दिनपर दिन गिरने लगा। इ[illegible] और मनमें मैल बढ़ता गया, बादशाहका दिल फिरता गया.. शेखके हाथमें [illegible] [illegible] निकलने लगे और उन्होंने दरबारमें आना बिलकुल छोड़ दिया।" ए[illegible] [illegible] दे दी। उन्हीं दिनों किसी उत्सवमें बधाई देने आगरासे फतहपुर [illegible] आये। किसी समय बादशाहने कोई बात बतलाई। शेख मुबारकने कहा—"हुजूर [illegible] इमाम हैं। धार्मिक या मुल्की हुक्मोंके जारी करनेमें दूसरे [illegible] उलमा क्या हैं? इनकी [illegible] निराधार है, इन्हें इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है।"

बादशाहने कहा—"जब तुम हमारे उस्ताद हो और हमने तुमसे सबक पढ़ा
, तो इन मुल्लोंके फंदेसे हमें छुट्टी क्यों नहीं दिलाते ?" इसीपर शेख मुबारकने
वस्थापत्र (महजर) तैयार किया और बादशाहको सभी विवादास्पद विषयोंमें
र्वोपरि प्रमाण स्वीकारकर मुल्लोंसे मुहरें लगवाईं।

शेख अब्दुन् नबी दरबारमें आना-जाना छोड़ मस्जिदमें बैठे-बैठे बादशाह
ौर दरबारियोंका बेदीन और बदमजहब कहकर बदनाम करने लगे। मुल्ला
ल्तानपुरीसे बिगड़ी हुई थी, पर अब दोनों एक नावपर थे, दोनों मिल गये। वह
ोगोंसे कहते फिरते—हमसे जबर्दस्ती व्यवस्था पत्रपर मुहरें लगवाई गईं।

अकबर कितने दिनों तक बर्दाश्त करता ? आखिर ९८७ हि० (१५८० ई०के आरम्भ)
में मुल्ला सुल्तानपुरी और शेख अब्दुन् नबी दोनोंको जबर्दस्ती हजके लिए भिजवाते
कहा कि वहीं खुदाकी इबादत करते रहो। बिना हुक्मके फिर लौटके न आना।

२. मक्का में निर्वासन

अकबरने यद्यपि दोनों मुल्लाओंको आजन्म कालापानीकी सजा दी थी, पर
आखिर यह लोग बड़े-बड़े पदोंपर रह थे इस्लामके बड़े आलिम माने जाते थे,
इसलिये बादशाहने उनकेलिए मक्काके शरीफको पत्र लिखकर उनके साथ अच्छा
बर्ताव करनेकेलिये कहा। वहाँके लोगोंको देनेकेलिये बहुत-सा सामान और नकद
रुपया दिया। जब ये वहाँ पहुँचे, तो वह दुनिया बहुत कड़वी दिखाई पड़ी। कहाँ
हिन्दुस्तानमें यह धर्मके सर्वेसर्वा थे और यहाँ मक्काका छोटा-सा मौलवी भी इन्हें
कुछ नहीं समझता था। उनके सामने ये जबान खोलनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकते
थे। हिन्दुस्तानके वह दिन याद आने लगे। सोचने लगे—कहाँ आकर फँसे। पर,
लौटनेकी इजाजत नहीं थी। आखिर बैठे-बैठे अकबर और उसके दरबारियोंको बेदीन
कहकर बदनाम करने लगे। इसकी खबर रूम और बुखारा तक पहुँच रही थी,
अकबरके पास तो एक-एक बातको नमक-मिर्च लगाकर पहुँचाया जाता था। दो
वर्ष बाद फिर हाजियोंका काफिला जब रवाना हुआ, तो शाही मीर हाज उनके साथ
था। हजका एक विशेष विभाग ही था, जो हाजियोंकी यात्राका प्रबन्ध करता था
और मीर हाजको हाजियोंके साथ भेजा जाता था। वह बादशाहका एक पत्र साथ
लेता गया, जिसमें लिखा था—"हमने शेख अब्दुन् नबी और मखदूमुल्मुल्कके हाथ
नकद रुपया और बहुत-सी भेंट हिन्दुस्तानसे रवाना की थी, जिसमें सभी लोगों और
तीर्थोंमें बाँटनेके लिए रखमें थी। सूचीसे अलग भी कुछ रुपया दिया था, कि उसे कुछ
व्यक्तियोंको गुप्त रीतिसे दे दें। शेख सदरको यह भी हुकुम दिया था, कि जो अच्छी
और विचित्र चीजें उधरके मुल्कोंकी मिलें, उन्हें ले लेना। उनके लिये दी गई रकम
अगर काफी न हो, तो सामानकी रकमसे खरीद लेना। लिखिये, कि आपको उन्होंने

किनारा करवा दिया।" इसके बाद ही मुल्लाओं [illegible] काफिरोंकी दिक्कत पर कहा—"ऐसे लोगोंको वापिस आनेसे [illegible] फिर न आने दो।"

शाह निराश कहा—ऐसा [illegible] तीन साल तक किसी तरह मक्कामें रहे। फिर, [illegible] पुराने पर हिन्दुस्तान उन्हें खींचने लगा—और अकबर पुराना ज्यादा बादशाहोंसे सिद्ध हुआ है। सुनने सुना कि अकबरका और भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम काबुलसे हिन्दुस्तान फतेह करनेके लिए चल पड़ा है। उन्हें समझा, अकबरका तख्त पलटना यह बहुत अच्छा मौका है। इसकी बेदीनीके कारण मुसलमानोंको उसका दुश्मन बना ही लिया है। बस हमारा फायदा निकला, कि अकबरको इस दुनियाको छोड़कर दूसरे काफिरोंकी तरह दोजखमें ही ठिकाना मिलेगा। बेचारे दूर थे और आजकलकी तरह तार और अखबार तो थे नहीं। खबरें बहुत देरसे पहुँचती थीं। उन्हें लौटनेमें महीने नहीं बल्कि बरस लगे, तब तक हकीम मिर्जाका उछलना कूदना बन्द हो चुका था। १५८२ ई०में जहाजसे खम्भातमें उतरे फिर अहमदाबाद आये। अब मुल्लाओंको भी पीछे लौटनेका रास्ता नहीं था। [illegible] करके लौटी बेगमोंकी मार्फत सिफारिश करवाई और अब्दुन् नबी मुँह [illegible] सीकरीके दरबारमें हाजिर हो गये। इन तीनों सालोंमें जो परिवर्तन देखा, उससे शेखकी अक्ल हैरान हो गई। उनके लिए यह विश्वास करना भी मुश्किल हो गया—यह वही हिन्दुस्तान है, वही दरबार है, जहाँ दीनदार बादशाहोंके दमका डङ्का था, पर, अब तो मुबारकके बेदीन बेटे—फैजी और अबुलफजल—की चल रही थी।

उनसे पहले ही दरबारमें उनकी करतूतोंका कच्चा चिट्ठा पहुँच गया था। मक्का-मदीनामें बैठकर अकबरको यह लोग बेदीन और दोजखी कहकर बदनाम करते थे, यह सब उसे मालूम था। बातचीत करते वक्त बूढ़ेने अपनी आदतसे मजबूर हो कोई ऐसी बात कह दी, कि बादशाहकी त्योरी बदल गई। यह वही शेख सदर थे, जिनकी जूतियोंको एक समय अकबरने अपने हाथों सीधा किया था और उनका डंडा लगनेको भी चुपचाप बर्दाश्त कर लिया था। जूतियाँ उठानेवाला वही हाथ आज इस बुड्ढेके मुँहपर जोरके मुक्केके रूपमें पड़ा। बेचारे बूढ़ेने इतना ही कहा—"ब-कारद चिरा न मी जनी!" (तलवार क्यों नहीं मार देते।)

बादशाहने टोडरमल को हुकुम दिया, कि मक्कामें बाँटनेके लिए जो ५० हजार रुपये दिये गये थे, उनका इनसे हिसाब ले लो। जाँचके कानमें अबुलफजलको भी शामिल किया गया। जिस तरह और करोड़ी गबनके अपराधमें कैदमें पड़े थे, उसी तरह शेख अब्दुन् नबीको भी डाल दिया गया। अपराधियोंकी तरह उन्हें भी सफाई देनेके लिए हाजिर होना पड़ता। जिस मकानमें वह खुद दरबार करते थे, अमीर तथा आलिम हाथ बाँधकर खड़े रहते थे, वहीं उन्हें कोई पूछता भी नहीं था।

काफी समय तक उनकी पेशी चलती रही। एक दिन सुना गया, कि रातको गला घोंटकर किसीने उन्हें मार डाला। कहते हैं, यह भी बादशाहके इशारेसे हुआ था। दूसरे दिन मीनारोंके मैदानमें लाश पड़ी थी। लोग मुल्लाका तिरस्कार करते शेर पढ़ा करते थे--

गर्चे ईं शेख क-नबी गुफ्तन्द। क-नबी नेस्त शेखे-मा कनबी स्त।

(यद्यपि शेखको नबी समान कहते हैं, पर नबी समान नहीं, हमारा शेख मगही है।)

अध्याय ७

हुसेनखाँ टुकड़िया

१. पूर्व-पीठिका

हमारे देशमें हर जगह आदमियोंके हाथों तोड़ी गई पत्थरकी मूर्तियाँ मिल
है। यह तो सबको मालूम है, कि इनके तोड़नेवाले मुसलमान थे—इस्लाम मूर्तिके
तोड़नेमें सवाब (पुण्य) मानता है, इसलिये हरेक गाजी पुरुषके हाथ बार विहको
देना अपना कर्तव्य समझता था। उसे इसका कोई ख्याल नहीं था, कि यह मूर्
निराकार अल्ला और भगवान्से भी ज्यादा मूल्यवान् है। इनमें बहुत-सी उत्तम कलाके
नमूने हैं; जिनके सौन्दर्यको देखकर आदमी वाह-वाह करने लगता है। लेकिन इसे
जाननेके लिये अधिक संस्कृत होनेकी जरूरत है। बर्बर एकेश्वरवादी उसे क्या इन
सकते थे! ईसाई धर्म भी मूर्तिके खिलाफ था। इस्लाम और ईसाई दोनोंने
मूर्तियोंके साथ शत्रुता यहूदियोंसे सीखी। तीनों सामीय धर्मोंने मिलकर दुनियाके
कोने कोनेमें कलाके भव्य नमूनोंको नष्ट करनेका महापाप किया। पहले इनके अनु
यायी अब मूर्तिभक्त हो गये हैं, क्योंकि वह अब अधिक संस्कृत हैं। यूनान और रोम
की मूर्तियोंको कभी जान-बूझकर तोड़नेमें जिन्होंने आनन्द अनुभव किया था, व
अब उनको जमा करके सुरक्षित रखने तथा उनसे प्रेरणा पानेमें गौरव मानते हैं
यूरोपको नव-जागरणकी प्रेरणा ग्रीक और यूनानकी पुरानी मूर्तियों और उ
विचारकोंने दी। दूर क्यों जायें, अफगानिस्तानको ही देखें। १९२८ के जनवरीमें
काबुलमें था। अफगान लोग उस समय और अब भी शिक्षामें बहुत पिछड़े हुए
पर, उनको अपनी संस्कृतिका मान होने लगा था। बामियान और बेग्रामके
मन्दिरों और चित्रोंको नष्ट करनेमें कभी पठानोंने गौरव अनुभव किया होगा
अब मैं देख रहा था, तरुण पठान कलाकार उन्हीं मूर्तियों और चित्रोंको लेकर
का पाठ पढ़ते गर्व अनुभव करते कह रहे थे—हमारे पूर्वजोंने इसे बनाया था।
कलाके साथ दुश्मनी मानवताके साथ दुश्मनी है। जिसने कलाका ध्वंस किया
अपनी बर्बरताका परिचय दिया। समय बीतते उसे दुनियाके धिक्कारका अधि
पात्र बनना पड़ेगा।

भारतमें मूर्तिध्वंसक बहुत आये, लेकिन उनमेंसे एकाधके ही कार्यसे हम परि-
चित हैं—हुसेनखाँ टुकड़िया इन्हींमेंसे था। कुमाऊँ-गढ़वालमें आज जो मूर्तियाँ टूटी-

हुई मिलती हैं, वह टुकड़ियाका काम है। टुकड़िया मूर्तियोंको तोड़नेकेलिये, मंदिरों और धनको लूटनेकेलिये अलमोड़ामें सोमेश्वर, बैजनाथ, बागेश्वर, द्वाराहाट सभी जगह पहुँचा। गढ़वालमें जोशीमठ, बदरीनाथ, तपोवन, केदारनाथकी मूर्तियों और मन्दिरोंको भी नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला टुकड़िया था। उससे पहले शायद ही कोई मुसलमान विजेता पहाड़ोंके भीतर इतनी दूर तक इस कामकेलिए गया हो। यह निश्चित ही है, कि अपने घरसे खर्च करके यदि जहादियोंको इन पहाड़ोंमें मूर्तियोंको तोड़कर सवाब हासिल करना होता, तो वह कभी नहीं जाते। असलमें वहाँकी अपार सम्पत्तिका लोभ उन्हें खींचकर वहाँ ले गया। वह धातुकी मूर्तियोंको गलाकर उसके द्रवको बेच देते, जेवरों और नकद पैसे हाथमें कर लेते थे, मन्दिरोंमें लकड़ी जमाकर आग लगा देते और मूर्तियोंको हथौड़ेसे तोड़ देते थे। नाकरर उनका हथौड़ा पहले चलता था।

टुकड़ियाने जितनी मूर्तियोंको तोड़ा, शायद ही किसीने उतना तोड़ा होगा। केदारनाथके रास्तेपर मैखण्डामें हरगौरीकी असाधारण सुन्दर खण्डित मूर्तिको देखकर मन क्षुब्ध हुए बिना नहीं रहता। कैसे उस आततायीका हाथ इस सुन्दर कलाकृतिपर उठा। मुसलमानोंका अल्ला, हिन्दुओं और दूसरे धर्मोंके भगवान् कभी न थे, वह सरासर झूठे हैं। उसके न होनेका इससे बढ़कर और प्रमाण क्या चाहिये, कि टुकड़ियाने कलाके अद्भुत नमूनोंको बेदर्दीके साथ नष्ट किया और भगवान् चुपचाप देखता रहा। टुकड़िया कौन था? अकबरका एक सम्मानित उच्च-अधिकारी, यह जानकर और भी आश्चर्य होता है। पर, इसका यह अर्थ नहीं, कि उसके इस महापापमें अकबरकी सहानुभूति थी। इससे यही मालूम होता है, कि अकबरको कैसे लोगोंके बीचमें रहकर काम करना पड़ा था। महमूद गजनवीके वक्तसे चली आती परम्परा अब भी उतनी ही मजबूत थी।

टुकड़िया एक आदर्श मुस्लिम धर्मवीर था। हुमायूँ हिन्दुस्तानकी ओर लौटते अफगानिस्तान पहुँचा। इसी समय हुसेनखाँ नामक अफगान बैरमखाँ खानखानाका नौकर हो हुमायूँके साथ रहने लगा। कन्दहारके विजयमें उसने अपनी बहादुरीके जौहर दिखलाये। उसका यश बढ़ा। हुमायूँके एक पठान सरदार मेंहदी कासिम खाँकी लड़कीसे उसका ब्याह हो गया। मेंहदी उसका मामा भी था। हुमायूँके बाद अकबर गद्दीपर बैठा। अब भी पंजाबकी तरफ सिकन्दर सूर मुगलोंसे लड़ रहा था। मानकोटके किलेमें उसके साथ मुकाबिला हुआ। भाई हसनखाँ मारा गया। हुसेन-खाँकी बहादुरीकी दाद अकबर और सिकन्दर दोनों देते रहे। ९६५ हिजरी (१५५७-१५५८ ई०)में विजयके बाद अकबर दिल्लीकी तरफ लौटा। उस समय हुसेन खाँको उसने पंजाबका हाकिम बना दिया।

लाहौर महमूद गजनवीके समयसे ही मुसलमानी शासनमें था। मालिकोंकी देखा-देखी हिन्दुओंको भी दाढ़ी रखनेका शौक था। एक लम्बी दाढ़ीवाला आदमी हाकिमके दरबारमें आया। हुसेनखाँ सम्मानके लिये उठ खड़ा हुआ, उससे कुशल-

जंगल घूमने लगा। पीछे मालूम हुआ, यह तो हिंदू था। उसने हुक्म दे दिया, कि आगेसे हरेक हिंदू अपने कन्धेपर एक रंगीन कपड़ेका टुकड़ा टँका लिया करे। लाहौरके सारे हिंदू अपने कन्धेपर टुकड़ा टँकवाने लगे। उन्होंने उसका नाम टुकड़िया रख दिया। तबसे वह इसी नामसे मशहूर हुआ।

अगले साल टुकड़िया अकबरके पास आगरामें आया। खानजमाँके दुर्गमें भेजा गया। इसी समय उसके चाचा बैरमखाँका मामला बिगड़ा। टुकड़िया वहां छोड़ ग्वालियर हो मालवा जाना चाहता था। खानखानाके बुलानेपर वह उसके पास पहुँच गया और उसके लिये बराबर लड़ता रहा। पर, खानखानाके दुश्मनोंके अंदर अकबरका हाथ था। कई अमीरोंके साथ हुसेनखाँ पकड़ा गया। अकबर हुसेनखाँकी बहादुरीको जानता था, इसलिये पहले उसे उसके सालेके हाथमें रक्खा, फिर पटियाली इलाकेकी जागीर दे दी। वही पटियाली, जहाँपर कि फारसीके महान् कवि अमीर खुसरो पैदा हुये थे। ९७४ हिजरी (१५६६-१५६७ ई०)में उसके ससुर और मामा मेंहदी कासिम हज करने चले। टुकड़िया पहुँचानेकेलिए समुद्र तट तक गया। लौटते वक्त देखा, कि इब्राहीम हुसेन मिर्जा आदि तैमूरी शाहजादोंने अकबरके खिलाफ बगावत की है। वह भी अपने स्वामीकेलिये लड़नेवालोंमें शामिल हो गया। पासा उलटा पड़ा। इब्राहीमने समझा बुझाकर विरोधियोंको आत्मसमर्पण करनेके लिये तैयार किया। टुकड़िया भी बाहर आया। उसे शाहजादाके पास जानेकेलिये कहा गया, लेकिन उसने स्वीकार नहीं किया—वह कैसे अपने बादशाहके बागीको सलाम करेगा। नहीं माना। अकबरने पहले ही उसके बारेमें सुन लिया था। आनेपर उसने तीनहजारीका दर्जा और शमशाबाद इलाकेकी जागीर दी। टुकड़ियाको मजहबने अंधा बना दिया था, नहीं तो उसमें न लोभ था और न स्वार्थकी कमी थी। इतनी बड़ी जागीर मिलनेपर भी उसका हाथ तंग ही रहता था।

तीन साल बाद ९७७ हिजरी (१५६९-७० ई०)में टुकड़ियाको लखनऊकी जागीर मिली। इसी समय उसका ससुर हज करके लौटा। अकबरने उसे लखनऊकी जागीर दे दी। हुसेनखाँ इस जागीरको छोड़ना नहीं चाहता था। मामा-भतीजे, ससुर-दामादमें जागीरकेलिए मनमुटाव हो गया। बादशाहने जागीर ससुरको दे ही दी थी। टुकड़ियाने ससुरपर बुखार निकालनेकेलिये अपने चचाकी बेटीसे दूसरा ब्याह कर लिया। नई बीबीको अपने पास पटियालीमें रक्खा और कासिम खाँकी बेटीको उसके भाइयोंके पास खैराबाद (जिला सीतापुर,में भेज दिया।

२. मन्दिरों की लूट और ध्वंस

जागीर हाथसे निकलनेका उसके दिलपर बड़ा सदमा हुआ। निश्चय किया, अब बादशाहकी नौकरी करनेकी जगह अल्ला मियाँकी नौकरी करूँगा। अल्ला मियाँ

समानसे मन्ना सां नहीं टपकाते और टुकड़िया कोई दुआ करनेवाला फकीर भी
ी था। उसने अब काफ़िरोंको लूटते-मारते बहादका कर्त्तव्य पूरा कर अल्लाको
 करनेका निश्चय किया। उसने सुना था, कुमाऊँ-गढ़वालके पहाड़ोंमें ऐसे
न्दर हैं, जो सारे चाँदी-सोनेकी ईंटोंसे बने हैं। वहाँ अपार धन है। उसने जहा-
योंको भरती किया। लूटके मालकेलिए कितने ही मुसलमान तैयार थे। सेकड़ों धर्मवीर
ड़ियाके झण्डेके नीचे जमा हो गये। वह १५७१ या १५७२ में पहाड़के भीतर घुसा।

पहाड़के लोगोंने थोड़ा-बहुत मुकाबिला किया, उनके पास इतने अच्छे-अच्छे
थयार नहीं थे। वे अपने गाँवोंको छोड़कर भाग गये। हुसेनखाँ टुकड़िया अपने
हादियोंको लिये भीतर बढ़ा। एक जगह बतलाया गया, कि यहाँ सुलतान महमूदका
ामा शहीद हुआ था। (यह स्थान शायद नारायणकी जिलेका सैयदसालार गाजीका
ान था।) उसने पुराने जहादियोंकी कब्रोंपर फातेहा पढ़ा, उनकी मरम्मत करवाई।
ाते-जाते बर्फानी स्थानमें पहुँच गया। शायद यह गर्व्याङ् या जोहार होगा।
ना था, यहाँ सोने-चाँदीकी खानें और तिब्बतसे कस्तूरी और रेशम आते हैं।
ागोंने यह भी कहा, कि यहाँ नगाड़ेकी आवाज, लोगोंके हल्ला-गुल्ला और घोड़ोंके
नहिनानेसे बर्फ पड़ने लगती है। कुमाऊँ-गढ़वालके बर्फानी स्थानोंके बारेमें ऐसी
ात नहीं सुनी जाती, हाँ अमरनाथ (काश्मीर)के बारेमें जरूर सुनी जाती है। जो
ो हो जहादियोंको लालच बुरी बला साबित हुई। बर्फ पड़ने लगी। खानेके लिये
ास-पत्ते भी नहीं थे। भूखके मारे प्राण जाने लगे। टुकड़ियाने बहुत हिम्मत बढ़ाई,
ोने-चाँदीकी ईंटोंकी बातें सुनाईं। लेकिन, बर्फके सामने जहादियोंकी हिम्मत नहीं
ई। वह टुकड़ियाके घोड़ेकी लगाम पकड़कर जबर्दस्ती नीचे खींच लाये। अब
ुकड़ियाकी पलटनकी हालत वही थी, जो मास्कोसे लौटते नेपोलियनकी हुई। पहाड़-
े लोग उनका रास्ता रोके थे। वह ऊपरसे धुके धायोंको चलाते, पत्थरोंकी वर्षा
रते। बहुतसे जहादी इस दुनियाको छोड़कर स्वर्ग पहुँच गये। कितने ही घावके
ावके कारण पाँच-पाँच छ-छ महीनेमें घुल-घुलकर मरे। हुसेनखाँ सही-सलामत नीचे
तरा। जहादका नशा कुछ ठण्डा हो गया था, पर पूरी तौरसे नहीं।

अब हुसेनखाँ अकबरी दरबारमें पहुँचा। मालूम नहीं, अपने जहादकी दास्तान-
ो किस तरह सुनाया। वह पहाड़ियोंपर जला-भुना था, शायद अकबरकी भी कुमाऊँ-
ढ़वालके ऊपर नजर थी। टुकड़ियाने काँटगोला इलाका (मुरादाबाद जिला) जागीर-
ेलिये माँगा। झगड़ेवाले इलाकेको दरबार हमेशा देनेकेलिए तैयार ही रहता था।
ुकड़िया वहाँ पहुँचा। उसने पहाड़में घुसकर अपनी जहाद जारी रक्खी। जहादियोंकी
्या कमी हो सकती थी, जब कि जीनेवालोंको लूटकी अपार सम्पत्ति मिलनेवाली थी।
ैमूरी शाहजादोंमें इब्राहीम हुसेनने अकबरको बहुत तंग किया था। वह हिन्दुस्तान
(उत्तर-प्रदेश)में आकर तहलका मचाये हुये था। टुकड़ियाको खबर लगी, वह लड़ने

गया। जाँघमें गोली लगी। प्रसिद्ध इतिहासकार मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूँनी इसमें शरीक थे। बदायूँनी भी इस्लामी जहादके दिलदादा थे। वह अपने मुर्शिदकी प्रशंसा करते नहीं थकते। गोली लगनेके समयके बारेमें लिखते हैं—"मैंने पानी छिड़का। आज पानी के सेवनसे जाना, कि रोजा रखना भी आसानीसे है। मैंने घोड़ेकी लगाम पकड़ चाहा, कि पेड़की ओटमें ले जाऊँ। आँखें खोलीं। अपने स्वभावके विरुद्ध मुझे नजरसे मुझे देखा और झुँझलाकर कहा — लगाम पकड़नेकी क्या बात है, बस (हिन्दू) उतर पड़ो। हम वहीं छोड़कर निकल पड़े। घमासान लड़ाई हुई। दोनों तरफ इतने आदमी मारे गये, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती। शामके समय इस छोटी सी टुकड़ीपर अल्लाने रहम किया, विजयकी पवन चली। दुश्मन सामने से इस तरह हटने लगे, जैसे बकरियोंके रेवड़ चले जाते हैं। पर सिपाहियोंके हाथोंमें हिलनेकी ताकत नहीं रही, जंगलमें दोस्त-दुश्मन गड-मड हो गये। एक दूसरेको पहचानते नहीं थे। कमजोरीके मारे एकका हाथ दूसरेपर उठता नहीं था। कुछ अल्लाके बन्दे जहादका सवाब लिया और रोज़ा भी रक्खा। कुछ बेचारोंने पानी बिना जान दे दी।"

विजय प्राप्त कर बूढ़ा दुर्गिया काँटगोला लौट गया। इलाकेका प्रबन्ध करने लगा था, इसी समय सुना कि बादशाहका बागी शाहजादा हुसेन मिर्जा सम्भल से १५ कोसपर है। पालकीपर बैठकर चल पड़ा। मिर्जा बाँसबरेलीसे चला गया, क्योंकि दुर्गियाकी बहादुरीको अच्छी तरह जानता था। हुसेनखाँ सम्भल आधी रातको पहुँचा। नगाड़ेकी आवाज सुनकर अकबरके सरदारोंने समझा, मिर्जा आ गया। उन्होंने किलेका दरवाजा बन्द करके भीतर बैठ गये। किलेके नीचेसे आवाज दी गई, कि हुसेनखाँ तुम्हारी मददकेलिये आया है, तब उनकी जानमें जान आई। यह लोग शाहजादा (मिर्जा)के पीछे गंगापार अहार (बुलन्दशहर)की ओर दौड़े और मिर्जा अमरोहाको लूटते चौमालाके घाटपर गंगापार हो लाहौरकी तरफ चला। दुर्गियाने यदि गढ़वाल-कुमाऊँमें लूट-मार और खून-खराबी करके पुण्य अर्जन किया था, तो शाहजादा भी अकबरके राज्यके शहरोंको लूटता-मारता धन जमा कर अपने सहायकों की संख्या बढ़ा रहा था। हुसेनखाँ बराबर उसका पीछा करता रहा। लुधियाना में सुना, कि लाहौरमें लोगोंने मिर्जाके डरसे दरवाजा बन्द कर लिया। मिर्जा लौटकर और दीपालपुर (माटगोमरी जिला) चला गया था। मिर्जा इधर-से-उधर घूमता रहा। दुर्गिया तथा अकबरके दूसरे अमीर उसका पीछा कर रहे थे। आखिर मिर्जाको पकड़कर मुलतान ले गये। हुसेनखाँ खबर सुनकर मुलतान पहुँचा। मिर्जाने मिलने से दुर्गियाने इन्कार किया, क्योंकि बादशाहके बागीको सलाम करना पड़ेगा। सुनकर कहला भेजा, कि सलाम करनेकी जरूरत नहीं। लेकिन, दुर्गिया शाहजादेके सामने पहुँचनेपर सलाम किये बिना नहीं रहा। दिया फिर अपनी काँटगोला जागीरमें आ गया।

६८२ हिजरी (१५७४-७५ ई०) में भाजपुरी इलाका बिगड़ा हुआ था। अकबर के लिये परेशान था और वह वहाँ दौरा कर रहा था। टुकड़ियाके बारेमें पूछा, तो मालूम हुआ, कि वह अवधमें लूट-मार करता फिर रहा है। अकबर बहुत नाखुश हुआ।

अकबर दिल्ली पहुँचा। उस समय टुकड़िया पटियाली और भोगाँव (मैनपुरी जिला) में आया था, वहाँसे दरबारमें पहुँचा। पता लगा कि मुजरा (दर्शन) करनेका हुक्म नहीं है। अफसरोंको हुकुम था, कि उसे शाही दौलतखानेकी सीमासे बाहर निकाल दो। ऐसे जालिमकेलिये यह दण्ड बहुत कम था, इसमें शक नहीं। यह खबर सुनकर टुकड़ियाने अपने हाथी-घोड़े और सभी सामान लुटा दिये—कुछ हुमायूँ-मकबरेके मुजावरोंका दे दिया, कुछ मदरसोंको और कुछ गरीबोंको। बुढ़ापेमें गले-में कफनी डालकर फकीर बन कहने लगा—"जिसने मुझे नौकर रक्खा था, अब उसी (हुमायूँ) की कबर झाड़ूँ दूँगा।" अकबर को खबर लगी, उसको दया आई और टुकड़ियाको काँटगोला और पटियालीकी एक करोड़ बीस लाख दामकी जागीर दे दी। ६८२ हिजरी (१५७४-१५७५ ई०) में फिर टुकड़िया सोने-चाँदीकी खानों और सोने-चाँदीके मन्दिरोंको लूटनेकेलिये कुमाऊँ-गढ़वालकी भीतरी पहाड़ियोंकी ओर चला। तराईमें बसन्तपुरमें उसके पहुँचते ही जमींदारों और करोड़ियोंने भाग कर दरबारमें शिकायत की—हुसेनखाँ बागी हो गया। बसन्तपुरकी लड़ाईमें टुकड़ियाके कन्धेपर भारी जख्म लगा। अब वह जहाद करने लायक नहीं था, इसलिये पटियाली-में अपने बाल-बच्चोंके पास आनेकेलिये गढमुक्तेश्वर पहुँचा। अपने पुराने दोस्त सादिक मुहम्मद मुनअमखाँके पास जा उससे बादशाहके पास सिफारिश करवाना चाहता था। अबुल फजलने "अकबरनामा" में लिखा है, कि हुसेनखाँ मुल्क लूटता-फिरता था। बादशाह सुनकर दुबारा नाराज हुआ और उसके खिलाफ एक सरदार-को बड़ी सेनाके साथ भेजा। अब हुसेनखाँको कुछ होश आया। घावसे भी कुछ दिल टूट गया था। वह रास्तेपर आया। साथमें जो गुण्डे थे, वह बादशाही फौजकी खबर सुनकर भाग गये। हुसेनखाँने सोचा, बंगालमें जाकर अपने पुराने दोस्त मुनअमखाँ से मिले और उसके द्वारा दरबारमें क्षमा-प्रार्थना करे। गढ़मुक्तेश्वरके घाटसे नावपर सवार होकर चला था, इसी समय बाराके स्थानमें पकड़ लिया गया।

३. अवसान

घाव खतरनाक था। बादशाही जर्राह पट्टी बदलने आये। सिंचे भर सलाई भीतर घुस गई। वह उसे भीतरसे कुरेद कर अचम्भा पता लगा रहे थे। टुकड़ियाकी त्योरीपर बल तक नहीं था। वह वैसाहीके साथ मुस्कुराता बातें कर रहा था। इसके तीन-चार दिन बाद टुकड़िया मर गया। उसे पटियालामें लाकर दफन किया गया। मुल्ला बदाऊँनीने अपनी किताबमें उसकेलिये बहुत आँसू बहाये और तारीफ करते कहा, "पैगम्बरके जमानेमें होता, तो उनके सहाबा (दोस्तों) में होता।" जब लाहोरमें

हाकिम था, तो भिश्ती लोगोंसे सुना गया, कि संसारकी सारी नियामतें मौजूद थी
लेकिन वह जौकी रोटी खाता था। सिर्फ इस ख्यालसे, कि रसूलने हर स्वादके ग
नहीं खाये थे, मैं क्यों खाऊँ। वह पलंग और नरम बिछौनोंपर नहीं सोता था
क्योंकि हजरत मुहम्मदने इस तरह आराम नहीं किया, फिर मैं क्यों ऐसे आराम
आनन्द उठाऊँ। उसने हजारों मस्जिदों और मकबरोंका निर्माण और मरम्म
कराई। उसने कसम खाई थी, कि रुपया जमा न करूँगा। कहता था: रुपया मे
पास आता है, जब तक उसे खर्च नहीं कर डालता, वह बगलमें तीरकी तरह गड़
है। इलाके परसे रुपया आने नहीं पाता था। वहीं चिट्ठियाँ पहुँच जाती थीं औ
लोग रुपया ले जाते थे।

टुकड़ियाके रूपके बारेमें उसके कृपापात्र मुल्ला बदाऊँनी बतलाते हैं—[
बहुत लम्बा तगड़ा, शान-शौकतवाला बड़ा दर्शनीय जवान था। मैं हमेशा युद्ध
में उसके साथ नहीं रहा, पर कभी-कभी जगलोंकी लड़ाइयोंमें मौजूद था। कम
बात यह है, कि जो बहादुरी मैंने उसमें पाई, वह पहलवानोंकी पुरानी कहानियों
ही सुनी जाती है। जब लड़ाईके हथियारसे सजता था, तो अल्लासे दुआ माँगता था
कि इलाही या तो शहीद बना, या विजयी। कोई-कोई पूछते—पहले विजय
प्रार्थना क्यों नहीं करते, तो जवाब देता। पुराने प्यारों (शहीदों)के देखनेकी इच्
श्यामके बन्दोंकी अपेक्षा ज्यादा होती है।

मरते समय डेढ़ लाख रुपयेसे अधिक का उसपर कर्ज था। उसका बे
यूसुफखाँ जहाँगीरके दरबारमें अमीर था और पोता इज्जतखाँ शाहजहाँके जमानेमें
कुमाऊँ और गढ़वालके मन्दिरों और मूर्तियोंका ध्वंस करनेवाला यही हु
किया था, जिसके सारे गुण मजहबी पक्षपातके कारण दोषमें बदल गये।

अध्याय ८

शेख मुबारक (१५०५-९२ ई०)

१. जीवन का आरम्भ

अरबने आठवीं सदीके शुरूमें सिन्ध और मुल्तानपर अधिकार किया। उससे तीन सौ वर्ष बाद (ग्यारहवीं सदीके आरम्भमें) महमूद गजनवीने पंजाब लेकर लाहौरको अपने राज्यगलकी राजधानी बनाया। सिन्ध और पंजाब मुसलमानोंके हाथमें रहे। बारवीं शताब्दीके अन्तमें कन्नौज, दिल्ली, कालंजर आदिको जीतकर प्रायः सारे उत्तरी भारतपर तुर्कोंने अपना शासन स्थापित किया। ईरान सातवीं सदी के मध्यमें अरबोंके हाथमें चला गया था। ईरानी तख्त और उच्च संस्कृतिने रेगिस्तानी अरबों और उनके धर्मके सामने सिर झुकाया। अरब केवल बहिश्तकेलिये पानीकी तरह अपने और अपने शत्रुओंके रक्तको नहीं बहा रहे थे। बहिश्ती हूरों और नियामतोंसे कहीं अधिक आकर्षक इस दुनियाकी हूरें और सम्पत्ति उनकेलिये थीं। उन्हींपर हाथ साफ करनेकेलिये अरब नौजवान जानकी बाजी लगाकर अपने सूखे मुल्कसे निकले थे। इस्लाम ले आनेपर यह बात नहीं थी, कि अन्-अरब मुसलमान अरब मुसलमानोंके बराबर हो जाते। हमारे यहाँ अँग्रेजोंके समय एंग्लो-इंडियनोंकी जो स्थिति थी, वही स्थिति अरबोंके सामने अन्-अरबोंकी थी। यह जातिका अपमान था, लेकिन ईरान या हिन्दुस्तानमें जो जातियाँ सबसे पहले इस्लामके झण्डे के नीचे आईं, वह शताब्दियोंसे उत्पीड़ित और नीच समझी जाती थीं। उनके निकल जानेके बाद बड़ी जातिवालोंने भी धीरे-धीरे उनका अनुगमन किया। अरब मुसलमानोंने इनका विशेष ध्यान दिया, क्योंकि यह संख्यामें कम रहने पर भी हिम्मतमें बढ़े और विदेशी शासनके लिये सबसे ज्यादा खतरनाक थे।

मुल्की, गैर-मुल्की या अरब, अन्-अरब मुसलमानोंका भेद, ईरान, तूरान (मध्य-एसिया)में ही अपने चरम रूपपर पहुँच चुका था। अरब मुस्लिम-शासन सिंधमुल्तान तक ही रहा। महमूद गजनवी तुर्क था। चार दिनोंकी चाँदनीके तौर पर गोरी दस-पन्द्रह सालके लिये भारतमें अतुर्क, अन्-अरब विजेताके तौरपर आये। पर, उनके यहाँ भी असली शासक तुर्क ही थे। गुलाम, खलजी, तुगलक तीनों तुर्क राजवंशोंने दिल्लीको इस्लामिक राजधानीबनाकर भारतके ऊपर दृढ़ मुस्लिम-शासन स्थापित किया। इस समय प्रमुख शासन

तुर्कोंका था। ईरानी उनके बाद आते थे और इसलिये, कि उन्होंने तुर्की ईर्ष्या और भाषापर भारी प्रभाव डाला था। तुर्क पहिले तुर्की और फारसी दोनोंका व्यवहार करते थे। भारत में आकर दो-चार पीढ़ियोंमें ही वह तुर्की भाषा भूलकर फारसी-भाषी हो गये। अन्तिम मुगल बादशाह भी अभिमान करते थे, कि हमारी मादरी जबान फारसी है। इसलिये फारसी-भाषी ईरानियोंकी भारतके मुस्लिम-दरबारमें कदर थी। अरब तो न अब सेनामें थे, न दरबारमें। बहुत हुआ, तो मस्जिदका मुअज्जिन या कारी (कुरान-पाठी) किसीको बना दिया। विद्या और रण दोनोंके मैदान में अरब पीछे पड़ गये थे। तो भी शुद्ध तुर्कोंको छोड़कर बाकी सभी विदेशी मुसलमान अपना सम्बन्ध अरबके किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या खानदानसे जोड़ते थे। अरब आदमी नहीं अरब खूनके महत्वको जरूर माना जाता था।

अकबरके समय तक शेख, सैयद, मुगल, पठानका भेद और मुल्की मुसलमानोंमें स्थापित हो चुका था। शेखके महत्वको आजकल हम नहीं समझ पाते, क्योंकि अब वह टके सेर है, वैसे ही जैसे खान। तुर्कों और मंगोलोंमें खान राजाको कहते थे। १६२० ई० तक बुखारामें सिवाय वहाँके बादशाह (अमीर)के कोई अपने नामके साथ खान नहीं लगा सकता था। युवराज भी तब तक अपने नामके साथ खान नहीं जोड़ सकता था, जब तक कि वह तख्तपर न बैठ जाता। शेख सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे। शेखका अर्थ था गुरु या सत पुरुष। इस्लाममें देखा-देखी यद्यपि अविवाहित साधुओं, फकीरोंकी भी चाल पड़ गई, विशेषकर मध्य एसिया और पूर्वी ईरान जैसे बौद्ध प्रदेशोंपर अधिकार करनेके बाद; पर, वस्तुतः इस्लाममें मठों और साधुओंके लिए कोई स्थान नहीं था। शेखोंकी चल पड़ी। हमारे यहाँ ब्राह्मण गृहस्थ-गुरु बड़े सम्मानसे देखे जाते हैं। वल्लभ कुलके महागुरु गृहस्थ ही होते हैं। यही स्थान इस्लाममें शेखका था। उनके बाद पैगम्बरके अपने वंश और रक्तके सबन्धी होनेसे सैयदोंका नम्बर आता था। मध्य एसियामें इन्हें खोजा कहते थे। मुगल पहले तुर्क कहे जाते थे। बाबरके वंशने जब भारतपर अपना शासन स्थापित किया, तब वह मुगलके नामसे पुकारे जाने लगे। इनका एक पुराना नाम तूरानी भी था। चीनी और सोवियत मध्य-एसियाको पहले तूरान कहा जाता था, इसीलिये वहाँके मंगोलायित निवासी तूरानी पुकारे जाते थे। पठान दसवीं सदीके अन्त तक पक्के हिन्दू थे। हिन्दू दर्शन और कलाको उनकी देन कभी भुलाई नहीं जा सकती। बौद्ध योगाचार और शंकर वेदान्त दोनोंके आदिगुरु [illegible] पठान थे। पाणिनि पठान थे। गन्धार-कला पठानोंकी देन है, यह अत्युक्ति नहीं है। महमूद गजनवीने पहलेपहल काबुलपर अधिकार किया। जबर्दस्त संघर्ष किया, पर अन्तमें उन्हें इस्लामके झण्डेके नीचे आना पड़ा। बहादुर जाति न तुर्क होनेका अभिमान कर सकती थी, न इस्लाममें [illegible] स्थान रखनेवाली ईरानी जातिका होनेका दावा कर सकती थी,

और न श्रय ही थी। लेकिन, पठान तलवारके धनी थे, उसीके बलपर वह भारतमें अपना स्थान बनानेमें सफल हुए।

इन चारोंके बाद हिन्दुओंसे मुसलमान बने लोग आते थे। इनमें जो प्रसिद्ध थे, वह चाहनेपर भी अपनेको छिपा नहीं सकते थे। हाँ, बहुतसे राजपूतों और योद्धा-जातियोंने मुसलमान बननेपर अपने नामके साथ खान लगाकर पठानोंमें नाम लिखाया, पर, यह बहुत पीछेकी बात है। मुल्की मुसलमान दूसरे मुसलमानोंके सामने वही स्थान रखते थे, जो कि अँग्रेजोंके कालमें एंग्लो-इंडियन, यह हम कह आये हैं। मुल्की मुसलमानोंमें भी उच्च और नीच (अशरफ और अर्जल) दो तरहके लोग थे। जात-पाँतकी खाइयोंको तोड़नेका अभिमान करनेवाला इस्लाम भारतमें इस खाईं को कभी नहीं पाट सका। सारे ही मुसलमानोंमें भारतमें सबसे अधिक संख्या अर्जल मुसलमानोंकी थी, लेकिन वह अपने सहधर्मियोंके भीतर अछूतों से थोड़ा ही बेहतर समझे जाते थे। जब तक अँग्रेजोंने दास-प्रथाको उठा नहीं दिया, तब तक—उन्नीसवीं सदी के मध्य तक—मुसलमान होनेसे कोई दास बननेसे छुट्टी नहीं पा सकता था। हाँ, मुसलमानों को—चाहे गैरमुल्की हों या मुल्की, चाहे अशरफ हों या अर्जल—इसका अभिमान जरूर था, कि हम भारतके शासक हैं। अर्जल (नीच) अपनेको अपने हिन्दू सजातियोंसे बेहतर स्थितिमें जरूर पाते थे, यही कारण था, जो कि पेशावरसे ढाका तकके सभी शिल्पी, विशेषकर पटकार मुसलमान हो गये।

कुरानने सारे मुसलमानोंमें भ्रातृभाव और समानताका प्रचार जरूर किया, पर वह पैगम्बरके आँख मूँदनेके बाद बहुत दिनों तक नहीं चल सका। उनके दामाद और इस्लामके लिये सर्वस्व-त्यागी अली भ्रातृभाव और समानताके कट्टर पक्षपाती होनेके कारण दूधसे मक्खीकी तरह बाहर रक्खे गये और चौथे खलीफा बने भी, तो अन्तिम कुर्बानी देने हीके लिए। उनके दोनों पुत्र तथा पैगम्बरके नाती हसन-हुसेन अपने पिता और नानाकी आनपर बलि चढ़े। दुश्मनोंने तो इस वंशको अपने जान उच्छिन्न कर डाला, पर एक बीजसे भी हजारों वृक्ष और लाखों फल पैदा होते हैं, और फातमी सैयदोंका उच्छेद नहीं हो सका।

इस्लामिक एकता, समानता और भ्रातृभाव, इसी स्थितिमें था, जब कि तुगलकों के बाद छिन्न-भिन्न हुए इस्लामिक साम्राज्यको फिरसे स्थापित करनेमें पठान शेरशाह सफल हुआ। शेरशाह भारतमें आगे आनेवालोंका मार्ग-प्रदर्शक था। बहुत-सी बातें जो पीछे अकबरके समय प्रचलित हुईं, उनका आरम्भ शेरशाहने किया। शेरशाह हीने धर्मकी जगहपर मिट्टीके महत्त्वको माना और हिन्दू-मुसलमानोंको एक करने, एकताके सूत्रमें बाँधनेकी कोशिश की, जिसे अपने दीर्घ शासनमें अकबरने और आगे बढ़ाया। शेरशाह हीका शासन था, जो कि हिन्दू हेमू (हेमचन्द्र) को शासन और सेनाके सर्वोच्च पदपर पहुँचनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और अपने स्वामियोंके

गद्दारी करनेके खयालसे नहीं, बल्कि पठानोंके आपसी झगड़े और दुश्मनोंकी बढ़ती शक्तिको देखकर दिल्लीके तख्तपर बैठ उसे विक्रमादित्य बनानेके लिये तैयार हुआ था।

शेख मुबारक — जैसा कि शेख नामसे मालूम होता है—पुरखोंके वंशमें पैदा हुए। इनके पूर्वज बहुत पुराने जमानेमें यमन (अरब) में थे। शेख मूसाकी छठी पुश्तमें शेख खिजिर हुए, जो वतनको छोड़कर दुनियाकी सैर और महात्माओंके दर्शन-सत्संगके लिये निकल पड़े तथा नवीं सदीमें सिन्धके कस्बा रेलमें पहुँचकर रहने लगे। पीरी मुरीदी चलने लगी। पैगम्बर मुहम्मदने चारकी संख्या बीवियोंके कम करनेके लिये की थी। पीछे इस्लामके लिये वफादार पुरुष इस संख्याको पालन करते थे, पर लौंडियोंकी संख्या नियत नहीं थी। इसके द्वारा खानदान बढ़ानेमें बहुत सुभीता था, मुसलमानोंकी संख्या-वृद्धिके लिये इसका महत्व था। शेख खिजिर मुस्लिम सन्तों और उनके पवित्र स्थानोंके दरस-परसके लिये रेल छोड़कर हिन्दुस्तान में घूमते-फिरते नागोर पहुँचे तथा वहीं अपने बहुतसे मुरीदों और परिवारके साथ बस गये। इनके कई बच्चे होकर मर गये। १५०५ या १५०६ ई० (हिजरी ९११) में एक लड़का पैदा हुआ। बापने मुबारक समझ कर अल्ला उसका नाम रक्खा, जो अन्तमें शेख मुबारकके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि अपने महान् पुत्रों—कविसम्राट् फैजी, और अकबरके महामन्त्री अबुल्फजल—की रोशनीमें वह छिप गये, पर जिन चीजोंको उनके दोनों पुत्रोंमें हमने वृक्षका रूप लेते देखा, वह शेख मुबारकमें बीजरूपसे मौजूद थे। चार वर्षकी आयुमें ही उनकी प्रतिभाका पता लगा। नौ वर्षकी उम्र तक फारसी, अरबी तथा उसके बहुमूल्य साहित्यका उन्हें काफी परिचय हो गया। चौदह सालतक पहुँचते-पहुँचते योग्यता प्रकट होने लगी। नागोरमें ही शेख अतन नामके एक विद्वान् रहते थे। वह १४०० ई० से पहले ही किसी समय तूरानसे आये थे। जातिसे तुर्क थे, लेकिन शमशीरके नहीं, बल्कि विद्याके धनी थे। सिकन्दर लोदी के जमानेमें वह नागोरमें आकर बस गये और १२० वर्षकी उम्रमें वहीं मरे। मुबारकने उस ज्ञान वयो-वृद्धके ज्ञान और तजर्बेका पूरा लाभ उठाया।

शेख खिजिरको सिन्धका वतन याद आया। नागोरमें अच्छी चल रही थी। सोचा जाकर रेलसे अपने और भाई-बन्दोंको लायें। लेकिन, उनकी यह यात्रा महायात्रा साबित हुई। वह फिर नागौर लौटकर नहीं आ सके। इसी समय महा अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। बहुतेरे घर छोड़कर भाग गये। अकालमें शेख खिजिर का सारा परिवार स्वाहा हो गया। छोटी उमरका मुबारक और उसकी माँ दुनियाँमें जीवन-संघर्षके लिये रह गये। अकाल खतम हुआ, काल-रात्रि सरसे टली। मुबारक नागोरमें जो कुछ ज्ञान पा सकते थे, पा चुके थे। विद्याकी पिपासा उन्हें बाहर जानेकेलिये मजबूर करती, लेकिन अकेली माँको छोड़कर जानेकेलिये उनका हृदय तैयार नहीं था।

शेख मुबारकने अपने पुत्रों—फैजी और अबुलफजल—को एक पत्रमें लिखा था:

"बाबाए-मन्, अज़ फ़ुज़लाय ईं अहद्—कि हमाँ जौफ़रोश व गन्दुमनुमां
न्द व दीनरा बदुनिया फ़रोख्ता, तुहमत आँ बर मा बस्त अन्द—अज़ गुफ्ता हाफ़
ाहा न बायद् रंजीद। व अज़ आँकि अज़ तरफ़े-नजाबत् मा गुज़हा दारन्द, दिले-
र-तश्वीश न बायद् नमूद। दर ऐयामे कि वालिदे-मन् बदौलते हयात नमूद, मन्
हदे तमीज़ न रसीदा बूदम्। वालिदय-मन गरा दर् साये-अशातिफ़ एकेअज़ सादान
ल्-एहतराम दरकमाल अस्मत पर्वरिश मीदाद। ऊ दर्-तर्बियते-मन् अज़् तरफ़-
ीं-इल्मी व दीगर तादीब कमाल, सई बकार मि-बर्दाश्त। आँकि पिदरम् मरा
ाम् ब-मुबारक साख्ता बूद, रोज़े यके अज़-हमसायहाय हसद-पेशये आँ सैयद, कि
मशारी मा बेक़दाँ मीनमूद, मादरम् रा ब-क़लेमात दुरुश्त 'जानीद, मरा ब-अदमे-
ाबत मतऊन नमूद। वालिदा अम् गिरियाँ कुनाँ निज़द आँ सैयद... स्पत नालिश
ज़दी ओ नमूद।" 'मेरे बच्चों, इस ज़मानेके विद्वान्, गेहूँ दिखा जौ बेचनेवाले हैं,
निपाके लिये दीनको बेचकर हमारे ऊपर तोहमत बाँधते हैं, उनकी कही बातोंसे रंज
हीं होना चाहिये और हमारी कुलीनताके विरुद्ध जो बात करते हैं, उनके लिये मनमें
ानि नहीं पैदा करनी चाहिये। जिस समय मेरे पिताने दुनियाँसे विदाई ली, उस समय
अभी अबोध था। मेरी माँ एक सम्माननीय सैयदकी छायामें रहती थी, जो मेरी पढ़ाई
ौर शिक्षाके लिये कोशिश करता था। पिताने मेरा नाम मुबारक रख दिया था।
क दिन सैयदसे डाह रखनेवाले एक पड़ोसीने मेरी माँको बुरा-भला कहकर दुर्भी
रते मेरी कुलीनतापर आक्षेप किया। माँने रोते हुये इस बातकी नालिश सैयदके पासकी।

फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़लने अकबरकी सल्तनतमें जो स्थान पाया था, उसके कारण
नसे जलनेवालोंकी संख्या कम नहीं थी। यह उड़ाया करते थे: इनका बाप मुबारक
ौंडी-बच्चा था, तभी तो उसका नाम मुबारक पड़ा। उस समय गुलामोंमें यह नाम
धिक प्रचलित था। इससे यह भी मालूम होगा, कि शेख मुबारकको केवल आर्थिक
ठिनाइयोंमेंसे ही गुज़रना नहीं पड़ा बल्कि उग्र विचारोंके कारण उनके ऊपर बुरी
रहके लांछन लगाए जाते थे। उन्हें विद्याकी धुन थी। इसी समय मध्य-एशियाके
वाजा एहरार घूमते हुये भारत पहुँचे। उनकी विद्वत्तासे भी लाभ उठानेका उन्हें
ौका मिला।—यह ख्वाजा अहरार समरकन्दके महान् सन्त ख्वाजा उबैदुल्ला अहरार
हीं हो सकते, जिनका देहान्त मुबारकके पैदा होने से १५ साल पहले २० फ़रवरी
१४० को समरकन्दमें हो चुका था। समरकन्दी ख्वाजा अहरार बहुत परोपकारी सत
ौर मध्य एसियाके सबसे बड़े भूस्वामी भी। कहावत है—कोई आदमी अपने गदहे
र चढ़ा तूरानी अन्तर्वेदमें उत्तरसे दक्षिणकी यात्रा कर रहा था। सैकड़ों मील
लता गया। जब कभी किसी लहलहाते खेतके बारेमें पूछता, तो लोग कहते—"यह
ख्वाजा अहरारका है।" अन्तमें झुँझलाकर मुसाफ़िरने अपने गदहेको भी खेतकी ओर
ांकते हुये कहा—"जा तू भी ख्वाजा अहरारका हो जा।" अस्तु, किसी ख्वाजा

[illegible] मुबारकको ज्ञानप्राप्त करनेकी [illegible]
[illegible] कहीं [illegible] पूर्वीय, [illegible]
[illegible] बाकी है। [illegible]
[illegible] जाता है। [illegible]
[illegible] नहीं थे।

नागौर वीरान हो गया। तब मुबारकको इधर उधर [illegible] और [illegible], आखिर [illegible] तरह [illegible] पुन उनके [illegible] हुई। उस समय [illegible] शेख [illegible] विद्या और [illegible] प्रसिद्ध थी, वहीं वह गुजरातकी अहमदाबादकी [illegible]। यहाँ कितने ही नागौरी भी पहुँच गये थे। मुबारक पहुँचे और विद्याध्ययनमें तल्लीन हो गये। यहाँ इस्लामी धर्मके अतिरिक्त दर्शन और सूफियों (मुस्लिम वेदान्तियों) के सिद्धान्तोंके साथ-साथ दूसरे शास्त्रोंका उन्होंने अध्ययन किया। [illegible] गाजरूनी शीराजी खुरासा आदि थे, जो उस समयके बड़े बड़े विद्वान् थे। मुबारक जैसे प्रतिभाशाली शिष्यको पाकर वह उसे पुत्रकी तरह मानने लगे। उनके पास जो भी ज्ञान था, उसे शिष्यके हृदयमें स्थानांतरित कर दिया। वहीं बातन शेख यूसुफ नामके एक संत रहते थे। मुबारक पंडिताईसे संतुष्ट हो उनकी सेवामें भी जाते थे। शेख यूसुफने समुन्दर पारके सफरकी बात कही, तो उन्होंने कहा—"आगरामें जाकर बैठो वहीं मनोरथ सफल हो, तो ईरान-तूरानकी यात्रा करना।"

२. आगरामें

११ अप्रैल १५४३ ई०को ३८ वर्षके मुबारक आगरा पहुँचे। गर्मीका मौसम था, आगरा अपनी गर्मीकेलिए और भी बदनाम था। पर, वली-फकीरोंकी बातपर मुबारकको बहुत विश्वास था। आगरामें भी एक मस्त फकीर शेख अलाउद्दीन रहते थे। उन्होंने भी वहीं रहनेकेलिये कहा। जमुना पार रामबागकी बस्ती तब चारबागकी, जो फिर हश्त-बहिश्त (अष्टम स्वर्ग) और बाबर द्वारा नूर-अफशाँ (प्रकाशकर्त्री)के नामसे प्रसिद्ध हुई। शेख मुबारक चारबाग पहुँचे। मीर रफीउद्दीन चिश्तीके पड़ोसमें रहनेको जगह मिली। मीर (सैयद) मोहल्लेके रईस थे, उनके साथ घनिष्ठता हो गई। वहीं एक कुरेशी परिवारमें मुबारककी शादी हो गई। १५४७ या १५४८ ई०में सैयद मर गये। मुबारककी विद्वत्ताको देखकर सैयद उन्हें आगे बढ़ाना चाहते थे, पर सैयद दुनियासे बिदा ही चल बसे। शेख मुबारक अब और भी एकांतवासी हो गये। बहुतसे विद्यार्थी उनके पास पहुँचने लगे। लोग श्रद्धा करते, उनके संत-जीवनसे आकृष्ट हो भेंट-पूजा देनेवाले भी पहुँचते, लेकिन बहुत कमकी ही भेंटको वह स्वीकार करते। आगरा पहुँचनेके चार वर्ष बाद ४२ वर्षकी उमरमें शेख मुबारकको पहला पुत्र फैजी पैदा हुआ। फैजी महान विद्वान थे और मुसलमानोंमें जहाँ वह कवितामें खुसरोके समकक्ष थे, वहाँ दूसरी विद्याओंमें उनकी तुलना किसीसे नहीं हो सकती। फैजीके चार वर्ष बाद १५५१ ई०में मुबारकके यहाँ

सरा लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम उन्होंने अपने गुरु सतीव अबुलफ़ज़ल गाज़-नीके नामपर अबुलफ़ज़ल रक्खा।

शेख मुबारक आगरामें उस समय आये, जब कि शेरशाहकी बादशाहत थी। ो वर्ष बाद शेरशाह मर गया और सलीमशाह गद्दीपर बैठा। कुछ लोगोंका ख्याल, क सलीमशाहके दरबारमें शेख मुबारककी पहुँच हो। एक ओर सूफ़ियोंके विचारों ौर जीवनने उनको अपनी ओर आकृष्ट किया था, दूसरी ओर वह शिया और सरे उदार विचारोंसे प्रभावित थे। पर मुल्लोंकी कट्टरता भी अभी उनमें थी। कहीं ाना होता, तो वहाँसे जल्दी आगे निकल जाते, क्योंकि इस्लामने गाना सुननेको प बतलाया है। पायजामा नीचा नहीं होना चाहिये, इसलिये वह अपना ही पाय-ामा ऊँचा नहीं रखते, बल्कि अगर कोई नीचा पायजामा पहन कर आ जाता, तो ह उसके अधिक भागको फड़वा डालते, लाल कपड़ा पहनना मना है, इसलिए ेखनेपर, उसे उतरवा देते।

उस समय मख़दूमुलमुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरीकी तूती बोल रही थी। मुल्ला ुल्तानपुरीको हुमायूँके दरबारमें स्थान मिला था। सलीमशाह सूरीके तो वह नाकके ाल थे। हुमायूँके समय दरबारमें पहुँचनेके कारण भीतर-भीतर उसके लिए भी खैर नाया करते थे, जिसके ही पत्रपर हुमायूँके फिरसे गद्दी पानेके बाद उनका दर्जा ही छिना। हाँ, अकबरके दरबारका स्वतन्त्र वातावरण उनके लिए उतना अनुकूल ाबित नहीं हुआ। तो भी मुल्ला ठहरे, उन्हें मोहताज होनेकी ज़रूरत नहीं पड़ी।

चारबागके इस एकान्तवासी शेखकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँची। आगरा ाबरके समयसे दिल्लीका प्रतिद्वन्द्वी था। अकबरने इसको अपनी राजधानी बनाया। ेरशाहके खानदानने भी आगराके सम्मानको कायम रक्खा।

मुल्ला फ़तवोंकी कमाई खाते थे। किसीको आगे बढ़ते देख उसपर तुरन्त काफ़िर होनेका फ़तवा लगा देते थे। मुल्ला सुल्तानपुरीसे लोग परेशान थे। जिनको कोई ऐसा ाद पड़ता, वह शेख मुबारकके पास पहुँचते। शेख मुबारक इस्लामी धर्मशास्त्र और ाहित्यके अगाध विद्वान् थे। वह कोई ऐसी बात बतला देते, कि सुल्तानपुरीको मुँहकी खानी पड़ती। पर यह मालूम होते देर नहीं लगती, कि चारबागकी मस्जिद-की चटाईपर बैठनेवाले शेखकी ही यह कारस्तानी है। सलीमशाहके ज़मानेमें साम्य-वादी शेख अल्लाई जब पहिली बार दरबारमें आये, तो सुल्तानपुरीने उन्हें बरबाद करनेकी कोई कसर नहीं उठा रक्खी। जब दरबारमें अल्लाईने अपना मुँह खोला और बतलाया, कि जिन गरीबोंके खूनकी कमाईसे तुम मौज करते हो, वह कैसी तकलीफ़में हैं, तो सलीमशाहकी आँखें भी बरसे बिना नहीं रहीं और उस रात उसे अपने सामने दस्तरख़ानपर चुने हुये तरह-तरहके स्वादिष्ट भोजनोंमें गरीबोंका खून दिखलाई पड़ा और उसे खानेसे इन्कार कर दिया। लेकिन कुछ समय बाद सुल्तानपुरी

सलीमशाहने शेखअलाईको मरवानेमें आरम्भ किया। शेख भी अलाईके साथमें शामिल होते थे, उनकी बात भी किये बिना नहीं रहते थे, इसलिये यदि उन्हें महदवीपंथी (साम्यवादी) और देहरिया (नास्तिक) कहें, तो क्या अचरज।

सलीमशाहके जमानेमें शेख मुबारकको बहुत सँभल कर रहना पड़ता था। शेरशाहके वंशके नाश होते-होते देशमें अराजकता फैल गया। शेख मुबारकको फिर और उदारताकी लहर देशके पास पहुँची और उनके साथ उनका अपना हल्का प्रचारित हो गया। शेखको सिरहिन्दवाल किसी भी प्रावधान पानेवालोंने छोड़ दिया। लेकिन वह ज्यादा दिन तक नहीं टिके। मुग़लों और पठानोंमें जो फूट लड़ाइयाँ चल रही थी, उसके कारण हालत खराब थी। इसी समय अकाल पड़ गया। लोग दाने-दानेके मोहताज हो गये। शेख मुबारकके घरमें बच्चे, शिष्य नौकर-चाकर लेकर सत्तर आदमी थे। उस हालतमें उनपर क्या बीती होगी, ये कहनेकी आवश्यकता नहीं। कभी-कभी दिनमें सेर भर अनाज आता। उसे मिट्टी हाँडीमें उबालते और लोग उसका मुँह पीकर क्षुधा शान्त करनेकी कोशिश करते। इस समय फ़ैज़ी आठ बरसका था और अबुल्फ़ज़्ल पाँच बरसका। इन मुश्किलोंके भीतर भी शेख मुबारक सदा अपनोंका मुँह रखनेकी कोशिश करते थे।

हुमायूँने दिल्लीकी सल्तनत (१०५५ ई०में) फिर लौटाई, लेकिन छ महीने बाद ही सीढ़ीसे गिरकर मर गया। तेरह बरसका अकबर गद्दीपर बैठा। बैरमने उसे अपने हाथकी कठपुतली बनाकर रखनेमें अधिक दिनों तक सफलता नहीं प्राप्त की। बीस बर्षकी उमर (१५६२ ई०)में अकबरने शासनकी बागडोर सँभाल ली। दो ही साल बाद (१५६४ ई०)में उसने हिन्दुओंके ऊपरसे जज़िया (कर) उठा दिया। भारतमें एक दूसरी हवा बहनेका समय आ गया। इससे पहिले शेख मुबारकको भारी ख़तरों और कठिनाइयोंमेंसे गुज़रना पड़ा था।

शेख मुबारक दर्वेश नहीं थे और न सन्त सूफ़ी स्वभाव और रहनसहनके आदमी थे। पर, अपने उदार विचारोंको छिपानेकेलिये सब ढोंग रचना, "अन्तः शाक्तः बहिः शैवः सभामध्ये च वैष्णवः" बनना पड़ता था। कितनी ही बाधायें रहें, लेकिन परिवार, दास दासी, नौकर तथा छात्र मिलाकर पाँच-छ दर्जन आदमियोंका खर्च था, जिसका चलाना आसान काम नहीं था। शेख अब्दुन् नबी सदर अहलेहाजत थे—शेरशाहने अभाव-ग्रस्त लोगोंकी सहायताके लिये एक विभाग खोला था, उसका यह अध्यक्ष था। फैज़ीको लेकर शेख साहब भी माफ़-खरीदार्थ उसके पास गये। शेख बड़े विद्वान्, अच्छे अध्यापक और अभावग्रस्त थे, उनसे बढ़कर कौन सहायताका पात्र हो सकता था! सिर्फ़ सौ बीघा ज़मीनके लिए प्रार्थना की थी। लेकिन अब्दुन् नबीने दर्ख़ास्त लेना भी स्वीकार नहीं किया और बड़े रूखेपन और घृणाके साथ कहा—इस मेंहदीपंथी नास्तिकको निकाल

दी। उस दिन शेख मुबारककी क्या हालत हुई होगी और फैजीके दिलपर क्या गुजरी होगी !

अकबरके आरम्भिक सालोंमें शिया और काफिर कह कर मीर हबश आदि कितनोंको कैद और कितनों हीको प्राणदण्ड दिया गया था। अबुलफजल लिखते हैं : कुछ दुष्ट लोग मेरे पिताको शिया समझकर बुरा कहते थे। वह इसमें विवेक करनेकेलिये तैयार नहीं थे, कि किसी मजहबको मानना दूसरी बात है और उसको जानना दूसरी बात। इराक अजम (ईरान) का एक योग्य विद्वान् मस्जिदमें इमाम था, कुछ मुल्लोंने हनफी सम्प्रदायके एक वचनका उद्धरण दे करके कहा, कि इराकीकी गवाही प्रामाणिक नहीं है। जब गवाही प्रामाणिक नहीं है, तो वह इमाम कैसे हो सकता है ? इमाम-पद परसे हटा देनेपर सैयदकी जीविका छिन गई। उसने आकर अपना दुखड़ा शेख मुबारकके सामने रोया। शेख मुबारकने उसमें एक नुक्ता बतला दिया कि इमाम अबू-हनीफाको इराकसे इराक-अजम (ईरान) नहीं, बल्कि इराक-अरब अभिप्रेत था। उसकेलिये पुस्तकोंसे बहुतसे उद्धरण दे दिये। जब इन सब प्रमाणोंको लिखकर अकबरके सामने रक्खा गया, तो उसने इमामको अपने पदपर रहनेका हुकुम दे दिया। दुश्मन दिलमें बहुत जले, लेकिन करते क्या ! वह जानते, कि कौन कुञ्जी बतानेवाला है।

इतिहासकार बदायूँनी अकबरके समयका एक महान् विद्वान् था। दरबारमें उसको इज्जत भी थी। वह शेख मुबारकका ही विद्यार्थी था, पर कट्टर मुल्ला रहने या दिखलानेकी कोशिश करता था। इसके कारण अपने गुरुको यदि कभी छोड़ भी देता, तो दोनों गुरु-पुत्रोंपर तीखी कलम चलानेसे बाज न आता था। बदायूँनीको मालूम था, कि उसके गुरुको लोग शिया, मेहदीपंथी, देहरिया (=नास्तिक) कह कर बुरा-भला कहते हैं। वह अपने गुरुकी सफाई भी कभी-कभी देता था। मियाँ हातिम सम्भली अपने समयके सर्वश्रेष्ठ धर्मशास्त्री (=फकीह) माने जाते थे। शेख मुबारककी लिखित बातें पढ़नेका उन्हें भी अवसर मिला था। एक बार उन्होंने बदायूँनीसे पूछा—शेखकी पण्डिताई और विचार-व्यवहार कैसा है ? बदायूँनीने उनकी मुल्लाई, सदाचार, ज्ञान ध्यानकी बातें बतलाईं। मियाँने कहा—ठीक है, मैंने भी बड़ी तारीफ सुनी है। लेकिन, कहते हैं: मेहदीका अनुयायी है, यह बात कैसी ? बदायूँनीने कहा—शेख साहब, मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरीको वली (सन्त) और बुजुर्ग मानते हैं, मगर मेहदी नहीं। मियाँ हातिमने भी स्वीकार किया, कि सैयद महम्मद जौनपुरीकी महानतासे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वहींपर मीर-अदल (न्यायाध्यक्ष) मीर सैयद महम्मद भी बैठे थे। दोनोंकी बात सुनकर उन्होंने पूछ दिया—शेख मुबारकको लोग मेहदीपंथी क्यों कहते हैं ? बदायूँनीने जवाब दिया—क्योंकि वह नेकियोंका आग्रह और बुराइयोंका कड़ाईके साथ निषेध करते हैं।

, शेख़ मुबारकपर, पकड़ कर दरबारमें, उनके धर्म विरोधी होनेका अपराध लगाया जायगा। आधी रात को यह ख़बर अबुलफ़ज़लको मिली। उसी वक़्त वह बेतहाशा दौड़े। बचानेका एक ही रास्ता था, कि जब तक बादशाह (अकबर)को सच्ची बात मालूम न हो जाय, तब तक वह कहीं छिपे रहें। अबुलफ़ज़लने बड़े भाई फ़ैज़ीसे आकर कहा। फ़ैज़ी अपने छोटे भाईकी तरह कौटिल्यका अवतार नहीं, बल्कि बहुत ही सीधा-सादा पुरुष थे। वह शेख़के शयनकक्षमें उसी वक़्त घुस गये और उनसे सारी बातें बतलाईं। शेख़ने कहा—"दुश्मन जबर्दस्त है, तो ख़ुदा तो मौजूद है! न्यायप्रिय बादशाहकी छाया तो सिरपर है! यदि भाग्य-भगवान्ने हमारेलिये बुरा नहीं लिखा है, तो कोई हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अगर भगवान्‌की मर्जी यही है, तो कोई बात नहीं। हम हँसते-हँसते अपने जीवनको समर्पण करनेकेलिये तैयार हैं।" समझाकर फ़ैज़ी हताश हो गये। उन्होंने तुरन्त छुरी हाथ में उठा ली और कहा— "दुनियाकी बातें और हैं और सन्तोंकी कहानी और। अगर आप इसी वक़्त नहीं चलते, तो मैं अपना जीवन समाप्त कर डालता हूँ। फिर आप जानियेगा। मैं उस बुरे दिनको देखनेकेलिये तैयार नहीं हूँ।" अपने अभिमान-मेरु ज्येष्ठ पुत्रकी यह बात सुन कर शेख़ मुबारकमें इन्कार करनेकी शक्ति नहीं रह गई। अबुलफ़ज़ल बड़े भैयाको कह कर सोने चले गये थे। बापने उन्हें भी जगाया। उसी अन्धेरी रातमें तीनों पैदल निकल पड़े। कोई मार्ग-दर्शक नहीं था। कहाँ जायें? जिसका नाम भाई लेते, उसे अबुलफ़ज़ल विश्वास-योग्य नहीं मानते, जिसको अबुलफ़ज़ल बतलाते, उसे भाई ठीक नहीं समझते। फ़ैज़ीने किसी आदमीकेलिये अधिक आग्रह किया। तीनों वहाँ पहुँचे। आदमीका रवैया देखकर फ़ैज़ी पछताने लगे—"कम अनुभवके होते भी तुमने ठीक सोचा था। अब बतलाओ, क्या करें।" अबुलफ़ज़लने कहा—"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, अपने खटलेको लौट चलें। यदि ज़रूरत पड़े, तो मुझे वकील कर देना, मैं दुश्मनोंको नंगा करके रख दूँगा।" शेख़ने कहा—"शाबाश, मैं भी इसी के साथ हूँ।" फ़ैज़ी इतना बड़ा ख़तरा सिरपर लेनेकेलिये तैयार नहीं थे। भाई पर फिर बिगड़े और कहा: "तुझे इन मामलोंकी ख़बर नहीं। इन लोगोंकी मक्कारी और छल-कपटको तू क्या जाने? घरको छोड़ो और रास्तेकी बात करो।" अबुलफ़ज़लने कहा—"मेरा दिल गवाही देता है, कि अगर कोई आसमानी बला न आन पड़े, तो फ़लाँ आदमी सहायक हो सकता है।"

रातका वक़्त था। समय अधिक नहीं था। दिल परेशान था। उधर ही चल पड़े। दलदल और रपटनकी ज़मीन थी। चले जा रहे थे, मगर मनमें पछता भी रहे थे। क़दम भी मुश्किलसे उठते थे, साँस लेनेमें भी दर्द होता था, विचित्र दशा थी। रात ख़तरनाक और कल सर्वनाश या महाप्रलयका दिन। सुबह हो रही थी, जब तीनों बाप-बेटे उस आदमीके दरवाज़ेपर पहुँचे। उसने बड़े उत्साहके साथ स्वागत किया।

एक अच्छे कमरेमें उन्हें उतारा। दो दिन निश्चिन्त वहीं बीते। तीसरे दिन खबर लगी, कि दुश्मनोंने बादशाहके पास शिकायतकी है, उसका मन भी फिर गया है। उन्हें मुल्लाओंको कह दिया है: तुम्हारी सलाह बिना मुल्की और माली काम भी नहीं चलते, यह तो खास धर्म और कानूनकी बात है। इसका फैसला करना तुम्हारा काम है। अदालतमें बुलाओ। जो शरीयत फतवा दे और बुजुर्ग निश्चय करें, वही करो।

दुश्मन दरबारियोंने तुरन्त चोबदारोंको पकड़नेकेलिये भेज दिया। उन्होंने बहुत जाँच-पड़ताल की। घरसे तीनों बाप-बेटे गायब थे। वहाँ पहरा बैठा दिया। छोटे भाई अबुलखैरको पकड़ ले गये। बादशाहको बहुत बढ़ा-चढ़ा कर समझाया कि शेख जरूर अपराधी है, इसीलिये भागा-भागा फिर रहा है। अकबर नौजवान था, लेकिन तब भी सोच-समझ रखता था। वह तसवीरके एक पहलूपर ही ध्यान नहीं देता था। उसने कहा—"शेखको सैर-सपट्टेकी आदत है, कहीं गया होगा। इस बच्चेको क्यों नाहक पकड़ लाये! क्यों घरपर पहरा बैठा दिया!" तुरन्त भाईको छोड़ दिया गया और पहरा भी उठा लिया गया। सब खबरें तीनों बाप-बेटोंके पास पहुँचती रहती थीं, पर अभी प्रकट होना वह ठीक नहीं समझते थे। दुश्मनोंने असफल होनेके बाद सोचा, दो-तीन गुण्डे भेजो, जहाँ मिलें वहीं उनका काम तमाम कर दो। उनको डर लग रहा है, कि कहीं बादशाहके बदले रुखको देखकर वह स्वयं दरबारमें हाजिर न हो जायँ और हमें लेनेके देने पड़ें।

एक हफ्ते तक गृहपतिने उन्हें अपने यहाँ शरण दी। फिर उसको भी डर लगने लगा। दुश्मन तरह-तरहकी बातें उड़ाते थे। समझा कहीं जौके साथ घुन न पिस जाय। टके सेर जवाब पाकर अब फिर तीनों उपाय सोचने लगे। बाप और बड़ा भाई तरुण कौटिल्यकी बुद्धिका लोहा मानने लगे थे। उसके ही ऊपर रास्ता निकालनेको छोड़ दिया। शाम हुई। तीनों फिर उस घरसे निकले। चलते-चलते एक कस्बा नजर आया। यहाँ शेखका एक शागिर्द रहता था। गये, थोड़ी देर आरामकी साँस ली; लेकिन वहाँ भी शरण कहाँ! अबुलफजल ने कहा—"देख अच्छे-अच्छे दोस्त और पुराने पुराने शागिर्द। सच्चे शिष्योंका हाल चन्द ही दिनोंमें प्रकट हो गया। अब यही राय है, कि यहाँसे निकल चलें और इन दोस्तों और डरपोक मित्रों से जल्द दूर हो जायें। खूब देख लिया इनकी मित्रताका कदम हवा और इरादोंकी जड़ नदीकी तरंगपर है। शहरको चलें, वहीं एकान्त स्थान ढूँढ़ें। कोई अज्ञात सज्जन अपनी शरणमें ले लेगा। वहाँसे बादशाह का हाल मालूम करें। शुभारम्भ देखें, तो भाग्य-परीक्षा कर देखें। यदि आशा न हो, तो दुनिया तंग नहीं है। पक्षीकेलिये भी घोसला और शाखा है। इसी मनहूस शहर (आगरा) पर इसके सदकेलिये हमने अपनेको चैन नहीं दिया है। एक अमीर दरबारसे हटकर इसी इलाकेको आता, बस्तीके पास उतरा है। सबको छोड़कर उसीकी शरणमें चलो।

अपरिचित स्थान है, शायद थोड़ा आराम मिले। यद्यपि दुनियादारोंसे दयाका भरोसा नहीं है, लेकिन यह अब दुश्मनोंके लगावमें नहीं है।"

फैजी भेस बदल कर उसके पास पहुँचे। वह सुनकर बहुत खुश हुआ और तीनों का स्वागत करनेके लिये तैयार हुआ। दुश्मन सब कुछ करनेपर उतारू थे, इसलिये फैजी अपने साथ कई तुर्क सिपाही लेते आये। आकर बाप और छोटे भाईसे सब बात बतलाई। उसी वक्त भेस बदलकर तीनों चल पड़े और अलग-अलग होकर अमीर के डेरेमें पहुँचे। स्वागत देखकर तबियत खुश हुई, दिन आराम से बीता। अच्छे दिनोंकी सोचने लगे। इसी वक्त दरबारसे फिर अमीरको बुलौआ गया। उसने रुख बिल्कुल बदल दिया। रात को निकल एक और दोस्त के घर गये। उसने बहुत स्वागत किया, लेकिन उसका पड़ोसी बहुत दुष्ट था, इसलिये वह घबरा उठा। लोग सो गये, तीनों वहाँसे भी निकले। कोई शरण-स्थान मालूम नहीं होता था। फिर घूम-घामकर उसी अमीरके डेरेमें चले आये। डेरेवालोंको तीनोंके निकलके जानेकी खबर नहीं थी। अमीर इस बलाको सिरपर लेनेके लिये तैयार नहीं था। उसके रुखको बदला देखकर नौकरोंने भी आँखें फेर लीं। अबुलफजल ताड़ गये, लेकिन फैजीमें उतनी व्यवहार-बुद्धि कहाँ थी? अमीरने देखा, ये तीनों टलते नहीं हैं। बिना बातचीत किये वह सबेरे वहाँसे कूच कर गया। नौकरों-चाकरोंने भी तम्बू उखाड़ लिया। तीनों बाप-बेटे आसमानके नीचे जमीनपर बैठे रह गये।

अब वहाँ रहनेके लिये गुंजाइश कहाँ थी? चले। दिन था। दुश्मनोंकी भीड़मेंसे निकलना था। लेकिन, जान पड़ता था, उनकी आँखोंपर परदा पड़ गया था। जाते-जाते एक बगीचेमें पहुँचे। थोड़ी देर ठहरे। पता लगा, गुप्तचर यहाँ भी घूम रहे हैं। भागते-फिरते रहे। इसी समय एक माली मिला। उसने पहचान लिया। तीनों घबरा गये। मालीने बहुत ढारस बँधाया, अपने घर ले जाकर ठहराया। फैजीका दिल घबराता था, क्या जानें लालचके मारे यही कुछ कर डाले। कुछ रात बीतनेपर बागवाले मालीने आकर कहा—मेरे जैसे आपके भगतके रहते आप क्यों इधर-उधर भटकते रहे? वस्तुतः गरीब जितने ईमानदार हो सकते हैं, दूसरोंके लिये कुर्बानी कर सकते हैं, उतने अमीर नहीं। उसने ले जाकर एक सुरक्षित जगह में टिकाया। एक महीनेसे ज्यादा हिन्दुस्तानका भावी महामन्त्री और कविसम्राट् अपने बापके साथ आराममें वहाँ रहे। अपने मित्रों और मेहरबानोंको पत्र भेजे। सब लोग कोशिश करने लगे।

बादशाहके पुतले पर अद्भुत प्रतिभाशाली फैजीने साहसका परिचय दिया। पहले आगरा फिर फतेहपुर-सीकरी पहुँचे, जो अकबरकी उस समय राजधानी थी। वहाँ हितचिन्तकोंसे मिला। एक दिन दरबारमें एक प्रभावशाली पुरुषने मुँह खोलकर कहना शुरू किया—"हुजूर, क्या आखिरी जमाना खतम हो रहा है? कयामत आ गई है?

हुजूरकी बादशाहीमें बदकार और बददिमाग स्वच्छन्द विचर रहे हैं और भलेमा
मारे-मारे फिर रहे हैं। यह क्या व्यवस्था है?" बादशाहने पूछा—"किसकी ब
करते हो? तुम्हारा अभिप्राय किस आदमीसे है?" जब आदमीने शेखका ना
लिया, तो अकबरने कहा—"आजके बड़े लोगोंने उसपर आफतका पहाड़ ढाने
जान लेनेपर कमर बाँध कर फतवा तैयार किया है। मैं जानता हूँ, आज शेख
स्थानपर मौजूद है। मगर जानकर अनजान बनता हूँ। किसीको कुछ और किसी
कुछ कहकर टाल देता हूँ। तुम्हें खबर नहीं है, यों ही उबल पड़ते हो।
आदमी भेजकर शेखको हाजिर करो और आलिमोंको एकत्रित करो।"

फैजीको जब यह बात मालूम हुई, तो वह तुरन्त भागा-भागा बाप और भा
पास पहुँचा। तीनोंने भेस बदला और किसीको कहे बिना आगराकेलिए चल
हुए। मौतके मुँहमें जाना था, क्योंकि इस रातके वक्त अगर दुश्मन अपने गुण्डो
भेज देते, तो अकबर उनकी रक्षा नहीं कर सकता था। अँधेरी रातमें चारों
सन्नाटा छाया हुआ था। वह आगराकी ओर भागे जा रहे थे। भेस बदलनेपर
उनके दिलको कैसे विश्वास हो सकता था? एक खण्डहर सामने आया, उसमें
गये। सलाह हुई, कि यहाँसे घोड़ोंका प्रबन्ध करके फतेहपुर-सीकरी चलें। रातको
वह घोड़ों पर सवार हो सीकरीकी ओर रवाना हुये। इधर-उधर भटकते वहाँ पहुँचे
परिचितोंने तरह-तरहकी बातें कहकर उनके दिमागको और भी परेशान कर दिया-
"लोगोंने फिर बादशाहको उलटा-सीधा समझानेमें सफलता पाई है। पहले
तो काम आसानी से बन जाता। अब पासके एक गाँवमें कुछ दिन ठहरो। बादशा
को अनुकूल देखकर फिर कुछ किया जा सकेगा।" बैलगाड़ीपर बिठाकर उन्हें गाँ
ओर रवाना कर दिया। गाँवके जिस आदमीके भरोसे वह गये थे, वह घरमें मौ
नहीं थे। लेकिन, अब तो आ गये थे। वहाँके दारोगाको कोई कागज पढ़वाना
मुसाफिरोंको देखकर उसने उन्हें शिक्षित समझा और उन्हें बुला भेजा। तीनों
गये। थोड़ी देरमें मालूम हुआ, कि गाँव तो किसी बड़े दुष्टका है। फिर वहाँसे निक
एक पथ-प्रदर्शकको ले भूलते-भटकते आगराके पास एक गाँवमें पहुँचे। उस दिन
तीस कोस चले थे। एक घरमें उतरे। मालूम हुआ, इस जमीनका मालिक भी ए
दुष्ट है, जो कभी-कभी इधर आ जाता है। आधी रातको फिर वहाँसे भागे। सु
होते आगरा पहुँचे। एक दोस्तके घरमें उतरे, जरा दम लिया। जरा ही देरमें
दोआवरमी दिखलाते कहा कि मेरा पड़ोसी बड़ा धोखेबाज है। मालिक-मकानने
दूँढ़ा था। दो दिन ऐसे बीते, जिसमें हरेक साँस अंतिम साँस मालूम होती थी।

एक भलेमानुसका पता लगा। बहुत ढूँढ़-ढाँढ़के उसका घर निकाला।
समय उस घरमें पहुँचे। गृहपतिके बर्तावको देखकर तबियत बहुत खुश होगई।
शेखका शिष्य नहीं था, लेकिन बड़ा भला आदमी निकला। अबुलफज

अनुसार—"गमनामीमें नेकनामीसे बीता था, अल्प धनमें अमीरीसे रहता था, तंगदस्तीमें दरियादिली करता था, बुढ़ापेमें जवानीका चेहरा चमकता था।" फिर लिखा-पढ़ी शुरू हुई। दो महीनेकी प्रतीक्षाके बाद भाग्यने पलटा खाया। अकबरका बुलौवा आया। शेख मुबारक फैजीको साथ ले दरबारमें पहुंचे। अकबरने जिस कृपा और उदारताका परिचय दिया, उसे देखकर दुश्मनों में "सन्नाटा" छा गया, भिड़ों का छत्ता चुपचाप हो गया।

४. महान् कार्य

सुखी जीवन—शेख मुबारक अकबरके सम्मान और कृपाके भाजन थे, लेकिन, उन्होंने दरबारकी नौकरी नहीं स्वीकार की। मीर हबश आदि को शिया होने के जुर्ममें अकबरके शासनमें कत्ल कर दिया गया था। जिन लोगोंने उन्हें कत्ल करवाया था, वही अब्दुन् नबी और मुल्ला सुल्तानपुरी शेख मुबारकको शिया और मैंहदीपथी बतला रहे थे। गाढ़के समय शेख मुबारकने शेख सलीम चिश्तीसे भी सिफारिश करवानी चाही थी। शेख सलीमके प्रति अकबरकी भारी श्रद्धा थी, उन्हीं की दुआसे उसे पुत्र मिला, जिसका नाम शेखके नामपर ही सलीम रखा—यही जहाँगीरके नामसे गद्दीपर बैठा। चिश्तीके ही कारण वह अपनी राजधानीको फतेहपुर ले आया। लेकिन, शेखने कुछ पैसोंके साथ संदेश भेजा: "यहाँसे तुम्हारा निकल जाना ही अच्छा है। तुम गुजरात चले जाओ।" मिर्जा अजीजने बादशाहको समझानेमें सफलता पाई। ६३ वर्षकी उमरमें शेखका भाग्य खुला, जबकि १५६६ या १५६७ ई० (हिजरी ९७४)में फैजीको दरबारमें स्थान मिला—उसके चार वर्ष बाद अबुलफ़ज़ल भी आकर मीरमुन्शी (महासचिव) बने।

सत्तर-बहत्तरकी उमरमें शेख मुबारककी जवानी फिर लौट-सी आई। कहाँ एक समय धर्मके खिलाफ समझकर गानेकी आवाज आती देख वह जल्दी-जल्दी आगे निकल जाते थे और कहाँ तम्बूर और तराना सुनते-सुनते थकते नहीं थे।

अकबर निरक्षर था, पर उसका अर्थ अशिक्षित नहीं है। आखिर एक समय था, जब विद्याको कानसे सुनकर ही लाग सीखते थे, लिखने-पढ़नेका रवाज नहीं था। अकबर बहुश्रुत था। पारसी और तुर्की दोनों उसकी मातृभाषा जैसी थीं। नकीब खाँका काम था, फुर्सतके समय बादशाहको इतिहास और विद्याकी पुस्तकें पढ़ कर सुनाये। "हयातुल् हैवान" (प्राणिजीवनी) नामक एक अरबी पुस्तक थी। उसका अर्थ समझाना पड़ता था। बादशाहने उसको फारसीमें अनुवाद करनेका काम शेख मुबारकको दिया। अकबर भिन्न-भिन्न धर्मों और शास्त्रोंकी बहस सुननेका बहुत शौकीन था। इन वाद-सभाओंमें शेख मुबारक भी शामिल होते थे। अरबी किताबों के अनुवाद सुनते-सुनते बादशाहको ख्याल आया, अरबी भाषा भी क्यों न सीख

ली जाय। शेख मुबारकको बढ़कर अच्छा कौन शिक्षक मिल सकता था। फ़ैज़ी दार
शाम लेकर गये। अरबी व्याकरण शुरू हुआ। फ़ैज़ीने इसी समय बादशाहसे कहा-
"शेरेमा तवल्लुक़ अस्ला न दारद" (हमारा शेर बिल्कुल तवल्लुक़ नहीं रखता)
अकबरने जवाब दिया—"आरे, तवल्लुक़ात रा हमा बर-शुमा गुजारता अन्द
(हाँ, सभी तवल्लुक़ातको तुम्हारे ऊपर छोड़ रक्खा है)। चन्द दिनों अरबीका
रहा, फिर अरबी पढ़नेवालेंका अकबरको पुर्जा नहीं।

फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल अकबरके उन खास दर्शन दरबारियोंमेंसे थे, कि
बादशाह अपना अभिन्न-हृदय समझता था और उनके साथ बेतक़ल्लुफ़ीसे बा
करता था। उनके बापको भी वह बड़ी इज्जत करता था। कभी-कभी दरबारमें
तो उनकी दर्शन, इतिहास, साहित्य-सम्बन्धी बातोंको सुनकर खुश हो जाता। शे
को संगीत-विद्याका शौक़ है, यह सुनकर एक बार अकबरने कहा—"इस बा
जो सामग्री हमने एकत्रित की है, उसे हम दिखावेंगे।" शेख मक़, तानसेन
दूसरे कलावन्तोंको बुलाकर शेखके घर अपना गुणप्रदर्शन करनेकेलिये भेजा। शे
सबको सुना। तानसेनसे कहा—"शुनीदम् तू हम् चीजे मी तवानी गुफ्त" (सुना
तू भी कुछ चीजें बोल सकता है)। तानसेनके गानको सुनकर कहा—"जानवरों
तरह कुछ भाँय-भाँय करता है।" इसमें शक नहीं, कि तानसेनके संगीत शास्त्र-
गत होनेमें उन्हें सन्देह नहीं हो सकता था, पर गानेकेलिये मधुर कण्ठ होना आ
श्यक समझते थे, जो सभी संगीत-उस्तादोंकी तरह शायद तानसेनमें नहीं
इसलिये उन्हें उनकी तान भाँय-भाँय मालूम हुई।

अकबर उदार हृदय और दृढ़ साहस रखनेवाला पुरुष था। पर, शास्त्र
सारे यन्त्र और कायदे-क़ानूनको एकदम उठा देना उसके बसकी बात नहीं
विशेषकर आरम्भिक समयमें। मथुरामें एक ब्राह्मणने एक शिवाला बनवाया।
पर अपराध लगाया गया, कि उसने मस्जिदकी और इस्लामकी तौहीन की।
नतके सर्वोच्च न्यायाधीशके पास मामला गया, जिसने ब्राह्मणको क़त्ल करवा दिय
अकबर बहुत परेशान था। इसी समय शेख मुबारक किसी विशेष अवसरपर बध
देनेकेलिये अकबरके पास पहुँचे। बादशाहने कितने ही प्रश्न उनके सामने रखते क
"इन मुल्लाओंके मारे जान आफ़तमें है। वह अपनेको धर्म और क़ानूनमें प्रमा
मानते हैं।" शेख मुबारकने कहा—"न्यायमूर्ति बादशाह सर्वोपरि प्रमाण हैं।
बातोंपर मतभेद है, उन्हें देशकालके अनुसार देखकर हुज़ूर स्वयं हुक्म दें। मुल्ल
यों ही हवा बाँध रक्खी है, इनके भीतर कुछ नहीं है। आपको उनसे पूछनेकी ज़रू
नहीं है।" अकबरने कहा—"हरगाह शुमा उस्तादे-मा बाशीद, सबक़ पेशे-शु
ख़ान्दा बाशीम्, चिरा मारा अज़् मिन्नते ईं मुल्लायाँ ख़लास न मी-साज़ीद" (

आप हमारे उस्ताद हैं और आपके सामने हमने पाठ सीखा है, तो क्यों इन मुल्लाओंकी दयासे हमें छुट्टी नहीं दिलाते।)

शेख मुबारकने वह विधान-पत्र तैयार किया, जिसने अकबरकी सल्तनतको मुल्लोंके पंजेसे छुड़ा दिया। अकबर अब निधड़क होकर नये हिन्दुस्तानके निर्माणके लिये तैयार हुआ। उसके कामको आगे ले जानेवाले योग्य सहायक-उत्तराधिकारी नहीं मिले, इसलिये यदि अकबर अपने स्वप्नको सजीव करानेमें सफल नहीं हुआ, तो उसमें उसका दोष क्या? शेख मुबारकने कुरान और इस्लामी धर्मशास्त्रके वाक्यों तथा पुराने उदाहरणोंका इकट्ठा करके एक अभिलेख तैयार किया, जिसका सारांश यह था—जिन बातोंमें मतभेद हो, उसके बारेमें अपनी रायके अनुसार बादशाह हुकुम दे सकता है, उसकी राय आलिमों और धर्मशास्त्रियोंसे बढ़कर प्रामाणिक है। यह अभिलेख बहुत संक्षिप्त १८-२० पंक्तियोंसे ज्यादा बड़ा नहीं है, लेकिन वह हिन्दुस्तानका मेग्नाकार्टा है, जिसके अनुसार मुलंटोंके हाथसे दीन (धर्म)के प्रश्नोंपर भी हटा बादशाहको हुकुम देनेका अधिकार दिया गया था। यह रज्जब ६८७ हिजरी (अगस्त या सितम्बर १५७६ ई०)में लिखकर दरबारमें पेश किया गया। सभी बड़े-बड़े आलिम-फाजिल, मुफ्ती-काजी बुलाये गये। शेख मुबारक आजकी सभाके अध्यक्ष थे। उनके पुराने शत्रु भीगी बिल्ली बनकर साधारण लोगोंमें आकर बैठे थे। अभिलेखपर मुहर करनेका हुकुम हुआ और मुँहसे कुछ भी निकाले बिना मुहर कर देना पड़ा। शेख मुबारकने अपना हस्ताक्षर करते यह भी लिख दिया—"ईं अमरेस्त, कि मन् ब-जान-व-दिल ख्वाहाँ व अज-सालहाय बाज मुन्तजिरे-आँ बूदम्।" (यह वह बात है, जिसकी मैं दिलोजानसे, सालोंसे कामना करते प्रतीक्षा कर रहा था।)

शेख मुबारक अकबर और उनके घनिष्ठ सहकारियोंसे भी पहले अपने देशका सपना देख रहे थे। मेहदी जौनपुरीके साम्यवादसे उनकी सहानुभूति इसी कारण थी, क्योंकि वह मुट्ठीभर आदमियोंको नहीं, बल्कि सभीको खुशहाल देखना चाहते थे। शिया सम्प्रदायसे उनकी सहानुभूति जरूर थी। वह जानते थे, जिस तरह ईरानमें इस्लामने शिया-पंथके रूपमें देशकी संस्कृतिके साथ समझौता किया, उसी तरह भारतमें भी उसकी जरूरत है। भारतके हिन्दू हों या मुसलमान, सभीको इस मिट्टीके साथ एक-सी मुहब्बत होनी चाहिये। उसके इतिहास और संस्कृतिके प्रति वैसा ही सम्मान और सद्भाव रखना चाहिए, जैसा कि महाकवि फिरदौसीने ईरानी संस्कृतिके बारेमें "शाहनामा" को लिखकर दिखलाया। एक बार उन्होंने बीरबलसे कहा—"जिस तरह तुम्हारे (हिन्दुओं) यहाँ किताबोंमें परिवर्तन हुए, इसी तरह हमारे यहाँ भी हुए हैं। इसलिये वह प्रामाणिक नहीं हैं।" शेख मुबारक चाहते थे कि लोग मुल्लों और किताबोंके फेरमें न पड़ें।

शेख मुबारकने ८७ वर्षकी लम्बी आयु पाई। वह २७ अक्तूबर १६५१ई० को लाहौरमें मरे। अबुलफज़लके आग्रहपर वह उनके साथ रह रहे थे। आखि उमरमें उनकी आँखें काम नहीं देती थीं। उनकी मृत्युपर किसीने कहा—

रफ्त आँकि फेलसूफ़े-जहाँ बूद बर-दिलश,
दुरहाय आसमाने-मआनी कुशादऽबूद।
बे-ओ यतीम व मुर्दऽ-दिल अन्द अक़बाय-ओ,

(वह संसारका फिलासफर जो दिलोंके ऊपर था, चला गया, जिसने दि गुप्त भेदोंकी मोतियोंको प्रकट किया। उसके बिना उसके नजदीकी अनाथ और मु दिल हैं।)

बापके मरने पर बेटोंने सिर-दाढ़ी मुड़ाई। अकबर हिन्दू-मुसलमानकोंमिल कर एक जाति बनाना चाहता था, इसलिये एक दूसरेकी रीति-रवाजोंको लेने आनाकानी नहीं की जाती थी। शेख मुबारकके आठ बेटे और चार बेटि थीं। बेटे थे—१. अबुल्फैज फैजी, २. अबुल्फज़ल, ३. अबुल्बरकात, ४. अबुल्खै ५. अबुल्मुकारिम, ६. अबूतुराब, ७. अबूहामिद, ८. अबूराशिद। सातवें ई आठवें दासीके पुत्र थे, लेकिन बड़े भाइयोंने उन्हें अपने असली भाईकी तरह मान बेटियाँ थीं—अफीफा, दूसरी,......तीसरी दरबारके अच्छे अमीरोंसे ब्याही थीं। सबसे छोटी बेटी लाडली बेगम थी, जिसके लिए विशेष लाड़-प्यार है स्वाभाविक था। इसका ब्याह शेख सलीम चिश्तीके पोतेसे हुआ।

लाहौरमें मरनेपर भी उनका शरीर आगरामें लाया गया। अकबरके रौ (सकन्दरा) से कोस भर पूर्व लाडलीका रौजा है। पहले इसके किनारे अच्छा ब और विशाल दरवाजा था। इसीके भीतर कई कब्रें हैं, जिनमें ही नये हिन्दुस्ता स्वप्न देखनेवाले शेख मुबारक, कविराज फैजी सो रहे हैं।

अध्याय ६

कविराज फैजी (१५४७-९५ ई०)

१. महान् हृदय

फैजी भारतके एक दर्जन सर्वश्रेष्ठ महाकवियोंमें हैं। वह अश्वघोष, कालिदास, उनकी पंक्तिमें आसानीसे बैठ सकते हैं। उनकी कवितायें फारसीमें होनेसे उनका परिचय बहुत सीमित लोगों तक ही है, यह दुःखकी बात है। फैजी कवि ही नहीं, बल्कि नये भारतका स्वप्न देखनेवाले थे, जिसका प्रयत्न अकबरके नेतृत्वमें हुआ था। पर, इस कामको लेकर आगे बढ़नेवाले नहीं मिले, और वह अब साढ़े तीन सौ वर्ष बाद होने जा रहा है।

मुस्लिम शासक हिन्दुस्तानपर विजय प्राप्त कर आठवींसे अठारहवीं सदी तक भारतके कम या अधिक भागोंपर शासन करते रहे। पहले शासन सिन्ध और मुल्तान तक ही सीमित रहा। उस वक्त अभी फारसीका दौर-दौरा नहीं था। महमूद गजनवी और उसके बादके सुल्तानों, बादशाहोंने तुर्क होनेपर भी तुर्की नहीं फारसीको राजभाषा बनाया। तुर्की मातृभाषाके तौरपर भी दो-चार पीढ़ियों तक चल कर खतम हो गई। बाबर तुर्क था, मंगोल या मुगल हर्गिज नहीं। वह तुर्की भाषाका महान् कवि और गद्यकार था। हुमायूँ भी तुर्कीभाषी था, यद्यपि बापकी तरह फारसी भी उसकी अपनी भाषा थी। अकबर तुर्की और फारसी दोनों भाषाओंको मातृभाषाके तौरपर जानता था। जहाँगीरने बाप-दादाकी भाषा समझ कर उसपर अधिकार प्राप्त किया था। उसके बाद तुर्कीका चिराग गुल हो गया और फारसी मुगल राजवंशकी मातृभाषा हो गई। अंतिम मुगल दिल्ली के आस-पासकी भाषाएँ भी बोलते थे, पर मातृभाषाके तौरपर फारसी हीको स्थान देते थे। इसलिये मुस्लिम कालमें फारसी राजभाषा और साहित्यभाषा रही। लोक-भाषा (हिन्दी)में उनमेंसे किसीने कविता करने की जरूरत नहीं समझी; क्योंकि दरबारमें उसकी पूछ न होती। खुसरोकी कुछ हिन्दी कविताओंको नमूनेके तौरपर पेश किया जाता है, पर वे पुराने हस्तलेखके रूपमें नहीं मिली हैं, इसलिये न वह खुसरोकी भाषाको बतलाती हैं और न उनका खुसरोकी कविता निर्विवाद माना जा सकता।

कवितामें खुसरोसे ही फैजीकी तुलना की जा सकती है। खुसरोको सारे फारसी-जगत्ने ऊँचा स्थान दिया। फैजीको उनके पास बैठनेमें उजर? एतराज है। लेकिन,

१-यह प्याला गोष्ठीके हरेक व्यक्तिको मस्त कर देनेवाला है, क्योंकि यह नया बस हिन्दका है। यह सम्बन्ध हिन्दके वनसे जुड़ा है। यह सत्य हिन्दकी मिट्टीसे उगा है। हिन्द है, जो प्रेमकी हजार दुनिया है। हिन्द है, जो कि इश्कके गमकी दुनिया है। प्रेमकी रेखाके बिना ललाटकी रेखा यहाँ नहीं है। भूमिका पुष्प कलेजेके रंगके बिना यहाँ नहीं है। इसकी मिट्टीका एक-एक कण सूर्य है। इसका हरेक कण नौ आकाशोंका दीपक है।

फैज़ीकी इन पंक्तियोंसे उनका अपनी मातृभूमिके साथ प्रेम स्पष्ट झलकता है।

फारसीके महाकवियोंने "खम्सा" "पंच-गज" (पाँच निधि, पाँच रत्न या पंच महाकाव्य) लिख कर अपनी कला और प्रतिभा प्रकट करनेकी परम्परा डाल दी थी। निज़ामी (जन्म ११४१) पहला कवि था, जिसने पंच-गज लिखे। जामी (१४१४-९२ ई०)ने निज़ामीका अनुकरण करते हुए अपना पंच-गज लिखा। उसके समकालीन तुर्की (उज्वेकी) के कालिदास नवाई (१४४१-१५०१ ई०)ने भी तुर्की भाषामें पंच-गज लिखा। जामीसे पहले ही खुसरो देहलवीने अपना पंच-गज लिखा था। प्रायः एक या एकसे कथानकको लेकर अपनी करामात दिखाना आसान काम नहीं था। पर, इन्होंने ऐसा करनेमें सफलता पाई, जो मामूली बात नहीं थी। अकबरको काव्य शास्त्रके सुननेका बहुत शौक था। उसने ही फैज़ीको नया पंच-गज लिखनेकी प्रेरणा दी। निज़ामीके पंच-गजके मुकाबिलेमें फैज़ीको अपना पंच-गज निम्न प्रकार लिखना था—

निज़ामी	खुसरो देहलवी	फैज़ी
१. मख्जन-असरार	मत्लउल्-अनवार	मर्कज़े अदवार
२. खुसरो-व-शीरीं	शीरीं खुसरो	सुलेमान-व-बिल्कैस
३. लैला-मजनूँ	मजनूँ लैला	नल दमन
४. हफ्ते पैकर	हश्त-बहिश्त	हफ्त किशवर
५. सिकन्दरनामा	आईने सिकन्दरी	अकबरनामा

इसके देखनेसे मालूम होगा कि "अकबरनामा" और "नल-दमन"को भारतके रंगमें फैज़ी लिखना चाहते थे। वह केवल "नल-दमन"को ही चार हजार बैतों (पंक्तियों) में समाप्त कर सके। यदि पाँचों महाकाव्य भारतके सम्बन्धमें लिखने होते, तो मुमकिन है वह उन्हें समाप्त कर डालते।

२. बाल्य

फैज़ी अबुलफज़लके बड़े भाई और अपने समयके अद्भुत स्वतन्त्र-विचारक शेख मुबारकके ज्येष्ठ पुत्र सन् १५४७ या ४८ ई० (हिजरी ९५४) में आगरामें जमुना-पार रामबाग—उस समयके चारबाग—में पैदा हुये थे और ४८ वर्षकी उमरमें

१५६६ ई०में यहीं उनका देहान्त हुआ। यह सूरके और तुलसीके समकालीन थे। शेरशाहके जमाने (१५४०-४५ ई०)में शेख मुबारकने चारबागमें डेरा डाला था, लेकिन मुल्लोंके मारे किसी भी स्वतन्त्र चेताको साँस लेनेकी इजाजत नहीं थी, विशेषकर शेरशाहके उत्तराधिकारी सलीमशाह सूरीके शासनमें। शेख अल्लाई और उनके गुरु मियाँ नियाजी मेंसे एकका मुल्लाओंने मरवाया, दूसरेको मरता छोड़ा। शेख मुबारक उनकी लपेटमें नहीं आये, यह सौभाग्य समझिये। पर, जब तक अकबरका जमाना ओजपर नहीं आया, तब तक शेख मुबारकको हर तरहकी तकलीफोंका सामना करना पड़ा।

यद्यपि घरकी आर्थिक स्थिति बुरी थी, पर फैज़ी और उनसे चार वर्ष छोटे अबुलफ़जलका यह सौभाग्य था, कि उन्हें एक उदार और महाविद्वान् बापकी गोदमें पलनेका अवसर मिला। मुबारकके एक विद्यागुरु अबुलफजल गाजरूनी थे, जिनको देखकर लड़कोंके नामके साथ अबुल लगाना उन्हें प्रिय लगा। फैज़ीका नाम उन्होंने अबुलफ़ैज फैज़ी रक्खा था, दूसरे लड़केका अबुलफजल, इसी तरह औरोंका भी। फैज़ीने पहले अपना उपनाम 'मशहूर' रक्खा था, लेकिन उन्हें दुनिया फैज़ीके नामसे ही जानती है। शेख मुबारक कवि नहीं थे, लेकिन कवितामर्मज्ञ थे और अपने लड़के में जब उन्होंने कविताके अंकुरको उगते देखा, तो उसको सींचने और बढ़ानेका जिम्मा अपने ऊपर लिया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि फैज़ीकी काव्य-प्रतिभा बचपनसे ही प्रकट होने लगी थी। बापको केवल पण्डित होनेसे कितनी दिक्कतोंका सामना करना पड़ रहा था, शायद इसी ख्यालसे फैज़ीने तिब (चिकित्साशास्त्र)का भी अच्छा अध्ययन किया। पर, आगे वह उसे अपनी जीविकाका साधन नहीं बना सके। उसका इतना ही फायदा हुआ कि वह लोगोंको मुफ्त चिकित्सा करते थे। पहले नुस्खा लिख देते, जब पैसे हाथमें आये, तो दवा भी मुफ्त देने लगे, फिर आगरामें एक अच्छा चिकित्सालय बनवा दिया। घरकी हालत इतनी खराब थी कि एक बार पिता फैज़ीको लेकर "अभावग्रस्तोंकी सहायता" करनेवाले महकमेके अफ़सरके पास सौ बीघा जमीनकेलिये अर्जी लेकर गये। अफसरने उन्हें बुरी तरहसे फटकार कर बाहर निकाल दिया। जान बचानेकेलिये दोनों बेटोंको लिये शेख मुबारक मारे मारे फिरे, कितने ही समय छिपे रहे। हर वक्त डर रहता था, कि मान्यवादी शेख अल्लाईकी तरह कहीं उनको भी मौतका मुँह न देखना पड़े।

३. कविराज

फैज़ीके जीवनके प्रथम बीस वर्ष बड़े दुःखों, चिन्ताओं और खतरेमें बीते। शेख मुबारककी विद्याका लोहा सभी मानते थे, लेकिन उन्हें अकबरके दरबारका रत्न बननेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। यह सम्मान उनके बीस वर्षके बेटे फैज़ीको मिला।

अबुलफ़ज़लके दरबारमें जानेसे सात साल पहले फैज़ी अकबरके घनिष्ठ कृपापात्र बन चुके थे। १५६६ या ६७ ई० (हिजरी ९७४)में अकबर राणा प्रतापके विरुद्ध प्रस्थान करनेवाला था। इसी समय दरबारमें तरुण फैज़ीका किसीने ज़िक्र किया। अकबरने तुरन्त उसे बुला लानेकेलिये कहा। शेख मुबारकके दुश्मन हर वक्त ताकमें लगे रहते थे। उन्होंने, गिरफ़्तारीकेलिए आये हैं, कहकर घर भरको डरवा दिया। तुर्क सिपाहियोंको भी क्या पता था, कि जल्दी बुलानेका मतलब सम्मान-प्रदान करना या दंड देना है। शेख मुबारककी कुटियापर पहुँच कर उन्होंने हल्ला मचाया। दुश्मनोंने बादशाहसे कह दिया था: शेख अपने बेटेको जरूर छिपा देगा और बहाना करके आदमियोंको लौटा देगा, बिना डराये-धमकाये काम नहीं निकलेगा। संयोगसे फैज़ी बागमें सैर करने गये थे। दुश्मनोंको आशा थी कि वह खबर सुनते ही डरकर भाग जायेंगे। जब शेखसे पूछा गया, तो उन्होंने कह दिया, "घरपर नहीं है।" तुर्क सिपाही इतनेसे जान छोड़नेवाले थोड़े ही थे। पर, कुछ करनेसे पहले ही फैज़ी पहुँच गये। आगरासे फ़तेहपुर सीकरी जाना था। आजकलकी तरह उस वक्त मोटर नहीं थी कि घंटे डेढ़-घंटेमें वहाँ पहुँच जाते। दरबारमें जानेकेलिये तैयारी करनेका सामान उस झोपड़ेमें कहाँ था? उन्हें तो यह भी पता नहीं था कि फैज़ी क्यों दरबारमें बुलाये गये। कई दिन तक शेख मुबारक, उनकी बीबी और परिवार तरह-तरहकी आशंकाओंसे भयभीत रहा। आखिर खबर आई कि बादशाहने बेटेको बहुत सम्मानित किया है।

फैज़ी कवि होनेके साथ निर्भय भी थे। बादशाहके सामने हाज़िर हुए। वह जालीदार कटघरेके पीछे था। कविको बाहर खड़ा किया गया। पर्देकी आड़से बात करनेमें अनकुस मालूम हुआ। उसी समय फैज़ीके मुँहसे निकल पड़ा—

बादशाहा दरूने-पंजर अस्त। अज़ सरे-लुत्फ़े-खुद मरा जावेह।
ज़ाँकि मन तूतिये-शकर खायम्। जाये-तूती दरूने पंजरा बेह्।

(बादशाह पिंजड़ेके भीतर है, इससे मजा नहीं आता। मैं मिसरी खानेवाला तूती हूँ। जिसकेलिए अच्छा स्थान पिंजड़ेके भीतर है।)

अकबरने इस आशु कविताको सुनकर बहुत प्रसन्न हो पास बुलाया। फैज़ीने १६७ शेरोंका अपना पहला कसीदा (प्रशस्ति) पढ़ा। हरेक शेरमें कविताकी माधुरीके साथ-साथ गम्भीरता फूट निकलती थी। इसमें अपने पास दूतोंके बुलानेके आनेके समयकी चिन्ता और परेशानीका भी उल्लेख किया था—

अज़ाँ कमाँ चे नवीसम् कि बूद् बे-आराम।
सफ़ीनये दिलम् अज़ मौज रोज़ तूफ़ानी।

(उस वक्तके बारेमें क्या लिखूँ, जो कि मेरे बे-आराम-दिलकी नैया तूफ़ानसे उठी लहरोंपर थी।)

उनके पिता और घरपर इस्लामके नामपर जो आफतें ढाई गई थीं, उनका जिक्र करते हुए तरुण शायरने कहा था—

अगर हकीकत-इस्लाम दर्-जहाँ ईनस्त ।
हजार खन्दये कुफ्र अस्त बर्-मुसलमानी ।

(अगर दुनियामें इस्लामकी वास्तविकता यही है, तो मुसलमानीके ऊपर कुफ्रकी हजार हँसी है ।)

अकबरका समकालीन कट्टर मुसलमान पूरा काफिर मानते थे और उसे काफिर बनानेकी जिम्मेवारी वह फैजी और उनके भाई अबुलफजल पर डालते थे, जिसमें बहुत अंशमें सच्चाई भी है । बादशाह इन्साफपसन्द और स्वतन्त्र-चेता था, पर जब इस्लामके नामपर उसे डराया जाता, तो सहम जाता था । ऐसे डरकी कोई जरूरत नहीं, इसे फैजी और अबुलफजलने ही अकबरके दिलमें बैठा कर उसे निर्भय बनाया ।

फैजीकी कविताएँ ही अकबरको नहीं प्रसन्न करतीं, बल्कि उनके मधुर स्वभाव बात-व्यवहारको देखकर थोड़ी देरकेलिए भी उन्हें छोड़ना अकबरके वास्ते मुश्किल था । फैजीसे चार वर्ष बाद अर्थात् अपनी बीस वर्षकी आयुमें अबुलफजल भी दरबार में गया । फिर तो दोनों भाई अकबरके दाहिने-बायें हाथ बन गये ।

अब तक राज्यके कागज पत्रोंके लिखने-रखनेमें एकता नहीं थी । विदेशी अफसर और मुन्शी मध्य-एशियायी ढगसे उसे लिखते थे और हिन्दू हिन्दी ढंगसे । इस गड़बड़ीको ठीक करनेमें टोडरमल और दूसरोंके साथ फैजीने काम किया और उसके बारे बना दिये । जब अकबरके पुत्र पढ़ने लायक होने लगे, तो उनके शिक्षणका काम फैजीके हाथमें सौंपा गया । सलीम, मुराद, दानियाल सब फैजीके शागिर्द थे । शाहजादोंका उस्ताद होना भारी सम्मानकी बात थी । बापसे ही फैजीके खूनमें विचार-स्वातन्त्र्यकी लहर बह रही थी । अकबरको भी जब उस तरहका देखा, तो फैजीके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा । भारतमें इस्लामी सल्तनत कायम होनेके समयसे ही मुल्ले शरीयतके नामसे बादशाहोंको अपने हाथमें रखते आये थे । अकबरके समयभी वह कहते थे, "सल्तनत शरीयत (धर्मशास्त्र)के अधीन है और शरीयतके मालिक हम हैं; इसलिए सल्तनतके मालिकको उचित है, कि हमारी आज्ञाके बिना कोई काम न करे । जब तक हमारा फतवा हाथमें न आये, तब तक सल्तनतको एक डग भी आगे बढ़ना नहीं चाहिये ।" फैजी कहते थे, "सल्तनतका मालिक (बादशाह) खुदाका प्रतिनिधि है, वह जो कुछ करता है, उचित करता है । देशकी भलाई ही शरीयत है । बादशाह उसी भलाईके लिए काम करता है, इसलिए सबको उसका अनुगमन करना चाहिये । (बादशाह) जो समझ सकता है, वह मुल्ले-मुजटे नहीं समझ सकते । बादशाह जो हुक्म दे, उसको मानना सबका फर्ज है । बादशाही कामकेलिए किसीके फतवेकी जरूरत नहीं ।"

अकबर नहीं चाहता था, कि उसकी बहुसंख्यक जनताकी इच्छाओं और भलाईके ख्यालको ताकपर रखकर इस्लामी शरीयतके जूयेके नीचे उन्हें कराहनेकेलिए छोड़ दिया जाय। वह जानता था, कि विदेशी तुर्क अ-तुर्क मुसलमानोंपर स्थित हमारा सिंहासन बालूकी रेतपर है। वह तभी दृढ़ हो सकता है, जब कि हिन्दका बहुजन—हिन्दू—हमारे साथ आत्मीयता स्थापित करें। वह जानता था, कि यदि इस आत्मीयताको हमने प्राप्त कर लिया तो, फिर किसीकी मजाल नहीं, कि हमारे काममें बाधा उपस्थित कर सके। वह आजकी तरहका लोकतंत्रीय युग नहीं था, जिसमें धर्मको धत्ता बताकर शुद्ध लोकतन्त्रताके नामपर अपनी बात को मनवाया जा सके। फैजी और अबुलफजलने इस्लामी शास्त्रोंके अपने गम्भीर ज्ञानका फायदा उठाते हुए बादशाहको पृथ्वीपर खुदाका नायब कहते मुल्लोंके हथियारोंको मोथा कर दिया। फिर उन्हें उसकी भी जरूरत नहीं थी। मुल्ले दोनों भाइयोंपर आक्षेप करते थे, कि वह हद दर्जेके खुशामदी हैं। आजकल भी कितने ही मुसलमान ऐसा कहते हैं। पर, वह खुशामद केवल स्वार्थ-साधनेकेलिए नहीं थी। उनके सामने एक महान् स्वप्न था—हिन्दके सभी पुत्रोंके बीच सच्चा भाईचारा स्थापित करना और उसके द्वारा देशकी ताकतको मजबूत करना। फैजी हिन्दकी मिट्टीका कितना भक्त था, यह हम उसके शब्दोंमें देख चुके हैं। एक मुगल बादशाहने सबसे पहले "मलिकुश्शोअरा" (कविराज) की उपाधि १५८७-८८ ई० (९९६ हिजरी) में फैजी को दी। पीछे हर बादशाहने इस प्रथाको जारी रक्खा। अकबरके पोते शाहजहाँने पंडितराजकी उपाधि जगन्नाथको दी। उपाधि प्राप्त करनेसे दो-तीन दिन पहले फैजीने कहा था—

> आँरोज कि फैजे-आम करदन्द्। मारा मलिकुल्-कलाम करदन्द्।
> (उस दिन कृपाकी धारा बहा दी, जो कि मुझे वाणीका स्वामी बना दिया।)

अकबर फैजीसे बहुत मुहब्बत रखता था। उसने फैजीको कुछ लिखनेकेलिए कहा था। फैजी उसमें तल्लीन थे। इसी समय बीरबल आ गये। अपनी आदतसे मजबूर वह छेड़खानी करनेकेलिए हर वक्त तैयार रहते थे। अकबरने आँखके इशारेसे संकेत करते हुये कहा—"हरफ म-जनीद्, शेख चीज चीजें मी-नवीसद्।" (मुँहसे अक्षर मत निकालो, शेखजी कुछ लिख रहे हैं।) अकबर फैजीको "शेखजीव" कहा करता था।

सारे उत्तरी भारतपर अपना दृढ़ शासन स्थापित करनेके बाद अकबर के मनमें सारे भारतको एकछत्रमें लानेका संकल्प पैदा हुआ। दक्षिणमें बहमनी सल्तनतें इसके लिये तैयार नहीं थीं। अकबर चाहता था, कि वह सुलह और शान्तिसे इस एकताको स्थापित करनेमें सहायता करें, पर उससे कहाँ काम निकलनेवाला था!

अहमदनगरका सुल्तान बुरहानुलमुल्क सिंहासनसे वंचित हो अकबरके दरबारमें हाजिर हुआ। अकबरकी मददसे फिर सिंहासन मिला, पर गद्दीपर बैठते ही उसने

पान और सुगन्धि उपस्थित हुई। मुझसे कहा—'आप अपने हाथसे दें।' मैंने कई बीड़े अपने हाथसे दिये। उसने बड़ी इज्जतके साथ लिया।...सेवकके आदमी गिन रहे थे। उसने कुल पच्चीस तस्लीमें (वंदना) कीं।...पहली तस्लीमके बाद मुझसे कहा—'हुक्म दीजिये, तो हजरतकेलिये हजार सिजदे (दण्डवत) करूँ। मैंने अपनी जान हजरत (अकबर)पर न्यौछावर कर दी।' सेवकने कहा—'तुम्हारी भक्ति और सफलताकेलिये यही उचित है, मगर सिज्दाकेलिये हजरतका हुकुम नहीं है। दरगाहके क अपनी भक्तिमें आकर जोशके मारे सिज्दे में सिर झुका देते हैं, तो हजरत मना रते कहते हैं, कि यह सिर्फ खुदाके लिये है।"

राजी अली खाँ और बुरहानुल्मुल्कके यहाँ दौत्य-कर्ममें एक वर्ष आठ महीना चौदह दिन फैजीने लगाये। इसमें शक नहीं, उनकी सफलता स्थायी सिद्ध नहीं हुई, पर फैजीकी चमत्कारिणी वाणी और उसके व्यवहारने अपना चमत्कार दिखाया जरूर।

१५९२ या ९३ ई० (हिजरी १००१)में दरबारमें लौटनेके बाद कविके व्यवहारमें कुछ परिवर्तन देखा गया। अब भी वह अपनी कविताके फूल बरसाते थे। बादशाह उनकी बातोंसे खुश हो जाता, पर वह अधिकतर चुपचाप एकान्तमें रहना पसन्द करते थे। इसी समय अकबरने उन्हें पंच-गज (खमसा) लिखनेके लिये कहा था।

हिजरी ९९६ (१५८७-८८ ई०)में अकबर गुजरातके अभियानसे सफल होकर लौटा। सेनापतियोंकी तरह पोशाक और हथियार पहने दक्खिनका छोटा-सा बर्छा लिये आगे-आगे चला आ रहा था। फतेहपुर सीकरीसे कई कोस आगे ही अमीर स्वागतके लिये आये। फैजीने बधाई देते गजल पढ़ी—

> नसीमे-खुशदिली अज़ फतेहपूर मीआयद्।
> कि बादशाहे-मन् अज़-राहे-दूर मीआयद्।

(खुशदिलीकी प्रात-कालीन वायु फतहपुरसे आ रही है, क्योंकि मेरा बादशाह दूरके रास्तेसे आ रहा है।)

४. मृत्यु

फैजीके जीवनके अन्तिम मास बहुत तकलीफसे बीते। तबीयत हो गयी, दम घुटता था, हाथ-पाँव फूल गये थे और खूनकी कै होती थी। विरोधी मुल्लाटे कहते थे, इस्लाम और उसके पैगम्बरपर आक्षेप करनेका यह फल मिल रहा है। अकबरको कुत्तोंका शौक था और फैजीको भी। मुल्ली कुत्तेको बहुत अपवित्र मानते हैं। उनके चिढ़ानेके लिये भी फैजी अपने पास कुत्ते रखते थे। मुल्लोंने तो यहाँ तक फैला दिया, कि मरते समय वह कुत्तेकी तरह भूँकता था। [illegible]

के लिये तैयार नहीं थे और उनके मनमें जो आता, सब उसके खिलाफ बकते रहे। बीमारीको सुन कर आधी रातको अकबर दौड़ा-दौड़ा फैजीके घरपर पहुँचा। वे बेहोश थे। बादशाहने कई बार "शेखजीव, शेखजीव" कह कर पुकारा—"हम अलीको साथ लाये हैं, तुम बोलते क्यों नहीं?" वहाँ होश कहाँ था! अबुलफजल तसल्ली देकर चला गया। जरा देर होमें खबर मिली, कि फैजी अब इस दुनिया में नहीं रहे। अकबरके लिये यह भारी सदमा था। १५ अक्टूबर १५९५ ईस्वी। ४९ वर्षकी उमरमें यह महान् कवि और महान् विचारक मरा।

मुल्ला बदायूँनी फैजीके घरमें पढ़कर बड़ा था, लेकिन वह पूरा मुल्ला था। पहले जब दूसरे पुराने मुल्लोंसे लड़ना था, तो बादशाहने बदायूँनीको आगे बढ़ाया था। जब पुराने मुल्ले हट गये, तो इस नये मुल्लेकी बादशाहको उतनी जरूरत नहीं थी। अब फैजी और अबुलफजल आगे बढ़ गये और बदायूँनी पीछे रह गया। उसे बहुत सन्ताप था, जिसका गुबार वह मौका-बेमौका अपनी लेखनी द्वारा फैजी और अबुलफजलपर उतारता था। मरनेकी तिथि निकालनेके लिये वाक्य रचा—"फिर सगी, शिई व तबई दहरी।" (दार्शनिक शियापथी और स्वभावतः नास्तिक।) वह मानता था, कि कविता, इतिहास, कोश, चिकित्साशास्त्र और निबन्ध रचनामें फैजी अपने समयमें अद्वितीय था। कवितामें फैजीने पहले अपना उपनाम "मशहूर" रखा, फिर फैयाजी, जो मंगलकारी साबित नहीं हुआ, क्योंकि एक-दो महीनेमें ही वह चल बसे। "वह क्षुद्रताका विधाता, गरूर-घमण्ड-द्वेषका निर्माता, दुश्मनी, गन्दे दिखलावेके सम्मानके प्रेम और शेखीका समूह था। इस्लाम माननेवालोंकी बुराई और दुश्मनीके क्षेत्रमें, धर्मके सिद्धान्तोंपर व्यंग करनेमें, पैगम्बरके साथियों और अनुयायियोंकी निन्दा करनेमें, अगले-पिछले आदिम-अन्तिम मरे या जिन्दा शेखोंके बारेमें असम्मान प्रदर्शित करनेमें बेधड़क था। सारे आलिमों, फाजिलों के बारेमें भी गुप्त और प्रकट रात-दिन यही करता रहता था। यहूदी, ईसाई, हिन्दू और पारसी उससे हजार दर्जा बेहतर हैं। मुहम्मदके धर्मका विरोध करनेके लिये सभी हराम चीजोंको वह विहित और सभी कर्तव्योंको हराम कहता था। उसकी बदनामी सौ नदियोंके पानीसे भी नहीं धोई जा सकेगी। वह शराब पीकर गन्दी हालतमें बिना बिन्दुवाले कुरानभाष्यको लिखा करता था। कुत्ते इधर-उधरसे उसपर कूदते-फिरते थे।"

मुल्ला बदायूँनी और भी लिखता है—"ठीक चालीस वर्ष तक शेर कहता रहा मगर सब बेठीक। हड्डीका ढाँचा खासा है, मगर उसमें सार नहीं, बिल्कुल मजा नहीं।.. यद्यपि दीवान (अकारान्त कविता-संग्रह) और मसनवी (प्रेमाख्यान)में बीस हजारसे ज्यादा शेर कहे, लेकिन उसकी बुझी हुई बुद्धिकी तरह एक शेरमें भी तेज नहीं है।" और भी लिखता है: "मेरे पूरे चालीस वर्ष उसके साथ गुजरे, लेकिन उसके ढंग बदलते गये, मिजाजमें बुराई आती रही, हालत बिगड़ती गई। इनके कारण

धीरे-धीरे (हमारा) सारा सम्बन्ध ख़त्म हो गया। अब उसका हक कुछ न रहा। दोस्ती बिगड़ गई। वह हमसे गया, हम उससे गये।" फैजीकी छोड़ी हुई चीजोंमें ४६०० सुन्दर जिल्दें पुस्तकों की थीं, जिनमेंसे अधिकांश लेखकके अपने हाथ या उसके कालकी लिखी हुई थीं। उनमें तीन प्रकारकी पुस्तकें थीं—१. कविता, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष, संगीत, २. दर्शन, सूफी-मत, गणित, प्राकृतिक विज्ञान, ३. कुरान-भाष्य, पैगम्बर-वचन (हदीस), फ़िका (धर्मशास्त्र) और दूसरी धार्मिक पुस्तकें।

शम्सुलउलमा आज़ाद मुल्ला बदायूँनीकी बकवासपर कहते हैं—"मुल्ला साहब जो चाहें फरमायें। अब दोनों अन्तिम दुनियामें हैं, आपसमें समझ लेंगे। मुल्ला साहब, तुम अपनी फिकर करो, वहाँ तुम्हारे कामोंके बारेमें सवाल होगा। यह न पूछेंगे, कि अकबरके अमुक अमीरने क्या-क्या लिखा, उसका क्या विश्वास था और तुम उसको कैसा जानते थे।"

५. कृतियाँ

१. दीवान—फैजीकी कविताओंका अकारान्त क्रमसे संग्रह (दीवान) उसी समय तैयार हो चुका था। इसमें नौ हजार बेत (पंक्तियाँ) अर्थात् साढ़े चार हजार श्लोक हैं। शम्सुल्-उलमा आज़ाद जैसे आदमी लिखते हैं, कि उनकी गजलें परिमार्जित और सुन्दर फारसी बयानमें हैं। अतिशयोक्तियोंके फन्देसे वह बहुत बचते हैं और भाषाके सौंदर्यका बड़ा ख्याल रखते हैं, जिसपर उनका पूरा अधिकार था।... दिल जोशमें आता है, लेकिन वाणी सीमासे आगे नहीं बढ़ने पाती। एक बिन्दी भी व्यर्थकी वह नहीं इस्तेमाल करते। मैं जरूर कहता, यह सादीकी शैली है, पर सादी प्रेम और सौन्दर्यमें ज्यादा डूबे हुये हैं और फैजी दर्शन, मानस-विज्ञानकी वास्तविकता और आत्मीयतामें लीन हैं।...अरबी भाषाके पंडित हैं, कहीं-कहीं एकाध वाक्य जो लगा जाते हैं तो वह अजब मजा देता है।

२. कसीदे—फैजी दरबारी शायर थे, इसलिए प्रशस्ति (कसीदा) लिखनेके लिये मजबूर थे। आजादके अनुसार "जो कुछ कहा है, अत्यन्त संयत कहा है।" फैजीकी गजलों और कसीदोंकी संख्या बीस हजार है। अकबरको उनकी कविता जो इतनी पसन्द थी, उसका कारण यह था कि उसमें प्रसादगुण था, साफ़ समझमें आ जाती थी। दूसरे वह अपने स्वामीकी तबियतको समझते थे और देशकालके अनुकूल रचना करते थे। "दिल लगती और मन-भाई बात होती थी। अकबर सुनकर खुश हो जाता था। सारा दरबार उछल पड़ता था।"

३. नलदमन (पंज-गंज रमसा)—१५८५ ई० (९९३ हिजरी)में अकबरने कहा, कि निजामीके पंजगंजपर बहुतोंने अपनी कला दिखानेकी कोशिश की, तुम भी

करो। उनके लिये पाँच ग्रंथ भी चुन लिए गए, पर जैसा कि बतलाया, फैजी केवल "नल-दमन" (नल-दमयन्ती) को ही पूरा कर सके। "सुलेमान-व बिल्कैस" सम्बन्धके उनके थोड़ेसे शेर मिलते हैं, वही बात "अकबरनामा" की भी है। बाकी कुछ लिखा ही नहीं। आगे बढ़ते न देखकर १५९३-९४ ई० (हिजरी १००२) में लाहोरमें रहते बादशाहने फिर एक बार "पंचमहाकाव्य" के लिये ताकीद करते कहा पहले "नल-दमन" को पूरा करो। फैजीने चार महीने लगकर उसे समाप्त करदिया। शम्शुल्-उल्मा आजाद समझते हैं, इसका कथानक फैजीने कालिदासकी किसी कृतिसे लिया होगा, पर कालिदासने इसके ऊपर कोई काव्य नहीं लिखा, यह हमें मालूम है। महाभारतको फैजीने देखा था, इसलिये "नलोपाख्यान" से वह परिचित थे। त्रिविक्रमने पहलेपहल इस उपाख्यानको "नलचम्पु" में लिया। नलचम्पू संस्कृतके चम्पुओं (गद्य-पद्य-मिश्रित काव्यों) में सर्वश्रेष्ठ है। त्रिविक्रमके बाद कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्रके दरबारी तथा महान् कवि श्रीहर्षने इसी उपाख्यानको लेकर "नैषध" लिखा जो संस्कृतका एक महान् काव्य माना जाता है। श्रीहर्षसे तीन सौ वर्ष बाद फैजीने फारसीमें "नल-दमन" लिखा। उसके देखनेसे यह नहीं मालूम होता कि फैजीके सामने त्रिविक्रम और श्रीहर्षकी कृतियाँ थीं।

मुल्ला बदायूँनीने "नलदमन" के बारेमें लिखा है—"उन दिनों मलिकुश्-शोअराको हुकुम फरमाया, कि पंज-गंज लिखो। कम-बेशी पाँच महीनेमें "नल-दमन" लिखी, जो आशिक और माशूक थे। यह किस्सा हिन्दवालोंमें मशहूर है। चार हजार दो सौ शेरसे कुछ ज्यादा है। उसके हस्तलेखको कुछ अशर्फियोंके साथ बादशाहको नजर किया। बहुत पसन्द आया। हुकुम हुआ कि सुलेखक लिखें और चित्रकार चित्र बनायें। रातको नकीब खाँ जो किताबें सुनाते थे, उनमें इसे भी सम्मिलित कर लिया गया।...यह सच है कि ऐसी मस्नवी (प्रेमाख्यान) इसतीनसौ वर्षमें "खुसरो-शीरीं" के बाद हिन्दमें शायद ही किसीने लिखी हो।"

मुल्ला बदायूँनी भला कैसे क्षमा करता, जब कि फैजीके मुँहसे सुनता था—

शुक्रे-खुदा कि इश्के-बुतानस्त रहबरम्। दरमिल्लते-बरहमन व दरदीने आज़रम्।

(खुदाको धन्यवाद, कि मूर्तियोंका प्रेम मेरा पथ-प्रदर्शक है। मैं ब्राह्मणोंके पाव और पारसीयोंके दीनमें हूँ।)

मुल्ला बदायूँनीकी तरह कवि निजामीने पैगंबरपर छींटा कसते कहा है—

"शुक्रे खुदा कि पैरवे दीन पैगम्बरम्।

हुब्बे रसूल व आलेरसूलेस्त रहबरम्।"

(खुदाका शुक्र है कि मैं पैगम्बरके दीनका अनुयायी हूँ। पैगम्बर और उसकी ... प्रेम मेरा पथ-प्रदर्शक है।)

कालने बतलाया, कि मुल्ला बदायूँनी और निशाई बीते युगके आदमी थे। जमाना फैजीके साथ होगा, जो किसी भी मजहबकी बेड़ियोंको पैरोंमें डालनेके खिलाफ और मानवके भ्रातृभावको सर्वोपरि मानता था।

४. मर्कज-अदवार—(कालचेन्द्र —अबुलफजलने लिखा है, एक बार बीमारीके समय फैजी कुछ लिखते रहते थे, जो इसी पुस्तकके सम्बन्धके थे। पंज-गंजकी बाकी तीनों पुस्तकोंके सम्बन्धके जो शेर फैजीने लिखे थे, उनमेंसे कुछको अबुल-फजलने अपने "अकबरनामा" में उद्धृत कर दिया है।

सब मिलाकर कविताकी ५० हजार पंक्तियाँ फैजीने फारसीमें लिखीं। यह भी कहा जाता है, कि ५० हजार शेरोंको उन्होंने खुद नष्टकर दिया।

५. लीलावती—इस नामसे भास्कराचार्यने गणितपर छन्दोबद्ध एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। फैजीने इसका फारसीमें अनुवाद किया।

६. महाभारत—दूसरों द्वारा महाभारतके कुछ पर्वोंके अनुवाद (गद्य)को ठीक करनेका काम बादशाहने फैजीको सुपुर्द किया था।

७ इन्शाय-फैजी (फैजी-निबन्ध)—पद्यकी तरह ही फैजी गद्यके महान् लेखक थे, यद्यपि उन्होंने बाणकी तरह उसमें कोई महाकाव्य नहीं लिखा, फारसीमें इसकी परम्परा नहीं थी। अपने निबन्धोंमें वह अपने अनुज अबुलफजलका उल्लेख बहुत सम्मानके साथ करते हैं—नव्वाब अल्लामी, नव्वाब अखवी (मेरे भाई) अखवी शेख अबुलफजल (मेरा भाई शेख अबुलफजल)।

८. सवातेउल-अलहाम्—कुरानके ऊपर फैजीने यह भाष्य लिखा था। अरबी वर्णमालामें कुल पच्चीस अक्षर हैं, जिनमें ग्यारह बिन्दुवाले और चौदह निर्बिन्दु हैं। फैजीने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं इस पुस्तकमें उन्हीं शब्दोंका इस्तेमाल करूँगा, जिनके लिखनेमें बिन्दुवाले अक्षरोंका प्रयोग नहीं होता। भाष्यकी सिर्फ भूमिका एक हजार पंक्तियोंमें समाप्त हुई है, जिसमें अपना, अपने बाप-भाइयों, शिक्षा और बादशाहकी प्रशंसा आदि दर्ज है। कई चोटीके विद्वानोंने फैजीके इस भाष्यपर टीकायें लिखीं। एक विद्वान्ने तो उन्हें "द्वितीय अहरार" कह दिया है। (ख्वाजा अहरार समरकन्दके एक बहुत बड़े विद्वान् और सन्त पुरुष थे, जिनका देहान्त १६४० ई० में हुआ था।) यह भाष्य फैजीने ३ जनवरी १५६४ ई० में समाप्त किया था।

९. मवारिदुल् कलम—इसमें छोटे-छोटे वाक्योंमें शिक्षायें दी गई हैं।

६. फैजीका धर्म

फैजी और उनके भाईको इस्लामका दुश्मन ही नहीं कहा जाता, बल्कि अकबरको काफिर बनानेकी जिम्मेवारी उनपर रक्खी जाती है। अकबरने सूर्य-पूजाके

थे। हिंदू पंडित, मुसलमान मौलवी, ईसाई पादरी, पारसी मोबिद सभी अपने-अपने धर्मोंकी बारीकियाँ बतलाते और दूसरोंकी कमजोरियोंको दिखलाते। अब फैजीको दरबार में पहुँचे आठ साल हो गये थे और अबुलफजलको चार साल। मुल्ला बदायूँनी भी अभी पूरा मुलंठा नहीं बना था। वह इस शास्त्रार्थमें शामिल होते और सालोंसे अपनेको सब कुछ समझनेवाले पुराने मुल्लोंका दूलिया तंग करते थे। फैजी, अबुल-फजल और उनके बापको जो लोग नास्तिक और लामजहब कह कर उनकी जानके गाहक थे, उनसे सूद-दर-सूदके साथ बदला ले रहे थे। अकबर तो चाहता ही था, सब खुलकर बहस की जाये। फैजी और उसके भाईका कहना था: "दुनियामें हजारों मजहब हैं। खुदाका अपना एक मजहब नहीं हो सकता, नहीं तो वह सभी मजहबवालोंकी परवरिश क्यों करता? सबके ऊपर एक सी दृष्टि क्यों रखता? सबको आगे क्यों बढ़ाता? जिसे अपना मजहब समझता, उसीको रखता, बाकीको नष्ट कर देता। यह बात नहीं देखी जाती, इसलिये यही कहना पड़ेगा, कि सभी मजहब उसके अपने हैं। बादशाह पृथ्वीपर खुदाकी छाया है। उसको सभी मजहबोंको और खुदाकी तरह देखना चाहिये। सभी मजहबोंकी परवरिश, सहायता करनी चाहिये। यही मानो उसका मजहब है।" मुल्ला इसलिये भी चिढ़ते थे, कि बिस्मिल्ला या लाइलाह (दूसरा ईश्वर नहीं) कहनेकी जगह अब "अल्लाहो अकबर" (ईश्वर महान्) लिखा बोला जाता था, जिसमें उन्हें अकबरके अल्लाह होनेकी गन्ध आती थी। अकबरने कभी अल्लाह होनेका दावा नहीं किया। वह ईश्वरके माननेसे भी इन्कार नहीं करता था। "अल्लाहो अकबर" से उसका हर्गिज वह मतलब नहीं हो सकता था, जो कि मुल्ले निकालना चाहते थे।

फैजीने संस्कृत पढ़ी थी। बनारसमें छिपकर किसी पण्डितसे पढ़ी, यह सिर्फ मौखिक परम्परा है। अगर ऐसा होता, तो अबुलफजल या फैजी कहीं इसका उल्लेख जरूर करते। यह भी कहा जाता है, कि चलते वक्त जब फैजीने अपनेको प्रकट किया, तो गुरुने उससे यह शपथ ले ली, कि वह गायत्री और चारों वेदोंका फारसीमें अनुवाद नहीं करेगा। गायत्री जरूर उस समय भी ब्राह्मण पढ़ते थे। कुछ लोग उसका अर्थ भी जानते थे, पर चारों वेदोंके बारेमें उस समयके पट्शास्त्रियोंका भी ज्ञान नहींके बराबर था। हाँ, कुछ वैदिक तोतारटन जरूर करते और इसमें शक नहीं, कि यह तोतारटन वेदोंकी रक्षाके लिये बड़े कामकी थी। फैजी आगरामें संस्कृत पढ़ सकते थे और खुलकर। उन्हें बनारसमें छिपकर पढ़नेकी आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने हिन्दू विचारधारा और संस्कृतको बहुत भीतरसे और गहराईके साथ अध्ययन किया था। उसको अभिरुचि उसके दिलपर थी। वह दूसरे मुल्लोंकी तरह हिन्दुओंको काफिर कहने केलिये तैयार नहीं था। यही वजह थी, कि सभी हिन्दू उसकी इज्जत करते थे।

फैजी अद्भुत मेधावाला होते भी सरल, विचारोंमें तल्लीन रहते भी हँस-

अध्याय १०

अबुलफजल (१५५१-१६०२)

१. बाल्य

भारतके सारे इतिहासमें शेख अबुलफजलकी तुलना हम कौटिल्य विष्णुगुप्तसे ही कर सकते हैं। कौटिल्यने चन्द्रगुप्त मौर्यके शासनके रूपमें भारतको एकताबद्ध करने और उसे समृद्ध बनानेकी कोशिश की। यही काम अबुलफजलने अकबरके समय किया। फर्क इतना ही था, कि कौटिल्य चन्द्रगुप्तका प्रधान-मन्त्री ही नहीं था, बल्कि उसके राज्यका संस्थापक भी था। यदि कौटिल्यका अर्थशास्त्र हमारे लिये उस समयकी राजनीति और दूसरी ज्ञातव्य बातोंका भण्डार है, तो अबुलफजलका "अकबरनामा" और "आईनेअकबरी" उससे कहीं बड़ा भण्डार है। कौटिल्यको संस्कृतियों और धर्मोंके उग्र झगड़ोंको सुलझानेकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि धर्मोंमें कुछ भेद होनेपर भी मौर्य-कालीन भारतकी संस्कृति एक थी। पर, अबुलफजलने जिस भारतको एकताबद्ध करनेकी कोशिश की, वह सदियोंसे धर्मके नामपर होने खूनी जंगोंका मैदान बना हुआ था।

अबुलफजलका जन्म आजसे ४०५ वर्ष पहले—१४ जनवरी १५५१ ई०में—आगरामें जमुनापार रामबागमें हुआ था, जिसे उस समय चारबाग कहते थे। उनके पिता शेख मुबारक अपने समयके अद्वितीय विद्वान् और साथ ही अत्यन्त उदार विचारोंके थे। इसी कारण मुल्ले उन्हें काफिर कहकर हर तरहकी तकलीफ देनेके लिये तैयार थे और शेखको अपनेको बहुत छिपा कर रखना पड़ता था। वह कभी सूफी सन्तका ढोंग रचते हुए ज्ञान-ध्यानमें लगते, कभी मुल्लासे भी चार कदम आगे जाकर गीतके कानमें आनेपर उँगली डालते और इस्लामी धर्मशास्त्रके विरुद्ध पोशाक पहननेपर उसे कटवा देनेसे भी बाज न आते। पर, यह सब अपने बचावका कवचमात्र था मुल्ले उन्हें साम्यवादी सैयद मुहम्मद जौनपुरीका अनुयायी, कभी शिया और नास्तिक कहते। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब रहती, पर, यह जान कर उन्हें बहुत सन्तोष होता, कि उनकी विद्यासे लाभ उठानेके लिये अच्छे-अच्छे प्रतिभाशाली विद्यार्थी उनके पास रहते हैं। मुल्ला बदायूँनी इन्हींके शिष्यों में था।

अबुलफजलका बचपन बापकी इसी गरीबीमें बीता। उन्होंने "अकबरनामा" के तीसरे खण्डमें अपने आरम्भिक जीवनकी कुछ बातें लिखी हैं—"बरस-सवा-बरसकी

उसमें भगवानकी मेहरबानी भी और मैं साफ बातें करने लगा। पाँच वर्षका था, कि दैवने प्रतिभाकी खिड़की खोल दी। ऐसी बातें समझमें आने लगीं, जो औरोंको नसीब नहीं होतीं। १५ वर्षकी उमरमें पूज्य पिताकी विद्यानिधिका खजांची और खासतौरसे पहरेदार हो गया, निधिपर पाँव जमा कर बैठ गया। विद्याकी बातोंमें सदा दिल मुरझाता था और दुनियाके लटकनोंसे मन कोसों भागता था। प्रायः कुछ समझ ही नहीं पाता था। पिता अपने ढंगसे विद्या और बुद्धिके मन्त्र फूँकते थे। हरेक विषयपर एक पुस्तक लिख कर याद करवाते। यद्यपि ज्ञान बढ़ता था, पर वह दिलको न लगता था। कभी तो जरा भी समझमें न आता था और कभी सन्देह रास्तेको रोक लेते थे, वाणी मदद न करती थी, रुकावट हकला बना देती थी। मैं व्याख्यानमें भी पहलवान था, पर जबान खोल न सकता था। लोगोंके सामने मेरे आँसू निकल पड़ते थे, अपनेको स्वयं धिक्कारता था। ...जिन्हें विद्वान् कहा जाता था, उन्हें मैंने बेइन्साफ पाया, इसलिये मन चाहता था, कि अकेलेमें रहूँ, कहीं भाग जाऊँ। दिनको मदरसोंमें बुद्धिके प्रकाशमें रहता, रातको निर्जन खंडहरोंमें भागता।...इसी बीच एक सहपाठीसे स्नेह हो गया, जिसके कारण मदरसेकी ओर फिर आकर्षण बढ़ा।"

अबुलफज़ल अद्भुत प्रतिभाके धनी थे। नाम-धाम कुछ भी हो, पर वह पूरे हिन्दी थे। रंग भी उनका अधिक साँवला था। वह कहा करते थे : "गोरोंका हृदय काला हो सकता है, पर मेरा शरीर काला रहनेपर भी हृदय सफेद है।" उनकी स्मरणशक्ति असाधारण थी, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। घरमें गरीबी हद दर्जेकी थी, लेकिन अबुलफज़लको यह पता नहीं था, कि भूखे हैं या पेट भरा है। जब पढ़नेमें मन लगा, तो मानो दस वर्षकी समाधि लग गई। दो-दो, तीन-तीन दिन तक उन्हें खानेकी सुध न रहती, विद्याकी भूखके सामने पेटकी भूख भूल जाते। जो भी सूखा-रूखा दो नेवाला पेटमें चला जाता, वह उनके लिये मजासे कम नहीं था। अभी वह बालक ही थे, तभी प्राचीन आलिमोंकी बातोंपर उनके मनमें भारी-भारी शङ्कायें उठने लगीं। जब उसे दूसरोंके सामने रखते, तो बचपन समझ कर कोई ध्यान न देता। अबुलफज़लका दिल झुँझलाता। उनका सौभाग्य था, कि उन्हें शेख मुबारक जैसा पिता मिला था, जो बच्चेकी शंकाओंकी कदर करता।

१५ वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते अब वह पढ़ाने भी लगे थे। "हाशिया-असफ़हानी" (असफ़हानी रचित टिप्पणी) पढ़ा रहे थे। पुस्तक ऐसी मिली, जिसके आधेसे अधिक पन्ने दीमक खा गये थे। अबुलफज़लने पहले उसके सड़े-गले किनारेपर पेवंद लगाये। उषाकालमें बैठ कर जहाँसे वाक्य कटा था, उसके आदि और अन्तको देखते, कुछ सोचते, कुछ अर्थ मालूम होने लगता और उसे लिख डालते। इस प्रकार चुकने पर उन्हें पूरी किताब भी मिल गई। मिलाया, तो ३२ जगह केवल पर्याय-

चारी शब्दोंका अन्तर था, तीन-चार जगह प्रायः वही शब्द थे। देखकर लोग हैरान हो गये।

२. दरबारमें

अकबरको गद्दीपर बैठे १८ वर्ष हो गये थे। वह अब तीस वर्षका था। सल्तनत मज़बूत हो चुकी थी, पर अकबर इतनेसे सन्तुष्ट रहनेवाला नहीं था। वह भारतके लिये एक नया स्वप्न देख रहा था—विशाल, एकताबद्ध शक्तिशाली भारत उसका लक्ष्य था। फ़ैज़ीको अकबरके दरबारमें पहुँचे चार साल हो गये थे। अबुलफ़ज़ल भी बीस सालका हो गया था, वयसे नहीं पर विचारमें वृद्ध था। अपने चारों ओरकी दुनियाको देखकर वह असन्तुष्ट था। जिन शास्त्रोंको उसने पढ़ा था, उनसे भी उसका असंतोष नहीं मिटा। जब आलिमोंको और भी बेइन्साफ़ पाया, तो उसका दिल दुनियासे भागने लगा। कभी सन्तों-फ़क़ीरोंके पास जानेका मन करता, कभी तिब्बतके लामाओंके बारेमें सुन कर उनके पास जानेके लिये दिल तड़पता। कभी मन कहता, कि पुर्तगालके पादरियोंके संगमें शामिल हो जाऊँ। कभी आता, पारसी मोबिदोंके पास चला जाऊँ। तरुण अबुलफ़ज़लकी योग्यताकी खबर अकबरके पास पहुँच चुकी थी। जब पहलेपहल दरबारमें जानेका प्रस्ताव आया, तो मन नहीं करता था। बापने समझाया : अकबर दूसरी ही तरहका पुरुष है। उसके पास जाकर तुम्हारी शकाएँ दूर हो जायेंगी। यदि बाप दूसरे मुल्लों-सा सकीर्ण-हृदय होता, तो शायद अबुलफ़ज़लके ऊपर उसकी बातका असर न पड़ता। पर,वह उनके विचारोंको जानता था,सलाह पसन्द की। बादशाह उसी समय आगरामें आया था। अबुलफ़ज़लको कोर्निश (वदना) करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस वक्त इतना ही तक रहा। बगालमें गड़बड़ी हुई और अकबर उधर चला गया। फ़ैज़ी बादशाहकी छाया थे,वह पत्रोंमें लिखते थे : बादशाह तुझे याद किया करते हैं। पटना जीत कर अजमेर आया, तो फिर लगा कि बादशाहने याद किया है। जब फ़तेहपुर-सीकरी आया तो बापसे इजाज़त ले अबुलफ़ज़ल वहाँ जा भाईके पास ठहरे। दूसरे दिन जामा-मस्जिदमें बादशाह आया। अबुलफ़ज़लने दूरसे कोर्निश की। देखतेही बादशाहने अपने पास बुलाया। अबुलफ़ज़लने समझा, कोई और अबुलफ़ज़ल होगा। जब मालूम हुआ, कि मेरा ही भाग खुला है,तो उधर दौड़े। उस दीन और दुनियाकी भीड़में भी बादशाहने कुछ देर तक बात की। अबुलफ़ज़लने कुरानके सूरा-फ़ातहाका भाष्य लिख कर तैयार रक्खा था, उसे भेंट किया। अकबरने अपने मुसाहिबोंसे इस नौजवानके बारेमें ऐसी-ऐसी बातें बताईं, जो उसे भी मालूम नहीं थीं। अब अबुल-फ़ज़लका स्थान अकबरके दरबारमें था;लेकिन,दो वर्ष तक उनके मनकी उचाट नहीं गई।

मुल्ला बदायूँनीने इस समयके बारेमें लिखा है—"अजमेरसे बादशाह लौट कर हिजरी ९८२ (१५७४-७५ ई०)में फ़तहपुरमें थे। खानक़ाह (सलीम चिश्तीके

तरह पूरा करते, कि बादशाहको उनके बिना कोई काम पसन्द नहीं था। पेटमें दर्द होता, तो हकीमजी भी अबुलफजलकी रायसे दवा करते। फुंसीपर मलहम लगता, तो उसके नुस्खेमें भी अबुलफजलकी सलाह शामिल की जाती। अबुलफजलको अब कुरानके भाष्यकार होने की जरूरत नहीं थी। आजादके कथनानुसार—"मुल्लाईके कूचेसे घोड़ा दौड़ाकर उसने मन्सबदार अमीरोंके मैदानमें जा झण्डा गाड़ा।"

दरबारमें आनेके बारह वर्ष बाद हिजरी ९९३ (१५८५-८६ ई०)में पहुँचते-पहुँचते अबुलफजल बहुत आगे बढ़ गये। इसी समय उन्हें हजारीका मन्सब प्राप्त हुआ। चिंगीज खानने अपनी शासन-व्यवस्थामें दर्जोंको दस, सौ, हजार आदिके क्रममें बाँधा था। बाबर और उसके पूर्वज तेमूर लगके दिलोंपर पैगम्बर मुहम्मदसे कम इज्जत काफिर चिंगीजकी नहीं थी और वह बहुत-सी बातोंमें शरीयत नहीं, बल्कि वह चिंगीज खानके तुरा (यास्सा)का अनुसरण करते थे। चिंगीज खानके दफ्तरोंका काम पहले वहाँ-के भिक्षुओंने सँभाला था। भिक्षुको मंगोल भाषामें बख्शी कहते हैं। पीछे मुंशियों (लेखकों)का नाम ही बख्शी रह गया। यह पद भी बाबरके साथ भारत आया और आज कितने ही मुसलमान और हिन्दू अपने नामके साथ बख्शी लगानेमें गौरव अनुभव करते हैं। इसी तरह हजारी, दोहजारी, पंजहजारी दर्जे (मन्सब) भी बराबरके साथ मध्यएसिया से भारतमें आये।

१५८८-८९ ई० में (हिजरी ९९७)में अबुलफजल बादशाहके साथ लाहौरमें थे। उनकी उमर ३६ सालकी थी। इसी साल माँका देहान्त हुआ। दोनों भाइयोंको अपनी माँ-बापसे अत्यन्त स्नेह था। माँकी मृत्युपर वह उर्फीके इस शेरको बढ़ बार-बार कहते थे।

> मूँ कि अज-मेहरे-तू शुद् शीर व ब-तिफ्ली खुर्दम्।
> बाज आँ खून शुद् व अज़ दीद बरूँ मीआयद्।

(तेरी मेहरबानीसे खून जो कि दूध हो गया और मैंने उसे बचपनमें पिया। फिर वह खून हुआ जो, अब आँखसे बाहर निकल रहा है।)

माँकी मौतकी खबर सुनकर अबुलफजल बेहोश हो गये थे। कहते थे—

मूँ मादरे-मन् ब-जेरे-खाक उस्त। गर् खाक बसर कुनम्, चे बाक'स्त।

(जब मेरी माँ मिट्टीके नीचे है तो मैं मिट्टीको अपने सिरपर करूँ तो क्या हर्ज ?)

अकबरने दिलजोई करते हुए कहा—"अगर दुनियाके सभी लोग अमर रहते और एकके सिवा कोई मृत्युके रास्ते न जाता, तो भी उसके दोस्तोंको सन्तोष करनेके सिवा चारा न था। पर इस सरायमें तो कोई देर तक ठहरनेवाला नहीं है, फिर अधीर होनेसे क्या फायदा ?"

अबुलफजलका एक ही पुत्र अब्दुर्रहमान था। बापके बराबर क्या होता, पर वह

दक्खिनके अभियानमें या तू आये या मैं। इसके अतिरिक्त ठीक नतीजेका कोई उपाय न है, न होगा।)

१५९८-९९ ई० (हिजरी १००७)में अकबरने अबुलफजलको दक्खिन जानेका हुकुम देते हुए कहा : शाहजादा मुरादको अपने साथ ले आओ। अगर दूसरे सेनापति वहां का काम सँभालनेका जिम्मा अपने ऊपर ले लें, तो ठीक, नहीं तो शाहजादाको भेज दो और खुद वहीं रह कर काम करो। अबुलफजलने अब कलमकी जगह तलवार सँभाली। बुरहानपुरके पास पहुँचे, तो असीरगढ़का शासक बहादुर खाँ चार कोस नीचे उतर कर अगवानीके लिये आया। उसने बहुत आदर करते हुए मेहमानी करनी चाही, पर मेहमानीकी फुर्सत कहाँ। बुरहानपुर उतरे, तो बहादुर खाँ भी वहाँ पहुँचा। बादशाही फौजके साथ शामिल होनेके लिए कहा, लेकिन बहादुर खाँने बहानाबाजी की। हाँ, अपने बेटे कबीरखाँको दो हजार फौज देकर साथ कर दिया।

अबुलफजलने लिखा है : "दरबारके बहुतसे अमीरोंको मुझे यह काम देना पसन्द नहीं था। उन्होंने हर तरहकी रुकावट डाली।" पुराने-पुराने साथी अलग हो गये, पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और नई सेनाका बन्दोबस्त किया। नसीबा सहायक था, बहुत लश्कर जमा हो गया। अबुलफजल एक तजर्बेकार सेनापतिकी तरह आगे बढ़ते गये। देवलगाँव होते बहुत तेजीके साथ वह शाहजादा मुरादकी छावनीपर पहुँचे। शाहजादाकी हालत खराब हो गई थी। उनके आनेके बाद ही वह मर गया। शाहजादाके मरनेपर माल-दौलत सँभालनेकी लोगोंको फिकर पड़ी, दुश्मन ताक लगाये हुये थे। अबुलफजलने इस स्थितिको सँभाला। शाहजादेके शवको शाहपुरमें भेजकर वहीं दफना दिया। कुछ लोग अब भी तीन-पाँच करनेके लिए तैयार थे, इसी समय पीछे छोड़ी तीन हजार फौज पास चली आई और गड़बड़ करनेवालों का दिमाग ठंडा हो गया। अब्दुर्रहमान भी इस मुहिममें बापके साथ था। बादशाही फौजको लेकर अबुलफजल अहमदनगर की तरफ बढ़े। रास्तेमें गोदावरी गंगा (नदी) की धार चढ़ी हुई थी। सौभाग्यसे वह जल्दी ही उतर गई और सेना आसानीसे पार हो गई। नदीके किनारे अहमदनगरकी सेनाकी जब नजर पड़ी, तो उसके पैर उखड़ गये।

अबुलफजल जब अहमदनगरमें इस प्रकार बिगड़ीको बनानेमें लगे हुये थे, उसी समय सलीम (जहाँगीर)के दिमागमें खब्त हुआ और वह बापसे बिगड़ कर आगरा छोड़ गया। वह अयोग्य था, पर दूसरे पुत्र भी वैसे ही थे। बड़ी तपस्या और मिन्नतोंके बाद अकबरको यह पहला पुत्र मिला था, इसलिये उसके प्रति उसकी अधिक मुहब्बत थी।

अहमदनगरका सुल्तान बुरहानुलमुल्क गद्दीसे वंचित होकर अकबरकी शरणमें आया था और उसकी मददसे उसे फिर गद्दी मिली थी। आशा रक्खी जाती थी कि वह अकबरके प्रभुत्वको स्वीकार करेगा, पर दकिनी इसके लिये तैयार नहीं थे। अब बुरहा

दक्खिनके अभियानमें या तू जाये या मैं। इसके अतिरिक्त ठीक नतीजेका कोई उपाय न है, न होगा।)

१५९८-९९ ई० (हिजरी १००७)में अकबरने अबुलफ़ज़लको दक्खिन जानेका हुकुम देते हुए कहा : शाहज़ादा मुरादको अपने साथ ले जाओ। अगर दूसरे सेनापति वहाँ का काम सँभालनेका जिम्मा अपने ऊपर ले लें, तो ठीक, नहीं तो शाहजादाको भेज दो और खुद वहीं रह कर काम करो। अबुलफ़ज़लने अब कलमकी जगह तलवार सँभाली। बुरहानपुरके पास पहुँचे, तो असीरगढ़का शासक बहादुर ख़ाँ चार कोस नीचे उतर कर अगवानीके लिये आया। उसने बहुत आदर करते हुए मेहमानी करनी चाही, पर मेहमानीकी फ़ुर्सत कहाँ। बुरहानपुर उतरे, तो बहादुर ख़ाँ भी वहाँ पहुँचा। बादशाही फ़ौजके साथ शामिल होनेके लिए कहा, लेकिन बहादुर ख़ाँने बहानाबाजी की। हाँ, अपने बेटे कबीरख़ाँको दो हज़ार फ़ौज देकर साथ कर दिया।

अबुलफ़ज़लने लिखा है : "दरबारके बहुतसे अमीरोंको मुझे यह काम देना पसन्द नहीं था। उन्होंने हर तरहकी रुकावट डाली।" पुराने-पुराने साथी अलग हो गये, पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और नई सेनाका बन्दोबस्त किया। नसीबा सहायक था, बहुत लश्कर जमा हो गया। अबुलफ़ज़ल एक तजर्बेकार सेनापतिकी तरह आगे बढ़ते गये। देवलगाँव हाँसे बहुत तेज़ीके साथ वह शाहज़ादा मुरादकी छावनीपर पहुँचे। शाहज़ादाकी हालत खराब हो गई थी। उनके जानेके बाद ही वह मर गया। शाहज़ादाके मरनेपर माल-दौलत सँभालनेकी लोगोंको फ़िकर पड़ी, दुश्मन वाक़ लगाये हुये थे। अबुलफ़ज़लने इस स्थितिको सँभाला। शाहज़ादेके शवको शाहपुरमें भेजकर वहीं दफ़ना दिया। कुछ लोग अब भी तीन-पाँच करनेके लिए तैयार थे, इसी समय पीछे छोड़ी तीन हज़ार फ़ौज पास चली आई और गड़बड़ करनेवालों का दिमाग ठंडा हो गया। अब्दुर्रहमान भी इस मुहिममें बापके साथ था। बादशाही फ़ौजको लेकर अबुलफ़ज़ल अहमदनगर की तरफ़ बढ़े। रास्तेमें गोदावरी गंगा (नदी) की धार चढ़ी हुई थी। सौभाग्यसे वह जल्दी ही उतर गई और सेना आसानीसे पार हो गई। नदीके किनारे अहमदनगरकी सेनाकी जब नज़र पड़ी, तो उसके पैर उखड़ गये।

अबुलफ़ज़ल जब अहमदनगरमें इस प्रकार बिगड़ीको बनानेमें लगे हुये थे, उसी समय सलीम (जहाँगीर)के दिमागमें खब्त हुआ और वह बापसे बिगड़ कर आगरा छोड़ गया। वह अयोग्य था, पर दूसरे पुत्र भी वैसे ही थे। बड़ी तपस्या और मिन्नतोंके बाद अकबरको यह पहला पुत्र मिला था, इसलिये उसके प्रति उसकी अधिक मुरव्वत थी।

अहमदनगरका सुल्तान बुरहानुलमुल्क गद्दीसे वंचित होकर अकबरकी शरणमें आया था और उसकी मददसे उसे फिर गद्दी मिली थी। आशा रक्खी जाती थी कि वह अकबरके प्रभुत्वको स्वीकार करेगा, पर दक्खिनी इसके लिये तैयार नहीं थे। अब बुरहा

दिया। यह १६००-१६०१ ई० (हिजरी १००६)की बात है। इसी समय बहादुरीका एक और अद्भुत दृश्य अबुलफ़ज़लको देखनेमें आया। सुल्तान बहादुर गुजरातीका एक सेवक परातम था। बहादुरशाहको जब मुगलोंने परास्त कर दिया, तो परातम मुगलोंके सामने सिर न झुका असीरगढ़में चला आया। किलेकी कुंजियाँ उसीके हाथमें थीं। अब वह बूढ़ा और अन्धा था। उसके बेटे जवान थे, जो किलेके बुर्जोंकी रखवाली करते थे। जब बूढ़ेने सुना, कि बहादुर खाँ किलेको मुगलोंको सुपुर्द करने-वाला है, तो उसे इतना धक्का लगा, कि उसी वक्त उसके प्राण निकल गये। उसके बेटोंने कहा इस सल्तनतको किस्मतने जवाब दे दिया, हमारे लिए जीना निर्लज्जता है। यह कह कर उन्होंने अफीम खाकर अपनी जान दे दी।

दक्षिणमें असीरगढ़ और अहमदनगरकी विजय असाधारण विजय थी। उसकी खुशी होनी ही चाहिये थी, लेकिन खबर लगी कि जहाँगीरने खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया है। बादशाहका हुकुम आया था, अहमदनगर जाकर खानखाना (रहीम) के साथ काम करो। वहाँ गये और खानखाना तथा अपने बेटे अब्दुर्रह-मानके साथ कामको सँभाला। फिर बादशाहने आनेके लिये फरमान भेजा। सलीम कमजोर दिमागका था, यह तो इसीसे मालूम होगा, कि वह नूरजहाँके हाथमें बरा-बर खेलता रहा। एक बार ठीक हो जानेपर १६०२-३ ई० (हिजरी १०११)में फिर सलीमके दिलको लोगोंने बिगाड़ दिया। सलीमका ब्याह जयपुरके राजा मानसिंहकी बहिनसे हुआ था, जिससे शाहजादा खुसरो पैदा हुआ। खुसरोपर दादाका बहुत स्नेह था। सलीमको लोगोंने समझा दिया, कि बादशाह तुम्हें वंचित करके खुसरोको अपना युवराज बनायेगा और यह भी कि अबुलफ़ज़लका इसमें बड़ा हाथ है। अबुलफ़ज़लने अकबरके लिये अपना सब कुछ अर्पण कर दिया था, पर इसका यह मतलब नहीं था, कि वह बाप-बेटेके मतभेदको बढ़ानेके कारण थे। पर, सलीम यही समझता था, कि अबुलफ़ज़ल मेरी चुगलियाँ खाता फिरता है। जब उसको मालूम हुआ कि बादशाहका फरमान गया है और अबुलफ़ज़ल दरबारमें लौट रहा है, तो उसे और डर लगा। उसने अबुलफ़ज़लको अपने राहका सबसे बड़ा काँटा समझा।

४. मृत्यु

सन् १६०२ ई०का १६ अगस्त था। अबुलफ़ज़ल तेजीसे आगराकी ओर भागते बर्री सरायसे आध और अन्तरी कस्बेसे तीन कोसपर घोड़ेपर सवार हो चले जा रहे थे। उनके साथ थोड़ेसे सवार थे। आगे धूल उड़ती देखकर अबुलफ़ज़लने घोड़ेकी बाग रोककर ध्यानसे देखना शुरू किया। गदाई खाँ पठान उनका भक्त सेवक पासमें था। उसने प्रार्थना की : "ठहरनेका समय नहीं है, दुश्मन बड़े जोरसे आता मालूम हो रहा है। हमारे पास आदमी कम हैं। आप धीरे-धीरे लौट जायँ। मैं अपने आदमियोंको लेकर उनका रास्ता रोकता हूँ। हमारे मरते-मरते तक आप

आसानीसे अन्तरी पहुँच जायँगे। फिर कोई डर नहीं रहेगा क्योंकि वहाँ राजा रायसिंह तीन हजार सिपाहियोंके साथ उतरे हुये हैं।"

अबुलफजलने कहा—"गदाई खाँ, तेरे जैसे आदमीके मुँहसे यह बात सुनकर ताज्जुब होता है। क्या ऐसे समय यह सलाह देनी चाहिये? जलालुद्दीन महम्मद अकबर बादशाहने मुझ फकीरजादेको मस्जिदके कोनेसे उठाकर सदर (प्रधान-मन्त्री) के मसनदपर बिठाया। क्या आज मैं उसकी प्रतिष्ठाको खाकमें मिला दूँ और इस चोरके आगेसे भाग जाऊँ? फिर दूसरोंके सामने कैसे मुँह दिखाऊँगा? अगर जिंदगी खतम हो चुकी है और किस्मतमें मरना ही लिखा है, तो क्या हो सकता है!"

यह कहते निर्भय हो अबुलफजल घोड़ेकी लगाम उठाकर चले। गदाई खाँ फिर दौड़ कर आगे आया और बोला—"सिपाहियोंको ऐसे मौके बहुत पड़ते हैं। अड़नेका यह वक्त नहीं है। अन्तरीमें जा वहाँके लोगोंको साथ ले फिर आकर बदला लेना सैनिक दाँव-पेच है।"

लेकिन, अबुलफजल उसके लिये तैयार नहीं हुए।

शाहजादा सलीमने अबुलफजलका काम तमाम करनेकी सोची थी। उसे बतलाया गया, अबुलफजलका रास्ता बुन्देलोंके देशके बीचसे है। ओरछाके राजा नरसिंहदेवका बेटा मधुकर आजकल बगावतपर उतरा हुआ है। वह काममें मदद कर सकता है। सलीमने मधुकरको लिखा, कि यदि तुम अबुलफजलको खतम कर दो, तो तख्तपर बैठनेपर हम तुम्हें मालामाल कर देंगे।

मधुकर अपने आदमियोंको लिये शेखके पास पहुँचा। अबुलफजल ५१ सालके थे, पर उनके खूनमें उस वक्त जवानी दौड़ पड़ी। वह तलवार पकड़कर मुकाबिलेके लिये खड़े हो गये। साथी पठान भी जानपर खेले। अबुलफजलके शरीर पर कई घाव लगे। एक बरछेकी चोट ऐसी लगी, कि वह घोड़ेपरसे गिर पड़े। उनके अनुयायी लड़ते रहे। बुन्देलोंने अन्तमें अबुलफजलके निर्जीव शरीरको एक पेड़के नीचे पाया। यहाँ आस-पास बहुत-सी लाशें पड़ी थीं। मधुकरने अबुलफजलका सिर काट कर सलीमके पास भेजा। शाहजादेने उसे पाखानेमें डलवा दिया। कई दिनों वह उसीमें पड़ा रहा। सलीम जहाँगीरके नामसे तख्तपर बैठा। उसने ओरछाके राजा मधुकरको तीनहजारी मन्सब दिया। अबुलफजलको अन्तरीमें दफना दिया गया। ग्वालियरसे पाँच कोसपर अवस्थित इस छोटेसे कस्बेमें आज भी हमारे इतिहासका अद्वितीय राजनीतिज्ञ, अपने देशका परमभक्त सो रहा है। परतन्त्र मूढ़ भारतने उसकी कदर नहीं की, किन्तु क्या अब भी अन्तरीको उसी तरह गुमनाम रहना है?

अकबरको यह दुःखद खबर पहुँचानेका साहस किसको हो सकता था? सब यही सोचते थे, कि कैसे बादशाहके पास इसे कहें। अकबरके लिये अबुलफजल प्राण

बहिश्चर प्राण थे। वह जानता था, यही मेरा सबसे घनिष्ठ हितैषी है। तैमूरी-वंशमें रवाज था—जब कोई शाहज़ादा मर जाता, तो उसकी खबर बादशाहके सामने साफ तौरसे नहीं पहुँचाई जाती, बल्कि मृत व्यक्ति का प्रतिनिधि हाथपर काला रूमाल बांध कर बादशाहके सामने चुपचाप खड़ा होता। बादशाह समझ जाता, कि उसका स्वामी मर गया। अबुलफ़ज़लका वकील (प्रतिनिधि) सिर झुकाये काले रूमालसे हाथ बांधे धीरे-धीरे डरता हुआ तख्तके पास गया। अकबरने बहुत हैरान होकर पूछा—"खैर बाशद?" (कुशल तो है?) वकीलने असली बात बतलाई, तो बादशाहकी ऐसी हालत हो गई, जैसी किसीके अपने बेटेके मरनेपर भी न होगी। कई दिन तक न उसने दरबार किया और न किसी अमीरसे बात की। अफ़सोस करता और रोता था। बार-बार छातीपर हाथ मारता और कहता था—"हाय, हाय शेख़ूजी, बादशाहत लेनी थी, तो मुझे मारना था, शेखको क्यों मारा।" अकबर सलीमको शेख़ूजी कहता था।

३. अबुलफ़ज़ल का धर्म

अबुलफ़ज़लका धर्म मानव-धर्म था। वह मानवताको धर्मोंके अनुसार बाँटनेके लिये तैयार नहीं थे। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई उनके लिये सब बराबर थे। बादशाहका भी यही मजहब था। जब लोगोंने ईसाई इंजीलकी तारीफ की, तो उसने शाहज़ादा मुरादको इंजील पढ़नेके लिये बैठा दिया और अबुलफ़ज़ल तर्जुमा करनेके लिये नियुक्त किये गये। गुजरातसे अग्निपूजक पारसी अकबरके दरबारमें पहुँचे। उन्होंने ज़र्दुश्तके धर्मकी बातें बतलाते आगकी पूजाकी महिमा गाई। फिर क्या था, अबुलफ़ज़ल-को हुक्म हुआ—"जिस तरह ईरानमें अग्नि-मन्दिर बराबर प्रज्वलित रहते हैं, यहां भी उसी तरह हो। दिन-रात अग्निको प्रज्वलित रक्खो।" आग तो भगवान्‌के प्रकाशकी ही एक किरण है। अग्नि-पूजामें हिन्दू भी शामिल थे, इसलिये उन्होंने इसकी पुष्टि की होगी, इसमें सन्देह नहीं। जब शेख मुबारक मर गये, तो अबुलफ़ज़लने अपने भाइयोंके साथ भद्र (मुंडन) करवाया। अकबरने खुद मरियम मकानीके मरनेपर भद्र कराया था। लोगोंने समझा दिया था, कि यह रस्म हिन्दुओंमें ही नहीं, बल्कि तुर्क सुल्तानोंमें भी थी। यही वह बातें थीं, जिनके कारण कट्टर मुसलमान अबुलफ़ज़लको काफ़िर कहते थे। पर, न वह काफ़िर थे और न ईश्वरसे इन्कार करनेवाले। रातके वक्त वह सन्तों-फ़कीरोंकी सेवामें जाते और उनके चरणोंमें अशर्फियाँ भेंट करते। बादशाहने कश्मीरमें एक विशाल इमारत बनवाई थी, जिसमें हिन्दू, मुसलमान सभी आकर पूजा-प्रार्थना करते। अबुलफ़ज़लने इसके लिये वाक्य लिखा था—

"इलाही, ब-हर खाना कि मी निगरम्, जोयायन्द अन्द। व ब-हर ज़बाँ कि मी शुनवम्, गोयाय तू।" (हे अल्ला, मैं जिस घरपर भी निगाह करता हूँ, सभी तेरी

सूफ़ी, विद्वानों, पंडितों, कलाकारों, दस्तकारों, सन्त-फ़कीरों, मन्दिरों-मस्जिदों आदिकी बातोंको भी नहीं छोड़ा गया है और साथही हिन्दुस्तानके लोगोंके धर्म, विश्वास और रीति-रवाजका भी ज़िक्र किया है। जिस चीज़की महत्ताको १६वीं सदीमें अँग्रेज़ोंने समझा, उसे अबुलफ़ज़लने साढ़े तीन सौ वर्ष पहले समझकर लिख डाला। "अकबर-नामा"में अबुलफ़ज़ल अलंकारिक भाषा इस्तेमाल करते हैं, पर "आईन"में उनकी भाषा प्रभावशाली होते भी बहुत सीधी-सादी हो जाती है। दोनों पुस्तकें बहुत विशाल हैं। (अबुलफ़ज़लकी हरेक कृतियोंका हिन्दीमें अनुवाद होना आवश्यक है।)

३. मुकातिबाते अल्लामी—अबुलफ़ज़लको अल्लामी (महान् पण्डित) कहा जाता था। इस पुस्तकमें उनके पत्रोंका संग्रह है। इसके तीन खण्ड हैं। पहले खण्डमें वे पत्र हैं, जिन्हें अकबरने ईरान और तूरान (तुर्किस्तान) के बादशाहोंके नाम अबुल-फ़ज़लसे लिखवाये थे। इसीमें बादशाही फ़रमान भी दर्ज हैं। समरकन्दका शासक उज़्बक सुल्तान अब्दुल्ला बहुत ही प्रतापी खान और अकबरका खानदानी दुश्मन भी था। वह कहता था—"अकबरकी तलवार तो नहीं देखी, लेकिन मुझे अबुलफ़ज़लकी कलमसे डर लगता है।" दूसरे खण्डमें अबुलफ़ज़लके अपने खत हैं, जो दरबारके अमीरों, अपने मित्रों और सम्बन्धियोंको उन्होंने लिखे। तीसरे खण्डमें उन्होंने पुराने ग्रंथ-कारोंकी पुस्तकोंके ऊपर अपने विचार प्रकट किये हैं। इसे साहित्यिक समालोचना कह सकते हैं।

४. ऐयारेदानिश—पंचतन्त्र अपने गुणोंके लिये दुनियामें मशहूर है। छठी सदीमें नौशेरवाँने इसका अनुवाद पहलवी भाषामें कराया था। अब्बासी खलीफ़ोंके ज़मानेमें इसे अरबीमें किया गया। सामानियोंके समय फ़ारसीके महान् तथा आदि-कवि रूदकीने उसे पद्यबद्ध किया। मुल्ला हुसेन वायज़ने फ़ारसीमें करके इसका हिन्दुस्तानमें प्रचार किया। अकबरने उसे सुना। जब मालूम हुआ कि मूल संस्कृत पुस्तक अब भी मौजूद है, तो कहा—कि घरकी चीज़ है, सीधे क्यों न अनुवाद करो। अबुलफ़ज़लने इस पुस्तकको "ऐयारेदानिश"के नामसे सन् १५८७-८८ ई० (हिजरी ९९६) में समाप्त किया। मुल्ला बदायूँनी इसको भी लेकर अकबरपर आक्षेप किये बिना नहीं रहे और कहते हैं: इस्लामकी हर बातसे उसे घृणा है, हर इल्म (शास्त्र) से बेज़ारी है। ज़बान भी पसन्द नहीं, हरफ़ भी प्रिय नहीं। मुल्ला हुसेन वायज़ने कलीलादमना (करकट दमनक) का तर्जुमा "अनवार सुहेली" कैसा अच्छा किया था। अब अबुलफ़ज़लको हुक्म हुआ, कि इसे साधारण साफ़ नंगी फ़ारसीमें लिखो, जिसमें उपमा-अतिशयोक्ति भी न हो, अरबी वाक्य भी न हो।

५. रुक्आते-अबुलफ़ज़ल—यह अबुलफ़ज़लके रुक्कों (लघु-पत्रों) का संग्रह है। इसमें ४६ रुक्कोंके रूपमें बहुत-सी ऐतिहासिक, भौगोलिक और दूसरी महत्त्वकी

बातें सीधी-सादी भाषामें दर्ज हैं। जिनके नाम रुक्के लिखे गये हैं, उनमें कुछ हैं-अब्दुल्ला खान, दानियाल, अकबर, मरियम मकानी (अकबरकी माँ), शेख मुबारक फैजी, उर्फी, (माथिया फैजी)।

६. करकोल—करकोल फकीरोंके भिक्षा-पात्रको कहते हैं, जिसमें वह हर घरसे मिलनेवाले पुलाव, भुने चने, रोटी, दाल, सूखा-तर रोटीका टुकड़ा, मिट्ठा सलोना-खट्टा-कड़वा सभी कुछ डाल लेते हैं। अबुलफजल जो भी सुभाषित सुनते उन्हें जमा करते जाते। इसको ही करकोल नाम दिया गया। इसे देखनेसे अबुल फजलकी रुचिका पता लगता है।

सन्तान

अबुलफजलकी तीन बीबियाँ थीं। पहली हिन्दुस्तानी थी, जिसके साथ माँ बापने शादी कर दी थी। दूसरी कश्मीरन थी, जो कश्मीरकी यात्राओंमें मिली थी। तीसरी बीबी ईरानी थी, जिसकी जरूरत के बारेमें आजाद कहते हैं—"यह बीबी केवल भाषाकी शुद्धता और महावरोंको समझानेकी गरजसे की होगी। फारसी लिखनेका लिखना अबुलफजलका काम था। वह भाषाका परखनेवाला था। हजारों मुहावरे ऐसे होते हैं, जो अपने स्थानों पर अपने आप निकल आते हैं। उन्हें न पूछनेवाला पूछ सकता है, न बतानेवाला बता सकता है। भाषाभाषी उसको यों ही बोल जाता है।...निश्चय ही जो बातें अपनी मातृभाषाके बारेमें आदमी जानता है, पुस्तकोंसे पढ़ कर उसके बारेमें उतना नहीं जान सकता। ईरानी बीबीकी जबान इसमें सहायक रही होगी।"

अबुलफजलका एक ही लड़का अब्दुर्रहमान था। जहाँगीरने यद्यपि बापको बुरी तरह मरवाया, पर बेटेपर उसका गुस्सा नहीं उतारा। उसने अब्दुर्रहमानको दोहजारी मन्सब और अफजल खाँकी पदवी प्रदान की और अपने गद्दीपर बैठनेके तीसरे साल उसके मामा इस्लाम खाँकी जगहपर बिहारका सूबेदार बना गोरखपुरकी जागीर दी। अब्दुर्रहमान पटनामें रहता था। बापके मरनेके ग्यारह वर्ष बाद वह मरा। उसके लड़के पशोतनको भी जहाँगीरने मन्सब दिया था और शाहजहाँके वक्तमें वह एक बड़ा अफसर था।

अध्याय ११

मुल्ला बदायूँनी (१५४०-९६ ई०)

१. बाल्य

मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी अपने समयके महान् विद्वान् और कलमके जबर्दस्त धनी थे। उन्होंने बहुत लिखा है और ऐसा लिखा है, जो किसी भी पुस्तकालयके लिए महार्घ आभूषण हो सकता है। शमसुल-उल्मा मुहम्मद हुसेन आजाद, बदायूँनीके मुल्लापन और धार्मिक कट्टरताके सख्त विरोधी थे, पर उन्होंने भी उनकी योग्यताको स्वीकार करते लिखा है—"राज्यकी साधारण क्रान्तियों और सैनिक अभियानोंसे कोई भी व्यक्ति परिचित हो सकता है, लेकिन राज्यके स्वामी और राज्यके स्तम्भोंमेंसे हरेकके चाल-व्यवहार, उनके गुप्त और प्रकट भेदोंसे जितना बदायूँनी परिचित थे, उतना दूसरा न होगा। इसका कारण यह है, कि अपने ग्रंथ और विद्या सम्बन्धी प्रवीणता, समाजकी परिशता आदि गुण उनमें थे। अकबरके एकान्त निवास और दरबारमें वह हमेशा पासमें जगह पाते और अपने ज्ञान तथा कहनेके सुन्दर ढंगसे दरबारको दोस्ताना वार्तालापसे गुलजार करते थे। इसके साथ आलिम, छन्द और शेख्र तो उनके अपने ही (घरके) थे। तारीफ यह, कि उन्हींमें रहते थे, लेकिन खुद स्वयं उनके दुर्गुणोंसे लिप्त न थे। दूसरे देखनेवाले थे, इसलिए उन्हें गुण-अवगुण अच्छी तरह दिखलाई पड़ता था। ऊँची जगह पर खड़े होकर देखते थे, इसलिए हर जगहकी खबर और हर खबरका मर्म उन्हें मालूम होता था। वह अकबर, अबुलफजल, फैजी, मखदूमुलमुल्क और सदर (नबी) से नाराज थे, इसलिए जो कुछ हुआ, उसे उन्होंने साफ-साफ लिख दिया। असलबात तो यह है, कि लेखन-शैलीका भी उनका एक ढंग है। यह गुण उनकी कलममें भगवान्-प्रदत्त था। उनके इतिहासमें यह कमी जरूर है, कि अभियानों और विजयोंका विवरण नहीं मिलता और घटनाओंको भी वह क्रमबद्ध बयान नहीं करते। लेकिन, उनके गुणकी तारीफ किस कलम से लिखूँ! उनका इतिहास अकबरी युगकी एक तसवीर है।...उनकी बदौलत हमने सारे अकबरी युगका दर्शन किया। इन सब बातों के होते भी जो अभाग्य उनकी उन्नतिमें बाधक हुआ, वह यही था, कि जमानेके मिजाजसे अपना मिजाज न मिला सके। जिस बातको खुद बुरा समझते थे, चाहते थे कि उसे सब बुरा समझें और कार्यरूपमें परिणत करें। जिस बातको अच्छा समझते थे, उसे चाहते थे कि किसी तरह वह इसी

तरह हो जाय।...जिस तरह दिलमें जोश था, उसी तरह उनकी जबानमें जोर था। इसलिये ऐसे मौकेपर किसी दरबार और जलसेमें बिना बोले नहीं रह सकते थे। इस आदत ने उनके लिए बहुतसे दुश्मन प्रदान किये।..." असहलताओंका ही उन्हें सामना करना पड़ा, पर "कलम और कागजपर उनकी हुकूमत है, जहाँ मौका पाते हैं, अपनी घिसी हुई कलमसे जखम लगा देते हैं। ऐसा जखम, कि जो कयामत तक न मरे।" "मुल्ला बदायूँनी शरीयतकी पाबन्दीमें कट्टर मुल्लाओंसे अपनेको चार कदम आगे रखना चाहते थे, लेकिन, ऐसा सोचते भी गाते-बजाते थे, बीणापर हाथ दौड़ाते थे। दो-दो हाथ शतरंज खेलते थे, जिसे कहते हैं हरफनमौला। वह अपनी पुस्तकमें हर घटना और हर बातको निहायत खूबसूरतीसे कह जाते हैं और ऐसा चित्र खींचते हैं कि कोई बात नहीं छूटती। उनके इतिहास ("मुतखिबुत्-तवारीख")की हरेक बात चुटकुला और हर वाक्य लतीफा (मसल) है। उनकी लेखनीके छिद्रमें हजारों छोर और खंजर हैं। उनके लेखमें वाक्योंके सजानेका काम नहीं है। हरेक बातको बेतकल्लुफ लिखत चले जाते हैं। उससे जिधर चाहते हैं, सुई चुभा देते हैं, जिधर चाहते हैं नश्तर, जिधर चाहते हैं छुरी लगा देते हैं। यदि चाहते हैं, तो तलवारका भी एक हाथ झाड़ देते हैं। यह सब इतनी खूबसूरतीसे कि देखनेवाला तो अलग, जखम खानेवाला भी लोट-पोट जाता है। अपने ऊपर भी व्यंग करने और बनानेसे बाज नहीं आते। सबसे बड़ी तारीफ यह है, कि असली हाल लिखनेमें वह दोस्त और दुश्मन का जरा भी भेद नहीं रखते।"

मुल्ला बदायूँनीकी "मुतखिबुत्-तवारीख" (इतिहास-संग्रह) अकबरके जमानेमें चुपचाप लिखी गई थी। यह निश्चित ही था, कि यदि उसकी भनक अकबर और उसके दरबारियोंको लगती, तो मुल्लाकी खैरियत नहीं थी। उन्होंने उसे बहुत यत्नसे छिपा करके रखा। अकबरके जमानेमें पता नहीं लगा। जहाँगीरके जमानेमें मालूम हुआ। उसने उसे देखा भी और हुकुम दिया कि इसने मेरे बापको बदनाम किया है, इसके बेटेको कैद करो और घर लूट लो। बदायूँनीके वारिस गिरफ्तार होकर आये। उन्होंने कहा—"हम तो उस समय बच्चे थे, हमें खबर नहीं थी।" उन्होंने जमानत दी, कि हमारे पाससे यदि पुस्तक निकले, तो चाहे जो सजा दी जाय। पुस्तक-विक्रेताओंसे भी मुचलके लिए गये कि न यह इस तारीखको खरीदें, न बेचें। खाफी खाँने शाहजहाँसे महम्मदशाहके जमाने तक की प्रायः एक सदीको देखा था। वह बतलाता है, कि सारी कड़ाईके रहते भी राजधानीमें पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानोंपर सबसे ज्यादा तारीख बदायूँनी ही नजर आती थी।

मुल्ला बदायूँनी महान् विद्वान् थे, इसका कुछ पता आजादकी पंक्तियोंसे मालूम होगा। यद्यपि फैजीकी तरह वह संस्कृतके ज्ञाता नहीं थे, लेकिन उन्होंने "सिंहासन

बत्तीसी", "महाभारत", "रामायण" जैसे संस्कृतके ग्रन्थोंका अनुवाद पण्डितों
सहायतासे किया था। इससे यह भी मालूम होगा, कि उनकी विद्वत्ता बहुमुखी थी

मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी अभिमानके साथ कहते हैं कि मेरा जन्म शेरशाह बादशाहके कालमें हुआ था। वह अकबरके काफिराना तौर-तरीकेसे बेजार थे। ख्याल करते थे, कि शेरशाह दीनका सच्चा बादशाह था। पर, अकबरकी बहुत सी सुधारवातोंका आरम्भ करनेवाला शेरशाह ही था। मुल्लाको बदायूँनी कहते हैं जिससे सन्देह होता है कि वह बदायूँमें पैदा हुये। पर बात ऐसी नहीं थी। वह वस्तुतः आगरासे अजमेर जानेवाले रास्तेके पाँचवें पड़ाव बिसावरके पास अवस्थित टोडा गाँवमें पैदा हुये, जिसे टोडाभीम भी कहा जाता था। उस समय यह सरकार (जिला) आगरामें था और कभी अजमेरके सूबेमें भी। इनकी ननिहाल बयानामें थी, जहाँ साम्यवादका शहीद शेख अलाई पैदा हुआ था। मुल्ला खलीफा उमरके वंशके फारूकी शेख थे। अपने बुजुर्गोंका उन्होंने विस्तारके साथ वर्णन नहीं लिखा है। घर अमीर नहीं था। हाँ, ननिहाल और पिताका घर विद्या और दीनके बारेमें गरीब नहीं था। इनके पिता हामिदशाह-पुत्र मलूकशाह सम्भलके सन्त शेख मंजूके मुरीद थे। पिताने मामूली अरबी-फारसीकी किताबें पढ़ी थीं। इनके नाना मखदूम अशरफ, सलीमशाहके एक पचहजारी सरदारकी फौजमें फौजी अफसर थे और उसी सम्बन्धसे सूबा आगराके बियाना कस्बेके पास बिजवाड़ामें रहते थे। १५४५ से १५५३ ई० (हिजरी ६६२-१०००) तक शेख अब्दुल कादिर अपने पिता मलूकशाहके पास रहे। पाँच सालकी उमरमें सम्भलमें रह कुरान आदि पढ़ते रहे, फिर नानाने अपने पास बुला लिया और व्याकरण तथा कितनी ही दूसरी पुस्तकें खुद पढ़ाई। दोनों खानदानोंमें धर्मकी ओर लोगोंका ज्यादा झुकाव था। सैयद महम्मद मखदूम इनके पीर (दीक्षागुरु) भी वहीं रहते थे। वह बड़े सुन्दर कुरानपाठी थे। उनसे इन्होंने बड़े मधुर स्वरके साथ कुरान पढ़ना सीखा। यह ६६० हिजरी (१५५२-१५५३ ई०) साल था, सलीमशाह सूरीकी हुकूमत थी। प्रसिद्ध कुरानपाठीका शिष्य होना इनके लिए बड़ा लाभदायक साबित हुआ। इसीके कारण अकबरी दरबारमें पहुँचकर यह बादशाहके सात दिनके सात इमामोंमेंसे एक बने और "इमाम-अकबरशाह" कहलाये।

[illegible] लिखते हैं: बारह सालकी उमर थी। पिताने सम्भलमें आकर मियाँ हातिम सम्भलीकी सेवा स्वीकार की। मियाँ सम्भलीकी खानकाह (मठ)में १५५३-५४ ई० (हिजरी ६६१)में पहुँचकर कितने ही धार्मिक ग्रंथ पढ़े और उनसे दीक्षा ली। मियाँने एक दिन पितासे कहा, कि हम तुम्हारे लड़केको अपने उस्ताद मियाँ शेख अजीजुल्ला शाहबकी तरफसे भी टोपी-सेली देते हैं, ताकि बाह्य विद्यासे भी परिचित हो जाय। इसीका फल यह था कि फिका (धर्मशास्त्र) को बदायूँनीने खूब पढ़ा। यद्यपि तकदीर पीछे उन्हें दूसरी ओर खींच ले गई, लेकिन मुस्लिम धर्मशास्त्र उनका प्रिय विषय रहा।

शेख सादुल्ला नहवी व्याकरणके बहुत जबर्दस्त आचार्य थे। यह बियानामें रहते थे। नानाके पास आनेपर अब्दुल अजीजने उनसे "काफिया"की पुस्तक पढ़ी। जब हेमूकी सेना लूटती-पाटती बियावर पहुँची उस वक्त अब्दुल अजीज सम्भलमें थे। बियावर लुट कर बरबाद हो गया। बड़े अफसोससे लिखते हैं: पिताका पुस्तकालय भी लुट गया। दूसरे साल अकाल पड़ा। लोगोंकी दयनीय दशा देखी नहीं जाती थी। हजारों आदमी भूखों मर रहे थे। आदमीको आदमी खा रहा था।

२. आगरामें

सम्भल या बियानामें रहकर अधिक पढ़नेकी गुंजाइश नहीं थी, इसलिए १७ वर्षकी उमरमें, सन् १५५८-५६ ई० (हिजरी ६६६)में बाप-बेटे वतन छोड़कर आगरा पहुँचे। वहाँ बेटेने मीर सैयद महम्मदकी टीका "शम्सिया" पढ़ी। मीर सैयद महम्मद मीर अली हमदानीके पुत्र थे, जिनका काश्मीरको मुसलमान बनानेमें बहुत बड़ा हाथ था। उस समय अपने देशसे निर्वासित बुखारावासी काजी अबुल् मुआली आगरामें रहते थे। समरकन्द बुखारामें दर्शन और तर्कका बहुत जोर हो गया था। लोग दीनदार मुसलमानोंका मजाक उड़ाते कहते—"गदहा है गदहा"। जब कोई मना करता, तो कहते—"हम इसे तर्कसे सिद्ध कर सकते हैं। देखो, प्रत्यक्ष ही है कि यह हैवान नहीं है। हैवान सामान्य है और इन्सान विशेष। जब हैवानपन (सामान्य) इसमें नहीं है, तो इसका विशेष इन्सानपन भी इसमें नहीं हो सकता। फिर गदहा नहीं तो क्या है!" यह बातें इतनी हदसे गुजर गईं, कि वहाँके शेखों-सूफियोंने फतवा लिखकर खान अब्दुल्लाके सामने रक्खा और तर्कशास्त्रका पढ़ना-पढ़ाना हराम कर दिया। इसी सिलसिलेमें काजी अबुल मुआली और दूसरे कितने ही वहाँसे निकाले गये। अब्दुल कादिरने अबुल मुआलीके पास भी पाठ पढ़े। नकीब खाँ इस समय उनके सहपाठी थे। यह परिचय उनके बहुत काम आया, क्योंकि पीछे नकीब खाँ अकबरके पुस्तकपाठी हो गये।

फैजी और अबुलफजलके पिता शेख मुबारककी विद्याकी उस समय बड़ी ख्याति थी, यद्यपि मुल्ला लोग उन्हें काफिर कहनेसे भी बाज नहीं आते थे। अब अब्दुल कादिर उनके शिष्य हुए। वह अपने गुरुके बारेमें कहते हैं: "मैं जवानीमें चन्द साल उनके चरणोंमें पाठ पढ़े। उनका हक मुझपर बहुत है।" फैजी और अबुलफजल उनके गुरु-पुत्र थे। यदि वह पुत्रके तौरपर मुबारककी विद्या और प्रतिभाके धनी थे, तो अब्दुल कादिर शिष्यके तौरपर थे। लेकिन, जहाँ पुत्रोंने पिताके दाय-भागके तौरपर उनके स्वतन्त्र विचारोंको प्राप्त किया था, वहाँ अब्दुल कादिर मुल्लाके मुल्ला ही रहे, जिसके कारण इतना आगे बढ़ नहीं सके, यद्यपि अकबरके दरबारमें इससे बहुत आसानी हुई।

आगरामें सरदार मेहर अली बेगने अब्दुल अजीज और उनके पिताको अपने पास बड़े प्रेमसे रक्खा। शेरशाहीमें अदली खान भी था, जिसका नौकर जमाल खाँ चुनारगढ़ (जिला मिर्जापुर)का हाकिम था। उसने स्वयं अकबरी दरबारमें प्रार्थना की, कि कोई शाही अमीर आये, तो मैं उसे किला समर्पित कर दूँगा। बैरमखाँने मेहर अली बेगको इसके लिये पसन्द किया। बेगने मुल्ला अब्दुल कादिरसे कहा—तुम भी चलो। यह स्वयं मुल्ला और मुल्लाके बेटे थे। चुनार जाकर किसी आफतमें पड़नेकी जगह उन्होंने आगरामें रह कर अपनी पढ़ाई जारी रखना अच्छा समझा। बेगने मलूकशाह और शेख मुबारकको मजबूर करते हुए कहा, कि यदि यह न चलेंगे, तो मैं भी जानेसे इन्कार कर दूँगा। आखिर अब्दुल कादिरको मजूर करना पड़ा। लिखते हैं—

"ऐन बरसात थी। लेकिन दोनों बुजुर्गोंकी बात मानना आवश्यक समझा। नई यात्रा थी, तो भी पढ़ने में विघ्न डाला और सफ़रके खतरे और भयको उठाया। कन्नौज, लखनौती, जौनपुर, बनारसकी सैर करते दुनियाकी विचित्रताओंको देखते, जगह-जगह आलिमों और शेखोंकी सोहबतोंसे लाभ उठाते चले। हम चुनार पहुँचे, तो जमाल खाँने बहुत दिखलावेके साथ खातिरदारी की। लेकिन, पता लगा कि दिलमें दगा है। मेहर अली बेग हमें वहीं छोड़ स्वयं मकानोंकी सैरके बहाने सवार हो कान झाड़ कर निकल गया। जमाल खाँ बदनामीसे घबराया। हमने कहा—'कोई हरज नहीं, किसीने उनके दिलमें कुछ शका डालदी होगी। अच्छा, हम स्वयं समझा-बुझा कर ले आते हैं।' इस बहाने मुल्ला भी वहाँसे चम्पत हुए। चुनारका किला पहाड़के ऊपर है, नीचे गंगा बड़े जोर-शोरसे बहती है। नावपर जा रहे थे। बरसाती धाराने उसे खींच लिया।" मुल्ला उस घबराहटके बारेमें लिखते हैं—"नाव बड़े खतरनाक भँवरमें जा पड़ी और किलेकी दीवारके पास पहाड़ी छोरपर लहरोंमें फँस गई। हवा भी ऐसी विरुद्ध चलने लगी, कि मल्लाह कुछ नहीं कर सकते थे। अगर जगल और नदीका भगवान कर्णधार न बनता, तो आशाकी नौका आफतके भँवरमें पड़ कर मृत्युके पहाड़से टकरा जाती। नदीसे निकल कर जगलमें पहुँचे। पता लगा, ग्वालियरके सन्त शेख महम्मद गौस पहाड़ीके किनारे इसी जंगलमें भजन करते थे। उनका एक रिश्तेदार मिला। उसने एक गुफा दिखलाई और कहा—यहीं शेख महम्मद गौस पत्ती खाकर बारह वर्ष तक तपस्या करते रहे।"

आगरामें रहते तीन साल हुए थे, जब कि १५६१-६२ ई० (हिजरी ६६६)में पिता चल बसे। उनके शवको बिसावरमें ले जाकर दफनाया। अगले साल मुल्ला सहसवानके इलाकेमें सम्भल (मुरादाबाद)में थे। वहीं चिट्ठी मिली, कि नाना मखदूम अशरफ भी बिसावरमें मर गये। दो वर्षके भीतर उनको अपने सबसे प्रिय और मेहरबान पिता और नानाकी जुदाई सहनी पड़ी। अब दुनिया उनको काटने दौड़ने लगी।

"मुझसे ज्यादा कोई शोकग्रस्त नहीं। दो ग़म हैं, दो शोक हैं और मैं अकेला हूँ। एक सिर है, दो खुमार (नशा-उतार)की ताक़त कहाँ से लायें! एक सीना, दो डंक कैसे उठायें?"

३. टुकड़ियाकी सेवामें

हुसेन खाँ टुकड़िया हुमायूँके वक्तसे एक बहुत विश्वासपात्र सेनापति रहता चला आया था। पहलेकी सेवाओं और कुर्बानियोंके ख्यालसे अकबर उसपर बहुत मेहरबान था। लेकिन, टुकड़िया धर्मान्ध था, उसे औरंगजेबके जमानेमें पैदा होना चाहिये था। जिस वक्त अकबर हिन्दू-मुसलमानोंको एक करनेके काममें जुटा हुआ था और स्वयं आधा हिन्दू बन गया था, उसी समय टुकड़िया कुमाऊँ-गढ़वालके मन्दिरोंको तोड़ता लूटता लोगोंको तलवारके घाट उतार रहा था। मुल्ला बदायूँनीके लिये वह आदर्श पुरुष था। उसके पास हिजरी ९७३-८१ (सन् १५६५-७३ ई०) तक, आठ वर्ष रहे। एटा जिलेके पटियाली गाँवमें महाकवि अमीर खुसरो पैदा हुए। वही पटियालीका इलाका हुसेन खाँ को जागीरमें मिला था। १५६५-६६ ई० (हिजरी ९७३) में मुल्ला साहब टुकड़ियासे मिले। अकबरके दरबारका भी आकर्षण था, लेकिन यह धर्मान्ध पठान उन्हें अधिक पसन्द आया। बदायूँनी हजारों निरपराधोंके खूनसे हाथ रँगनेवाले उस नृशंसको "सदाचारी, संत-प्रकृति, दानी, पवित्र-आत्मा, धर्मभीरु, विद्यापोषक" आदि उपाधियोंसे विभूषित करते हैं। मुल्ला यहाँ रहते गुमनाम जीवन बिताते रहे। 'वह भले लोगोंकी सुध लेता, मदद करता है।" मुल्ला साहबने टुकड़ियाकी तारीफ करते कलम तोड़ दी और उसे आजादके शब्दोंमें—"पैगम्बरों तक नहीं तो पैगम्बरके दोस्तों औलियाके पास तक जरूर पहुँचा दिया।" टुकड़ियाने अकबरके बाईसवें सन्‌जलूस (११ मार्च १५७७-१० मार्च १५७८ ई०) तक बड़ी ईमानदारीसे काम किया था और उसे तीन हजारी का दर्जा मिला था। मुल्ला अब्दुल कादिरको ऐसे धर्मान्ध सरक्षककी जरूरत थी।

"कैस सेहरामें अकेला है, मुझे जाने दो।
खूब गुजरेगी, जो मिल बैठेंगे दिवाने दो।"

आठ साल तक मुल्ला बदायूँनी उसीके पास रहते "काललूलाह, कालरसूल" (अल्लाने श्रीमुखसे यह कहा, रसूलने श्रीमुखसे यह कहा) करते अपना और टुकड़ियाका दिल खुश करते जागीरके कारबारमें उसे मदद देते रहे। इस प्रकार २४ से ३२ वर्षकी उमर उनकी टुकड़ियाके पास बीती। यह ऐसी आयु है, जिस वक्तका लगा रंग पक्का हो जाता है। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुल्लाकी कलम काफिरोंकी गर्दन काटनेमें टुकड़ियाकी तलवारसे होड़ लगाती रही।

बदायूँ—सन् १५६७-६८ ई० (हिजरी ६७५)में मालिकसे छुट्टी लेकर मुल्ला साहब बदायूँ पहुँचे और यहीं दूसरी शादीकी हविस पूरी की। इस शादीका वर्णन उन्होंने सिर्फ डेढ़ पंक्तियोंमें किया है। लेकिन, उससे मालूम होता है, कि बीबी सुन्दरी थी, बहुत पसन्द आई थी। कहते हैं—"इस वर्षमें इस लेखककी दूसरी शादी हुई और 'बिल् अ-लिरवो लेहन् लका मिनल्-ऊला।" (पहलेसे अन्तिम तेरे लिये अच्छी) वाक्यके अनुसार मुबारक निकला। इससे जान पड़ता है, पहली बीबी मुबारक नहीं साबित हुई था। कुछ ही समय बाद नई बीबीका एक लड़का पैदा हुआ। मुल्ला फिर अपने मालिकके पास पहुँचे, जिसे अब लखनऊमें जागीर मिली थी। कुछ दिनों इधरकी सैर करते रहे। टुकड़िया जागीरके परिवर्तनके कारण बादशाहसे नाराज हो गया और कुमाऊँके पहाड़ोंमें तलवार और आगके द्वारा अल्लाके बन्दोंको मार-मार कर जहाद का सवाब लेने गया। उसने सुना था, कि इन पहाड़ोंमें सोने-चाँदीके मंदिर हैं। एक पंथ दो काज था: धन-जनकी लूट और इस्लामका प्रचार। इस समय मुल्लाको टुकड़ियाके पास रहना पसन्द नहीं आया। मुल्ला तलवारको इस्लाम-प्रचारके लिये अनावश्यक नहीं समझते थे, पर खुद अपने बाहुओंमें उतनी ताकत नहीं थी। इसी समय उनका छोटा भाई मर गया और नया बच्चा भी हँसता-खेलता कब्रमें चला गया। भाईके वियोगपर उन्होंने बहुत भावावेशके साथ मर्सिया (शोक-काव्य) लिखा है, जिसकी एक पंक्ति है—

"हाले दिल हेच न दानम् व-के गोयम् चि कुनम्।
चारए दर्दे दिले-खुद-ज् के जोयम् चि कुनम्।"

(दिलकी हाल कुछ नहीं जानता। किससे कहूँ, क्या करूँ? अपने दिलके दर्दकी दवा किससे ढूँढ़ूँ, क्या करूँ?)

मुल्ला अब्दुलक़ादिर सभी अण्डोंको एक टोकरीमें रखनेके पक्षपाती नहीं थे। उनके पैर कई नावोंपर रहते थे। हाँ, इस्लामको सामाके भीतर ही। वह शरीयत और मुल्लाओंके पद-चिन्होंपर चलना अभिमानकी बात मानते थे, पर साथ ही सन्तों-फकीरोंके चमत्कारोंसे भी लाभ उठाना चाहते थे। हिजरी ६७६ (१५७१-७२ ई०) की बात है। मुल्ला ३० वर्षके हो चुके थे। काँटगोला (जिला मुरादाबादमें काँट)का हुसेन खाँने हिमालयपर धावा बोलनेके ख्यालसे अपनी जागीरमें लिया था। मुल्ला साहब भी अपने सरदारके साथ वहाँ पहुँचे। फकीरोंकी खिदमत मुल्ला साहबके सुपुर्द थी। वहीं पता लगा, कि कन्नौजके इलाकेमें मकनपुर (जिला कानपुर)में शेख बदीउद्दीन मदारको पवित्र कब्र है, जिसके दर्शनसे सारी मनोकामना पूरी हो जाती है। मुल्ला साहबकी "अक्लकी आँखोंपर पर्दा पड़ गया। वहाँ पहुँचे। दरगाहमें कोई "सख्त बेअदबी" कर बैठे, लेकिन तुरन्त ही उसकी सजा भी वहीं मिल गई। विरोधी तलवार खींचकर उनपर दौड़ पड़े और एकके बाद एक नौ वार

किये। हाथ और कन्धोंपर घाव हलका था, पर सिरका गहरा था। तलवार टोपी तोड़कर भगजतक पहुँच गई थी। बायें हाथकी छँगुलीभी कट गई। वहीं बेहोश होकर गिर पड़े। घाव पका, काफी समय हो गया, लेकिन बच गये। बसनपुरसे बाँगरमऊ (हरदोई) चिला आये। यहाँ एक बहुत अच्छे जर्राहने दवा की। एक हफ्तेमें घाव भर गया। उस वक्त मुल्लाने मिन्नत मानी, कि जिन्दगीसे रहा, तो हज करूँगा। लेकिन, यह मिन्नत कभी पूरी नहीं हुई। बाँगरमऊसे काँटगोला गये। समझा, घाव बिल्कुल चंगे हो गये, इसलिये स्वास्थ्य-स्नान किया। जख्म अभी बिल्कुल ठीक नहीं हुए थे, उनमें पानी लग गया और घाव हरे हो गये। दुकड़ियाने भाई-बापकी तरह उनकी सेवा की। "खुदा उसे अच्छा फल दे। उसने गाजरका हलवा खिलाया और हर तरहसे देखभाल की।" लेकिन, घाव नासूर बन गया, वह भरनेका नाम ही नहीं लेता था। यहाँसे ससुराल बदायूँ आये। बड़े दुखी और निराश थे। एक दिन कुछ जागे, कुछ सो रहे थे, उसी समय देखा "चन्द सिपाही मुझे पकड़कर आसमान-पर ले गये हैं। बादशाही फर्राशों जैसे असा (डंडा) हाथमें लिये कुछ आदमी दौड़ फिर रहे हैं। एक मुन्शी बैठा कुछ कागज देख रहा है। उसने कहा—'ले जाओ, ले जाओ, यह आदमी यह नहीं है।'" इतनेमें आँख खुल गई। देखा, दर्दको आराम है। मुल्लाने यमपुरसे लौटनेकी कहानी बचपनमें किसीसे सुनी थी, वही स्वप्नमें उनके सामने साकार हुई।

इसी साल बदायूँमें भयंकर आग लगी। इतने खुदाके बन्दे जल गये, कि गिने नहीं जा सकते थे। सबको छकड़ोंमें भरकर नदीमें फेंक दिया गया। हिन्दू-मुसलमानका कोई भेद न था। यह लपटें नहीं मौतकी आँच थी। "हाय, जान बड़ी प्यारी है। स्त्री-पुरुष शहरकी दीवारपर चढ़कर बाहर कूद पड़े, जले-भुने लँगड़े-लूले रह गये। मैंने अपनी आँखों देखा, पानी आगपर तेलका काम कर रहा था। लपटें धाँय-धाँय कर रही थीं। दूर तक आवाज सुनाई देती थी। आग न थी, खुदाका गजब था। बहुतोंको खाक करके पामाल कर दिया।" कुछ दिन पहले दोआबा (गंगा-जमुनाके बीचके अन्तर्वेद)से एक मस्त फकीर आया था। मुल्लाने उसे अपने घरमें उतारा। बातें करते-करते वह एक दिन कहने लगा—"यहाँसे निकल जाओ।" मुल्लाने पूछा—"क्यों?" बोला—"यहाँ खुदाका तमाशा दिखलाई पड़ेगा।" लेकिन मुल्लाको इसपर विश्वास नहीं आया।

१५७३-७४ ई० (हिजरी ९८१)में दस वर्षके दोस्त ही नहीं, बल्कि दीनी भाई दुकड़ियासे उनका बिगाड़ हुआ। क्या कारण था, यह मालूम नहीं। ऐसे मुल्लाकी दुकड़ियाको बड़ी जरूरत थी। जब मुल्लाने प्रार्थना न स्वीकार की, तो उसने बदायूँमें उनकी माँके पास जाकर सिफारिश करनेके लिये कहा, लेकिन मुल्ला माननेके लिये तैयार नहीं हुए। असल बात यह थी, कि मुल्ला बदायूँनीने अब शाही दरबारमें जानेका [illegible]न कर लिया था। यह वही सन् था, जब अकबर शरीयतके मायाजालसे निकल

कर अकलके मैदानमें आ गया था। चारऐवानके इबादतखाने (प्रार्थना-मन्दिर)में शास्त्रार्थ हुआ करते थे। फैजी, अबुलफजल—मुल्ला बदायूँनीके सहपाठी—दरबारमें अपनी अक्ल और विद्याकी करामात दिखला रहे थे।

४. दरबारमें

मार्च (१५७४ ई०)का महीना था, जब कि मुल्ला बदायूँनी आगरा पहुँचे। जमालखाँ कूर्चीसे भेंट हुई। वह अकबरके विशेष दरबारियोंमें था। यद्यपि पञ्चशतीका ही मनसब था, मगर बादशाहके पास तक उसकी पहुँच थी। दानी, खाने-खिलानेवाला आदमी था। अगले साल वह मर गया। "दुनियामें नेक नाम रहा, परलोकमें नेकी साथ ले गया।"

जमाल खाँने मुल्लाके पीछे नमाजें पढ़ीं, उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण सुने। बहुत खुश हुआ। अकबरके पास ले गया और बोला—"हुजूरके लिये नमाजका अगुवा लाया हूँ।" अपनी "मुंतखेबुत्-तवारीख"में स्वयं लिखते हैं—"तदबीरके पैरमें तकदीरकी बेड़ी पड़ी। ६८१ हिजरी (१५७४ ई०)में हुसेन खाँसे टूट कर बदायूँसे आगरे आया। जमाल खाँ कूर्ची और हकीम ऐनुलमुल्कके द्वारा बादशाही सेवा प्राप्त की। इन दिनों शास्त्र-सभाओंका बहुत रवाज था। पहुँचते ही सभाइयों में दाखिल हो गया। यहाँ तक हुआ, कि जो आलिम किसीको कुछ समझते नहीं थे, उनसे बादशाहने लड़वा दिया। खुदाकी मेहरबानी, बुद्धिकी ताकत, तेज प्रतिभा एवं दिलकी दिलेरीसे बहुतोंको पराजित किया। पहली ही सेवामें बादशाहने फरमाया, यह बदायूँनी हाजी इब्राहीम सरहदीका विजेता हो। चाहते थे, वह किसी तरह हार खाये। मैंने उसपर भी अच्छे-अच्छे आक्षेप किये। बादशाह बहुत खुश हुए। सदरुस्सदूर शेख अब्दुन् नबी खफा थे, कि हमसे बिना पूछे ऊपर ही ऊपर यह दरबारमें क्यों आ पहुँचा। अब जो शास्त्रार्थोंमें भिड़न्त देखी, तो वही मसल हुई—एक तो साँपने काटा, उसपर खाई अफीम। खैर, अन्तमें धीरे-धीरे सदरका क्रोध स्नेहमें बदल गया।"

मुल्ला बदायूँनी दरबारमें नये-नये आये थे। चारों ओरसे प्रशंसा सुनकर उनका दिमाग आसमानपर पहुँच गया था। उन्हें ख्याल नहीं आ रहा था, कि मैं भी उसी तरहका मुल्ला हूँ, जैसे कि वह, जिन्हें इस समय मैं परास्त करनेमें लगा हूँ। मुल्ला इस समय अबुलफजलके बहुत प्रशंसक तथा अकबरकी गुणग्राहकतासे मुग्ध थे। अकबरको मुल्लोंके लड़ानेका शौक था ही, इसलिये वह बदायूँनीको साथ रखता था। इसी समय पटनाकी ओर विद्रोह उठ खड़ा हुआ। शेरशाहके खानदानके रूपमें पठानोंने हुकूमतका मजा लिया था। वह जरा भी मौका पाते ही बगावतका झंडा उठा लेते। बादशाही सेनापति मुनअमखाँ पठानोंसे लड़ रहा था। हालत ऐसी बिगड़ी हुई, कि अकबरको स्वयं वहाँ जानेकी जरूरत पड़ी। सेना तो आगरासे स्थलके रास्ते भेज दी, पर खुद बेगमों, शाहजादों, सेवकों और कितने ही अमीरोंके साथ नदीके रास्ते चला। लिखते हैं :

"नावोंकी बहुतायतसे नदीका पानी दिखलाई नहीं पड़ता था। तरह-तरहकी नावें थीं, जिनपर आसमानी रंगके पाल चढ़े हुए थे। नावोंमें किसीका नाम था 'निहंग सर', किसीका 'शेरसर' आदि-आदि। रंग-बिरंगे झण्डे लहरा रहे थे। दरियाका शोर, हवाका जोर, पानीका सर्राटा था। नावोंका बेड़ा चला जा रहा था। मल्लाह अपनी बोलीमें गाना गा रहे थे। विचित्र अवस्था थी। जान पड़ता था, जल्दी ही हवामें पक्षी और पानीमें मछलियाँ नाचने लगेंगी। यात्राका क्या कहना! जहाँ चाहते उतर पड़ते, शिकार खेलते। जब चाहते, चल खड़े होते। कहीं रातको लंगर डाल देते और वहीं शास्त्रार्थ या शेर-ओ-शायरीकी चर्चा चल पड़ती। कैदी भी साथ थे। नावोंका बेड़ा मामूली सैरका बेड़ा नहीं था। इन नावोंपर तोपखाने, हथियार घर, खज़ाना, नगारखाना, ताशाखाना, फर्राशखाना, बावर्चीखाना, घोड़ोंके तबेले सब थे। हाथियोंके लिये बड़ी-बड़ी कश्तियाँ थीं। प्रसिद्ध बालसुन्दर हाथीके साथ दो हथिनियाँ एक नावपर सवार थीं। समनपाल दो हथिनियोंके साथ दूसरी नावपर था। जो सजावट तम्बुओं और डेरोंमें होती है, वह इन नावोंमें भी थी। इनमें अलग-अलग कमरे थे, जिनमें मेहराब और सुन्दर ताक बने हुये थे। नावें दोमंजिला-तिमंजिला थीं। सीढ़ियोंसे ऊपर-नीचे चढ़ना-उतरना पड़ता था। हवाके लिये झरोखे थे, रोशनीके लिये कंदील। रूमी, चीनी, फिरंगी मखमलों और बनातोंके परदे और बहुमूल्य फर्शोंसे सजावट की गई थी। बेड़ेके बीचमें बादशाहकी आलीशान नाव चल रही थी।"

दो साल तक तबियत खुश रही। हिजरी ९८३ (१५७५-७६ ई०)में पहुँचते-पहुँचते अब मुल्ला बदायूँनीको दरबारका रंग-ढंग नापसंद आने लगा। एकाएक कलमकी रफ्तार बदलती है। साफ मालूम होता है, कि कलमसे अक्षर और आँखोंसे आँसू बराबर बह रहे हैं।

बादशाहके सात इमाम थे। हफ्तेके हरेक दिनके लिये एक-एक इमाम था, जो बारी-बारीसे नमाज पढ़ाया करता था। मुल्ला बदायूँनी संगीतके भी प्रेमी थे। शरीयतकी सब पाबन्दियोंके रहते भी उन्होंने गाना सीखा था, बीणा बजाते थे। कण्ठ भी बड़ा मधुर पाया था। उनके मुँहसे निकले फारसी शेर या अरबीकी आयतें बड़ी मधुर मालूम होती थीं। लिखते हैं—"मधुर कण्ठके कारण जैसे तोतेको पिंजड़े में डालते हैं, उसी तरह मुझे उन (इमामों)में शामिल करके बुधकी इमामीका काम प्रदान किया गया।" हाजिरी देखनेका काम ख्वाजा (हिजड़ा) दौलत नाजिरके सुपुर्द था। वह बड़ा सख्त-मिजाज था, लोगोंको बड़ा दिक करता था। इस प्रकार मुल्ला साहब "साहब "इमाम-अकबरशाह" बने।

इसी साल बीसती (विंशतिक)का मनसब तथा कुछ इनाम बादशाहने दिया। ...भी यही मनसब मिला था। मनसबदारोंको हजारी, दोहजारी, पंचहजारीके

मनसब दिये जाते थे, लेकिन, वह न मनसबके अनुसार घोड़े रखते, न आदमी और सरकारी रुपया खा जाते थे। इसकी रोक-थामकेलिए नया फरमान जारी हुआ और घोड़ोंपर दाग लगाया जाने लगा। इसीलिए इस विधानको दाग भी कहते थे। मुल्लाका मनसब मिलते ही कहा गया, कि इसके मुताबिक घोड़े दागके लिए हाजिर करो। अबुलफजल और मुल्ला अब्दुन कादिर एक ही तवेकी दो रोटियाँ थीं। अबुल-फजलने तुरन्त हुकुमके मुताबिक काम किया और इतनी अच्छी तरहसे कि वह दो हजारी मनसबदार और वजीर बन गया, जिसकी सालाना आमदनी चौदह हजार थी। अपने लिए कहते हैं—"तजर्बा न होने तथा भोलेपनके कारण मैं अपने कम्बलों को भी नहीं सँभाल सका। मुझे उन दिनों यही ख्याल आता था, कि सन्तोष बड़ी दौलत है। कुछ जागीर है, कुछ मदद बादशाह इनाम-अकरामसे देंगे, इसीपर सबर करूँगा।" दो साल दरबारमें रहते हो गये। हिजरी सन् ९८३ (१५७५-७६ ई०)में कुछ दिन छुट्टी लेकर स्वतन्त्र रहनेका ख्याल पैदा हुआ। बादशाहने छुट्टी देते हुए एक घोड़ा और कुछ रुपया साथ ही हजार बीघा जमीन भी देते कहा, कि फौजी महकमेसे तुम्हारा नाम हटा देते हैं।

अगले साल (१५७६-७७ ई०) अकबर जियारतकेलिये अजमेरमें था। मुल्ला साहब भी वहाँ पहुँचे। राणाप्रतापसे लड़ाई छिड़ी थी। राजा मानसिंहके नतृत्वमें भारी पलटन कुम्भलनेरकी ओर जा रही थी। अजमेरमें तीन कोस तक अमीरोंके तम्बू लगे हुए थे। मुल्ला भी गाजियोंको पहुँचानेके लिये गये। उस समय दिलमें गाजी (धर्मवीर) बननेका शौक पैदा हुआ। लौटकर सीधे शेख अब्दुन् नबी (सदर, शेखुल्-इस्लाम)के पास पहुँचे और बोले : आप मुझे हुजूरसे छुट्टी दिलवाकर इस लड़ाईमें भिजवा दें। लेकिन, सदरसे काम नहीं बना। बादशाहका पुस्तकपाठी नकीब खाँ उनका सहपाठी था ही, उससे कहा। उसने जवाब दिया—"सेनापति हिन्दू (मानसिंह) न होता तो सबसे पहले मैं इस युद्धके लिये छुट्टी लेता।" मुल्लाने उसको यह कहकर समझाया—"हम अपना सेनापति हजरतके बन्दोंको जानते हैं, हमें मानसिंह आदि से क्या मतलब ? नीयत ठीक होनी चाहिये।" अकबर एक ऊँचे चबूतरेपर पाँव लटकाये मिर्जा मुबारककी ओर मुँह किये बैठा था। नकीब खाँने इसी समय मुल्ला बदायूँनीके लिये प्रार्थना की। बादशाहने पहले तो कहा—"इसका तो इमामका ओहदा है, यह कैसे जा सकता है ?" नकीब खाँने कहा—"गाजी होनेकी कामना है।" मुल्लाको बुलाकर अकबरने पूछा—"बहुत जी चाहता है ?"—"बहुत।" पूछा—"कारण क्या है ?"—"चाहता हूँ, इस प्रकार काली दाढ़ीको लाल करूँ।"

कारे-तु ब-खातिर रस ख्वाहम् कर्दन्।
या सुर्ख कुनम रूए जान या गर्दन।

(ऐसा काम मेरे दिलमें है । इसे करना चाहता हूँ या इसके लिये दाढ़ीको रंगीन करूँ या गर्दनको ।)

बादशाहने फरमाया—"भगवान्‌ने चाहा, तो फतहकी ही खबर लायेंगे।"

"मैं (मुल्ला)ने बादशाहके गलीचेके पैर छूनेके लिए हाथ बढ़ाये । उन्होंने अपने पैर ऊपर खींच लिये । जब मैं दीवानखानेसे निकला, तो फिर बुलाया । एक मुट्ठी भर कर अशर्फियाँ दीं और कहा 'खुदा हाफिज' । गिनी तो ९६ अशर्फियाँ थीं।"

मुल्ला तलवार चलाने गये थे, पर उनकी कलम ज्यादा मजेदारीके साथ चली । लिखते हैं—"फतेह हुई । राणा भाग गया । अमीर लोग सलाह करनेको बैठे । इनामोंका बन्दोबस्त शुरू हुआ । रामप्रसाद नामक एक बड़ा ऊँचा हाथी राणाके पास था । बादशाहने कई दफा माँगा था, पर उसने न दिया था । वह भी लूटमें आया । अमीरोंकी सलाह हुई, कि विजय-पत्रके साथ इसे हुजूरमें भेजना चाहिये । आसिफ खाँने मेरा नाम लिया : यह फकत पुण्यके लिये आये थे, इनके साथ इसे भेज दो । मानसिंहने कहा—'अभी तो बड़े-बड़े काम पड़े हैं । यह युद्धक्षेत्रमें सेनाकी पाँतीके आगे इमामका काम करेंगे ।' मैंने कहा—"यहाँके इमामके कामके लिये और हैं । मेरा अब यह काम है, कि जाऊँ और हजरतके सेवकोंकी पाँतीके आगे इमाम का कर्तव्य पूरा करूँ ।" मानसिंह इस लतीफेसे बहुत खुश हुए । आसफखाँने तीनसौ सवार हाथीके साथ किये और सिफारिशनामा लिखकर विदा किया । राजा बैठानेके बहाने मोहना तक शिकार खेलते पहुँचाने आये, क्योंकि वहाँसे बीसकोस था । मैं मालोर और मांडलगढ़से होता आमेर पहुँचा, जो कि मानसिंहका वतन था । रास्तेमें जगह-जगह लड़ाईकी बातें और मानसिंहके विजयका हाल सुनाता चला था । लोग ताज्जुब करते थे ।"

"आमेरसे पाँच कोसपर विधनमें हाथी फँस गया । ज्यों-ज्यों आगे जानेकी कोशिश करता, उतना ही अधिक धँसता जाता था ।" मुल्ला बहुत घबराये । लोग आये और बोले : पिछले साल भी यहाँ एक बादशाही हाथी फँस गया था । इसके निकालनेका यही उपाय है—टिलियों और मशकोंमें पानी भर-भरकर डालते हैं, फिर हाथी निकल आता है । भिश्ती बुलाये गये, उन्होंने बहुत-सा पानी डाला ।

लिखते हैं—"बड़ी मुश्किलसे हाथी निकला । हम आमेर पहुँचे । वहाँके लोग फूले न समाते थे ।...हमारे राजाके लड़केने ऐसी विजय प्राप्त की, खानदानी दुश्मन की गर्दन तोड़ दी और हाथी छीन लिया । टोडामेंसे गुजरा । यहीं मैं पैदा हुआ था बिसावरमें आया । इसी जमीनकी मिट्टी मेरे बदनमें पहले लगी थी ।" मुल्ला बदायूँमें नहीं पैदा हुये । बिसावर ननिहाल और पासमें टोडा उनका पितृगृह था । हो सकता है, पैदाइश ननिहालमें हुई हो । फिर यहीं क्यों रहे, इसलिये बिसावरसे उन्हें खास मुहब्बत थी । इस समय वह एक विजेताके तौरपर राणाके हाथीको लेकर दर

से गुजर रहे थे। गाँवका एक-एक आदमी देखनेके लिये आया। उन्हें मालूम हुआ, राणाको जीतनेवाला उनके अपने गाँवका अब्दुल कादिर ही है, इसलिये सभी इसके लिये अभिमान करते थे। जन्मभूमिमें इतनी प्रशंसा और सम्मान पाकर मुल्ला बदायूँनी यदि फूले न समायें, तो आश्चर्य क्या ?

आखिर फतेहपुर-सीकरी पहुँचे। विजय-पत्र और हाथी बादशाहके सामने पेश किये। पूछने पर बतलाया, हाथीका नाम रामप्रसाद है। फरमाया: सब पीरकी कृपासे हुआ है, इसलिए इसका नाम पीरप्रसाद है। फिर अकबरने मुल्लाको सम्बोधित करके कहा—"तुम्हारी भी तारीफ बहुत लिखी है। सच कहो, कौन-सी फौजमें थे और क्या-क्या काम किया ?" मुल्लाने नम्रतापूर्वक सब बातें बतलाईं। बादशाह मुल्लोंको तो जानता ही था, इसलिये पूछ बैठा—"जंगी लिबास थे या नंगे ही रहे ?"

"जिराबख्तर (कवच) था।"

"कहाँसे मिल गया ?"

"सैयद अब्दुल्ला खाँसे।"

बादशाह बहुत खुश हुआ और उसने ढेरमें हाथ मारकर एक पसर अशर्फियाँ इनाम दीं। गिननेपर ९६ निकलीं।

हिजरी ९८५ (१५७७-७८)में मुल्ला छुट्टी लेकर घर जा बीमार पड़ गये। जब अच्छे हुए, तो दरबारके लिए रवाना हुए। मालवामें दीपालपुरमें उस समय शाही स्कन्धावार पड़ा था। बाईसवें सनजलूसकी धूमधाम थी। मुल्ला साहबको इसी साल हुसेन खाँ टुकड़ियाके मरनेकी खबर लगी। दोनोंका एक विचार, एक विश्वास था। वह दोस्त और स्वामी था। यद्यपि किसी कारण उससे अलग हुये थे, पर वही उनके लिये ऐसा सच्चा और पक्का धर्मवीर था, जिसकी तलवार आखिर तक काफिरोंके गर्दनके लिए तैयार रही।

हिजरी ९८५ (१५७७-७८ ई०)में मुल्ला ३६ सालके थे। हजकी लालसा बहुत तीव्र थी। इस साल अजमेरसे बादशाहने शाह अबू-तुराबको मीर-हाज (हाजियोंका सरदार) बनाकर हाजियोंके साथ रवाना किया। भेंटके लिए बहुत-सा सामान देकर हुकुम दिया, कि जो चाहे हजके लिये जाये। मुल्लाने शेख अब्दुन् नबीसे प्रार्थना की: मुझे भी छुट्टी दिलवा दें, ताकि मैं भी हज कर आऊँ। शेखने पूछा—'माँ जीती है ?"

"हाँ।"

"भाइयोंमेंसे कोई है, जो कि उसकी सेवा करे ?"

"गुजारेका सहारा तो मैं ही हूँ।"

"माँकी इजाजत ले लो, तो ठीक है।"

[illegible]

मुल्ला भी और आदमियोंकी तरह विरोधोंके समागम थे। एक तरफ वह दुअविया और कट्टर मुल्लोंको आदर्श धर्मवीर मानते थे, दूसरी ओर उनके विरोधी अकबरके साथ भी दिल जोड़ना चाहते थे। इस साल तक अभी अकबरकी नीतिसे पूरे बागी नहीं हुये थे और उसे अल्लाकी छाया और रसूलका नायब मानते थे। लिखते हैं—"मैं लश्करके साथ रेवाड़ीके जिलेमें था। घरसे खबर आई, कि एक दासीके पेटसे बेटा पैदा हुआ। बहुत मुद्दत और प्रतीक्षाके बाद हुआ था। खुश होकर अशर्फी भेंट की और नाम देनेके लिये प्रार्थना की। बादशाहने फरमाया—'तुम्हारे बाप और दादाका क्या नाम है?'

'मलूकशाह-पुत्र हामिदशाह।' उन दिनों या हादी (हे शिक्षक)का जप हुआ करता था। बादशाहने फरमाया—'इसका नाम अब्दुलहादी रखो।' हाफिज मुहम्मद इब्न खतीबने मुझे बहुत कहा कि नाम रखनेके भरोसे मत रहो। हाफिजों को बुलाओ और लड़केकी दीर्घायुके लिए कुरान पढ़वाओ। मैंने उधर ध्यान नहीं दिया। आखिर छ महीनेका होकर बच्चा मर गया।

यहींसे पाँच महीनेकी छुट्टी लेकर मुल्ला बिसावर गये। लेकिन, छुट्टी खतम होनेपर भी नहीं लौटे। मजहबी नामको लौंडोंसे मुल्लाकी नजर लड़ गई। लिखते हैं—कुदरतके प्रकाशका यह नमूना थी। मैं उसपर आशिक हो गया। उसके हावने ऐसा भाव मनमें भर दिया, कि साल भर बिसावरमें पड़ा रहा। इस समय मुल्लाकी उमर ४० सालकी हो गई थी। इसी उमरमें बिसावरमें उनको एक पुत्र मुहीउद्दीन पैदा हुआ। मालूम नहीं दासियों और बीबियोंकी सारी संख्या कितनी थी। जिसकी की जरूरत भी नहीं थी, जब कि नौ से अठारह तक शास्त्रीय बीवियाँ शरीअतके अनुसार रक्खी जा सकती थीं वह दास प्रथाका जमाना था। पैसे खर्चिए, जो जितनी दासियाँ खरीद लो। अकबरको दास-प्रथा पसन्द नहीं थी। उसने सभी दासोंको मुक्त कर दिया था। पर, दासोंके रूपमें लोगोंकी करोड़ोंकी सम्पत्ति फँसी हुई थी। उसको बरदाश्त कर घाटा भोग लेनेके लिए यह कैसे तैयार हो सकता था?

बरस दिन गैर हाजिर रहकर हिजरी ९८९ (१५८१ ई०)में मुल्ला फतेह-पुरसीकरीमें दरबारमें हाजिर हुये। दीवाने-खासमें पैगे-पैगे बात हो रही थी। अबुल-फजलने कहा—"हमें इस्लामके सारे ग्रन्थकर्ताओंसे दो बातोंकी शिकायत है—उन्होंने जिस तरह पैगम्बर (मुहम्मद)की बातें साफ-ब-साफ लिखा, उसी तरह दूसरे पैगम्बरोंका हाल नहीं लिखा।"

मुल्लाने कहा—"कससुल-अंबियामें नबियोंके किस्से तो हैं।"

"वह तो बहुत संक्षेप-सी है, विस्तारसे लिखना चाहिये था।"

"उससे ज्यादा बतानेकी कहाँ है। मालूमातों और इतिहासकारोंको हाथ ही न पहुँचा होगा, किसीका ध्यान न गया होगा।"

"यह जवाब नहीं है। दूसरी बात यह कि कोई मामूली पेशेवाला आदमी ऐसा नहीं, जिसका जिक्र वहाँ न हुआ हो। पर, पैगम्बरके अपने परिवारने क्या गुनाह किया था, कि उनको शामिल नहीं किया गया?"

मुल्लाने कुछ सफाई देनेकी कोशिश की, पर क्या हो सकती थी? पैगम्बरके बेटी-दामाद-धेवतोंको वंचित कर, उनमेंसे बहुतोंको मारकर दूसरोंने इस्लामी विजय-का मजा लूटा। पैगम्बरके रक्त-सम्बन्धियोंसे ही तो उनको खतरा था, फिर वह 'आ बैल, मुझे मार' क्यों कहने लगे। इसीलिये उनका उल्लेख भरसक होने नहीं दिया गया। *मुल्लाने अबुलफजलसे पूछा—"प्रसिद्ध मजहबोंमेंसे तुम्हारी रुचि किधर ज्यादा है?"*

अबुलफजल बोले—"जी चाहता है, कुछ दिनों लामजहबी (धर्महीनता)के जंगलकी सैर करूँ।"

मुल्लाको शायद उतना कट्टर बननेकी जरूरत न होती, यदि उन्हें भी मौज-मेलेकी इनायत हो गई होती। फैजी और अबुलफजलको आसमानपर चढ़ा और अपनेको जमीनपर खड़ा देखकर उनके मनमें जो असंतोष होता था, वह आसानीसे समझा जा सकता है। जहाँ लोगोंको हजारों-लाखोंकी जागीरें मिलीं, बड़े-बड़े इलाके उनकी मिलकियत बने, वहाँ बेचारे मुल्ला हजार बीघा पानेमें भी आसानीसे सफल नहीं हुये।

६८६ हिजरी (१५८१ ई०)में काबुलसे लौटकर बादशाह फतेहपुर-सीकरी आया। उसी समय मुल्ला साल भरके बाद दरबारमें हाजिर हुये। इनका अभाव ऐसा नहीं था, कि बादशाहको उसका पता न लगता। आखिर बहस-मुबाहिसोंमें यह जरूर ही याद आते होंगे। देखनेपर अबुलफजलसे पूछा—यह यात्रामें क्यों नहीं रहा? काबुलके पास भी उसने मुल्लाके बारेमें पूछा था। खैर, अबुलफजलने कुछ कहकर बला टलवा दी।

फकीरीमें संतोष करनेकी बातें मुल्ला साहब जैसे पहले किया करते थे, अब वह उसके माननेवाले नहीं थे। ६६३ हिजरी (१५८४-८५ ई०)में हजार बीघा जमीन मिली, जिसके कारण हजारी कहे जा सकते थे। लेकिन, बारह वर्ष खिदमत करके भी वह जिस हालतमें अपनेको पाते थे, उससे बहुत असन्तुष्ट थे तथा कहीं और सहारा ढूँढ़ना चाहते थे। अब्दुर्रहीम खानखाना अपने साहित्य और विद्या प्रेमके लिए प्रसिद्ध थे। वह उस समय गुजरातके राज्यपाल थे। उनके मुसाहिब मिर्जा निजामुद्दीन अहमदका मुल्ला बदायूँनीसे काफी परिचय था। उसने कोशिश की और खानखानाने कहा: अबकी बार मैं हजूरसे प्रार्थना करके मुल्लाको अपने साथ लाऊँगा। सीकरी आनेपर दीवानखानाके मकतबखाना—जहाँ अनुवादक लोग बैठते थे—में खान-खानासे मुल्ला मिले, पर उन्हें जल्दी-जल्दी गुजरात लौट जाना पड़ा, तकदीरने मुल्लाकी मदद नहीं की।

४. मृत्यु

६६६ हिजरी (१५६०-६१)में मुल्ला बीमार हो बदायूँ गये। विवाहसे बाल-बच्चोंको भी यहीं लाये। दरबारसे हाजिर होनेका हुक्म आने लगा। आखिर बदायूँसे चले। अकबर कश्मीर जाते भिंबरमें ठहरा था। वहीं जाकर हाजिर हुये। बादशाहने पूछा—"वादेसे कितने दिनों बाद आया?" बतलाया—"पाँच महीने बाद।" जानते ही थे, बड़ी फटकार पड़ेगी, इसलिए बदायूँके अफसरों और हकीम ऐनुल्मुल्कके प्रमाण-पत्र साथ लाये थे। अकबरने सब पढ़ाकर सुना, लेकिन कहा—"बीमारी पाँच महीनेकी नहीं होती।" मुल्लाको कोर्निश करनेकी इजाजत नहीं मिली।

फैजीने भी सिफारिशी पत्र लिखा और मित्रोंने भी कोशिश की। पाँच महीने बाद जब बादशाह कश्मीरसे लौटकर लाहौर आया, तो मुल्लापर मेहरबानी हुई।

मुल्लाके दोस्त एकके बाद एक इस दुनियाको छोड़ते चले जा रहे थे। इसका उन्हें अफसोस होना ही चाहिये। लिखते हैं—

यारॉं हमॉं रफ्तंद् व दरे-काबा गिरफ्तंद्।
मा मुस्त-कदम बर्-दरे-खुम्मार व-मॉंदीम्।
अाज नुकतये-मकसूद न शुद् फहमे-हदीसे।
ला दीन व ला-दुनिया बेकार व-मॉंदीम्।

(सारे दोस्त चले गये और काबाके दरवाजेको जा पकड़ा। हम सुस्त-कदम कलवारके दरवाजेपर पड़े हैं। हदीसके ज्ञानकी कोई बात नहीं ज्ञात हुई। बिना दीन और बिना दुनियाके हम बेकार पड़े हैं।)

दरबारमें बेदीनीकी धूम थी। लोग धड़ाधड़ "दीन-इलाही"में दाखिल हो रहे थे, दाढ़ियाँ साफ हो रही थीं। इनमें कोई ऐसे आलिम थे, जो अपनेको अद्वितीय विद्वान् समझते थे। कोई खानदानी शेखोंका चोगा पहननेवाले कहते थे: हम हजरत गौसके पुत्र हैं। हमारे शेखने हुक्म दिया है, कि हिन्दके बादशाहमें कमजोरी आ गई है, तुम जाकर बचाओ। सब यहाँ आकर दाढ़ी मुँड़वा लेते थे। १५ अक्तूबर १५६५ ई०को फैजीका देहान्त हो गया, जिनके ऊपर प्रहार करनेमें मुल्लाकी कलम कभी नहीं चूकती थी। दूसरे दिन हकीम हमाम भी उठ गये। २३ फरवरी १५६६ को मुल्लाने अपनी "मुतखिबुत्तवारीख" समाप्त की। जैसा कि बतलाया, अकबर और उसके जैसे विचारवालोंपर जिस बेदर्दीके साथ कलम उठाई थी, उसके कारण होनेवाले खतरेसे ग्रन्थको सुरक्षित अगली पीढ़ियों तक पहुँचानेका प्रबन्ध किया।

५७ वर्षकी उमर थी, जब कि बदायूँमें मुल्लाका देहांत हुआ। पासके अतापुरके मके बागमें दफनाये गये। हो सकता है, उस समय अतापुर शहरसे मिला हो। अब ह दूर हटकर है। आजाद लिखते हैं—"वहाँ एक खेतमें तीन-चार कब्रें हैं, जिनके

ऊपर तीन-चार आमके वृक्ष हैं। यह मुल्लाका बाग कहलाता है। लोग कहते हैं, इन्हींमें मुल्ला साहबकी कब्र भी है। अताउपुर और बागे-अम्बा (आम-बाग)का कोई नाम भी नहीं जानता। जिस मुहल्लेमें मुल्लाका घर था, वह अब भी लोगोंकी जीभपर है। पतगी-टोला कहलाता है, सैयदबाड़ामें है।" लोग बतलाते हैं, उनकी सन्तानोंमें एक बेटी बच रही थी, जिसकी औलाद खैराबाद (जिला सीतापुर)में मौजूद है।

६. कृतियाँ

बदायूँनी अबुलफजल और फैजीकी तरह ही कलमके जबर्दस्त धनी थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं या अनुवाद कीं, जिनमेंसे अधिकांश अब भी मौजूद हैं—

१. सिंहासन बत्तीसी—राजा भोजके गड़े हुये सिंहासनके सम्बन्धकी बत्तीस कहानियाँ संस्कृतमें मशहूर हैं। "सन् १५७५ ई०में शाहंशाहने मुकर्रर बहुत मेहरबानी फरमाई और बड़ी मुहब्बतसे कहा : 'सिंहासन बत्तीसीकी बत्तीस कहानियाँ जो राजा विक्रमादित्यके बारेमें हैं, संस्कृतसे फारसीमें अनुवाद करके 'नूतीनामा'के तरहपर गद्य-पद्यमें तैयार करो और एक पृष्ठ नमूनाके तौरपर आज ही पेश करो। भाषा जानने-वाला एक ब्राह्मण मददके लिए दिया गया। उसी दिन मैंने कहानीके आरम्भका एक पृष्ठ तर्जुमा करके पेश किया। पसंद फरमाया।"

समाप्त करके इसका नाम "नामये-खिरद अफजा" (प्रज्ञावर्धिका) रक्खा गया। मुल्ला बदायूँनीके अनुवादका काम इस पुस्तकसे शुरू हुआ। फैजीकी तरह वह संस्कृतज्ञ न थे, पर हरेक अनुवादके लिये संस्कृतज्ञ पंडित मिल जाता था, जो पुस्तकको देखकर सम्भवतः भाषामें कहता था, जिसका अनुवाद फारसीमें मुल्ला कर डालते थे। अकबरके जमानेमें बहुत-सी संस्कृत पुस्तकोंके अनुवाद इसी तरह हुए।

२. अथर्वन वेद—१५७५-७६ ई० (हिजरी ९८३)में "अथर्वन वेद" के अनुवाद करनेका हुक्म हुआ। दक्खिनका कोई मुसलमान हुआ ब्राह्मण शेख बहावन बादशाहके चेलोंमें शामिल हुआ। उसने बतलाया, कि हिन्दुओंके चौथे वेद अथर्वनमें इस्लामकी बातें मिलती हैं। उसमें मुसलमानी कलमा "ला इलाहऽइल्ल-ल्लाहऽ" (कोई दूसरा भगवान् नहीं, सिवाय अल्लाके)की तरह लकार बहुत आते हैं और कुछ शर्तोंके साथ गायके गोश्तको भी भक्ष्य कहा गया है। मुर्दे जलाने और दफनानेकी बात भी है। जान पड़ता है, किसी मुसलमान बने पंडित या मुसलमान प्रभुओंके खुशामदीने इस नकली "अथर्वन-वेद"को बनाया। शायद इसीका अवशिष्ट भाग "अल्ला उपनिषद्" नकली उपनिषदोंके पुलिन्दे १०८ उपनिषदोंमें अब भी मौजूद हैं। मुल्ला लिखते हैं, कि उसके कितने ही वाक्योंका अर्थ वह ब्राह्मण भी नहीं बतला सकता था। पहले फैजीको, फिर हाजी सरहिंदीको यह काम दिया गया था। उनसे

३. तारीख अलफी—सन् १५८२ ई० (हिजरी ६६०)में यह ख्याल आया कि हजरत मुहम्मदके हिजरत करनेका हजारहवाँ साल पूरा होनेवाला है। इस समय एक ऐसा इतिहास लिखा जाय, जिसमें हजार सालके मुसलमानी बादशाहोंका इतिहास हो। अरबीमें हजारको "अलिफ" कहते हैं—"अलिफ लैला" का अर्थ है, हजार रात। इतिहासका नाम "तारीख-अलफी" रखना निश्चित हुआ था। इतने बृहद् ग्रन्थको एक आदमी नहीं लिख सकता था, इसलिये अलग-अलग हिस्से बाँटे गये। पैगम्बरकी मृत्युके एक-एक वर्षका हाल बाँट कर सात आदमियोंको दिया गया। पहला साल नकीब खाँको,दूसरा शाह फतहुल्लाको। इसी तरह एक-एक भाग हकीम हुमाम, हकीम अली हाजी इब्राहीम सरहिंदी, मिर्जा निजामुद्दीन अहमद और मुल्ला बदायूँनीको लिखनेको मिला। दूसरे सप्ताह फिर इसी तरह सात आदमी निश्चित किये गये। पैगम्बरकी मृत्युके बादके ३५ सालोंका वर्णन लिखा जा चुका था। एक रात अकबर मुल्लाके लिखे हुए सातवें सालका वर्णन सुन रहा था। उसमें दूसरे खलीफा उमरके समयकी कुछ कथायें आई थीं, जिनमें शिया-सुन्नीके मतभेदोंका उल्लेख था। नसीबीन मेसोपोतामियाका बहुत अच्छा शहर और विद्याका केन्द्र था। उसके ऊपर मुसलमानोंके विजयकी बात कहते हुए मुल्लाने लिखा था: जब इस्लामी पलटन वहाँ पहुँची, तो मुर्गोंके बराबरके बड़े-बड़े चींटें निकले। बादशाह इसे सुन कर बहुत आक्षेप करते मुल्लासे पूछ बैठा—ऐसी बातें क्यों लिखीं?

मुल्लाने कहा—"मैंने जो किताबोंमें देखा, वो लिखा, अपने गढ़ा नहीं।"

मुल्लाके कहे अनुसार खजाने (पुस्तकागार)से मूल किताबोंको मँगाकर नकीब खाँको जाँच करनेको कह दिया। शेख बदायूँनीकी जान बची, जब नकीब खाँने कहा, —सचमुच यह बातें किताबोंमें हैं।

मुल्ला निजामुद्दीन अहमद पक्के शिया थे। अकबरके जमानेमें छूट थी, इसलिये जो मनमें आया, वह लिखा। चगेज खाँ के समय (१३वीं सदीके प्रथम पाद) तककी उसने दो जिल्दें लिख डालीं। लोगोंसे सुना, कि इस शियाने मुमिनों और उनके बुजुर्गोंपर बड़ी कीचड़ उछाली है,तो मिर्जा फौलाद बिरलसको बड़ा क्रोध आया। वह मुल्ला अहमदके घर गया। दोनों घरसे साथ निकले। रास्तेमें फौलादने मुल्लाको मार डाला। कातिलको भी उसके कियेका दण्ड मिला। उसके बाद हिजरी ६६० (१५८२ ई०) तकका इतिहास आसफ खाँने लिखा। हिजरी १००२ (१५६३-६४ ई०) में मुल्ला बदायूँनीको हुक्म हुआ, कि तारीख को शुरुसे मिलाकर देखो और सनोंमें आगे पीछे जो हो गया हो, उसे ठीक कर दो। पहली और दूसरी जिल्दको बदायूँनीने ठीक किया, तीसरी जिल्दको आसफ खाँपर छोड़ दिया। इस प्रकार "तारीख अलफी"के कुछ भागोंको मुल्ला बदायूँनीने स्वयं लिखा और तीन दो जिल्दोंके संशोधनका काम भी उन्होंने किया।

४. महाभारत—इसी साल (१५८३-८४ ई०में) महाभारतके अनुवादका काम शुरू हुआ। अकबरने इस समय "शाहनामा" और दूसरी पुस्तकें सुनी थीं, कुछको तो एकसे अधिक बार भी। अकबरको ख्याल आया, हमारे हिन्दमें भी ऐसी पुस्तकें होंगी। उसी समय उसे महाभारतके बारेमें बतलाया गया और कहा गया, उसमें तरह-तरहकी कथायें, उपदेश, नीतिवाक्य, जीवनी, धर्म, ज्ञान और उपासनाकी विधि आदि बतलाई गई हैं। हिन्दके लोग इसे पढ़ने और लिखनेको महाउपासना मानते हैं। "शाहनामा" और "अमीरहमजाकी कथा"को बादशाहने सचित्र लिखवाया था। अब वह भारतके इस महान् ग्रन्थको फारसीमें देखनेके लिये इतना उत्सुक हो गया, कि पंडितोंको इकट्ठा करके उनके मुँहसे सुनकर स्वयं फारसीमें उसे नकीब खाँ-को बोलता और वह उसे लिखता जाता था। लेकिन महाभारत जैसे बेढ लाख श्लोकोंके बड़े ग्रंथका स्वयं अनुवाद करना सम्भव नहीं था, इसलिये तीसरी रात मुल्ला बदायूँनीको बुलाकर फरमाया—"नकीब खाँके साथ मिलकर तुम इसे लिखा करो।" तीन-चार महीनेमें वह १८ पर्वोंमेंसे सिर्फ दो पर्वका अनुवाद कर सके। इधर अनुवाद होता और उधर रातको उसे बादशाहको सुनाना पड़ता। बदायूँनी कट्टर मुल्ला थे, काफिरोंकी पुस्तकोंके अनुवाद करनेको भी महापाप समझते थे। हिजरी ६६६ (१५६०-६१ ई०)में इसी पापको धोनेके लिये मुल्लाने कुरान लिखकर उसे अपने पीर शेख दाऊद जहनीकी कब्रपर अर्पित किया और दुआ की, कि इससे उनके वह पाप धुल जायें। बादशाहने उनके अनुवादमें इस कट्टरपनकी छाया देखी, तो बड़ा फटकारा और हरामखोर कहा।

बाकी अनुवादका काम मुल्ला शेरी और नकीब खाँको दिया गया। हाजी सुल्तान थानेसरीने भी कुछ काम किया। फैजीको गद्य-पद्यमें लिखनेके लिये हुक्म हुआ, जो दो पर्वसे आगे नहीं बढ़ सका। बादशाहने मुल्लोंकी कारस्तानीसे बचानेके लिये हुक्म दिया, कि मक्खिका-स्थाने मक्खिका अनुवाद करो। मुल्ला साहब इस कुफ्रकी किताबके अनुवादके प्रति अपनी सहज घृणा दिखलाते हुए लिखते हैं— "अधिकतर तर्जुमा करनेवाले कौरवों और पांडवोंके पास पहुँच गये हैं। जो बाकी हैं, उन्हें खुदा नजात दे और उनकी तोबा मंजूर करे।"

फिरदौसीके महान् ग्रंथका नाम "शाहनामा" (राजग्रन्थ) है, जिसमें कविने ईरानके वीरोंकी गाथायें बड़े सुन्दर ढंगसे पद्यबद्ध की हैं। भारतके वीरोंके इस महाग्रंथका नाम बादशाहने "रज्मनामा" (युद्ध-ग्रन्थ) रक्खा। महाभारतका अर्थ आजकी तरह उस समय भी महायुद्ध लिया जाता था। इस ग्रन्थको बादशाहने दो-दो बार सचित्र लिखवाया और अमीरोंको भी हुक्म दिया कि वह पुण्य समझकर ऐसा करें। अबुल-फजलने आठ पृष्ठकी इसपर भूमिका लिखी। एक इतिहासकारने लिखा है : मुल्ला

शाहबको इस कामके लिये १५० अशर्फियाँ और दस हजार रुपया इनाम मिला था। मुल्लाने कुफ्रकी कमाई समझकर इस बातको छिपानेकी कोशिश की।

५. रामायण—६६२ हिजरी (१५८४ ई०)में बादशाहने वाल्मीकि रामायणका तर्जुमा करनेका काम मुल्ला बदायूँनीके सुपुर्द किया। यह २५ हजार श्लोकोंकी पुस्तक महाभारतसे भी पुरानी है। मुल्ला अपनी तारीखमें गुस्सेसे डंक लगाते कहते हैं—"एक कहानी है। रामचन्दर अवधका राजा था। उसको राम भी कहते हैं और अल्लाहकी महिमाका प्रकाश समझकर पूजते हैं। उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यह है: उसकी रानी सीतापर आशिक हो उसे एक दस-सिरवाला देव (रावण) हर लेगया। यह लंकाके टापूका मालिक था। रामचन्दर अपने भाई लछमनके साथ उस टापूमें पहुँचा, बन्दरों और रीछोंकी बेशुमार लश्कर जमा की।...चार सौ कोसका पुल समुन्दरपर बाँधा। किन्हीं-किन्हीं बन्दरोंके बारेमें कहते हैं, वह कूद-फाँदकर पार हो गये। कुछ अपने पाँवोंसे पुलपर चलकर उतरे। ऐसीबुद्धिविरोधी बातें बहुत हैं, जिसे अकल न हाँ कहती, न ना। किसी तरह रामचन्दर बन्दरपर चढ़कर पुलसे उतरा। एक सप्ताह घमासान लड़ाई हुई। रावणको बेटों-पोतों समेत मारा। हजार वर्षका खानदान बरबाद कर दिया और लंका उसके भाईको देकर लौट आया। हिन्दुओंका विश्वास है, कि रामचन्दर पूरे दस हजार वर्ष हिन्दुस्तानपर हुकूमत करके अपने ठिकानेपर पहुँचा। ये बातें सच नहीं, केवल कहानी हैं, केवल ख्याल हैं, जैसे शाहनामा और अमीर हमजाका किस्सा।" मुल्ला साहबको रामायण-महाभारतकी कहानियाँ सिर्फ किस्सा मालूम होती थीं, लेकिन नसीबीनके मुर्गोंके बराबर चींटें सच जान पड़ते थे। ला हौल व लाकूवत।

६. मुअजमुल-बलदान—दो सौ जुजों (४० हजार श्लोकके बराबर)की इस पुस्तककी तारीफ एक दिन हकीम हुमामने बादशाहसे की। बादशाहने कई अनुवादकोंके जिम्मे यह काम सुपुर्द किया, मुल्लाके हिस्से दस जुज आये, जिसे उन्होंने एक महीनेमें अरबीसे फारसीमें कर दिये। बादशाहने मुल्लाकी भाषा और कामकी चुस्ती देखकर प्रसन्नता प्रकट की।

७. नजातुर्-रशीद—उपरोक्त पुस्तकके समाप्त करनेके बाद मुल्ला बीमार हो पाँच महीनेकी छुट्टी लेकर शमशाबादमें अपनी जागीरपर जाते ख्वाजा निजामुद्दीनके साथ हो लिये। घरमें जाकर इस पुस्तकको मुल्लाने ख्वाजाके कहनेपर लिखा। पुस्तकमें मेहदी-सम्प्रदायका विस्तारके साथ वर्णन आया है। मुल्लाने उसे इतनी अच्छी तरहसे लिखा है, कि इसे देखकर अनजान आदमी कह सकता है, कि मुल्ला बदायूँनी खुद मेहदीपंथी थे। लेकिन, मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी मेहदीपर उन्होंने जो यह कृपा की, उसका कारण दूसरा ही था। मुहम्मद जौनपुरीके दामाद शेख

अबुलफ़ज़ल गुजरातीसे मुल्ला बदायूँनीकी बहुत घनिष्ठता थी। मेहदीपंथी लोग केवल आर्थिक समानताका ही प्रचार नहीं करते थे, बल्कि उनमें सन्तों-सूफियोंकी तरह ध्यान-योग भी चलता था। शरीयतके बहुतसे क्रिया-कलापोंमें वह दूसरे मुसलमानोंसे भी एक कदम आगे थे। इसी कारण मुल्ला बदायूँनीने मेहदीपंथियोंके साथ इन्साफ करते हुए उस पथके ज्ञान-ध्यानकी शिक्षाके उपकारसे अपनेको उऋण करना चाहा।

इसी साल, जब कि वह छुट्टीपर बीमार होकर बदायूँ पहुँचे, बादशाहने "सिंहासन बत्तीसी" को फिरसे अनुवाद करनेके लिये कई बार हुक्म भेजे। पहला अनुवाद किताबखानेसे गुम हो गया था। अकबरकी बेगम सलीमा सुल्तानको वह बहुत पसन्द आया था और उन्होंने बादशाहसे बार-बार इसका तकाजा किया। मुल्ला बादशाहके हुक्मकी अवहेलना करके बदायूँमें डटे रहे। अकबरने हुक्म दिया—इसकी माफी बन्द करो और आदमी भेजो, वह उसे पकड़कर लायें। शेख अबुलफ़ज़लने टालका काम किया और मुल्ला बच गये।

८. जामेअ-रशीदी—अरबीकी इस इतिहासकी पुस्तककी तारीफ सुनकर बादशाहने तर्जुमा कराना चाहा। मिर्ज़ा निज़ामुद्दीन अहमद आदिने इस कामको मुल्ला बदायूँनीको सुपुर्द करनेकी सलाह दी। मुल्ला पहुँचे, तो उन्हें अल्लामी शेख अबुलफ़ज़लकी सलाहसे अनुवाद करनेके लिये हुक्म हुआ। इस ग्रन्थमें बनी-उमैया, अब्बासिया, मिस्री खलीफोंका विशद वर्णन है। इस्लामकी सेवा थी, इसलिये मुल्लाने बड़ी खुशीसे इस कामको किया।

९. मुन्तखिबुत्-तवारीख—यह मुल्ला बदायूँनीका सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक ग्रन्थ है। इसे उन्होंने पैसेके लिये नहीं, बल्कि इतिहास-प्रेमके लिये लिखा। यद्यपि उदार विचारवालोंके ऊपर खुलकर डंक लगानेमें कोई कसर नहीं उठा रक्खी, पर इसे इतिहासकारके दो टूक फैसलेका नमूना भी कह सकते हैं। अकबरके अन्तिम सालों और जहाँगीरके शासनसे बहुत मुश्किलसे इसे बचकर निकलना पड़ा। जहाँगीरको जब मालूम हुआ, तो इसे नष्ट करनेकी कोशिश की, परन्तु तब तक वह एकसे हजार हो चुका था और उसको खतम नहीं किया जा सकता था।

अपनी तलवारका जिस तरह दुरुपयोग कट्टर सैनिक हुसेन खाँ टुकड़ियाने किया, कुछ-कुछ उसी तरह अपनी कलमका दुरुपयोग मुल्ला बदायूँनीने करना चाहा; पर, दुरुपयोगकी जगह अक्सर वह सत्यको प्रकट करनेमें सफल हुए।

—०—

अध्याय १२

टोडरमल (मृ० १५८६ ई०)

१. आरंभिक जीवन

अबुलफ़ज़ल राजनीति और शासनमें अद्वितीय थे। मानसिंह महान सैनिक थे। दोनोंके गुण अकबरके जिस नवरत्नमें मौजूद थे, वह थे टोडरमल। टोडरका जन्म अवधमें सीतापुर जिलेके लहरपुर गाँवमें १६वीं सदीके प्रथम पादके अन्तमें हुआ था। टंडन-खत्री होनेके कारण कितने ही लोग उन्हें लाहौरी पंजाबी बनाना चाहते हैं, पर जिस तरह आचार्य नरेन्द्रदेव खत्री होनेसे पंजाबी नहीं हो सकते, वैसे ही टोडरमल भी पंजाबी नहीं कहलाते थे। बेवा माँने बड़ी गरीबीमें इस अद्भुत प्रतिभाके धनी पुत्रको पाला था और जैसे तैसे करके उसे शिक्षा भी दिलाई थी। लेकिन, उस समय कौन कह सकता था कि लहरपुरका एक अनाथ बच्चा एक समय सारे हिन्दुस्तानका विधाता बनेगा। टोडरमलने लड़ाइयोंमें अपनी तलवारका जौहर दिखाया, लेकिन उसका प्रभाव उसी समय तक रहा। पर, देशके शासन-प्रबन्ध और भू-कर व्यवस्थाकेलिए जो नियम टोडरमलने निकाले, उसकी छाप सारे मुगल शासन और अँग्रेजी शासनसे होते आज भी मौजूद है।

पहिले यह मामूली दफ़्तरी मुन्शी नियुक्त हुये। फिर अमीर मुज़फ़्फ़र खाँके दफ़्तरमें पहुँचे। हर जगह उनके कामको देखकर लोग प्रभावित हुए। अन्तमें अकबरके दफ़्तरमें दाखिल हुये। यह हरेक चीजको बहुत सोच-समझकर करते थे। नियमकी पाबन्दी और कामकी सफाई तो उनके स्वभावमें थी। जो भी सीखने-जानने लायक बात होती, उसके पीछे पड़ जाते। काम कामको सिखाता है और टोडरमल हरेक कामको खूब अच्छी तरहसे करना चाहते थे। सरकारी कागज-पत्रोंकी जानकारीमें उनका ज्ञान अपने सहकारियोंसे जल्दी ही आगे बढ़ गया। बड़ी सल्तनतके अभि-[illegible]ों और कागज-पत्रोंका क्या ठिकाना था? लेकिन, उस जंगलमेंसे किसी चीजको लाकर बादशाहके सामने रख देना टोडरमलके बाँयें हाथका खेल था। अब [illegible]को उन्हें अपने साथ रखना अनिवार्य हो पड़ा।

टोडरमल बड़ा पूजा-पाठ करते थे। एक बार वह बादशाहके साथ सफ़रमें थे। [illegible]सी दिन कूँचके समय जल्दी-जल्दीमें उनके ठाकुरजीका सिंहासन छूट गया, या किसीने

वजीरका बहुमूल्य बटुवा समझकर चुरा लिया। टोडरमल बिना पूजा किये न कोई काम करते थे, न अन्न मुँहमें डाल सकते थे। उन्होंने खाना छोड़ दिया। बादशाहको मालूम हुआ, तो बुलाकर समझाया—"ठाकुरजी चोरी गये, तो अन्नदाता ईश्वर तो मौजूद है, वह तो चोरी नहीं गया! स्नान करके उसका ध्यान करके खाना खाओ। आत्महत्या किसी धर्ममें पुण्य नहीं है।" टोडरमलने अकबरकी बात मानली। एक तरफ टोडरमल अपने धर्मके बारेमें इतने कट्टर थे, तो दूसरी ओर वह समयकी माँगको समझते थे। वह सबसे पहले आदमी थे, जिन्होंने अपनी राजी-निर्ज़ई छोड़ी और उसकी जगहपर बरजू (पायजामा) पहनकर ऊपरसे चोगा धारण किया, पैरोंमें मोजे चढ़ाये और तुर्कोंका रूप बनाकर घोड़े दौड़ाने लगे। उस समय आमिनी भाखा (फारसी) पढ़नेसे हिन्दू परहेज करते थे। टोडरमलने इस बेवकूफीसे बाज आनेकेलिए कहा और उनके जैसे भक्की देखादेखी हिन्दू फारसी पढ़कर दफ्तरके बड़े-बड़े दर्जोंपर पहुँचने लगे।

२. दीवान (वजीर)

सबसे पहले टोडरमलका उल्लेख अकबरके सिंहासनपर बैठनेके नवें वर्ष (१५६५ ई०)में मिलता है। हुमायूँको भारतमें दुबारा सफल बनानेमें जिन सेनापतियोंने सहायता की, उनमें अली कुली खाँ खानजमाँ भी था। वह उज्बेक तुर्क था। हेमूके हरानेमें उसका विशेष हाथ था। जौनपुर सूबे का वह सूबेदार था। वह, उसका भाई बहादुर तथा उनके चाचा इब्राहीम बादशाहसे बागी हो गये। उन्होंने अपने खिलाफ भेजी गई सेनाको हरा दिया और वह नीमखार (जिला सीतापुर)में हटनेके लिए मजबूर हुई। खानेजमाँ और उसके साथी नहीं चाहते थे, कि उनका यह झगड़ा आगे बढ़े। वह अनुकूल शर्तके साथ सुलह करनेकेलिए तैयार हुये। लेकिन टोडरमलने इसका विरोध किया।

चित्तौड़, रणथम्भौर, सूरतके संग्रामोंमें भी टोडरमलने भाग लिया था। लाखोंकी प्यादा, सवार, तोपखाना, हाथियोंकी पलटनका इन्तिजाम करना आसान काम नहीं था। टोडरमलने उनका इन्तिजाम इतनी अच्छी तरहसे किया, कि सभी खुश थे। वह सिपाहियोंकी तरह चुस्त और व्यवस्था-प्रशंसक थे। हिजरी ९८० (१५७२-७३ ई०)में अकबरने उन्हें गुजरातके दफ्तर और माल-बन्दोबस्त करनेके लिये भेजा। कागज-पत्रका जगल पार करना हरेकके बसकी बात नहीं है, लेकिन टोडरमलके लिए वह कोई चीज नहीं थी। कुछ ही दिनोंमें उन्होंने सब कागज ठीक करके बादशाहके सामने पेश कर दिये।

बिहारमें ९८१ हिजरी (१५७३-७४ ई०)में मुनअम खाँ सेनापति था। लड़ाईका फैसला नहीं हो रहा था। अकबरी जेनरल लड़ाई लड़नेकी जगह आराम करना ज्यादा पसन्द करते थे। बादशाह जानता था, टोडरमल केवल कलम और शासन-प्रबन्धमें ही कुशल नहीं है। उसने उन्हें सेनाका प्रबन्ध करनेके [illegible] मुनअम

खाँकी लश्करमें पहुँचे, जो दुश्मनके मुकाबिलेमें खड़ी थी। उन्होंने सेनाका हिसाब-किताब देखा। बड़े-बड़े बुड्ढे तजर्बेकार तुर्क सेनापति वहाँ मौजूद थे। वह हुमायूँ और कुछ तो बाबरके समयसे अपना जौहर दिखलाते आये थे। वह भला एक कलम चलानेवाले गुमनाम मुत्सद्दीका अपने ऊपर देखरेख करना क्यों पसन्द करते! लेकिन, वह यह भी जानते थे, कि यह मुत्सद्दी ही नहीं, अकबरकी कान और आँख है, अपनी योग्यताका परिचय दे चुका है। टोडरमलकी व्यवस्थाके अनुसार लड़ाई हुई। पठान हार कर भागनेके लिए मजबूर हुये। पटनापर बादशाही झण्डा गड़ गया। टोडरमलको इस सफलताके लिये झण्डा और नगाड़ा मिला। बिहारके बाद बंगालकी ओर बढ़ना था। उसकेलिए जो जेनरल नियुक्त किये गये, उनमें फिर टोडरमलका नाम आया, वस्तुतः इस मुहिमके वही प्राण थे। बंगालकी राजधानी पहले गौड़ (जिला मालदा) थी, लेकिन मलेरियाके कारण उसे टाँडामें परिवर्तित करना पड़ा था। टाँडामें बादशाही सेनाकी जो जबर्दस्त फतेह हुई, उसमें मुनअम खाँके साथ टोडरमलका नाम सबसे पहले आया।

दाऊद खाँ बिहार बंगालका प्रभु, पठानोंका सबसे जबर्दस्त मुखिया था। उसने शाही सेनाको अनेक बार परेशान किया था। एक जगहकी हारसे वह हिम्मत हारनेवाला नहीं था। उसने अपने बाल-बच्चोंको रोहतासके किलेमें छोड़कर बादशाही सेनापर झपट्टा मारा। यह ऐसा जबर्दस्त आक्रमण था, कि मुनअम खाँको भी सफलतामें सन्देह मालूम होने लगा। शाही सेनाके व्यूहके बीचमें सेनापति मुनअम खाँका झण्डा लहरा रहा था। दुश्मनके हरावलने जबर्दस्त हमला करके शाही हरावलको पीछे ढकेलना शुरू किया। टोडरमल पंक्तिके दाहिने पार्श्वमें थे। वह अपनी जगहसे टससे मस नहीं हुये और अपनी सेनाके साथ बराबर डटकर लड़ते रहे। दुश्मनने खबर उड़ा दी कि मुनअम खाँ मर गया। जब लोगोंने टोडरमलसे यह बात कही, तो उन्होंने कहा—"खानखाना नहीं रहा, तो क्या हुआ! हम अकबरी प्रतापके सेनापतित्वमें लड़ रहे हैं।" लड़ाई जोर-शोरसे जारी रही। अफगानोंका सेनापति गूजर खाँ मारा गया। पठान भागनेके लिए मजबूर हुये और मैदान शाही सेनाके हाथ रहा। टोडरमलकी तलवारने जौहर दिखलाया, दाऊद खाँके नाकों दम कर दिया और ९८३ हिजरी (१५७५-७६ ई०)में दाऊदने सुलहकी प्रार्थना की। उसके प्रतिनिधि, खानखाना मुनअम खाँ और अमीरोंके खेमेमें पहुँचे। लड़ाई-लड़ते-लड़ते वह थक गये थे, इसलिए सुलह करने के लिए उतावले थे। लेकिन, टोडरमल सुलहके विरुद्ध थे। उन्होंने कहा—"दुश्मनकी जड़ उखड़ चुकी है, थोड़ेसे प्रयाससे पठान खतम हो जायँगे। अपने आराम और इनकी प्रार्थनापर ध्यान मत दो। धावा किये जाओ और पीछा न छोड़ो।" अमीरोंने बहुत समझानेकी कोशिश की, लेकिन टोडरमलने नहीं माना। इसपर भी सुलह की गई। टोडरमलने सुलहनामेपर अपनी [मुह]र नहीं लगाई। विजयकी खुशी मनाई गई, पर उसमें भी टोडरमल शामिल नहीं हुये।

यहाँके कामसे छुट्टी होनेपर बादशाहने टोडरमलको बुला भेजा। यह बंगालकी बहुत-सी बहुमूल्य भेंटोंके साथ चुने हुए ५४ हाथी भी अपने साथ लाये। बंगाल उस समय अपने हथियोंके लिए बहुत मशहूर था।

दीवान (१५७६ ई०)—बादशाहने टोडरमलको सल्तनतके दीवान का पद दिया और थोड़े ही दिनों बाद उन्हें "वजारतकुल" और "वकालत-मुस्तकिल" (स्थायी वकील)के पद प्रदान कर अपनी सल्तनतका वित्त-मन्त्री बना दिया। इसी साल खानखाना मुनअम खाँ मर गया। दाऊद खाँने तो अपने मतलबके लिए सुलह की थी। वह उसपर क्यों कायम रहता? सारे बिहार-बंगालमें फिर आग लग गई। शाही अमीर तलवार पर सान देनेकी जगह अपने थैलोंको भर रहे थे। काम बिगड़ता देखकर अकबरने अपने एक जेनरल खानेजहाँ हुसेन कुल्ली खाँ (बैरमखाँके बहनोई) और टोडरमलको यह काम सौंपा। बिहारमें पहुँचनेपर टोडरमलने शाही जेनरलोंकी जो हालत देखी, उससे उनको बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ। एकतरफ तो वह सुस्ती और बेपर्वाही दिखा रहे थे और दूसरी तरफ खानेजहाँ तथा टोडरमलके नीचे रहना पसन्द नहीं करते थे। कितनोंने ही बलवायुका बहाना करके छुट्टी लेनी चाही। किन्हींने कहा: खानेजहाँ किजिलबाश (शिया) है, हम उसके नीचे काम नहीं कर सकते। टोडरमलने समझा-बुझाकर, डराधमकाकर, लोभ-लालच देकर उन्हें ठीक किया और इस प्रकार सेना लड़ने लायक हो गई। टोडरमल सिर्फ कलम और जबानके ही धनी नहीं थे। विन्सेन्ट स्मिथने उन्हें अकबरके योग्यतम जेनरलोंमें कहा है। वह तलवारका हाथ दिखानेमें सबसे चुस्त थे। उन्हींके कारण बंगालका बिगड़ा हुआ काम फिर ठीक हो गया।

दाऊद खाँ सबसे भयंकर शत्रु था। शेरशाहकी जाति और समयका सरदार था। उसके गिर्द पूर्वके सारे पठान जमा हो गये थे। टोडरमल जानते थे, कि पठान शेरशाहके जमानेको भूल नहीं सकते, उनसे कभी स्थायी सुलह नहीं हो सकती, खासकर जबतक कि दाऊद खाँ उनका नेता है। बरसातके दिन थे। लड़ाई हो रही थी। दोनों तरफके वीर दिल खोलकर लड़ रहे थे। पठानोंको शिकस्त हुई, दाऊद खाँ पकड़ा गया। उसे जिन्दा रहनेमें खतरा समझ कर कतल कर दिया गया। दाउद खाँके खतम होनेके साथ पठानों की रीढ़ टूट गई। टोडरमलने दरबारमें हाजिर हो ३०४ हाथी भेंट किये—मालूम ही है, अकबरको हाथियों का बहुत शौक था; बिगड़ैल से बिगड़ैल हाथीको बसमें करना उसके बायें हाथका खेल था।

३. महान् जेनरल

गुजरात में (१५७६-७७ ई०)—गुजरातमें वजीरखाँको असफल देखकर अकबरने मोअतमुद्दौला (राज्य-विश्वासपात्र) टोडरमलको इस कामके लिये भेजा। उन्होंने जाकर सुल्तानपुरके इलाकेके इन्तिजामको देखा, फिर सूरत गये। भड़ौंच, बड़ौदा, चम्पानेर,

पाटनके दरबारोंको देखनेसे पता लग गया, कि शासन-प्रबन्धमें कहाँ खराबी है। इसी अव्यवस्थासे शत्रुओंने फायदा उठाया था। अकबरके चचा कामरानकी बेटी बाबरके कृपापात्र तैमूरी शाहजादा इब्राहीम मिर्जाको ब्याही थी। यह अपने बेटोंको लेकर गुजरात आई। असंतुष्ट लोग उसके झंडेके नीचे आकर जमा हो गये। वजीरखाँमें मुकाबिला करनेकी ताकत नहीं थी, यह किलाबन्द होकर बैठ गया। टोडरमलके पास दोड़ा-दौड़ा आदमी गया। यह दफ्तरका काम छोड़ तलवार लेकर उठ पड़े। वजीर खाँको किलेसे खींचकर बाहर मैदानमें लाये। विद्रोहियोंने बड़ोदापर अधिकार कर लिया था। उधर चल पड़े। बड़ोदा चार कोस रह गया, जब कि बागियोंको खबर लग गई। यह दुम दबा कर भागे। आगे-आगे बागी भागने जा रहे थे, पीछे-पीछे टोडरमल। खम्भात गये, तो टोडरमल भी वहाँ पहुँचे। जूनागढ़में भी शरण नहीं मिली, यह भाग कर धोलका गये, जहाँ उन्हें लड़नेके लिए मजबूर होना पड़ा। विद्रोहियोंका नेता मेहरअली कुलाबी वजीर खाँको नहीं, राजा टोडरमलको यमराजके रूपमें देख रहा था। वह समझता था, अगर किसी तरह टोडरमलको हम खतम कर दें, तो काम बन जाय। लेकिन, टोडरमल लड़ाईके मैदानके जबर्दस्त खिलाड़ी थे। उनके सामने दाल गलती न देखकर कुलाबी, वजीर खाँके ऊपर टूट पड़ा। टोडरमल उसकी रक्षाके लिए वहाँ मौजूद थे। लड़ाईमें कामरानकी बेटी हारी। तिवाके जानी दुश्मनकी बेटी नये तरीकेसे लड़ाई लड़ रही थी। बेगमकी देखादेखी औरतोंमें भी जोश आया था। मर्दाना पोशाकमें बाकायदा औरतोंकी सेना तैयार हुई थी। तीर, भाला और दूसरे हथियारोंका चलाना उन्होंने सीखा था। युद्धबन्दियोंमें काफी तादाद स्त्री सैनिकोंकी थी। लूटके सामान और हाथियोंके साथ टोडरमलने इन स्त्री सैनिकोंको भी ज्योंका त्यों, मर्दाना लिबासमें तीर-कमान हाथमें दे दरबारमें भेज दिया। टोडरमलका पुत्र धारा उन्हें सीकरी ले गया।

बंगालमें (१५८० ई०)—टोडरमल अपने सहायक ईरानी महागणक ख्वाजा शाह मसूरके साथ हिसाब-किताब सँभालनेमें लगे। इसी समय सारी सल्तनतको बारह सूबोंमें बाँटा गया। सूबोंके शासक सिपहसालार कहे जाते थे, जिन्हें पीछे सूबेदार कहा जाने लगा। विभागके अध्यक्ष दीवान (वित्तमन्त्री), बख्शी (सैनिक-वेतन-विभाग), मीर-अदल (मृत्युदंडनायक), सद्र (धर्मादा-अध्यक्ष), कोतवाल (पुलिस), मीर-बहर (नाव-जहाज, घाट आदिके अध्यक्ष) और वकायानवीस (घटना-लेख-अध्यक्ष) बनाये गये। बंगालकी गड़बड़ीके कारण टोडरमलको सारा बोझ शाह मंसूरके ऊपर छोड़कर जनवरी १५८० में उधर रवाना होना पड़ा। पहले बंगालमें विद्रोह करनेवाले पठान होते थे, लेकिन शाही अफसरोंने बगावतका झण्डा उठाया था। तारीफ यह, कि ये सबके सब तुर्क र मुगल अर्थात् अकबरके अपने रक्त-सम्बन्धी थे। अकबर तीन पुश्तसे देख चुका था क मतलबके सामने खून कुछ काम नहीं करता और भाईभाई तुर्की-मुगलोंपर भी विश्वास

नहीं किया जा सकता। इसीलिए तो उसने मानसिंह और टोडरमल जैसोंको अपनी दाल बनाया था। इसमें क्या शक, यदि अकबरने हिन्दुओंको अपनी ओर न किया होता, तो उसे कभी इतनी सफलता नहीं मिलती। टोडरमल उन लोगोंके खिलाफ भेजे गये थे, जो बादशाह के स्वजन कहे जाते थे। वह नियमनिष्ठ हिन्दू थे, जब कि बागी सबके सब मुसलमान थे। वह यह भी समझते थे, कि आखिर यह लोग भी तख्तके जबर्दस्त सहायक रहे हैं और आगे भी इनकी जरूरत होगी। वह चाहते थे, कि उन्हें समझा-बुझाकर रास्ते पर लायें। उधर बागी टोडरमलके आनेकी बात सुनकर आपेसे बाहर हो गये। उन्होंने चाहा, कि किसी ढगसे उनका काम तमाम कर दिया जाय। लेकिन टोडरमल हर तरहसे चुस्त थे। वह बागियोंको चीरते-फाड़ते मुँगेर पहुँचे। आत्मरक्षाके लिए जरूरी था कि मुँगेरको एक जबर्दस्त रक्षा-दुर्गका रूप दिया जाय। उन्होंने वहाँ गंगाके किनारे एक आलीशान किला खड़ा किया। चार महीने तक बागियोंने उन्हें घेरे रक्खा। टोडरमलने ऐसा प्रबन्ध कर लिया था, कि बागी और अधिक दिनों तक ठहरने-की हिम्मत नहीं कर सके। वह भागनेके लिये मजबूर हुये। शाही सेनाने आगे बढ़कर तेलियागढ़ीके घाटेपर अधिकार कर लिया। घाटा राजमहलकी पहाड़ियों और गंगाके बीच में अवस्थित है और इसे बंगालका दरवाजा कहा जाता था। बंगालके विद्रोहको दबा देनेके बाद फिर टोडरमलको दिल्ली लौटना पड़ा। शासन, विशेषकर वित्त-प्रबन्धको भी उनकी उतनी ही अवश्यकता थी, जितनी सेनाको।

"दीवानकुल"—लौटनेपर अकबरने टोडरमलको दी इनकुल (सारे राज्यका वित्त-मन्त्री) बना दिया। १५८२ ई० में टोडरमलने भोज दिया। अकबर उनके घर गया। १५८५ ई० में वह चारहजारी मन्सबदार थे।

पश्चिमोत्तर सीमान्तपर (१५८६ई०)—अकबरने काश्मीरको लेनेसे पहले स्वात उपत्यकाको अपने हाथमें करना चाहा। इसी मुहिममें बीरबलको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा था। अपने नर्म-सचिवके मारे जानेका अकबरको बहुत अफसोस हुआ। खबर मिलते ही उसने टोडरमलको इस मुहिमपर भेजा। मानसिंह अमरूदमें (पेशावरके पास) डेरा डाले पड़े थे। उनसे मिलकर काम करना था। टोडरमलने जाकर कोहलंगर-के पास स्वातकी बगलमें छावनी डाली। यहाँकी स्थिति काबूमें लानेमें बहुत देर नहीं हुई। फिर बाकी कामको मानसिंहपर छोड़कर टोडरमल लौट आये।

टोडरमल अब बूढ़े हो चुके थे। भक्त पुरुष थे, चाहते थे, अपना अन्तिम समय हरद्वारमें गंगाजीके किनारे भगवान्‌के भजनमें बितायें। बादशाहके पास इसके लिए प्रार्थना की। बादशाहने पहले उनको खुश करनेके लिए स्वीकृति का फरमान भेज दिया, लेकिन उसके बाद ही दूसरा फरमान पहुँचा: भगवान्‌ का भजन भगवान्‌के बन्दोंकी सेवा और सहायता करनेसे बढ़कर नहीं है, इसलिए इसी सेवाको भजन मानो। स्वीकृति-पत्र पानेपर वह हरद्वारकी ओर चलते लाहौरमें अपने बनवाये तालाबके किनारे पड़े थे।

नहीं दूसरा फरमान मिला। वह लौट पड़े। लेकिन, उन्हें बहुत समय ऐसा करनेका मौका नहीं मिला। ग्यारहवें दिन उनको अपनी जातिके ही एक आदमीने (खत्रीने) मार डाला, जिसे इन्होंने किसी अपराधके लिये दण्ड दिया था। चाँदनी रात थी। हत्यारेने पीछेसे ऊपर वार किया। राजा भगवान्‌दासके मरनेके पाँच दिन बाद नवम्बर १५८९ में टोडरमलने भी अपनी जीवन-लीला समाप्त की। इसमें क्या शक, कि टोडरमल अकबरके नवरत्नोंमें बहुत ऊँचा स्थान रखते थे। इतिहासकार मुल्ला बदायूँनी तो किसी गैर-मुसलमानके पदको पूरी खाली नहीं देखना चाहता था। उसने टोडरमलकी मृत्युपर हर्ष प्रकट करते हुये कहा—

टोडरमल आँकि जुल्मश् ब-गिरफ्त: बूद आलम।
शुद् रह-ए-दोजख खल्के शुदन्द खुर्रम।

(टोडरमल, जिसके जुल्मने दुनियाको दबा रक्खा था, जब नर्कको चला गया, तो लोग खुश हो गये।)

४, महान् प्रशासक

मुल्ला और कितने ही औरोंको भी टोडरमल पसन्द नहीं आ सकते थे, क्योंकि वह बहुत खरे आदमी थे, हिसाब-किताबकी गड़बड़ी उनकी पकड़से नहीं बच पाती थी। बदायूँनीने खुद उनके कामके बारेमें लिखा है (बदायूँनी २।१६२)—१५७४ई० में अकबरके दिमागमें आया, कि राज्यको प्रबन्धके लिए बाँटते वक्त करोड़-करोड़ की मालगुजारीका एक-एक इलाका बनाया जाय। पता लगा, ऐसा करनेसे देशको १८२ भागोंमें बाँटा जा सकता है। करोड़से मतलब करोड़ दामका था। दाम, द्रम्म या द्राख्माके रूपमें एक ग्रीक सिक्का था, जो बाख्त्रिय-ग्रीकके चाँदी के सिक्कोंके रूप में एक रुपयेके करीब होता था। पर, अकबरके वक्त दाम ताँबेका सिक्का रह गया था। इसमें ३१५ से ३२५ ग्रेन ताँबा होता था। डबल दाम भी होते थे, जिसके नामपर हमारे यहाँ अँग्रेजी जमानेमें भी पैसेको डबल कहा करते थे। इसमें ६१८ से ६४४ ग्रेन तक ताँबा रहता था। अकबरी रुपया करीब-करीब हमारे रुपयेके बराबर ही था, अर्थात् १७२.५ ग्रेन (१५ ग्रेन-मास)। दामको २५ जीतलोंमें बाँटा गया था, पर वह केवल हिसाबके लिये था, उसका कोई सिक्का नहीं था। एक रुपयेमें ४० दाम हुआ करते थे, अर्थात् एक करोड़ दामका अर्थ है ढाई लाख रुपया। ढाई लाखकी आमदनीके करोड़ीमहाल बनाये गये, जिनका अफसर आमिल या करोड़ी कहा जाता था। बदायूँनीके अनुसार—

"एक करोड़का नाम आदमपुर रक्खा गया था, दूसरेका शेथपुर, तीसरेका अयूबपुर, इसी प्रकार दूसरे पैगम्बरोंके नामके अनुसार दूसरोंके नाम थे। इसके लिये अफसर 'करोड़ी' नियुक्त किये गये थे। वह नियमकी पाबन्दी नहीं करते थे। करोड़ियोंकी लूट-

खसोटके कारण देशका बड़ा भाग उजड़ गया था। रैयतोंके बीवी-बच्चे बेंचे जाकर तितर-बितर हो गये थे। हरेक जगह भारी अव्यवस्था फैली थी। करोड़ियोंको टोडरमलने खूब ठीक किया। अपने जुल्मोंके लिये उनमेंसे कितनेही मारे गये, कितने ही रगड़ पेटे। शासत करनेमें कोई कसर उठा नहीं रक्खी गई। बहुतेरे मालगुजारी-अधिकारी जेलखानोंमें बहुत समय तक पड़े रहते मर गये, जल्लाद या तलवारसे मारनेवालेकी जरूरत नहीं पड़ी। उनको कब्र और कफन देनेकी जरूरत थी।"

जनताके लुटेरोंको ऐसे कड़े हाथसे दबानेवाला सर्वजनप्रिय आदमी भला कैसे अफसरोंका प्रिय हो सकता था।

"करनचहत निज प्रभु कर काजा।" यह पाँती मानो समकालीन महान् कवि तुलसीदासने टोडरमलके लिये ही लिखी थी—एक टोडरमल तुलसीदासके भी मित्र थे, पर वह यह टोडरमल नहीं थे। बनारसमें इनके बसनेका कोई उल्लेख नहीं मिलता। हरद्वारमें वह गंगावास जरूर करना चाहते थे, लेकिन उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। टोडरमलके चरणोंमें अपने आप लक्ष्मी और सम्मान पहुँचे, पर वह मानके नहीं, कामके भूखे थे। उनके बराबर युद्धकुशल व्यक्ति अकबरके पास बहुत नहीं थे। उन्होंने अपने युद्धकौशलको बंगालमें, गुजरातमें, पश्चिमोत्तर सीमान्तमें अनेक बार दिखलाये, लेकिन कभी इच्छा नहीं की, कि मैं इन मुहिमोंका मुख्य-सेनापति बनाया जाऊँ। किसी भी सेनापतिके सहायक रह कर वह अपने प्रभुका कार्य करना चाहते थे। लड़नेके लिये पलटनको हथियारसे लैस करना, उसे संचालित करना बड़े कौशल का काम है, लेकिन उससे भी बड़ा काम है: पलटनकी रसद, कमसरियटका ठीकसे प्रबन्ध करना। नदियोंके रास्तेमें हजारों नावोंकी आवश्यकता पड़ती थी, लाखों आदमियोंके लिये खाद्य-सामग्री भी उसी परिमाणमें और समयपर चाहिये। इस कामको टोडरमल उतनी ही सफलता और सुगमतासे कर लेते थे, जैसे भूमि और वित्तके प्रबन्धको।

१५८२ ई०में उन्हींके सुझावपर मुद्रामें सुधार हुआ। जीतल, दाम, इकहा दाम, रुपया आदिका सुधार यद्यपि शेरशाहने किया था, पर उसको और सुव्यवस्थित रूप देना टोडरमलका काम था। उन्होंने दफ्तरके हिसाब किताब रखनेके भी कायदा-कानून बनाये थे। पर, ऐसी कोई कृति मौजूद नहीं है, जिसे हम केवल उनकी कह सकें। "खाजने-इसरार" (चित्तरहस्य) नामक एक फारसी पुस्तकके बारेमें शम्सुल-उलमा आजाद कहते हैं—"मैंने बड़ी कोशिशसे कश्मीरमें जाकर पाई। लेकिन, भूमिका देखी, तो आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह १००५ हिजरी (१५९६-९७ई०) की कृति है, जब कि वह खुद १५८९ ई०में मर गये थे। शायद उनकी यादगारकी किताब-पर किसीने भूमिका जोड़ दी।...उसके दो भाग हैं—एकमें धर्म, ज्ञान, स्नान, पूजा-पाठ आदि-आदि और दूसरेमें दुनियाका कारबार। दोनोंमें छोटे-छोटे बहुतसे अध्याय

है। हर बातका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान है—...आचार और जीवन-यात्रोपायके अतिरिक्त काल, संगीत, सगुन...इत्यादि। इस किताबसे यह भी मालूम होता है, कि वह अपने धर्मका पक्का और विचारोंका पूरा था, हमेशा ज्ञान-ध्यानमें रहता था, पूजा-पाठ और धार्मिक कृत्योंको अक्षरशः पूरा करता था।" कलमका धनी होनेपर भी जान पड़ता है, टोडरमल उसे अपने दफ्तर तक ही सीमित रखना चाहते थे। इसीलिए अबुलफजलकी तरह इस मैदानमें अपना जौहर नहीं दिखा सके। "दीन-इलाही"का बहुत जोर था, लेकिन टोडरमलपर उसका कोई असर नहीं पड़ा। अकबर साफ दिल साफ समझनेवाला आदमी था। वह गुणोंकी कदर करता, दोषोंकी उपेक्षा कर जाता था। अबुलफजल भला क्यों चाहते कि ऐसा लायक आदमी "दीनइलाही"में न आये। वह लिखते हैं—"बादशाहने वित्तीय और राजकीय मामलोंको उसकी सुबुद्धि के हवाले करके हिन्दुस्तानका दीवानकुल बनाया। वह सच्चा और निर्लोभी, अच्छा राजसेवक था। बिना लालच काम-काज करता था। क्या ही अच्छा होता, यदि द्वेष और बदला लेनेका भाव उसमें न होता। उसके मनके क्षेत्रमें जरा नर्मी फूट निकलती। यह भी ठीक है, यदि धार्मिक पक्षपातका रंग वह चेहरेपर न फेरता, तो इतनी निन्दा के योग्य न होता। इस सबके बाद भी...कहना पड़ेगा, कि वह पूरे दिलसे निर्लोभी, परिश्रमी और कदरदान राजसेवक था। वह कमजोर नहीं, बल्कि बेनजीर था।"

दागका नियम—अकबरको शुरूसे ही लड़ाइयोंके भीतरसे गुजरना पड़ा और मरनेके समयके करीब तक उनसे पिण्ड नहीं छूटा। यथा-लाभसंतुष्ट वह कैसे हो सकता था, जबकि वह सारे भारतको एक और मजबूत देखना चाहता था। इस कामके लिए साम-दामसे काम लेना चाहता था, लेकिन अन्तमें फैसला तलवार पर ही होता था। इसीलिये सेनाको सदा तैयार रखना जरूरी समझता था। उस समय सूबोंके अफसरोंको सिपहसालार (सेनापति) कहा जाता था और सरकारों (जिलों)के अफसरोंको फौजदार। यह भी उसी बातको बतलाता है। असैनिक व्यवस्था सैनिक प्रबन्धके अधीन थी, इसलिये सैनिक संख्याके रूपमें ही मन्सबोंको बाँटा गया था—दहबाशी (दशिक अफसर), बीसती (बीसी), दो-बीसती (चालीसा), पंजाही (पचासा), सेहबीसी (साठी), चहारबीसती (अस्सीक), नूजबाशी (नब्बई), सदी (शतिक), पंच-सदी (पंचशतिक), हजारी, दोहजारी, सेहजारी (तीन हजारी) चहारहजारी, पंच-हजारी (पाँच हजारी)। मन्सबके मुताबिक अफसरको उसी संख्यामें आदमियों और सैनिक असबाब अपने साथ रखने पड़ते थे। पंजहजारी मन्सबदारको पाँच हजार पैदल सेनाके अतिरिक्त इराकी, तुर्की, ताजिकी, आदि जातिके ३१७ घोड़े, पाँच सौके सौ हाथी, माल ढोनेके लिए ८० ऊँट, २० खच्चर और १६० बैलगाड़ियाँ रखनी पड़ती थीं। उन्हें इस खर्चेकेलिये २८ हजारसे ३० हजार रुपया मासिक वेतन मिलता था। यह इसलिये था कि अवसर आने पर बिना देर किये फौजें तैयार रहें और उन्हें बन-

रतके स्थानपर ले आया जा सके। पर, अफसर तनखाहका पैसा और दूसरा खर्च अपनी जेबमें रख, नाममात्रके सैनिक और घोड़े अपने साथ रखते थे। जब खबर मिलती, तो इधर-उधर दौड़-धूप करके अपनी पलटन पूरी करनेकी कोशिश करते। देख-भालके समय तुरन्त सवार नौकर रख लेते और परेडमें दिखला कर फिर छुट्टी कर देते। घोड़ों का देखना जब एक जगह हो जाता तो उन्हींको दूसरी जगह ले जाकर दिखला देते। यह खुली धोखा-धड़ी बड़ी खतरनाक थी। इसके रोक-थामके लिये यह जरूरी समझा गया कि घोड़ोंको दाग दिया जाये। उसी ख्यालसे आजकल वोट देनेवालोंके अँगूठे पर रंग लगा दिया जाता है ताकि वह दूसरे नामसे वोट न दे सकें। यह दागका काम ऐसा था, जिसे बड़ेसे छोटे अफसर तक पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि यहाँ पैसे सवाल था। इस कड़वे कामको करनेका जिम्मा जिस आदमीके ऊपर हो, वह लोगोंको खुश रख सकता था। टोडरमलकी यही मुश्किल थी।

टोडरमल राज्य-शासनके सारे रहस्योंके ज्ञाता हिसाब-किताबके काममें बे-ीर थे। वह मन्त्रालयके कायदे-कानून, सल्तनतके विधान, रैयतकी भलाई, दफ्तरके यदेको ठीक-ठाकसे चलानेके गुर जानते थे। कोशको भरपूर रखना यातायातके धनोंको कायम रखना, परगनोंकी मालगुजारीकी दर निश्चित करना, जागीरोंकी ाहि अमीरोंके मन्सबोंके नियम टोडरमल होने बनाये थे, जो उनके बाद भी ग्रेजोंके आने तक और कुछ तो उनके राज्यमें भी चलते रहे। काम हैं—

१. गाँव-गाँव और परगनेकी मालगुजारी उन्होंने बाँधी।

२. नापनेकी ५५ गजकी जरीब सूखी-गीली होनेके अनुसार घट-बढ़ जाती । टोडरमलने बाँस या नर्कटकी ६० गजकी जरीब मुकर्रर की, जिसके बीच-बीचमें ोहेकी कड़ियाँ डलवाई जिसमें कि अन्तर न पड़े।

३. उन्हींके सुझावके अनुसार हिजरी ९८२ (१५७४-७५ ई०)में सारे मुल्क ा बारह सूबोंमें बाँटा गया और दहसाला बन्दोबस्त मुकर्रर हुआ, राज्यमें कुछ ोंका पर्गना, कितने ही पर्गनोंकी सरकार (जिला) और कितनी ही सरकारोंका क सूबा बनाया गया।

४. रुपयेके ४० दाम ठहराये गये। दफ्तरमें पर्गनाकी लगान दामोंमें दर्ज होती।

५. करोड़ दामपर एक आमिल (अफसर) मुकर्रर करके उसका नाम करोड़ी रखा गया।

६. अमीरों (जेनरलों)को अपने अधीन नौकर सैनिक रखने पड़ते थे। उनके ोड़ोंके लिये दागका नियम निश्चित किया गया, जिसमें एक जगहका घोड़ा दो दो, ीन-तीन जगह न दिखा सकें और कमीके कारण ठीक वक्तपर हर्ज न हो।

७. बादशाही नौकरोंको सात टोलियोंमें बाँटा गया। एन्त्राहके सातों दिन अपनी पारीके अनुसार हर टोलीमें से आदमी आकर चौकीमें हाजिर रहते थे।

८. हर रोज एक-एक आदमी चौकीनवीस मुकर्रर होता, जो ड्यूटीपर आने-वालोंकी हाजिरी लेता। वही प्रार्थना या हुक्म आदिको जारी करता या उचित स्थानपर पहुँचाता।

९. हर हफ्तेकेलिये चार वाकया-नवीस (घटनालेखक) मुकर्रर होते, जो झरोखेपर बैठे सारे दिनका हाल लिखा करते।

१० अमीरों और खानोंके अतिरिक्त चार हजार एकका सवार खास शाही प्रतिहार (गारद) थे, इन्हें अहदी (एकका) कहते थे। इनका दरोगा (अफसर) भी अलग होता था।

११. अकबरने कई हजार खरीदे गुलाम या युद्धबन्दी दासों (गुलामों)को दासतासे मुक्त कर दिया था। उन्हें चेला कहा जाता था। अकबरका कहना था—भगवान्‌के सभी बन्दे मुक्त हैं, उन्हें गुलाम (दास) कहना उचित नहीं है...।

१२. भारतके राजा या बादशाह क्रय-विक्रय, दीहातकी मालगुजारी, कर-उगाही, नौकरोंकी तनखाहोंका हिसाब, तंकोंमें किया करते थे, पर देते थे पैसे। धारीकी ढलाई वाले चाँदीके तंके कहलाते, जिन्हें राजदूतों और डोमों (नर्तकों)को इनाममें दिया करते थे। उनका साधारण चलन नहीं था। वह बाजारमें चाँदीके मात्र बिकते थे। टोडरमलने मन्सबदारों और मुलाजिमोंकी तनखाहें इन्हीं चाँदीके सिक्कोंमें जारी की और नियम बनाया, कि गाँवोंसे रुपयेमें कर वसूल किया जाये। रुपयेका वजन ११ माशा रक्खा। "उसमें ४० दाम माने गये...। वही नौकरोंको तन-खाहमें मिलती थी और उसी रुपयेके अनुसार सभी गाँवों, कस्बों, परगनोंकी जमा सरकारी दफ्तरोंमें लिखी जाती थी। इसका नाम अमल-नकद-जमाबन्दी रक्खा गया था। मालगुजारी इस तरह निश्चित की जाती, कि बरसाती जमीनके गल्लेमें आधा काश्तकार और आधा बादशाहका हिस्सा है। दूसरेमें चौथाई खर्च और क्रय-विक्रय की लागत लगा कर गल्लेमेंसे एक-तिहाई बादशाही और दो तिहाई किसानका। ऊख आदि आला-जिन्स कहलाती थी। इनमें पानी, देखभाल, कटाई आदिकी मेहनत अनाजसे ज्यादा लगती थी, इसलिये उपजमेंसे खेतके अनुसार चौथाई, पाँचवा, छठा या सातवाँ हिस्सा बादशाही हक और बाकी काश्तकारका हक था।..."

टोडरमल जैसे कुशल जेनरल और योग्य शासकपर अकबरका विशेष पक्ष-पात होना उचित था। चित्तौड़के मुहासिरे (दिसम्बर १५६७ई०)में एक सुरंगके उड़ानेका जिम्मा टोडरमलको मिला था। १५७३ में सूरतमें शत्रुकी शक्तिको आँकने का काम उन्हें मिला था। १५७३ई०में गुजरातका भूकर-बन्दोबस्त उन्होंने किया। गुजरातके बिगड़े शासनको ठीक करनेकेलिये अकबरने उन्हें सूबेदार बनाकर १५७६

० में वहाँ भेजा था।

टोडरमलको इतनी जिम्मेवारियोंका काम देनेसे नाराज कुछ मुसलमान अमीरोंने बादशाहके पास शिकायत की : आपने एक हिन्दूको मुसलमानोंके ऊपर इतना बड़ा अधिकार दे दिया है, यह उचित नहीं है। इसपर अकबरने कहा—"हर कुदाम शुमा दर-सरकारे-खुद् हिन्दुये दारद्। अगर माहम हिन्दुये दाश्तऽबाशीम, चेरा अज़-ओ बद बायद बूद्।" (आपमेंसे हरेक अपने कारबारमें हिन्दू मुन्शी रखते हो। अगर मैंने भी हिन्दू रक्खा, तो उससे क्या बुरा होगा।)

अन्तिम मुगल राजवंश भी। तुर्कोंके साथ इन राजवंशोंका विशेष पक्षपात होना स्वाभा-
विक था। अन्तिम मुस्लिम कालमें तो चार राजनीतिक दलोंकी प्रतिद्वंद्विता थ
जिनमें ईरानी दलके नेता मुर्शिदाबाद और लखनऊके शिया नवाब थे। पठानों
एक अलग मजबूत दल था, जिनमें बंगशों और रुहेलोंकी प्रधानता थी। तीसरा द
मुखियों का था, जिनके नेता सैयद-बन्धु थे। चौथा दल शाही समझा जाता थ
इसे तूरानी कहते थे। तुर्कोंकी मध्य-एशियाकी भूमिको तुर्किस्तान और तूरान दो
कहा जाता था। आरम्भमें तूरानी दल सबसे बलिष्ठ था। बाबर-हुमायूँ-अकब
जहाँगीरके समय इस दलकी शक्ति बड़ी जबर्दस्त थी। तूरान (तुर्किस्तान) में
तुर्क जातियाँ थीं। आज उनके ही प्रतिनिधि कजाक, किर्गिज, उज्बक, तुर्कमान है
बाबर और उनके वंशज आजकलके उज्बेकिस्तानसे आये थे। उन्हें उज्बक कहा
सकता है, यदि भाषा और जातिका ख्याल किया जाये। लेकिन, मंगोलखान उज्बक
वंशज शैबानी खानने बाबरको मध्य-एशियासे भगाया था, इसलिये वह उज्बकों
नाम भी सुनने के लिये तैयार नहीं था। दरअसल शैबानी खानदान ने ही देश
उज्बेक नाम दिया। उससे, पहले बाबरके समय वह अपनेको चगताई कहते थे
चगताई महान् विजेता चिंगीज खानका द्वितीय पुत्र था। वह मंगोल था, जब
उसकी प्रजा, वहाँके लोग तुर्क थे। जो भी हो, बाबरके तुर्क, उसके पोतेके समय
अपनेको चगताई कहते थे। बैरमखाँ चगताई नहीं, बल्कि तुर्कमान तुर्क था। आ
कल मध्य-एशियामें तुर्कमानोंका अलग गणराज्य है। भारतमें तुर्कमान तूरानी दल
अभिन्न अंग थे। अन्तिम मुगल-कालमें तूरानी दलका मुखिया निजामुल्मुल्क
तुर्कमान था, जिसने हैदराबादमें अपने राज्य की स्थापना की।

बैरमके पूर्वज तैमूरकी विजयोंमें उसके सहायक थे। उन्होंने बड़े-बड़े दर्जों पर
कर अपने स्वामीकी सेवाकी थी। करावुलू तुर्कमानोंके बहारलू कबीलेका सरदार या
अली बाबरकी सेवामें रहा। यारअलीका पुत्र सैफअली अफगानिस्तानमें मुगलोंकी अ
से शासक था। उसका बेटा बैरम अभी छोटा ही था, जबकि बाप मर गया। वह हुमा
का समवयस्क था। अपनी योग्यतासे उसने हुमायूँको और पीछे उसके पिता बाबर
खुश किया। संगीत और साहित्यकी चर्चा उसके खानदानमें बराबर रहती थी। बैरम
यहाँ गवैयों और वादकोंकी बड़ी कदर थी। वह स्वयं अपनी मातृभाषा तुर्की अ
फारसीका कवि था। योग्यताके बारेमें क्या कहना! हुमायूँके भारतको पुनःप्राप्त करने
बैरमखाँ का बड़ा हाथ था। हुमायूँके समयमें भी राजका देखना बैरमके हाथमें र
और अकबरके आरम्भिक शासनमें बैरमकी कितनी चलती थी, इसे सभी जानते

बैरमकी कई बीवियाँ थीं, जिनमेंसे एक हुमायूँकी भांजी सलीमा भी थी। इ
यह भी मालूम होगा कि बैरम का किस सम्बन्ध शाही खानदानसे था। कई बेगमें
रहनेपर भी बैरमको सन्तान बहुत पीछे हुई। उसका बड़ा बेटा रहीम तो बापके मरने
चार ही वर्ष पहले पैदा हुआ था, और शाहजादियोंसे नहीं। उसकी माँ हसन

मेवातीकी भतीजी थी। मामा उन्हीं मेव लोगोंका सरदार था, जो अब भी रोहतक-भरतपुरमें बड़ी संख्यामें रहते हैं। आरम्भिक मुस्लिम शासनमें हिन्दू मेवोंने दिल्लीके शासकोंका नाकों दम कर रक्खा था। पीछे वह सबके सब मुसलमान हो गये। हसनखाँ मेवातीकी एक भतीजी (जमालखाँकी बेटी) रहीमकी माँ थी, और मौसी अकबरकी बेगमोंमेंसे थी। अब्दुर्रहीमका जन्म लाहौरमें सफर १४ तारीख ६६४ हि० (मंगलवार १७ दिसम्बर १५५६ ई०)में हुआ। रहीमके जन्मसे कुछ ही महीने पहले पानीपतमें हेमूको हरा कर मुगल राजवंशकी पुनः नींव पड़ी थी।

बैरम खाँ तुर्कमान हुमायूँके पुनः दिल्लीके सिंहासन पर बैठनेमें सबसे बड़ा सहायक था, यह बतला आये हैं। अकबर गद्दीपर बैठनेके समय १३ ही वर्षका था। बैरम बापको भी अँगुलीपर नचाता था, इसलिये बेटेको यदि दुधमुँहा बच्चा समझे, तो आश्चर्य क्या ? लेकिन, अकबर बहुत दिनों तक दुधमुँहा रहनेके लिये तैयार नहीं था। उसके १६-१७ वर्षके होने तक बैरम खाँका सितारा डूबने लगा। उसके सामने अकबरने तीन प्रस्ताव रक्खे : या तो हमारे दरबारी बन करके रहो या चँदेरी-कालपीके जिलेके हाकिम बन जाओ अथवा हज करने जाओ। खानखाना जिस जगह पहुँचा था, वहाँसे नीचे उतरनेकेलिये वह तैयार नहीं था। उसने हजको ही स्वीकार किया। चार वर्षका अब्दुर्रहीम भी बापके साथ था। गुजरातके खम्भात बन्दरगाहसे मक्काकी तरफ जानेवाले जहाजको पकड़ना था। पठानोंके साथ बैरम खाँने जिस तरहका बर्ताव किया था, उससे वह उसे क्षमा करनेके लिये तैयार नहीं थे। पाटनमें पहुँचनेपर ३०-४० पठानोंके साथ मुबारकखाँ लोहानी मुलाकात करने आया और हाथ मिलानेके बहाने बैरमकी पीठमें तलवार घुसेड़ दी। खञ्जर आर-पार हो गया। फिर एक तलवार और सिरपर मार कर उसने वहीं उसे खतम कर दिया। कातिलने कहा, माछीवाड़ामें इसने मेरे बापको मारा था, उसीका मैंने आज बदला लिया।

हिजरी ६६८ (१५६० ई०) में रहीम अनाथ हो गया। उसकी एक मौसी अकबरकी बेगम थी। यह खबर अकबर तक पहुँची। उसे बहुत अफसोस हुआ। सलीमा सुल्तान बेगम चार वर्षके बच्चेको लेकर किसी तरह अहमदाबाद पहुँची। दरबारमें आनेके सिवा कोई चारा नहीं था। चार महीने बाद आगराकी ओर चलनेका इन्तिजाम हुआ। अकबरने ढारस बँधाते हुए अपने फर्मानमें लिखा, कि माँ-बेटेको अच्छी तरह दरबारमें लाओ। फर्मान उन्हें जालोर में मिला। आगरा पहुँचनेपर शाही महलोंमें सलीमा बेगमको उतारा गया। अकबरने रहीमके ऊपर कृपा दिखलाते उसकी सलीमाको अपनी बीवी बनाया। जिस वक्त रहीम सामने लाया गया, तो अकबरने आँसू बहाते हुए उसे गोदमें उठा लिया। लोगों से सख्त हिदायत थी, कि बच्चेके सामने कोई खानखाना (बैरमखाँ)का जिक न करें, पूछे तो कह दें, खुदाके घरमें हज्ज करने गये। इस प्रकार १५६० में रहीम अकबरका पुत्र-सा

बन गया। वह उसे प्यारसे मिर्जा खाँ कह कर पुकारा करता था। रहीमका बाप साहित्य-संगीत-कलामें प्रवीण पुरुष था। रहीमके विश्वासपात्र नौकर और उसका परिवारका उसके निर्माणमें बहुत हाथ था। अकबर भी उसकी शिक्षा-दीक्षाका बराबर ध्यान रखता था। तुर्की और फारसी रहीमकी मातृभाषाएँ थीं। माँके हरियानाकी होनेसे हिन्दी भी उसके लिये मातृभाषा जैसी थी। इन तीनों भाषाओं पर रहीमका अधिकार था। अरबी भी अच्छी तरह पढ़ता था—हिन्दुस्तानमें अरबी दरबारी जबान नहीं, पर धर्म और दर्शनके लिये उसका बहुत ऊँचा स्थान माना जाता था।

रहीम असाधारण सुन्दर तरुण था। चित्रकार उसकी तस्वीरें उतारते थे, जिन्हें अमीर लोग अपनी बैठकोंके सजानेके लिये लगाते थे। होश सँभालते ही रहीमका शायरों और कवियों, संगीतज्ञों और कलाकारोंसे सम्पर्क हुआ।

२. महान् सेनापति

लेकिन, अकबर रहीमको कलाकार नहीं सैनिक बनाना चाहता था। रहीमके जीवनका अधिकांश भाग सिपाहीके तौरपर ही बीता। अभी वह नौ ही वर्षका था, जब अकबरने उसे "मनअम खान"की उपाधि प्रदान की। १६ वर्षकी उमर (१५७३ ई०) में जब अकबर गुजरात विजयके लिये चला, तो रहीम सैनिक अफसरके तौरपर उसके साथ गया। इसी वक्त अकबरने दो महीनेकी यात्रा सात दिनमें पूरी की थी। १६ वर्षके लड़के रहीमका साथ जाना बतलाता है, कि वह कितना जीवटवाला था। १६ वर्षकी उमर (१५७६ ई०) में अकबरने रहीमको गुजरातका राज्यपाल बनाया। मिर्जाखान नहीं चाहता था, कि दूर रहे, लेकिन अकबरने उसे मजबूर किया। रहीमने इस छोटी उमरमें भी अपनी योग्यता दिखलाई। अगले साल अकबरका चित्तौड़ के महाराणासे युद्ध हुआ, रहीमने उसमें भाग लेकर अपनी योग्यता दिखलाई। अगले साल २४ वर्ष की उमर (१५८१ ई०) में रहीम को रणथम्भोरकी जागीर मिली। २६ वर्षकी उमर (१५८२ ई०)में वह जहाँगीर का अतालीक नियुक्त हुआ। अतालीक तुर्की शब्द है, जिसका अर्थ गुरु और शिक्षक है। उस वक्त क्या मालूम था, कि आज रहीम जिसका अतालीक बन रहा है, वही अपने अतालीकको अन्तिम जीवनमें तड़पा डालेगा।

गुजरातसे अनुपस्थित रहनेपर वहाँकी बगावतने फिर गम्भीर रूप लिया। गुजरातमें जौनपुर की तरह एक शाही खानदान कई पीढ़ियों तक राज्य करता रहा। दिल्लीसे बाहर रहनेवाले मुसलमान सुल्तानोंकी तरह गुजराती सुल्तान भी अपनी हिन्दू प्रजाको अपनी तरफ करने में बहुत सफल हुये, इसलिये उन्हें मुगलोंके खिलाफ बगावत करनेमें सहायक मिल जाते थे। दूसरोंको इस काममें सफल न देखकर २७ सालके रहीमको अकबरने सेनापति बना कर भेजा और रहीमने विजय प्राप्त की। अकबरने रहीमको "खानखानाँ" की उपाधि प्रदान की। मध्य-एसियामें खान राजाको कहते थे। यह

वियोग रहीमको ४६ वर्षकी उमर तक पहुँचनेपर सहना पड़ा। रहीम ५० सालके हो चुके थे, जब कि जहाँगीर गद्दीपर बैठा।

अभी भी रहीम दक्षिणके सेनापति थे। ५३ वर्षकी उमर (१६०८ ई०)में बूढ़े सेनापतिको अहमदनगरमें पहली हार खानी पड़ी। ५६ वर्ष (१६११ ई०)में उन्हें कन्नौज-कालपीकी जागीर मिली। सोचा, बाकी जीवन शान्तिसे बीतेगा। अगले ही साल उनकी पोती और शाहनवाजकी बेटीका ब्याह उत्तराधिकारी शाहजहाँसे होना बड़ी प्रसन्नताकी बात थी। अगले साल रहीमका सबसे बड़ा बेटा एरज मर गया, उससे अगले साल दूसरा लड़का रहमान दाद भी चल बसा। रहीम अपने पुत्रोंकी मृत्यु देखनेके लिए दीर्घजीवी थे।

बाप-दादोंकी तरह ही जहाँगीर चाहता था, कि उसकी सल्तनत काबुल-कन्दहारसे और आगे बढ़े, इसलिए बीचमें फिरसे कन्दहारका हाथसे निकल जाना उसे पसन्द नहीं आया। जहाँगीरने १६२१ ई०में चाहा, कि बूढ़ा सेनापति शाहजहाँको लेकर फिरसे कन्दहारको विजय करे। यदि वह उधर गये होते, तो शायद उनके जीवनके अन्तिम वर्ष दूसरी तरहके होते। इसी बीच शाहजहाँ और उसके भाई शहरियारका झगड़ा हो गया। शहरियार नूरजहाँके पहले पतिकी पुत्रीसे ब्याहा दामाद था और शाहजहाँ सौतेला बेटा। जहाँगीर शाहजहाँको चाहता था, लेकिन नूरजहाँके सामने जबान भी नहीं हिला सकता था, धौलपुरकी जागीर नूरजहाँने शहरियार को दिलवाई थी। वही जागीर गलतीसे शाहजहाँको मिल गई। दोनोंके अनुयायियोंमें खूनखराबीकी नौबत आई। शाहजहाँ रहीमका पोता-दामाद था, इसलिए इस बातको लेकर जहाँगीरके साथ बूढ़े अतालीकका मनमुटाव हो गया। मनमुटाव फिर भीषण दुश्मनीमें बदल गया। जहाँगीरने रहीमके पुत्र दाराबका सिर काटकर भेंटके तौरपर यह कहलवाके भिजवाया, कि बादशाहने आपकेलिए खरबूजा इनायत किया है। ७० वर्षके बूढ़े बापने रुमालको हटाया, तो वहाँ अपने बेटेका सिर देखा। किसी व्यक्तिपर जो अन्तिम दर्जेकी मुसीबत और जुल्म हो सकता है, रहीमने उसे देख लिया। बादशाह पीछे चाहे कितना ही पश्चात्ताप करे, उससे क्या होता है! रहीमने बाप-बेटेमें बिगाड़ न हो, इसीकी कोशिश की थी और नतीजा उलटा हुआ। बेटे शाहजहाँके कैदमें भी रहना पड़ा और जहाँगीरने तो उनका सर्वस्व हरण करते दाराबकी वैसी मृत्युका दृश्य दिखलाया। अब रहीमके अधिक दिन नहीं रह गये थे। उसी साल बादशाहने रहीमके दिलके घावको मिटानेकी कोशिश की। फिरसे

संगमर्मरको निकालकर अपने नामकी इमारतमें लगवाया। दिल्ली रहीमको भूल गई। एक बार तो जान पड़ा, कि उनका मकबरा उनके नामकी तरह एक दिन नामशेष हो जायगा।

५. महान् कवि

इतिहासने रहीमको एक बड़े सेनापति, बड़े राजनीतिज्ञ और बड़े दानीके तौरपर ही याद किया है। वह तीनों थे, इसमें शक नहीं। किन्तु, आज या आगे भी रहीम उनके कारण हमारे हृदयोंमें आसीन नहीं रहेंगे; बल्कि हिन्दीके एक महान् कविके तौर हीपर अमर रहेंगे। दिल्लीके खुसरोने फारसीके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें स्थान प्राप्त किया, गालिबने उर्दूके महान कविका पद पाया। इन दोनोंकी कब्रें सौ डेढ़-सौ गज हीके अन्तरपर हैं। गालिबकी कब्रसे सौ-डेढ़-सौ गजसे ज्यादा दूर रहीमकी समाधि नहीं है, इसे संयोग ही समझिए। खुसरोकी कब्र उतनी ही बड़ी है, जितनेमें वह सोये हैं। गालिबकी भी अभी दो साल पहले तक गुमनाम सैकड़ों कब्रोंके बीचमें एक कब्र थी, जिसे अब संगमर्मरकी छोटी-सी मढ़ी का रूप दे दिया गया है। रहीमकी कब्र अपनी आकृति और विशालतामें हुमायूँके मकबरेकी तरह है। वह सदियोंसे उपेक्षित रही। लोगोंने उसे गिरने-पड़नेके लिए छोड़ दिया था। दिल्ली बढ़ते बढ़ते अब रहीमकी समाधिके चारों ओर पहुँच गई है। सौभाग्यसे समाधि अपने आसपासके दस-पंद्रह एकड़ भूमिके साथ अक्षुण्ण बनी रही। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालयसे आशा नहीं की जा सकती, कि हिन्दीके इस महान् कविकी कीर्तिको अक्षुण्ण रखनेके लिए वह कोई जल्दी बड़ा कदम उठायेगा। लेकिन, क्या हिन्दी जनता इस उपेक्षाको बर्दाश्त कर सकेगी! शायद इसीलिए शिक्षा-विभाग तिनकेसे पानी पिलाने लगा है। जिस तरह रहीमकी समाधिकी मरम्मतका काम हो रहा है, उससे आशा नहीं, कि इस शताब्दीके अन्त तक भी वह पूरा हो सकेगा। रहीम हिन्दी हीके नहीं, बल्कि फारसीके भी कवि थे और सबसे बढ़कर यह, कि उन्होंने सैकड़ों फारसी कवियोंको आश्रय दिया था। "मासिर रहीमी" हजार पृष्ठसे बड़ा ग्रन्थ बंगाल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमें रहीमके कृपापात्र सैकड़ों फारसी कवियोंकी कृतियोंको संग्रहीत किया गया है। यदि शिक्षा-मंत्रालय इसका भी ख्याल करे, तो उसे ऐसी सुस्ती नहीं दिखलानी चाहिये।*

६. रहीमकी कविताओंके कुछ नमूने

१. तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सँचहिं सुजान॥

२. रहिमन प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत॥

*रहीमकी हिन्दीमें कृतियाँ हैं—१. दोहावली, २. बरवै नायिकाभेद, ३. शृंगार सोरठ, ४. मदनाष्टक, ५. रासपंचाध्यायी, ६. दम्पतीविलास।

३. दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचान।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥
४. कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥
५. तबही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥
६. सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥
७. खीरा को मुँह काटिके, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करये मुखन की, चहियत यही सजाय ॥
८. जो गरीब सो हित करैं, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥
९. जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।
१०. धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥
११. रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेहुँड़ कंज करीर ॥
१२. रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥
१३. रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥
१४. लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥
१५. लागेउ आनि नबेलियहि, मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥
१६. कासों कहौं सँदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चइत नहिं फूले, तेहि बन टेसु ॥
१७ पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन।
साथे चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥
१८. सुभग बिछाइ पलँगिया, अँग सिंगार।
चितवति चौंक तरुनियाँ, दै दृग द्वार ॥

अध्याय १४

मानसिंह (मृ० १६१४ ई०)

१. आरंभ

अकबरने भारतमें एकजातीयता स्थापित करनेकेलिये महान् प्रयत्न किये, मुल्लों और कट्टर मुसलमानोंकी कुछ भी पर्वाह न की। इस काममें हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व करनेका सबसे अधिक भाग जिसके कन्धे पर था, वह मानसिंह थे। अकबर कट्टर मुसलमानोंकी नजरमें काफ़िर था। मानसिंह अपनी फुफी और बहिनको अकबर और जहाँगीरसे ब्याहकर हिन्दुओंकी ओरसे पतित माने जाते थे और आज भी हिन्दू धर्मध्वजियोंकी दृष्टिमें वह वही मालूम होते हैं। पतित कहना तब भी आसान था, पर मानसिंहको राजपूत बिरादरी पतित नहीं कर सकी। मेवाड़के राणा कट्टरताके पक्षपाती थे। प्रतापने आजादीकेलिए जो कुर्बानियाँ कीं, वह सदा स्मरणीय रहेंगी। पर, भारतमें जो दो संस्कृतियाँ सदाकेलिये एकत्रित हुई थीं, जिसके कारण राष्ट्र दो विरोधी दलोंमें विभक्त हो गया था, उनका समन्वय करना जरूरी था। समुद्र, गंगा और सिन्धु भले ही अलग-अलग जगहोंसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें आई हों, पर समुद्रमें जाकर उन्हें एक हो जाना था। प्राचीन कालसे भारतमें निषाद, किरात, द्रविड़, ग्रीक, शक, श्वेत-हूण, अहोम (थाई) आदि जातियाँ अपने अलग-अलग रूपोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आईं, पर उन्हें अन्तमें एक स्रोतका रूप लेना पड़ा। यह ठीक है, कि पहिली आगन्तुक जातियोंने भारतीय संस्कृतिका सम्मान किया और अपनी देनें देकर उसमें अपनेको विलीन हो गईं, जबकि मुसलमानोंका रुख इससे उल्टा था: जिन बातोंकेलिये वह बिल्कुल मजबूर थे, सिर्फ उन्हें ही उन्होंने स्वीकार किया। उनका इस बातका जबर्दस्त आग्रह रहा कि हम अपने व्यक्तित्वको अलग बनाये रक्खेंगे। हिन्दू अपने व्यक्तित्वको खोकर उसमें मिल सकते हैं, परन्तु हम वैसा करनेकेलिये तैयार नहीं हैं।

यह मनोवृत्ति हमेशा नहीं रह सकती थी। एक प्रयत्न सफल न होनेपर भी इस जातीय महान् समस्याको छोड़ा नहीं जा सकता था। वह फिर-फिर सामने आयेगी और हल करा के छोड़ेगी। अकबरने उसीको करनेका भारी प्रयत्न किया, जिसकेलिये उसे काफ़िर कहा गया। उसके इस काममें मानसिंह सहकारी थे।

अकबर ऐसे समयमें पैदा हुआ, जब धर्मो-मजहबोंके खूनी रूपको देखकर उन्हें धत्ता नहीं बताया जा सकता था। धत्ता न बतानेपर फिर दो ही और रास्ते थे—१. सभी धर्मोंका समन्वय, २. या उनकी जगहपर एक नये धर्मकी स्थापना। वह समन्वयका पक्षपाती था, सभी धर्मोंको एक दृष्टिसे देखता था। पर, कबीर, नानक जैसे समन्वयकर्त्ता असफल हो चुके थे। वह दोनों जातियोंके मानसिक सम्बन्धको भी पूरी तौरसे स्थापित नहीं कर सके थे, भौतिक संबंधकी तो बात ही क्या। शायद इसीलिए अकबरको दीन-इलाहीकी नींव डालनी पड़ी। मानसिंह अकबरको अपने सगे भाईसे भी अधिक प्रिय थे—सगे भाई मुहम्मद हकीमकी बगावतको दबानेका काम मानसिंहको मिला था। मानसिंह अफगानिस्तान तकके शासक रहे। लेकिन, दीन-इलाहीमें शामिल होनेकेलिये वह तैयार नहीं थे। दीन-इलाहीके पैगम्बर स्वयं बादशाह, खलीफा अबुलफजल और चौथे नम्बरके नेता ब्राह्मण बीरबल थे। लोग बड़े शौकसे—ऊपर या भीतरके मनसे—शाही दीनमें शामिल हो रहे थे। कितने ही लोग आशा रखते थे कि मानसिंह भी उसमें शामिल होंगे, पर बात आनेपर मानसिंहने अकबरसे कहा—"अगर चेला होनेका अर्थ जान न्यौछावर करना है, तो उसे आप अपनी आँखों देख रहे हैं। यदि जरूरत हो, तो परीक्षा देनेकेलिये भी तैयार हूँ। जहाँ तक मजहबका सवाल है, मैं हिन्दू हूँ। मुझे नये मजहबकी जरूरत नहीं।" नये मजहबका *उस समय वही ढोल था, जो हमारे यहाँ इस शताब्दीमें थ्योसोफीका, जिसमें हिन्दू,* मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी शामिल हो सकते थे।

मानसिंहके रास्तेमें कठिनाइयाँ थीं। पहले हीसे लोग फूफा, बहिन देनेके कारण उन्हें बदनाम कर रहे थे। पक्के हिंदू रहनेका आग्रह ही था, जिसने उनके वंशको राणा के खानदानसे रोटी-बेटी कायम रखनेमें कोई रुकावट पैदा नहीं की। राजपूतोंने भी मानसिंहकी नीतिको जल्दी ही स्वीकारकर लिया और उदयपुर छोड़कर सभीने बादशाहके खानदानसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया। हाँ, यह एकतरफा सौदा था: *लड़कियाँ दे देते थे, पर शाहजादियाँ नहीं लेते थे। अकबर चाहता था, कि दोनों ओर* से रक्तका दानादान होवे। इसी साल (१९५६ ई०) एक राजपूत युवराज राजपूतोंकी इस नीतिकी व्याख्या करते कह रहे थे—लड़की दे देनेसे हमारा खून नहीं बिगड़ा, क्योंकि वह तो काटकर बाहर फेंक दी गई; पर, यदि लड़की लेते, तो हमारा राजपूत खून अशुद्ध हो जाता। आम हिन्दू के लिये लड़की लेनेसे लड़की देना अधिक शर्मकी बात है, लेकिन राजस्थानके रजवरानोंने इसकी व्याख्या अपने ढंगसे कर डाली, और इस प्रकार अकबर और उसके साथियोंके स्वप्नके पूरा होनेका रास्ता रोक दिया।

जो भी हो, जिन लोगोंने एक नये और भव्य भारतका स्वप्न देखा, उसमें अकबरके बाद मानसिंहका नाम जरूर लिया जायगा। यदि वह स्वप्न चरितार्थ हुआ *होता, तो न भारत कभी गुलाम होता, न देशका विभाजन होता।*

मानसिंहका जन्म १५३० ई०में आमेरमें हुआ था ; अभी जयपुर के...
और कछवाहोंकी राजधानी होनेमें बहुत देर थी। राजा बिहार (बिहारी) मल पाँच
भाई थे—बिहारीमल, पूरनमल, रूपसी, आस्करन और जगमल। राजा बिहारीमल
के बाद उनके लड़के भगवानदासको गद्दी मिली। भगवानदासका कोई अपना बेटा
नहीं था। उन्होंने अपने भाईके लड़के मानसिंहको गोद लिया था।

अकबरके गद्दीपर बैठनेका पहला साल (१५५५-५६ई०) था, जब कि १३-१४
सालके लड़के कुँवर मानसिंहको राजा भगवानदासके साथ अकबरके सम्पर्कमें आनेका
मौका मिला। मजनूँ खाँ काकशाल नारनौल (पटियाला) का हकीम बना कर भेजा
गया। शेरशाहको पैदा करनेका सौभाग्य नारनौलको ही मिला था। हाजी खाँ शेर-
शाहका अफसर था। उसने मजनूँ खाँ पर आक्रमण किया। राजा बिहारीमल हाजी
खाँके सहायक थे। कछवाहोंकी ताकत शत्रुकी पीठ पर रहनेसे मजनूँ खाँकेलिये मुश-
किल आसान नहीं था। बिहारीमलने इस समय सहायता की और हाजी खाँसे बात-
चीत करके मजनूँ खाँको घिरावेसे मुक्त कर दिया। मजनूँ खाँने दरबारमें आकर
कछवाहा राजाकी बड़ी प्रशंसा की। दरबारके हर्ता-कर्ता बैरम खाँ खानखाना
(अब्दुर्रहीम खानखानाके बाप) की राजनीति कट्टर मुसलमानोंकी नहीं थी। फरमान
जानेपर राजा बिहारीमल दरबारमें हाजिर हुए। अकबर हेमूके पराजयके बाद दिल्लीमें
आया हुआ था। राजाका बड़ा सम्मान हुआ। बादशाहका जलूस शहरमें निकल
रहा था। मस्त शाही हाथी कभी इधर कभी उधर मुँह फेरता, दर्शक डर कर भाग
जाते, लेकिन राजपूत अपनी जगह पर डटे रहते। अकबरके ऊपर इसका बड़ा
प्रभाव पड़ा। अभी वह १३-१४ वर्ष का लड़का अपने खेलोंमें ही मस्त था, इस
लिए उसके मुँहसे एक गम्भीर राजनीतिज्ञ जैसी बात निकलवाना पीछेके दरबारियों
की कारस्तानी है, इसमें शक नहीं। कहा जाता है, उसी समय अकबरने राजा
बिहारीमलसे कहा—"तुरा निहाल ख्वाहम् कर्द, अन्करीब मी-बीनी कि एतबार-व-
इफ्तेखारत् ज़ियाद बरज़ियाद मी-शवद्।" (तुझे निहाल करूँगा, जल्दी ही देखेगा
कि तेरा मान-सम्मान अधिकाधिक होगा)।

मेवातका हाकिम मिर्ज़ा शर्फुद्दीन हुसेनको बनाया गया। उसने आमेरके
कुछ इलाकेको दबाना चाहा। राजा के विरोधी भाईने सहायता की, जिसके कारण
मिर्ज़ाको सफलता मिली।

२. अकबरसे पहली भेंट

हिजरी ९६८(१५६०-६१)में अकबर अजमेर ज़ियारत (तीर्थयात्रा) करने जा
रहा था। रास्तेमें किसी अमीरने बतलाया कि राजा बिहारीमलपर मिर्ज़ाने ज़्यादती की है,
बेचारा मारा-मारा फिर रहा है। बादशाहने एक अमीरको बिहारीमलको लानेके लिए
भेजा। राजा स्वयं नहीं आया, लेकिन भेंटके साथ प्रार्थना-पत्र दया अपने भाईको दरबारमें...

भेजा। अकबरने दुबारा आनेके लिये आग्रह किया, तो राजा बिहारीमल अपने बड़े बेटे भगवानदासके ऊपर भार छोड़ कर सागानेरमें अकबरके दरबारमें उपस्थित हुआ। बादशाह अब बैरमखाँके हाथका कठपुतला नहीं था। उसने इतना अच्छा बर्ताव किया, कि बिहारीमल उसका अनन्य भक्त बन गया और दरबारी अमीरोंमें उसे स्थान मिला। इसके कुछ समय बाद राजा भगवानदास और मानसिंह भी दरबारमें पहुँचे। बिहारीमलको छुट्टी मिली, और दोनों बाप-बेटे अकबरके सदा साथ रहनेवाले दरबारी हो गये।

अकबर अबतक इस निश्चयपर पहुँच चुका था, कि हमें दोनों जातियोंको साथ लेकर चलना है, दोनोंके बीचकी खाइयोंको पाटना है। इसकी पहलकदमी उसने अगले साल (१५६१-६२ ई०,की, जब कि उसकी आयु १६ सालकी थी, और राजा बिहारीमलकी बेटी अर्थात् मानसिंह की सगी फूफीके साथ अपना ब्याह किया। यही बेगम जहाँगीरकी माँ हुई, अर्थात् आगेके मुगल बादशाह इसीकी औलादमेंसे थे। इसे "मरियम जमानी" (युगकी मरियम)की उपाधि मिली, जिससे ही वह इतिहासमें प्रसिद्ध है। इसके बाद मानसिंह और राजा भगवानदास अकबरके अत्यन्त घनिष्ठ हो गये। अंतःपुर के प्रबन्धका भार सदा राजा भगवानदासके ऊपर छोड़ा जाता था। यह बतलाता है, कि अकबर उनपर कितना विश्वास करता था।

मानसिंह बहुत दिनों तक कुँवर मानसिंह रहे और १५८८ ई० के आसपास भगवानदासके मरनेके बाद ही राजा मानसिंह बने। वह अकबरकी हरेक बड़ी मोहिममें शामिल रहे। मेवाड़के राणा वीरोंकी अद्भुत परम्परा कायम करनेके कारण बहुत ऊँचा स्थान रखते थे। अकबर सारे भारतको एक करना चाहता था। उसके इस काममें जिन्होंने खुशीसे सहायता दी, उन्हें उसने मानसिंह और उसके बापकी तरह मान-सम्मान देकर अपनी ओर किया। जो झुकने वाले नहीं थे, उनके साथ कड़ाई की। राणा उदयसिंहने राणा सांगा-सी हिम्मत और कौशल न रखनेपर भी झुकना पसन्द नहीं किया। इसके कारण अपने शासनके ११वें वर्ष (सितम्बर १५६७ ई०)में अकबरने चित्तौड़पर अभियान किया। कहते हैं, इससे पहले भी एक बार अकबरने कोशिश की थी, पर उसे सफलता नहीं मिली। यह भी बतलाया जाता है, कि मालवाके बाजबहादुरको शरण देनेके कारण अकबर राणासे नाराज हुआ। इसे बहाना कहना चाहिये। अकबर जानता था, जबतक चौहानोंके रणथम्भोर और सीसोदियोंके चित्तौड़को नतमस्तक नहीं किया जाता, तब तक न हमारी धाक जम सकती है, और न सैनिक महत्वके इन अजेय किलोंको शत्रुओंके हाथमें रहनेके खतरेसे बचाया जा सकता है। २० अक्टूबर १५६७ को चित्तौड़के उत्तर-पूर्व दस मील तक अकबरकी सेना छावनी डाल कर पड़ी। मुहासिरा गम्भीर था। चित्तौड़ केवल आदमीके हाथोंका बनाया दुर्ग नहीं था, बल्कि सवा तीन मील लम्बा, हजार गजसे

अधिक चौड़ा, आठ मीलके घेरे वाला, चारों ओर सौ फीट ऊँचा एक अद्भुत
पहाड़ (चित्रकूट) दुर्धर्ष दुर्गके रूपमें परिणत हो गया था। तो भी वह अजेय नहीं था,
क्योंकि इसके पहले अलाउद्दीन खलजी चित्तौड़पर अधिकार कर चुका था। बहादुरशाह
गुजरातीने भी १५३३ई०में चित्तौड़को बरबाद किया था। उदयसिंह मुकाबिलेके लिये
नहीं आये। यह काम जयमल्ल राठौरने किया और २३ फरवरी १५६८ को वी
जयमल्लके मारे जानेके बाद ही अकबर अपने मन्सूबेमें कामयाब हो सका। तीन
राजपूतनियोंने जौहर करके अपनेको आगके अर्पण कर दिया।
इतनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, कि उन्होंने अकबरको भी बदहव
कर दिया था। उसने शहरमें कत्लआमका हुकुम दे दिया। तीस हजार आदमी तलवा
घाट उतारे गये। राजा भगवानदास चित्तौड़की लड़ाईमें अकबरके सहायक थे।

३. महान् सेनापति

१. गुजरात विजय—४ जुलाई १५७२ को गुजरात-विजयके लिये अकबरने
फतेहपुर-सीकरीसे प्रस्थान किया। नवम्बर १५७२ में वह गुजरातकी राजधानी अहमदा-
बादके सामने था। गुजराती तख्तके दावेदार मुजफ्फरशाहको आसानीसे पकड़ कर
पेन्शन दे अपने अधीन बना लिया गया, पर इतनेसे काम खतम होनेवाला नहीं था।
अकबरके अपने तैमूरी वंशके मिर्जा, बाबरके फ़साद अ, विरोधकर रहे थे। इब्राहीमहुसेन
मिर्जा सम्लसे जाकर गुजरातका स्वामी बनना चाहता था। सरनालके कस्बेमें उसकी
खबर पाकर अकबर माही नदीके किनारे पहुँचा। शत्रुकी ताकतको जानते हुये भी
उसने दूसरोंकी सलाह नहीं मानी, और दो सौ आदमियोंके साथ दिनमें ही आक्रमण
करनेका निश्चय किया। इन दो सौ आदमियोंमें मानसिंह और भगवानदास भी
थे। बहुत खतरनाक कदम था। सरनालकी गलियोंमें अकबर और उसके दो सौ
आदमी सर्वस्वकी बाजी लगा कर घुस गये। लड़ाईमें राजा भगवानदासका भाई
भूपति काम आया। भगवानदास ने बादशाहके प्राणोंकी रक्षामें बड़ी बहादुरीसे काम
लिया। एक बार तीन आदमी बादशाहके पास पहुँच गये। उस समय भगवानदासने
अपने भालेसे एकको घायल कर गिरा दिया और बाकी दोसे अकबरने मुकाबिला
किया। विजय अकबरके हाथमें रही। २४ दिसम्बरको वीरोंका सम्मान किया
गया। राजा भगवानदासको एक झण्डा और नगाड़ा मिला। इससे पहले किसी
हिन्दूको ऐसा सम्मान नहीं मिला था।

२३ अगस्त १५७५ को फतेहपुर-सीकरीसे अकबर पचास मील प्रति दिनकी
चालसे चल कर सात दिनमें छ सौ मीलकी यात्रा करके अजमेर, जालौर, दीसा,
पाटन होते हुये अहमदाबाद पहुँचा। इस यात्रामें भी राजा भगवानदास और
कुँवर मानसिंह उसके साथ थे।

२६ फरवरी १५३७में सूरतपर अकबरका अधिकार हुआ। इसी समयकी घटना है: शाही पान-गोष्ठी चल रही थी। अकबर यद्यपि अपने बेटेकी तरहका भयंकर पियक्कड़ नहीं था, लेकिन वह अपने हमजोलियोंसे पीछे नहीं रहना चाहता था। वीरोंकी परीक्षाकी बात चल पड़ी। दो तरफ मुँहवाले भाले को लेकर एक आदमी खड़ा रहे और दो दिशाओंसे दो राजपूत दौड़कर उस भालेसे ऐसा टक्कर लें, कि भाला छीनेसे पीठमें होकर निकल आये। ऐसे जोड़े हो सकते थे, लेकिन अकबर का यहाँ प्रतिद्वन्द्वी कौन था? उसने स्वयं इसमें भाग लेनेकी घोषणा की। तलवारकी मूठको दीवारमें लगाकर वह खुद उसकी नोकपर अपनी छाती मारनेके लिये दौड़ा। इसी समय मानसिंहने तलवारको झटका देकर फेंक दिया। ऐसा करते समय तलवारसे अकबरके हाथपर घाव लग गया। अकबरने मानसिंहको तुरन्त नीचे गिरा दिया और अपने हाथसे उनका गला घोंटने लगा। यह हालत देख सैयद मुजफ्फरने अकबरकी अँगुली जोरसे मरोड़ी और इस प्रकार मानसिंहका गला छूटा। इसमें शक नहीं, शराबके नशेमें अकबरने उस समय होश-हवास खो दिया।

२. हल्दीघाटी (जून १५७६)—चित्तौड़के पतनके समय अकबरको उदयसिंहसे मुकाबिला करना पड़ा था, जो उसका जोड़ी नहीं हो सकता था, लेकिन, अब उसके बेटे प्रतापने आजादीका झण्डा अपने हाथमें लिया था। वह सिरसे कफन बाँधकर मुगल सेनाके नाकों दम कर रहा था। इतिहासकार विंसेंट स्मिथके अनुसार—"उसकी जाति-भक्ति उसका अपराध था। अकबरने अधिकांश राजपूत राजाओंको अपनी सूझ-बूझ और राजनीतिक चालसे अपनी ओर कर लिया था। वह राणाकी स्वतंत्र वृत्तिको बर्दाश्त नहीं कर सकता था। यदि वह झुक नहीं सकता, तो उसे तोड़ डालना होगा।" प्रतापके मुकाबिलेकेलिए जो सेना भेजी गई थी, उसका मुख्य सेनापति नामकेलिए शाहजादा सलीम था, नहीं तो वह कुँवर मानसिंहके अधीन थी। सात सालका सलीम भला क्या सेना-संचालन करता? राणा मुकाबिलेके लिए अपने तीन हजार घोड़सवारोंके साथ हल्दीघाटीमें तैयार थे, जहाँसे गोगुंडाके दुर्गका रास्ता जाता था। खमनोर गाँवके पास इसी घाटीमें जून १५७६को यह स्मरणीय लड़ाई लड़ी गई, जिसके लिए टाडने लिखा है—"इस घाटेपर मेवाड़के (तरुण पुष्प तैयार खड़े थे और इसकी रक्षाकेलिए जो महान् संघर्ष हुआ, वह हमेशा स्मरण किया जायगा।" इतिहासकार बदायूँनी जहादका पुण्य कमानेकेलिए कलमकी जगह तलवार लेकर यहाँ पहुँचा था। लेकिन काफिर मानसिंहके अधीन जहाद कैसी? युद्ध सूर्योदयसे मध्याह्न तक होता रहा। उसकी भयंकरताकेलिए क्या कहना? मुगल साम्राज्यकी सारी शक्ति एक ओर थी और एक ओर था अरावलीकी पहाड़ियोंमें मारा-मारा फिरता, राणा प्रताप और उसके मुट्ठीभर वीर। राणा घायल हुए। चेतकने अपने प्राणकी बलि देकर राणाको युद्धक्षेत्रसे बाहर पहुँचाया।

ाणाके प्रसिद्ध हाथी रामप्रसादको मानसिंहने सहायूनोकी देख-रेखमें छोड़ दी मेवा। लेकिन, यह हार ऐसी नहीं थी, जिससे प्रतापकी हिम्मत टूट जाती। थोड़े ही दिनों बाद अकबरको दूसरी ओर फँसना पड़ा और प्रताप १५९७में मृत्युसे पहले चित्तौड़, अजमेर और माँडलगढ़ छोड़कर प्रायः सारे मेवाड़को लौटानेमें सफल हुए। इतिहास-कार विंसेंट स्मिथने प्रतापके संघर्षके बारेमें कहा है—"अकबरके इतिहासकार—शायद ही कभी इन वीर शत्रुओंके बारेमें एक शब्द लिखते हैं, जिनके दुःख और संकटने, जिनकी साधनहीनताने अकबरको विजयी बनाया। तथापि वह पराजित स्त्री-पुरुष भी स्मरणीय हैं, बल्कि विजेतासे भी अधिक।"

हल्दीघाटीसे सात वर्ष पहले रणथम्भोरपर अकबरने अधिकार प्राप्त किया। इसका मुहासिरा फरवरी १५६९में शुरू हुआ था। इसमें भी राजा भगवानदास और कुँवर मानसिंहने बादशाहकी ओरसे लड़ते हुए अपनी भक्ति और पराक्रमका परिचय दिया था। इसी साल अगस्तमें कालंजरपर अकबरका अधिकार हो गया। इस प्रकार म०प्रदेशके अजेय दुर्गोंको अपने हाथमें करके अकबर इधरसे निश्चिन्त हो गया। लेकिन, एक तरह वह सफलता प्राप्त करता था, दूसरी ओर नये झगड़े उठ खड़े होते।

३. काबुलका मोर्चा—अकबरका छोटा (सौतेला) भाई मिर्जा मोहम्मद हकीम काबुल (अफगानिस्तान)का शासक था। अनेक प्रादेशिक शासक विद्रोह करके बुरी तरह नष्ट हुए थे। इसी बीच अकबरने इस्लामसे खुल्लमखुल्ला इन्कार कर दिया था, जिसके कारण मुल्लाओं और मतलबपरस्त जले-भुने हुए अमीरोंने सोचा कि हुमायूँके दूसरे पुत्रको यदि हम अकबरके खिलाफ खड़ा कर सकें, तो काम बन सकता है। उनकी नजर हकीमकी तरफ गई। लेकिन, हकीम "एक बहुत ही नीच प्राणी था। वह शासन या युद्धक्षेत्रमें अपने भाईसे मुकाबिला करनेमें बिल्कुल अयोग्य था।" अकबरको इस षड्यन्त्रका पहले ही पता लग गया। वित्त-मंत्री शाह मंसूर एक मामूली क्लर्कसे इतने ऊँचे पदपर अपनी योग्यता और उससे भी अधिक अकबरकी कृपासे पहुँचा था। वह भी इस षड्यन्त्रमें शामिल था। उसकी चिट्ठियाँ पकड़ी गईं। एक महीने पदसे हटाये जानेके बाद फिर उसको उसके स्थानपर नियुक्त किया गया, लेकिन वह फिर अपनी आदतसे बाज नहीं आया, फलतः जेलमें डाला गया। दिसम्बर १५८०में मिर्जा हकीमके अफसर नूरुद्दीनने पंजाबपर हमला किया। अगली बार शादमानने इसी कामको दोहराया और प्राणोंसे हाथ धोया। उसके असबाबमें बहुत-सी चिट्ठियाँ मिलीं, जिनसे शाह मंसूर और दूसरे कितने ही उच्च अधिकारियोंका भंडा-फोड़ हुआ। इसमें शक नहीं, यदि अकबरको राजपूतोंका बल न होता, तो मुल्लाओं और जहादियोंकी बन आती। राजपूती तलवारोंको इकट्ठा करनेका सबसे बड़ा का
नसिंहने किया था। अकबर शेख-सैयद-मुगल-पठानोंपर कैसे विश्वास कर सकता
कि उसकी कृपासे मंत्रीके ऊँचे पदपर पहुँचकर भी लोग धोखा देनेके लिए तैयार है

अकबरने मानसिंहको स्यालकोटकी जागीर दी। वह स्यालकोटमें तैयारी करने लगे और अकबरको सिन्धके किनारे अटकके किलेका बन्दोबस्त करनेके लिये भेज दिया। शादमान, मिर्जाका कूका (दूधभाई) था। उसकी माँने मिर्जाको कूका पिला-पिलाकर पाला था। वह मिर्जाके साथ खेलकर बड़ा हुआ था और वस्तुतः बहादुर जवान था। शादमानने अटकके किलेको घेर लिया। मानसिंह भी रावलपिंडी पहुँचे। खबर मिलते ही वह अटकको ओर दौड़े। शादमान और मानसिंहके भाई सूरजसिंहने अपने जौहर दिखलाये और राजपूतकी तलवारने शादमानका काम तमाम कर दिया। यह खबर सुन मिर्जा स्वयं १५ हजार सवार सेना लेकर आया। अकबरने आदेश भेजा था: हराकर भगानेकी नहीं, बल्कि हाथमें करनेकी जरूरत है। बाद-शाही फौजके पाछे हटनेसे हिम्मत बढ़ी और मिर्जा लाहौरमें रावीके किनारे बाग-मेहदी कासिम खाँमें आ उतरा। राजा भगवानदास, कुँवर मानसिंह, सैयद हामिद बारा और दूसरे शाही अमीर लाहौरके भीतर किलेबन्द हो गये।

देर नहीं हुई, मिर्जाको पता लग गया, कि फँसानेके लिये यह चारा फेंका गया है। अकबर भी सरहिन्द पहुँच चुका था। मिर्जा काबुलकी ओर भागा। रावी को बायसे एक कोस ऊपर पार हुआ। जलालपुरके इलाकेमें चनाब और भेराके करीब झेलममें उतरा। फिर दिर्गानिके पास सिन्ध उतर कर वह काबुलकी ओर भागा। इस तरह शिकारको हाथसे छोड़ा कैसे जा सकता था? मानसिंह अपनी सेना ले पेशावरकी ओर बढ़े। १२ वर्षका सलीम और ११ सालका मुराद दोनों शाहजादे भी साथ थे, जो अपनी-अपनी सेनाके मुख्य सेनापति बनाये गये थे। यह केवल शोभाके लिये ही था, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

काबुलका मोर्चा शाही अमीरों (जेनरलों) को पसन्द नहीं था। वह वहाँकी सर्दी और दुहरी तकलीफोंको भली प्रकार जानते थे, इसलिये चाहते थे, कि पेशा-वरसे आगे न बढ़ा जाय। उन्होंने कई तरहसे बादशाहको समझाने की कोशिश की, लेकिन अकबर इसके लिये तैयार नहीं था। उसने मानसिंहको और आगे बढ़नेका हुकुम दिया। बरसातमें सिंधपर नावोंका पुल बाँधना सम्भव नहीं हुआ। अलग-अलग नावोंके जरिये अकबर और उसकी सेना सिंध पार हुई। अकबर मीठी-मीठी बातें कहलाकर मिर्जाको समझानेकी कोशिश करता था—"तुम्हारे खानदानके अमीर आज दुश्मन कर रहे हैं। इस दौलतसे भाई बेनसीब क्यों रहे? पुराने बुजुर्गोंने छोटे भाईको पुत्र कहा है। पर, असली बात तो यह है, कि बेटा और भी पैदा हो सकता है, पर भाई नहीं हो सकता। तुम्हारी बुद्धि और समझको यह उचित है, कि माइनिदासे भगकर मुलाकात से खुशहाल करो।" बातका कोई इच्छानुसार परिणाम नहीं होता दिखाई दिया, बल्कि षड्यन्त्रके सम्बन्धमें कुछ और पत्र पकड़े गये। युद्ध-परिषद बैठी। बहुतोंने सलाह दी, कि मिर्जाको क्षमा करके उसे मुल्क

पढ़ा गया और ब्राह्मणोंने हवन करा फेरे भी फिरवाये। दुलहनको दुलहाके घर तक नालकी (पालकी)के ऊपर अशर्फियाँ न्यौछावर करते लाये। राजा भगवानदासने सैकड़ों घोड़े, सौ हाथी तथा खुतनी, हब्शी, चेरकासी और हिन्दी सैकड़ों दास-दासियाँ दीं। अबुलफजलने हर्ष करते हुए कहा—

दीन-ो दुनिया रा मुबारकबाद क्-ीं फर्खन्द अवद।
अज़ बराये इन्तिज़ामे दीन-ो दुनिया बस्तऽअन्द।

(दीन और दुनियाके लिए मुबारकबाद है, जो कि यह आनन्दमय ब्याह दीन और दुनियाके इन्तिज़ामके लिये किया गया।)

इसी समय खबर मिली, कि शराब पीनेमें हद करनेके कारण मिर्ज़ा हकीमका देहान्त हो गया। मृत्युके समय (जुलाई १५८५) वह सिर्फ ३१ वर्षका था। मिर्ज़ाके मरनेके बाद काबुलका प्रबन्ध मानसिंहके सुपुर्द हुआ। दो सालतक सैनिक और असैनिक भारी ज़िम्मेवारीका यह काम मानसिंहने बड़ी योग्यतासे किया। बादशाह रावल पिन्डीमें आया था। अपने पुत्र जगत्‌सिंहको काबुलमें रखकर मानसिंह दरबारमें हाज़िर हुए। अकबरने सरहदी इलाकेको जागीरके तौरपर मानसिंहको दिया और काबुलके इन्तिज़ामके लिये राजा भगवानदास को भेजा। थोड़े ही समयमें वह पागल हो गये। इसपर मानसिंहको फिर काबुल जाना पड़ा। १५८७ ई०में मानसिंहकी बहिनसे लाहौरमें सलीमको पहला पुत्र हुआ, जिसका नाम खुसरो रक्खा गया। वह तख्तका अधिकारी होकर पैदा हुआ था, पर अपने नालायक बापकी ईर्ष्याका उसे शिकार होना पड़ा। जवान होकर लाहौरमें ही वह बापसे बागी हुआ और वहीं बापके सामने तलवारके घाट उतारा गया।

४. महान् शासक

बिहार-राज्यपाल—दिसम्बर १५८७में मानसिंहकी आवश्यकता बिहारको हुई, अकबरने उन्हें हाजीपुर पटनाके शासनका भार देकर भेजा। पान-गोष्ठीमें खानखाना, मानसिंह और दूसरे अमीर भी शामिल थे। अकबरने मानसिंहको दीन इलाही में आनेका संकेत किया। मानसिंहने कहा—"मैं हिन्दू हूँ। यदि आपका आदेश हो, तो मैं मुसलमान हो जाऊँगा, पर मैं इन दोनोंके अतिरिक्त और धर्मको नहीं जानता।" बदायूँनीने लिखा है: बात यहीं खतम हो गई। बादशाहने फिर आगे बात नहीं की और उसे बंगाल भेज दिया। बिहारके सूबेके मुख्य नगर हाजीपुर और पटना गंगाके आर-पार थे। लेकिन, जान पड़ता है, मानसिंहका रहना हाजीपुर और गण्डकके इस पार सोनपुरमें अधिक होता था। आज भी वहाँ इसके निशान मौजूद हैं: सोनपुरके पास "राजा मानसिंह"का गढ़, "बाग-राजा मानसिंह", "मुगलबाड़ी"। ("आमा" पृष्ठ ६०-६१)—

ही पठान मानसिंहसे आ मिले। बाकी पठानोंने सुलह करनेमें ही भलाई समझ अकबरको अपना अधिराज माना और बहुमूल्य भेंटोंके साथ डेढ़ सौ हाथी मानसिंहने दरबारमें भेजे।

लेकिन, अफगान इस सुलहको अधिक दिनों तक माननेके लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने पुरी-उड़ीसापर हाथ साफ किया, फिर बादशाही इलाकेपर भी आक्रमण करना शुरू किया। मानसिंहको तो बहाना चाहिये था। एक बड़ी सेना ले वह स्वयं जला द्वारा चले और दूसरे सरदारोंको झारखण्डके रास्ते भेजा। पठान सुलहके इच्छुक हुए, पर मानसिंह उनकी सुननेके लिए तैयार नहीं थे। अन्तमें वह हिम्मत बटोरकर लड़े, लेकिन हारके सिवा कुछ हाथ नहीं आया। मानसिंहने अब अकबरी थाना पुरीके समुद्र तट तक पहुँचा दी। हाजीपुर-पटना शासन-केन्द्र होने लायक नहीं था, इसलिये वह राजधानी आकमहल ले गये, जिसे अकबर नगर नाम दिया गया, पर वह मशहूर हुआ राजमहलके नामसे। वह संथालपरगनामें अब एक छोटा सा कस्बा है; पर, पुराने समयमें यह बड़े सैनिक महत्वका स्थान माना जाता था। दक्षिणमें पहाड़ी और उत्तरमें गंगाको धारने इसे एक सैनिक महत्वके घाटेका रूप दे दिया था। बंगालकी यह राजधानी औरंगजेबके समय तक रही। १५५२ ई० तक मानसिंह बंगाल-बिहारके मालिक रहे—यद्यपि रहना उनका अधिकतर अजमेरमें होता था। हिजरी १००२ (१५६३-६४ ई०)में अकबरने अपने पोते खुसरोको छ वर्षकी उमरमें पजहजारी बना उड़ीसाकी जागीर दी। मानसिंह अपने भांजेके अतालीक (संरक्षक गुरु) नियुक्त हुए और जागीरका प्रबन्ध भी वही करते थे। १५६३-६४ ई० (हिजरी १००२)में कूचबिहारके राजाने बादशाहकी अधीनता स्वीकार की। उस समय पूर्वी भारतका वह सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था, जिसके पास ४ लाख सवार, २ लाख पियादे, ७०० हाथी और हजार सैनिक नावें लड़नेके लिए तैयार रहती थीं।

१००५ (१५६६-६७ ई०)में मानसिंहके बेटे जगतसिंहको पंजाबकी पहाड़ियोंका शासक नियुक्त किया गया। मानसिंहका दूसरा बेटा हिम्मतसिंह इसी समय मर गया, जिसकी योग्यतापर पिताको भारी अभिमान था। इसी साल बंगालमें ईसा खाँ अफगानने बगावत की। मानसिंहने अपने बेटे दुर्जनसिंहको सेना देकर भेजा। पठानोंने दुर्जनसिंहको धोखेबाजीसे मार डाला।

१००७ हिजरी (१५६८-६६ ई०)में मध्य-एशियाके खान अब्दुल्लाके मरने की खबर सुनकर अकबरको बाप-दादोंके स्थानको आकार बनानेका ख्याल आया और चाहा कि पूर्वजोंकी भूमि को हाथमें लूँ। लेकिन दक्षिणको बहमनी रियासतोंको लेनेपर भी वह तुला हुआ था। उसने शाहजादा दानियालके साथ अब्दुर्रहीम खानखाना और शेख अबुलफजलको दक्खिनकी मुहिमपर भेजा। पीछे स्वयं भी उनकी मददके लिये

शाहजादा सलीम जहाँगीरके नामसे मुगल-सिंहासन पर बैठा। उसे अपने ससुरे भाई मानसिंहसे शिकायत थी, लेकिन उसने उसका खयाल नहीं किया और उन्हें अपनी तरफसे बंगालका सूबेदार नियुक्त किया। कुछ महीने बाद खुसरो बागी हो गया, लेकिन उसके कारण जहाँगीरने मानसिंहपर गुस्सा उतारना नहीं पसन्द किया। उसने सिंहासनपर बैठनेके एक साल आठ महीने बाद स्वयं लिखा है—"राजा मानसिंहने किला रोहतास—जो कि मुल्क पटनामें अवस्थित है—से आकर हाजिरी बजाई। छः बार आदेश गये, तब आया। खान आजमकी तरह यह भी इस दौलतके पुराने पापियोंमें है। इन्होंने जो मुझसे किया, और जो मेरी ओरसे इनके साथ हुआ, उसे खुदा जानता है। कोई भी किसीसे इस तरह नहीं बर्ताव कर सकता। राजाने नर और मादा सौ हाथी भेंट किये, जिसमें एकमें भी ऐसी बात नहीं है, कि वह खासाके हाथियोंमें दाखिल किया जा सके। यह मेरे बापके बनाये हुये नौजवानोंमेंसे है। इसके अपराधोंको मैं मुँहपर नहीं लाया और बादशाही दयासे उसे सुरखरू किया।" दो महीने बाद फिर वह लिखता है—"मेरे सभी घोड़ोंमें श्रेष्ठ एक घोड़ा था। उसे मैंने कृपावश राजा मानसिंहको प्रदान किया। ..मानसिंह मारे खुशीके इस तरह लोट-पोट हो रहा था कि अगर मैं उसे राज्य दे देता, तो भी वह इतना खुश न होता।"

मानसिंह भवितव्यताके सामने सिर झुका चुके थे, और जहाँगीरके शासनको उन्होंने दिलसे मान लिया था। तो भी खुसरोके सम्बन्धके कारण जहाँगीरके मनसे सन्देह दूर नहीं होता था। मानसिंह साबित करना चाहते थे, कि मैं बापकी तरह ही बेटेका भक्त हूँ। इसीलिये बंगालसे लौटकर उन्होंने दक्षिणकी मुहिमपर जानेके लिये आज्ञा ली। हिजरी १०२१ (१६१२-१३ ई०)में वह अपनी सेना लेकर दक्षिण पहुँचे, और वहीं हिजरी १०२३ (१६१४ ई०)में उनका देहान्त हुआ। यद्यपि नियम-के अनुसार आमेरकी गद्दी मानसिंहके बड़े बेटे जगतसिंहके पुत्र महासिंहको मिलनी चाहिये थी, लेकिन जहाँगीरने मानसिंहके बचे हुये पुत्रोंमें सबसे बड़े भाऊसिंहको मिर्जा राजाकी पदवीके साथ चारहजारीका मन्सब प्रदान किया।

मानसिंह, अब्दुर्रहीम खानखाना और खानेआजम (मिर्जा अजीज) अकबरके सबसे बड़े सेनापति थे। जहाँगीरके शासनमें खानखाना और खानेआजमको बड़े अपमानका जीवन बिता कर मरना पड़ा। मानसिंहके ऊपर भी काले बादल छाये, लेकिन वह उससे बच कर निकल गये। मानसिंह बड़े ही मधुर-स्वभाव, उदार और मिलनसार पुरुष थे। एक बार खानखाना (रहीम) और मानसिंह शतरंज खेल रहे थे। शर्त हुई थी, जो हारे वह जानवरकी बोली बोले। खानखानाकी चाल दबने लगी। मानसिंहने हँसना शुरू किया। कहा—तुमसे बिल्लीकी बोली बुलवाऊँगा। खानखानाने दो-चार चाल तक हिम्मत की। फिर आया नहीं रह गई, तो दूसरी चाल चलकर उठ खड़े हुए—"ऐ हा, अब खातिरम् रफ्त:स्बुद, हाला यादम् आमद।

बिरवम् कि ज़ूदतर सर-अंजामश कुनम्।" (ओहो, मेरे ख्यालसे उतर गया था। अच्छा हुआ, अब याद आगया। जाऊँ और जल्दी उसको पूरा करूँ।) मानसिंह कहा—"न मि-शवद्।...सदाये पिश्क ब-शुनीद् व बिरवीद्।" (नहीं हो सकता... बिल्लीकी बोली बोलिये, और जाइये।) इसपर खानखाना बोल उठे—"शुमा दामन् नम् ब गुज़ारीद्, मी-आयम्, मी-आयम्।" (आप मेरा दामन छोड़ दें, मैं आता हूँ, मैं आता हूँ।)" "मी-आयम्" का उच्चारण उन्होंने म्याऊँ की तरह किया, जिसपर मानसिंह हँस पड़े।

एक और लतीफा कहा जाता है। बंगालमें किसी फकीर शाह दौलतकी ख्याति सुनकर वह दर्शन करने गये। शाह साहब उनकी बातचीतसे प्रसन्न होकर बोले—"मानसिंह, आप मुसलमान क्यों नहीं हो जाते?" मानसिंहने मुस्कुराते हुए कहा—"ख़तमल्लाहु अला-कुलूबेहिम्।" (अल्लाने दिलपर मोहर कर दी है।) जब अल्लाने मोहर कर दी है, तब मैं उसके तोड़नेकी गुस्ताखी क्यों करूँ!

मानसिंह, खानखाना और खानेआज़म तीनों अकबरके अत्यन्त प्रिय थे। तैमूरने अपने लिये अमीरकी पदवी स्वीकार की। वह खान, सुल्तान या शाह नहीं बना। तैमूरी शाहज़ादोंको मिर्ज़ा—अमीरज़ादा—कहा जाता था। मिर्ज़ा सम्मानका शब्द था। अकबर खानखानाको मिर्ज़ा खाँ, खानेआज़म अज़ीज़को मिर्ज़ा अज़ीज़ और मानसिंहको मिर्ज़ा राजा कह कर पुकारता था। मानसिंह बादशाहके अपने परिवारके आदमी थे।

मानसिंहके वास्तुकला-प्रेम और धर्मप्रेमका साकार उदाहरण वृन्दावनका गोविन्द देव मन्दिर है, जिसे दिल्लीवासी वास्तुशास्त्री गोविंददासने पंचमंज़िला बनाना चाहा था, पर वह कभी पूरा न हो सका, तो भी एक अभिज्ञ अंग्रेज ग्राउसका कहना है—"हिन्दू कलाकी उपजोंमें यह अत्यन्त प्रभावशाली है, कमसे कम उत्तरीय भारतमें।"

शाहजहाँने जिस भूमिपर ताजमहलको बनाया, वह राजा मानसिंहकी थी।

आजसे चार सदियाँ पहले हमारे इन पूर्वजोंने एक महान् काम अपने सिरपर उठाया था। उनकी सफलता क्षणिक साबित हुई, पर उससे उनका महत्व कम नहीं होता। वह जो कुछ करना चाहते थे, उसकी सारी बातें उन्हें स्पष्ट नहीं थीं। किन्तु ही परस्पर विरोधी बातें भी उनसे हो जाती थीं, पर यह तो वह निश्चय ही जानते थे, कि हमें अपने लोगोंको एक जातिके रूपमें परिणत करना है, भारतमें एक [illegible] हिन्दू-मुस्लिम [illegible] छोड़ देना है। मानसिंह इस जाति-निर्माणके एक अगुआ थे [illegible] उन्हें बहुत दिनों तक विभीषण माना गया, पर सारे देशको एक राष्ट्र और [illegible] करनेका स्वप्न देखनेवाला विभीषण नहीं हो सकता। हमारा [illegible] [illegible] हमेशा [illegible] स्मरणीय रहेंगे, पर यदि अकबरकी [illegible] [illegible] [illegible] न बनता।

———

उत्तरार्द्ध

अकबर

अध्याय १५

आरम्भिक जीवन (१५४२-६४ ई०)

बाबरने* भारतमें अपने वंशको मुगल (मँगोल) प्रसिद्ध किया, पर वस्तुतः वह मुगल नहीं तुर्क—बिरलस—था। उसकी माँ कुतुलुग निगार खानम् मुगोलिस्तानके खान यूनस (१४६८-८७ ई०)की बेटी थी, इसलिये वह माँकी तरफसे अपने रगोंमें चिंगेजका रुधिर जरूर रखता था। अकबरकी माँ हमीदा बानू ईरानी थी। इस प्रकार उसके शरीरमें ईरानी रक्त भी था।

(तुर्क)
तुगाई (बिरलस)
|
तेमूर (१३७०-१४०५ ई०)
|
शाहरुख (१४०६-४७ ई०)
|
मीराशाह
|
अबूसईद (१४५२-६६ ई०)
|
उमरशेख = कुतुलुग निगार

(मँगोल)
चिंगीज (मृ० १२२७ ई०)
|
चगताई (मृ० १२४२ ई०)
:
:
:
:
यूनस खान (मृ० १४८७ ई०)
|
कुतुलुग निगार

(ईरानी)
अली अकबर जामी
|
हमीदा बानू (मरियम मकानी) = हुमायूँ (मृ० १५५६ ई०)

उमरशेख = कुतुलुग निगार
|
बाबर (मृ० १५३० ई०)
|
हुमायूँ (मृ० १५५६ ई०)
|
अकबर (मृ० १६०५ ई०)

बाबरने क्यों भारतमें अपनेको मुगल प्रसिद्ध किया? सम्भवतः उसका यह प्रयत्न काबुलमें शुरू हो गया था, जिसे छोड़ना मुश्किल था। लेकिन, काबुलवाले बाबरकी जन्मभूमि तूरान (आधुनिक सोवियत मध्य-एशिया)से अच्छी तरह परिचित थे। वह जान सकते थे, कि यह तेमूरी वंशका शाहजादा मुगल नहीं तुर्क है।

---

*तुर्की उच्चारण बाबुर

चिंगीज़के खूनको मध्य-एशियामें बहुत पीछे तक अत्यन्त पवित्र माना जाता था। इसलिए वहाँ वाले लोग ढूँढ़-ढूँढ़कर चिंगीज़ी वंशके किसी पुरुषको लाकर अपना खान (राजा) बनाते थे। तेमूर सर्वप्रभुत्व-सम्पन्न विजेता था। उसे खानकी गद्दीपर बैठनेमें कोई रुकावट नहीं हो सकती थी। लेकिन, तेमूर समरकन्दकी गद्दीपर चिंगीज़-वंशी गुड़िया खानको ही रख, स्वयं अमीर मर बना रहा। उसके परपोते अबू-सईद तक चिंगीज़ी गुड़िया खान होते रहे। तेमूर अपने लिए सिर्फ "अमीर" इस्तेमाल करता था। जब तेमूर अमीर था, तो इस शब्दका महत्व क्यों न बढ़ जाता? तेमूरी शाहज़ादोंको अमीरज़ादा—संक्षिप्त मिर्ज़ा—कहा जाता था।

१. जन्म (१५४२ ई०)

अकबरका जन्म २८ दिसम्बर १५४२ को अमरकोट पश्चिमी पाकिस्तानमें हुआ था। आजकल कितने ही लोग इसे उमरकोट समझनेकी गलती करते हैं। वस्तुतः यह इलाका राजस्थानका अभिन्न अंग था। आज भी वहाँ हिन्दू राजपूत अधिक बसते हैं। रेगिस्तान और सिन्धकी सीमापर होनेके कारण अँग्रेज़ोंने इसे सिन्धके साथ जोड़ दिया और विभाजनके बाद वह पाकिस्तानका अंग बन गया।

बाबरने २२ वर्षकी आयु (१५०४ ई०)में काबुलमें अपना राज्य स्थापित किया। मध्य-एशियामें बाप-दादोंके राज्यके उज्बेक-शैबानियोंके हाथसे फिर लौट पानेकी आशा न रहनेपर बाईस साल बाद उसने पूर्वकी ओर बढ़नेका निश्चय किया। २१ अप्रैल १५२६में दिल्लीके पठान सुल्तान इब्राहीम लोदीको हराकर वह भारतका बादशाह बना। पर, उसकी स्थिति तब तक दृढ़ नहीं हुई, जब तक कि १६ मार्च १५२७को खनुवाँ (सीकरीसे कुछ मीलपर)में राणा साँगा (संग्रामसिंह)की प्रधानतामें लड़ते राजपूतोंको हरा नहीं दिया। गंगा और सरयूके संगमपर (बलिया ज़िलेमें) मई १५२९में एक लड़ाई और लड़नी पड़ी, जिसके बाद उत्तरी भारतके बहुत बड़े भाग-पर उसका झण्डा फहराने लगा। बाबर बहुत दिनों तक राज्य भोग नहीं सका और ४८ वर्षकी उमरमें २६ दिसम्बर १५३०को उसका आगरामें देहान्त हुआ।

गोरी और उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबकने जल्दी-जल्दीमें दिल्लीको मुस्लिम भारतकी राजधानी बना दिया। तबसे तुगलकों-लोदियोंके समय तक वही राजधानी रही। पीछे मालूम हुआ, कि इसके लिए अधिक उपयुक्त स्थान आगरा है, जहाँ सैनिक स्कन्धावार बाँधनेपर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों ओर आक्रमण या प्रतिरक्षाकी कार्रवाई करनेमें अधिक सुभीता है। इसीलिए बाबरने आगराको भी एक राजधानी बना दिया और वह वहीं मरा। शेरशाहके समय वहाँ भी आगरा एक राजधानी रहा। यही बात अकबरके समयमें भी दुहराई गई।

बाबरके चार लड़के थे—हुमायूँ, कामराँ, हिन्दाल और अस्करी। सबसे बड़ा हुमायूँ बापके मरनेपर (२६ दिसम्बर १५३०को) दिल्लीमें तख्तपर बैठा। हुमायूँ हैं

अयोग्य नहीं था, लेकिन अफीम अकलको चाट गई थी। उसके भाई चाहते थे, हम गद्दीपर बैठें। पठान भूल नहीं सकते थे, कि हाल हीमें हमने दिल्लीपर शासन किया है। दिल्लीके पासवाले पठान दब गये, पर पूर्वमें पैसा नहीं हो सका। भारतके सभी पठान अफगान नहीं थे। पूर्वमें राजपूत, भूमिहर जैसी जातियाँ मुसलमान होकर पठान बन गईं, जिससे पठानोंका संख्याबल बढ़ा। शेरशाहका बाप जौनपुरकी सल्तनतसे सम्बन्ध रखता था। शेरशाहका बचपन वहीं बीता। उसने वहीं रहते भाँप लिया, कि किस तरह हिन्दुओंकी सहायतासे जौनपुरने दिल्लीसे स्वतन्त्र हो शर्कीकी मजबूत सल्तनत कायम की। उसने देखा: मजहबी तअस्सुबके बलपर दिल्लीको झुकाया नहीं जा सकता, क्योंकि मजहबी पेशवा दिल्लीके सुल्तानको छोड़कर दूसरेका समर्थन करना नहीं पसन्द करेंगे। यदि धर्मान्धताको छोड़ दिया जाय और हिन्दुओंके साथ भाई-चारा स्थापित किया जाय, तो काम बन सकता है। अकबरसे पहले ही शेरशाहने इस नीतिको सफलतापूर्वक अपनाया।

हुमायूँ मुश्किलसे नौ वर्ष शासन कर सका। २६ जून १५३६को गंगा-किनारे चौसा (शाहबाद जिले) में उसे शेरखाँ (शेरशाह)के हाथों करारी हार खानी पड़ी। चौसा अपने ऐतिहासिक युद्धकेलिये आज उतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना अपने स्वादिष्ट आमोंकेलिये। चौसाकी हारके बाद कन्नौजमें हुमायूँने फिर भाग्य-परीक्षा की, लेकिन शेरशाहने १७ मई १५४० को अपनेसे कई गुनी अधिक सेनाको हरा दिया। हुमायूँ पश्चिमकी ओर भागा। कितने ही समय तक वह राजस्थानके रेगिस्तानोंमें भटकता रहा, पर कहींसे कोई सहायता नहीं मिली। इसी भटकंत जीवनमें उसका परिचय हमीदा बानूसे हुआ। बानूका पिता शेख अली अकबर जामी मीर बाबा दोस्त हुमायूँके छोटे भाई हिन्दालका गुरु था। हमीदाकी सगाई हो चुकी थी, लेकिन चाहे बेतख्तका ही हो, आखिर हुमायूँ बादशाह था। सिन्धमें पातके मुकामपर १५४१ ई० के अन्त या १५४२ ई० के आरम्भमें १४ वर्षकी हमीदाका ब्याह हुमायूँसे हो गया। अपने पिछले जीवनमें यही हमीदा बानू मरियम मकानीके नामसे प्रसिद्ध हुई और अपने बेटेसे एक ही साल पहले (२६ अगस्त १६०४ ई० में) मरी। उस समय क्या पता था, हुमायूँ का भाग्य पलटा खायेगा और हमीदाकी कोखसे अकबर जैसा अद्वितीय पुत्र पैदा होगा।

अगस्त १५४२में अपने सात सवारोंके साथ हुमायूँ अमरकोट पहुँचा। अमरकोट (थरपारकर जिलेका सदर-मुकाम) रेगिस्तानके भीतरसे सिंध जानेवाले रास्ते और रेगिस्तान-के छोरपर रेती पहाड़ियोंमें है। अमरकोटके राणा परशादने हुमायूँका दिल खोलकर स्वागत किया। उसने अपने जातिके दो हजार और दूसरोंके तीन हजार सवार हुमायूँ केलिये जमा कर दिये। हुमायूँने विजय की तैयारी की। अकबर इस समय हमीदा बानूके गर्भमें था। दो या तीन हजार सवारोंको लेकर २० नवम्बरको हुमायूँ ठट्ठा

भक्कर के जिलों पर आक्रमण करने चला। अमरकोटसे बीस मीलपर एक तालाबके
किनारे उसका डेरा पड़ा था। यहींपर तर्दीबेगने कुछ सवारोंके साथ दौड़कर पुत्रके
जन्मकी खुशखबरी दी। बच्चा पूर्णमासीके दिन (१४ शाबान ६४९ हिजरी, तदनुसार
गुरुवार २३ नवम्बर १५४२) पैदा हुआ था, इसलिये बदर (पूर्णचन्द्र) शब्द जोड़कर
नाम बद्रुद्दीन मुहम्मद अकबर रक्खा गया। हजरत मुहम्मदके दामाद अलीका मुहम्म
अकबर कहा जाता था, शायद इसी ख्यालसे शिशुके नामके साथ इसे जोड़ा गया
हुमायूँ ऐसी स्थितिमें नहीं था, कि अपने प्रथम पुत्रके जन्मोत्सवको उचित रीति
मना सकता। सारी कठिनाइयोंमें मालिकके साथ रहनेवाला, जौहर, अकबरके ज
बहुत बूढ़ा होकर मरा। उसने लिखा है—

"बादशाहने इस संस्मरणके लेखकको हुकुम दिया—जो वस्तुयें तुम्हें मैंने
सौंप रक्खी हैं, उन्हें ले आओ। इसपर मैं जाकर दो सौ शाहरुखी (रुपया), एक चाँदी
का कड़ा और दो दाना कस्तूरी (नाभि) ले आया। पहले दोनों चीजोंको उनके मालिकोंके
पास लौटानेकेलिए हुक्म दिया।...फिर एक चीनीकी तश्तरी मँगाई। उसमें कस्तूरी-
को फाड़ कर रख दिया और यह कहते हुये उपस्थित व्यक्तियोंमें उसे बाँटा: "अपने
पुत्रके जन्मदिनके उपलक्षमें आप लोगोंको भेंट देनेकेलिये मेरे पास बस यही मौजूद
है। मुझे विश्वास है, एक दिन उसकी कीर्ति सारी दुनियामें उसी तरह फैलेगी,
जैसे इस स्थानमें यह कस्तूरी।"

ढोल और बाजे बजा कर खुशखबरी की सूचना दी गई।

वहांसे अपने आदमियोंके साथ हुमायूँ छोटेसे कस्बे जूनमें गया, जो अमर-
कोटसे ७५ मीलपर अवस्थित है। उसपर अधिकार करके उसने वहीं अपना डेरा
डाल दिया। इसी बीच रमजानके रोजे शुरू हो गये। शिशुके साथ हमीदा बानूको
अमरकोटसे लानेके लिये आदमी भेजे। वह धीरे-धीरे चल कर २० रमजान (२८
दिसम्बर) को जून पहुँची। उस दिन शिशु ३५ दिनका हो गया था। ११ जुलाई
१५४३ तक हुमायूँ वहीं रहा। उसे आशा थी, शायद सहायता पाकर मैं फिर
अपने राज्यको लौटा सकूँ, लेकिन जो आदमी उसके पास थे, उनमें भी बहुतसे
साथ छोड़ कर चले गये। हुमायूँ ने भारतसे निराश होकर अब ईरानकी ओर नजर
फेरा। बाबर अपनी जन्मभूमि और तख्तसे जब वंचित हुआ था, उस समय ईरानके
शाह इस्माईलने उसकी भारी मदद की थी और एक बार कुछ महीनोंके लिये वह
समरकन्दके तख्तपर बैठ भी गया था। हुमायूँ ने सोचा, इस्माईलका बेटा तहमास्प
शायद इस समय मदद करे।

शाह इस्माईलने ईरानमें एक शक्तिशाली सल्तनत कायम करके शिया धर्मको
नया राष्ट्रीय धर्म घोषित किया। ईरान जैसा प्राचीन और अत्यन्त सुसंस्कृत जाति
बेजा नाजबर्दारी करनेकेलिये तैयार नहीं थी। उसने समय-समयपर अप

लुब्धन्दता दिखलाई थी। इस्माईलको मालूम हो गया, कि जब तक धर्ममें अरबोंके एकाधिपत्यको स्वीकार किया जायगा, तब तक हमारे लिये कोई आशा नहीं। ईरानी दिमागने सोचा : अली और उनकी सन्तान हसन, हुसेनकी आड़में हम अपने राष्ट्रीय सम्मानको आगे बढ़ा सकते हैं। हसन, हुसेनका ब्याह अन्तिम सासानी शाहंशाह यज्दगर्दकी शाहजादियोंसे हुआ था। पैगम्बरकी प्रिय पुत्री फातिमाकी औलाद इन्हीं शाहजादियोंसे आगे चली। ईरानियोंको यह अभिमान करनेका अवसर था, कि अलीकी औलादमें हमारा भी खून सम्मिलित है। ईरानियोंने आजकल तो यहाँ तक कहना शुरू किया है, कि कुरान भी एक ईरानीके दिमागकी उपज है। पैगम्बरके समय उनके विरोधी यह आक्षेप करते थे : मुहम्मदके ऊपर अल्लाहसे आयतें नहीं उतर रही हैं, बल्कि इनका बनानेवाला एक विदेशी—ईरानी—है। इस्माईलके राजवंशको सफावी वंश कहा जाता था। उसका पूर्वज एक शिया धार्मिक नेता था, जिसकी सातवीं पीढ़ीमें इस्माईल पैदा हुआ : सफी→सदरुद्दीन→अलीख्वाजा→इब्राहीम→सुलतान शेख सदरुद्दीन→सुलतान जुनैद→सुलतानहैदर→शाह इस्माईल→शाह तहमास्प।

तहमास्पकी सहायता प्राप्त करनेके ख्यालसे हुमायूँ कन्दहारकी ओर चला। बड़ी मुश्किल से सेहवानपर उसने सिन्ध पार किया, फिर बलोचिस्तानके रास्ते क्वेटाके दक्षिण मस्तंग स्थानपर पहुँचा, जो कन्दहारकी सीमापर था। इस समय वहाँ उसका छोटा भाई असकरी मिर्जा अपने भाई काबुलके शासक कामराँकी ओरसे हुकूमत कर रहा था। हुमायूँको खबर मिली, कि असकरी हमला करके उसको पकड़ना चाहता है। मुकाबिला करनेके लिये आदमी नहीं थे। जरा भी देर करनेसे काम बिगड़नेवाला था। उसके पास घोड़ोंकी भी कमी थी। उसने तर्दीबेगसे माँगा, तो उसने देनेसे इन्कारकर दिया। हुमायूँ हमीदा बानूको अपने पीछे घोड़ेपर बैठा पहाड़ोंकी ओर भागा। उसके जाते देर नहीं लगी, कि असकरी दो हजार सवारोंके साथ पहुँच गया। हुमायूँ साल भरके शिशु अकबरको ले जानेमें असमर्थ हुआ। वहीं डेरेमें छूट गया। असकरीने भतीजेके ऊपर गुस्सा नहीं उतारा और उसे जौहर आदिके हाथ अच्छी तरह कन्दहार ले गया। कन्दहारमें असकरीकी पत्नी सुलतान बेगम वात्सल्य दिखलानेके लिये तैयार थी।

हुमायूँ अपनी पत्नी और थोड़ेसे आदमियोंको लिये सूखे पहाड़ों और रेगिस्तानोंकी खाक छानता सीस्तान पहुँचा। कजवीन (तेहरानसे थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व)में शाहने स्वयं आकर अपने मेहमानका भव्य स्वागत किया। जिस आशासे हुमायूँ वहाँ गया था, उसके पूरा होनेकी भी आशा हुई। हाँ, तहमास्पने यह आग्रह किया कि तुम शीया हो जाओ। हुमायूँ शीया बना, पर भारतमें आनेके बाद नहीं रह सका, क्योंकि यहाँ उसके अमीर शीयोंके विरुद्ध थे और बैरम तथा दूसरे शीया अमीर भी ऊपरसे सुन्नी बन कर रहते थे।

२. माता-पितासे अलग (१५४२-४५ ई०)

अकबर असकरीकी पत्नीकी देख-रेखमें रहने लगा। खानदानी प्रथाके अनुसार दूधमाताएँ—अनका—नियुक्त की गईं। शमशुद्दीन मुहम्मदने १५४० ई०में कन्नौजके युद्धमें हुमायूँको डूबनेसे बचाया था, उसीकी बीबी जीजी अनकाको दूध पिलानेका काम सुपुर्द हुआ। माहम दूसरी अनका थी। यद्यपि उसने दूध शायद ही पिलाया हो, पर वही मुख्य अनका मानी गई और उसके पुत्र—अकबरके दूधभाई (कोका या कोकलताश)—अदहम खानका पीछे बहुत मान बढ़ा। अकबरके मुँहसे शैशवकी बात सुनकर अबुलफ़जलने "आईन-अकबरी"में १६ दिसम्बर १५४२की घटना कह कर लिखा है—

मैंने यह परमभट्टारक शाहंशाहके पवित्र अधरोंसे स्वयं सुना है: "मुझे अच्छी तरह याद है, उस समयकी एक घटना, जबकि मैं एक वर्षका था।...परममान्य परम भट्टारक जगत्पति (हुमायूँ) इराककी ओर चले गये। मुझे कन्दहार लाया गया। उस समय मैं एक वर्ष तीन महीनेका था। एक दिन अदहम खानकी माँ माहम अनकाने मिर्जा असकरीसे कहा: तुर्की प्रथा है कि जब बच्चा चलना शुरू करे, तो बाप दादा या जो भी उनके स्थानपर हो, वह अपनी पगड़ी उतार कर उससे चलते हुये बच्चेको मारे, जिसमें वह जमीनपर गिर जाये। इस समय परमभट्टारक जगत्पति यहाँ नहीं हैं, उनके स्थानपर आप हैं, इसलिये यह विधि करें, यह नजर आनेके लिये सीपन्द (बूटी) जैसी है। मिर्जाने तुरन्त अपनी पगड़ी उतारकर मेरे ऊपर फेंकी। मैं गिर पड़ा। वह मारना और गिरना अब भी मेरेलिये प्रत्यक्ष-सा है। इसके बाद ही मंगलकेलिये बाबा हसन अबदालके रौजेपर ले जाकर उन्होंने मेरा मुंडन कराया। वह बाबा और बालोंका काटना भी मेरे सामने दर्पणकी तरह साफ दीखता है।"

इससे मालूम होगा, कि अकबर बहुत जल्दी चलने लगा था और इसकी स्मृति असाधारण तीव्र थी।

शाह तहमास्पने १५४४ ई०के उत्तरार्धमें ईरानी सेना दे कन्दहारपर चढ़ाई करनेकी इजाजत दी। कन्दहारमें बेटेके बारेमें सोचने लगे। किसीने सलाह दी, दे बापके पास भेज देना चाहिये। कामराँ अपने पास भेजनेके लिये कह रहा था। असकरीको बड़ा विश्वास था, कि हुमायूँके भाग्यका पासा लौटनेवाला है। उसने अकबरको काबुल भेज दिया। कामराँने उसे अपनी फूफी खानजादा बेगमके हाथमें दे दिया। दूसरे दिन बाग-शहर-आरामें दरबार था। शबबरातके लिये दरबारको खूब सजाया गया था। इस दिन बच्चे छोटे-छोटे नगाड़ोंसे खेलते हैं। अकबर भी दरबारमें तमाशा गया था। कामराँके बेटे मिर्जा इब्राहीमको रंगीन नगाड़े दिये गये। अकबर बच्चा ही था, उसने कहा: मैं भी यही नगाड़ा लूँगा। दोनोंने जिद कर दी। कामराँने कहा दोनों कुश्ती लड़ो, जो जीतेगा, उसीको नगाड़ा मिलेगा। इसपर

कुछ बड़ा था और आशा यही थी, वही पछाड़ेगा, लेकिन बात उल्टी हुई । अकबरने उसे दे पटका । दरबारी हँस पड़े । भाग भाखनेपर विश्वास करनेवाले सोचने लगे : यह खिलौनेका नगाड़ा नहीं है, बल्कि बापके वैभव का नगाड़ा है ।

३. हुमायूँ पुनः भारत-सम्राट् (१५४३-५६ ई०)

हुमायूँ रूठी राजलक्ष्मीको मनानेकेलिये ईरानसे कन्दहारकी ओर चला । सीस्तानमें उसे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि शाहने बारह हजारकी जगह चौदह हजार सवार प्रदान किये हैं । सेनाको लेकर वह कन्दहार आया । असकरी मिर्जा शहरबन्द हो गया । कुछ दिनोंके मुहासिरेके बाद सितम्बर १५४५में उसने आत्म-समर्पण किया । भाईने माफ कर दिया । ईरानी सैनिकोंने किलेपर अधिकार करके वहाँ जो भी खजाना मिला, उसे शाह तहमास्पके पास भेज दिया । हुमायूँको अच्छा नहीं लगा । कुछ ही समय बाद एकाएक आक्रमण करके उसने कन्दहारको ईरानियोंसे छीन लिया ।अब उसने काबुलकी ओर लगाम फेरी । कामराँके बहुतसे अनुयायी उसे छोड़ कर चले गये । लड़ाईमें हार हुई । अब वह काबुल छोड़ भारतकी ओर चला । १५ नवम्बर १५४५ को हुमायूँ बिना विरोधके काबुल शहरमें दाखिल हुआ । अकबर और उसकी बेटी सौतेली बहिन बख्शी बानूको पिछले जाड़ोंमें कन्हारसे काबुल भेजा गया था । खानजादा बेगम अकबरको बहुत प्यार करती थी । हुमायूँको अपने तीन वर्षके बेटेसे मिलकर बड़ी खुशी हुई । हमीदा बानूको वह कन्दहारमें छोड़ गया था । काबुलमें जम जानेपर अब उसे भी बुला लिया । विश्वास करना मुश्किल है, लेकिन कहा जाता है, कि अकबरने माँको देखते ही पहचान लिया । मार्च १५४६ के किसी दिन धूमधामसे अकबरका खतना हुआ । इसी समय उसका नाम बदरुद्दीनसे बदल कर जलालुद्दीन कर दिया गया । भारी खतरोंसे वह पार हुआ, इससे उसके जलाल (प्रताप) का परिचय मिलता था, इसलिये जलालुद्दीन (प्रतापधर्म) नाम अधिक उपयुक्त समझा गया । अकबरका जन्म वस्तुतः २३ नवम्बरको हुआ था, लेकिन ज्योतिषके कुफलके ख्यालसे इतिहासकारोंने उसे हटाकर ५ रजब (१५ अक्तूबर) रविवार बना दिया । नाम बदलनेमें एक यह भी कारण था, कि जो नया जन्मदिन स्वीकार किया गया, उस दिन पूर्णमासी नहीं थी । इतिहास अकबरको जलालुद्दीनके नामसे ही जानता है और स्वामिभक्त जौहरके संस्मरणसे ही पता लगता है, कि पूर्णमासीके दिन पैदा होनेके कारण शिशुका नाम पहले बदरुद्दीन रक्खा गया था ।

बेटेके खतनेके बाद हुमायूँने चाहा कि और आगे बढ़नेसे पहले काबुलसे उत्तर हिन्दूकुश पहाड़के पार अवस्थित बदख्शाँपर अधिकार कर लूँ । उसने काबुलसे कूच किया । किश्ममें पहुँचनेपर इतना सख्त बीमार हुआ कि चार दिन तक बेहोश पड़ा रहा । छोटे भाई हिन्दालने चाहा, भाईकी जगह खुद ले ले । सबसे छोटा भाई असकरी काबुलके किलेमें नजरबन्द था । शिशु अकबर वहीं अन्तःपुरकी बेगमोंके

हाथमें था। कामराँ सिन्धकी ओर भटकता फिर रहा था। उसे मौका मिला और उसने आकर काबुल पर फिर अपना अधिकार जमा लिया। हुमायूँको अब बदख्शाँसे पहले काबुलको देखना था। उसने आकर घेरा डाला। किलेपर जब हुमायूँके सैनिक गोलाबारी कर रहे थे, उस समय कामराँने शिशु अकबरको उसका लक्ष्य बननेके लिये दीवारपर बैठा दिया। किसीकी नजर उधर गई। गोलाबारी बन्द कर दी गई। कहते हैं, इस समय माहम अनगा (अनका) खुद अकबरको गोदमें लेकर गोलाकी ओर पीठ करके बैठ गई। कामराँने दुबारा काबुलपर अधिकार करके अपनी पाशविकता का परिचय विरोधियोंके अबोध बच्चोंको मार कर दिया था। वह अकबरके साथ भी ऐसा कर सकता था, लेकिन अकबरको तो एक बड़े इतिहासका निर्माण करना था। अन्तमें कामराँने देखा, काबुलको किसी तरह बचाया नहीं जा सकता। वह २७ अप्रैल १५४७ में वहाँसे चुपकेसे निकलकर बदख्शाँकी ओर चला गया।

जून १५४८में हुमायूँ अपने भाई हिन्दालके साथ बदख्शाँपर चढ़ा। अकबर अपनी माँके साथ काबुलमें रह गया। अगस्तमें कामराँने भाईके सामने आत्मसमर्पण किया। दोनो आँखोंमें आँसू भरकर एक दूसरे से मिले। मिर्जा असकरीके पैरों की भी बेड़ियाँ इसी समय काट दी गईं। जाड़ेके आरम्भमें काबुल लौटकर हुमायूँने बलखके अभियानकी तैयारी शुरू की। १५४९ ई०में भारी हानि उठा किपचक स्थानमें हुमायूँ बुरी तरह घायल हो गया। तीन महीने तक यही विश्वास किया जाता था, कि उजबेकों की लड़ाईमें हुमायूँ काम आया। कामराँ फिर (१५५० ई०में) काबुल और अकबरका मालिक बन गया। इसी साल हुमायूँने फिर कामराँ को हराया। मिर्जा असकरी को गिरफ्तारीके साथ काबुल और अकबर हाथमें आये। असकरीको क्षमा करके उसने मक्का निर्वासित कर दिया, लेकिन वह रास्तेमें ही मर गया। नवम्बर १५५१ में किसी लड़ाईमें ३२ वर्षकी उमरमें हिन्दाल मारा गया। हिन्दालका असली नाम मुहम्मद नासिर या अबूनासिर मुहम्मद था। हिन्दका होनेसे हिन्दाल नाम पड़ा। वह हुमायूँका सबसे अधिक पक्षपाती था। हुमायूँने उसे गजनीकी जागीर दी थी। उसके मरने पर उसकी लड़की रुकैया बेगमका ब्याह छुटपनमें ही अकबरके साथ करके यह जागीर अकबरको दे दी और उसी साल (१५५१ ई०)के अन्तमें उसे गजनीमें गुर्दिया हाकिम बना कर भेज दिया गया। रुकैया जहाँगीरके राजमें १६२६ ई०में ८४ सालकी होकर निस्सन्तान मरी। घोड़ेसे गिरनेसे हुमायूँको चोट लग गई, तब यही अच्छा समझा गया, कि नौ वर्षके जागीरदारको गजनीसे बुलाकर पास रखा जाय।

हुमायूँके लिये कामरान एक बड़ी समस्या था। वह हिन्दुस्तानकी तरफ बढ़ना चाहता, लेकिन कामरानसे हर वक्त खतरा रहता था। सितम्बर १५५१ में नमकके पहाड़ों (सिन्दसागरमें)के पत्थर सरदार सुल्तान आदम खाँने कामरानको पकड़ लिया। कामरान इस समय झौंडा भेस बना कर छिपा हुआ था। आदम खाँने उसे ले जाकर

हुमायूँके सामने हाजिर किया। यद्यपि कामरान अपनी करनीसे मौतका मुस्तहक था, लेकिन हुमायूँ भाईकी जान लेना नहीं चाहता था। उसने मारनेकी जगह उसे अन्धा कर दिया। बादमें उसे मक्का जानेकी इजाजत दी, जहाँ तीन सालके भीतर ही वह मर गया। कामरानके एक मात्र पुत्रसे खतरा था, इसलिये उसे हुमायूँने बन्दीखानेमें डाल दिया। ग्वालियरके किलेको अकबरके समय शाहजादोंके कैदखानेके तौरपर इस्तेमाल किया जाता था। डर था कि कहीं वह बापका रास्ता न ले, इसलिये संकटके समय १५६५ ई०में ग्वालियरमें उसे मरवा दिया गया।

१५५४ई०में शेरशाहका पुत्र सलीम (इस्लाम) शाह ग्वालियरमें मर गया। उसके १२ वर्षके बेटेको तीन दिन भी गद्दीपर बैठे नहीं हुआ था कि उसके मामा और शेरशाहके भतीजे मुहम्मद आदिल (अदली) शाहने मार कर गद्दी सँभाल ली। उस समय कई सूरी शाहजादे अलग-अलग इलाकोंपर अधिकार जमाये आपसमें लड़ रहे थे। हुमायूँकेलिये यह बहुत अच्छा मौका था और १५५४ ई०के नवम्बरके मध्यमें वह काबुलसे हिन्दुस्तानकी ओर चला। जलालाबादसे काबुल नदीमें बेड़ोंपर रवाना हो पेशावरके पास उतर कर वहाँ उसने एक किला बनवाया। सिन्ध पार करनेके बाद उसने १२ वर्षके अपने उत्तराधिकारीके मंगलके लिये एक खास विधि की, जिसका उल्लेख जौहरने किया है—

"जब हम वहाँ पहुँचे, तो देखा परमभट्टारक चन्द्रमाकी ओर मुँह किये बैठे हैं। उन्होंने शाहजादेको सामने बैठनेके लिये कहा। फिर कुरानकी कुछ आयतें पढ़ीं। हरेक आयतके खतम होनेपर शाहजादेपर दम (फूँक) मारते थे। शाहजादा बहुत खुश था।..."

इसी समय मुनअम खाँको अकबरका अतालीक (संरक्षक गुरु) नियुक्त किया गया और सेनाका संचालन बैरमखाँके हाथ में दिया गया। आपसमें झगड़ते सूरियोंको दबानेमें बहुत मुश्किल नहीं हुई। फरवरी १५५५ में हुमायूँ ने लाहौर ले लिया, २२ जूनको सरहिन्दमें शेरशाहके भतीजे सिकन्दर सूरके ऊपर भारी विजय प्राप्त की। विजय का सेहरा अकबरके सिरपर बाँधा गया, क्योंकि बैरम खाँ और शाह अबुल मआली एक दूसरेको विजेता नहीं बनने देना चाहते थे। इसी समय अकबरको युवराज घोषित किया गया। इसी वक्त अकबरके मामा, हमीदा बानूके भाई ख्वाजा मुअज्जमको शत्रु के साथ साज-बाज करनेके कारण गिरफ्तार किया गया। जुलाईमें हुमायूँ दिल्लीको अपने हाथमें करनेमें सफल हुआ। नवम्बरमें १३ वर्षके अकबरको पंजाबका राज्यपाल नियुक्त किया गया और मुनअम खाँकी जगह बैरम खाँ अतालीक मुकर्रर हुआ।

लेकिन, हुमायूँ दिल्लीके तख्तपर बहुत दिनों नहीं रह सका और उत्तरी भारतके प्रधान नगरोंपर अधिकार करनेकी उसकी योजना कार्यरूपमें परिणत नहीं हुई। २४ जनवरी १५५६ को शुक्रवारके शामका वक्त था (पुराना किलामें) शेरशाहके

ाये शेरमण्डलको पुस्तकालयके रूपमें परिणत कर दिया गया था। हुमायूँको
क पढ़नेका बड़ा शौक था। बेटा यद्यपि जीवन भर निरक्षर रहा, लेकिन
नों द्वारा वह भी पुस्तक-पाठका वैसा ही शौकीन था। छतपर वार्तालाप करते
य अज़ान की आवाज आई। हुमायूँने ऊपरी सीढ़ी पर बैठना चाहा, पर पैर
सल गया और वह नीचे फर्शपर सिरके बल गिरा। खोपड़ी फट गई और ऐसा
होश हुआ कि फिर होश में नहीं आया और तीन दिन बाद मर गया। मृत्युकी
ख़बर से दुश्मन फायदा उठायेंगे, इसलिये उसे छिपा रक्खा गया। अकबर उस
समय पंजाब में था। तुर्कीका एक नौसेनापति सिदी अलीरईस उस समय दिल्ली
में था। उसे हुमायूँ के स्वस्थ होने की झूठी ख़बर देकर लाहौर भेजा गया। यह
समय निकालनेकी तरकीब थी। मृत्युकी ख़बर तभी प्रकट की गई, जब कि १४
फरवरी १५५६ को कलानोर (जिला गुरदासपुर) में अकबरको गद्दी-नशीन कर
दिया गया। गुरदासपुरसे १५ मील पश्चिम यह कस्बा आजकल पाकिस्तानमें है।
अँग्रेज़ोंने १८ फुट लम्बे चौड़े और ३ फुट ऊँचे ईंटके "तख्ते अकबरी" को स्मारक
के तौरपर सुरक्षित रक्खा था। पर, पाकिस्तान अकबरको नहीं औरंगजेब को अपना
आदर्श मानता है, इसलिये वह इस पवित्र स्थानकी सुरक्षा करनेकी फिकर करेगा,
इसकी कम ही सम्भावना है। कलानोर, जो कल्याणपुर या कलानगरका अपभ्रंश
मालूम होता है, हिन्दू कालमें भी यह महत्वपूर्ण स्थान था। लाहौरके हिन्दू राजाओं
का भी अभिषेक यहीं होता था।

गद्दीके दिन शाह अबुल मआलीने खटपट की। यह काशगरके किसी ऊँचे
वंशका था। हुमायूँ ईरानसे जब कन्दहार लौटा, तो यह उसके पास नौकर हो गया।
हुमायूँने अधिक स्नेह दिखलाते इसे "फरजन्द" (पुत्र)की पदवी दी थी। सरहिन्दकी
विजयके श्रेय लेनेमें बैरम खाँ और अबुल मआलीका जो झगड़ा था, उसे हम बतला
आये हैं। मआलीने पहले तो गद्दीनशीनीमें शामिल होनेसे इन्कार कर दिया, फि
दरबारमें अपने बैठनेके स्थान आदिके बारेमें कुछ शर्तें रक्खीं। बैरम खाँने सब मान
लीं। गद्दी हो गई। दावतकेलिये दस्तरख्वान बिछा। उसी समय बैरम खाँके इशारेपर
मआलीकी मुश्कें बाँध ली गईं। बैरम खाँ चाहता था, इसी समय उसे खतम कर
दिया जाय, लेकिन अकबरने ऐसा करना पसन्द नहीं किया। उसे कैद कर दिया
गया, जहाँसे वह निकल भागा। अकबरके चचाओंमें यदि कोई इस समय मौजूद
होता, तो कुछ गड़बड़ी जरूर करता।

दिल्लीकी सबसे पुरानी इमारतोंमें हुमायूँका मकबरा सबसे सुन्दर है। हुमायूँ
की दूसरी पत्नी हाजी बेगमने अपने खर्चपर इसे बनवाना शुरू किया। मीर मिर्ज़ा
गयास इसका वास्तुशास्त्री था। अप्रैल १५७०में जब अकबर अजमेरसे दिल्ली गया,
तो यह हाल हीमें बनकर तैयार हुआ था, अर्थात् इसके बनानेमें १३-१४ साल लगे।

अकबरके सौतेले भाई मिर्जा मुहम्मद हकीमको मुनअम खाँको अताल को में काबुलका उपराज नियुक्त किया गया।

४. शिक्षा

अकबर आजीवन निरक्षर रहा। प्रथाके अनुसार चार वर्ष, चार महीने, चार दिन पर अकबरका अक्षरारम्भ हुआ और मुल्ला असामुद्दीन इब्राहीमको शिक्षक बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ दिनों बाद जब पाठ सुननेकी बारी आई, तो वहाँ कुछ भी नहीं था। हुमायूँने सोचा, मुल्लाकी बेपर्वाहीसे लड़का पढ़ नहीं रहा है। लोगोंने भी कह दिया—"मुल्लाको कबूतरबाजीका बहुत शौक है। उसने शागिर्दको भी कबूतरोंके खेलमें लगा दिया है।" फिर मुल्ला बायजीद शिक्षक हुए, लेकिन कोई फल नहीं हुआ। दोनों पुराने मुल्लाओंके साथ मौलाना अब्दुल कादिरके नामको भी शामिल करके चिट्ठी डाली गई। संयोगसे मौलाना का नाम निकल आया। कुछ दिनों वह भी पढ़ाते रहे। काबुलमें रहते अकबरको कबूतरों और कुत्तोंके साथ खेलनेसे फुर्सत नहीं थी। हिन्दुस्तानमें आया, तब भी वही रफ्तार बेढंगी रही। मुल्ला पीरमहम्मद—बैरम खाँके वकीलको काम सौंपा गया। लेकिन वहाँ तो कसम खा ली थी, कि "ओनामासीधम्, बाप पढे ना हम।" कभी मन होता, तो मुल्लाके सामने किताब लेकर बैठ जाता। हिजरी ९६३ (१५५५-५६ ई०)में मीर अब्दुल-लतीफ कजवीनीने भी भाग्य-परीक्षा की। फारसी तो मातृभाषा ठहरी, इसलिये अच्छी साहित्यिक फारसी अकबरको बोलने-चालनेमें ही आ गई थी। कजवीनीके सामने दीवान हाफिज शुरू किया, लेकिन जहाँ तक अक्षरोंका सम्बन्ध था, अकबरने अपनेको कोरा रक्खा। मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुल समद चित्रकलाके उस्ताद नियुक्त किये गये। अकबरने कबूल किया और कुछ दिनों रेखायें खींची भी, लेकिन किताबोंपर आँखें गड़ानेमें उसकी रूह काँप जाती थी।

अक्षर-ज्ञानके अभावसे यह समझ लेना गलत होगा, कि अकबर अशिक्षित था। आखिर पुराने समयमें जब लिपिका आविष्कार नहीं हुआ था, हमारे ऋषि भी आँखसे नहीं, कानसे पढ़ते थे। इसीलिये ज्ञानका अर्थ संस्कृतमें श्रुत है और महाज्ञानीको आज भी बहुश्रुत कहा जाता है। अकबर बहुश्रुत था। उसकी स्मृतिकी सभी दाद देते हैं, इसलिये सुनी बातें उसे बहुत जल्द याद आ जाती थीं। हाफिज, रूमी आदि की बहुत-सी कवितायें उसे याद थीं। उस समयकी प्रसिद्ध किताबोंमेंसे शायद ही कोई होगी, जिसे उसने नहीं सुना। उसके साथ बाकायदा पुस्तकपाठी रहते थे। फारसीकी पुस्तकोंके समझनेमें कोई दिक्कत नहीं थी, अरबी पुस्तकोंके अनुवाद (फारसी) सुनता था। "शाहनामा" आदि पुस्तकोंको सुनते वक्त जब पता लगा कि संस्कृतमें भी ऐसी पुस्तकें हैं, तो वह उनके सुननेकेलिए उत्सुक हो गया और "महा-

भारत", "रामायण" आदि बहुत-सी पुस्तकें अपनेलिये उसने फारसीमें अनुवाद कराईं। "महाभारत" को "शाहनामा"के मुकाबिलेका समझकर वह अनुवाद करनेकेलिये इतना अधीर हो गया कि संस्कृत पंडितके अनुवादको सुनकर स्वयं फारसीमें बोलने लगा और लिपिक उसे उतारने लगे। कम फुर्सतके कारण यह काम देर तक नहीं चला। अक्षर पढ़नेकी जगह उसने अपनी जवानी खेल तमाशों और शारीरिक-मानसिक साहसके कामोंमें लगाई। चीतोंसे हरिनका शिकार, कुत्तोंका पालना, घोड़ों और हाथियोंकी दौड़ उसे बहुत पसन्द थी। किसीसे काबूमें न आनेवाले हाथीको वह सर करता था और इसकेलिये जान-बूझकर खतरा मोल लेता था।

अध्याय १६

नाबालिग बादशाह (१५५६-६४ ई०)

१. बैरमकी अतालीकी (१५५६-६०)

कलानोरमें १४ वर्षके अकबरको बादशाह घोषित कर दिया गया, पर, उसे खेल-तमाशेसे फुर्सत नहीं थी। ऊपरसे बैरम खाँ जैसा चाव आदमी उसका सरपरस्त था। सल्तनत भी अभी आगरासे पंजाब तक ही सीमित थी। हुमायूँ और बाबरके राज्यके पुराने सूबे हाथमें नहीं आये थे। बंगालमें पठानोंका बोलबाला था, राजस्थानमें राजपूत रजवाड़े स्वच्छन्द थे। मालवामें माँडूका सुलतान और गुजरातमें अलग बादशाह था। गोंडवाना (मध्य-प्रदेश)में रानी दुर्गावतीकी तूती थी, कहावत है—"बाजमें भूपालवाल और सब वलैया। रानीमें दुर्गावती और सब गवैया।" खानदेश, बरार, बिदर, अहमदनगर, गोलकुंडा, बीजापुर दिल्लीसे आजाद हो अपने-अपने सुलतानोंके अधीन थे। किसी वक्त मलिक काफूरने रामेश्वरम्‌तक अलाउद्दीनका झंडा गाड़ा था, आज वहाँ विजयनगरका हिन्दू राज्य था। कश्मीर, सिन्ध, बलोचिस्तान सभी दिल्लीसे मुक्त थे।

अदली साल ही भर दिल्लीके तख्तपर रह सका। उसे इब्राहीम खाँने पूर्वकी ओर भगा दिया था। उसने चुनारमें अड्डा जमाया। तीन वर्षके शासनके बाद १५५७ या १५५८ ई०में बंगालके पठानोंने उसे मार डाला। इब्राहीम खाँको शेरशाहके दूसरे भतीजे सिकन्दर सूरने दिल्लीसे भगाया। वह वहाँसे पूर्वकी ओर भागा, जहाँ बारह वर्ष बाद उड़ीसामें मारा गया। अकबरके गद्दीपर बैठनेके समय सिकन्दर सूर ही उसका जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी था।

लेकिन, अदलीके समय एक और प्रचण्ड शत्रुसे अकबरको मुकाबिला करना पड़ा था। वह था हेमू (हेमचन्द्र विक्रमादित्य) जिसे कुछ इतिहासकार रेवाड़ीका धूसर बनिया (भार्गव) बतलाते हैं, पर अधिक सम्भावना है कि वह बिहारका रौनियार था। आज भी हेमूके बिहारी बन्धु अपने पर्व-त्योहारोंमें अपने वीरके गीत गाते हैं।

देकर दिल्लीका राज्यपाल नियुक्त किया गया। हेमूने ग्वालियर, आगरा होते दिल्ली पहुँच और तर्दीको हराकर १६० हाथी, हजार अरब घोड़े और बहुत-सा गनीमतका माल अपने हाथमें किया। अब आगरा और दिल्ली दोनों राजधानियाँ हेमूके हाथ-में थीं। तर्दीबेग भाग कर अकबरके पास सरहिन्द पहुँचा। बैरम खाँ पहिले हीसे तर्दीबेगको पसन्द नहीं करता था। उसने विश्वासघातका दोष लगाकर अपने प्रतिद्वन्द्वीको कतल करवा दिया। हुमायूँके भागते वक्त तर्दीबेग साथ था, इसके बारेमें हम बतला आये हैं और यह भी कि जब हुमायूँको घोड़ेकी जरूरत पड़ी, तो उसने उसे देनेसे इन्कार कर दिया। हुमायूँ जब ईरान गया, तो वह उसका साथ छोड़कर मिर्जा असकरीसे मिल गया। हुमायूँ जब काबुल लौटा, तो फिर क्षमा माँगकर उसके साथ हो लिया। इस प्रकार उसकी नियत यद्यपि साफ नहीं थी, तो भी बैरम खाँने रास्तेका काँटा समझकर ही उसे अलग किया।

दिल्ली और आगरापर अधिकार करके हेमूने देखा, जिसके लिये विजय प्राप्त की, उनमें कोई योग्य नहीं है, शेरशाहके वंशके सभी एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार हैं। उसे यही उचित मालूम हुआ, कि स्वयं सारा अधिकार अपने हाथमें ले ले। पठान भी उसके साथ थे और पुरबियोंकी पलटन भी। हेमूने विक्रमादित्यके नामसे दिल्लीमें अपना अभिषेक कराया। साढ़े तीन-सौ वर्ष बाद फिर भारतके सिंहासनपर एक हिन्दू बैठा। पर यह हर्ष मनानेका समय नहीं था। इसी समय दिल्ली और आगराके इलाकोंमें भयंकर अकाल पड़ा, जो दो सालों (१५५५-५६ ई०) तक रहा। लोग दाने-दानेकेलिये मोहताज थे। हेमू बयाना (आगरासे २५ मील दक्षिण-पश्चिम)में छावनी डाले पड़ा था। लोग 'हाय रोटी' कहते मर रहे थे। बदायूँनीके अनुसार "हेमू लाख आदमियोंकी जानको एक जौके दानेसे बढ़कर नहीं समझता था और वह अपने पाँच सौ हाथियोंको चावल, चीनी और घी खिला रहा था। सारी दुनिया इसे देखकर छी-छी करती थी।"

दिल्ली और आगराके हाथसे चले जानेपर दरबारियोंने सलाह दी, कि हेमू इधर भी बढ़ सकता है, इसलिये बेहतर है, यहाँसे काबुल चला जाय। लेकिन बैरम और अकबरने इसे पसन्द नहीं किया। वह अपनी सेना ले पानीपत पहुँचे और वहीं जुआ खेला, जिसे तीस साल पहले दादाने खेला था। हेमूकी सेना संख्या और शक्ति दोनोंमें बढ़-चढ़ कर थी। पोर्तुगीजोंसे मिली तोपोंका उसे बड़ा अभिमान था। १५०० महागजोंकी काली घटा मैदानमें छाई हुई थी। ५ नवम्बरको हेमूने मुगल दलमें भगदड़ मचा दी, पर इसी समय उसकी आँखमें एक तीर लग कर भेजेके भीतर घुस गया, वह संज्ञा खो बैठा। नेताके बिना सेनामें भगदड़ मच गई। हेमूको गिरफ्तार कर बैरमने मरवा दिया, यह हम बतला चुके हैं। कहा जाता है, बैरमने अकबरसे अपने ...यों दुश्मनका सिर काटकर गाजी बननेकी प्रार्थना की थी, लेकिन अकबरने वैसा ...नेसे इन्कार कर दिया। अकबर इस समय अभी मुश्किलसे १४ वर्षका हो पाया था।

उसमें इतना विवेक था, इसे माननेकेलिये कुछ इतिहासकार तैयार नहीं हैं। हिन्दू चूक गये, पर हेमूकी जगह उन्होंने अकबर जैसे शासकको पाया, जिसने आधी शताब्दी तक भेद-भावकी खाई पाटनेकी कोशिश की।

दिल्लीसे अकबर दिसम्बरमें सरहिन्द लौट गया, क्योंकि अभी सिकन्दर सूर सर नहीं हुआ था। मई १५५७में सिकन्दरने मानकोट (रामकोट, जम्मू)के पहाड़ी किलेमें कितनी ही देर तक घिरे रहनेके बाद आत्मसमर्पण किया। उसे खरीद और बिहारके जिले जागीरमें मिले, जहाँ वह दो वर्ष बाद मर गया।

काबुलसे शाही बेगमें भी मानकोट पहुँचीं। उनके स्वागतकेलिए अकबर दो मंजिल आगे गया। मानकोटसे लाहौर होते जालन्धर पहुँचनेपर बैरम खाँने हुमायूँकी भाँजी सलीमा बेगमसे ब्याह किया, लेकिन यह ब्याह कुछ ही समयका रहा, क्योंकि ३१ जनवरी १५६१में बैरम खाँकी हत्याके बाद फूफीकी लड़की सलीमा अकबरकी बहुत प्रभावशालिनी बीबी बनी और १६१२ ई०में मरी।

अक्तूबर १५५८में अकबर दिल्लीसे दलबल जमुनासे नाव द्वारा आगरा पहुँचा। यद्यपि आगरा एक नगण्य नगर नहीं था, बाबर और सूरी बादशाहोंने भी उसकी कदरकी थी, लेकिन उसका भाग्य अकबराबाद बननेके बाद ही जगा।

बैरम खाँकी अतालीकीके अन्तिम वर्षोंमें राज्यसीमा खूब बढ़ी। जनवरी-फरवरी १५५९में ग्वालियरने अधीनता स्वीकार की। इसके कारण दक्षिणका रास्ता खुल गया, और ग्वालियर जैसा सुदृढ़ दुर्ग तथा सांस्कृतिक केन्द्र अकबरके हाथमें आया। इसी साल पूर्वमें जौनपुर तक मुगल झण्डा फहराने लगा। रणथम्भौरके अजेय दुर्गको लेनेकी कोशिश की गई, पर उसमें सफलता नहीं हुई। मालवाको भी बैरम खाँ लेनेमें असफल रहा और इस प्रकार साबित कर दिया, कि अब अतालीकसे ज्यादा आशा नहीं की जा सकती। अकबर भी अब १८ वर्षका होरहा था, वह बैरमकी गुड़िया बनकर रहना नहीं चाहता था।

२. बैरमका पतन (१५६० ई०)

बैरम खाँका सम्बन्ध तूरान (मध्य-एसिया)की तुर्कमान जातिसे था—हैदराबादके निज़ाम भी तुर्कमान हैं। इतिहासकार कासिम फिरिश्ताके अनुसार वह ईरानके कराकुइलु तुर्कमानोंके बहारलु शाखासे सम्बन्ध रखता था। अलीशकर बेग तुर्कमान तेमूरके प्रसिद्ध सरदारोंमेंसे था, जिसे हमदान, दीनवर, खुजिस्तान आदिपर शासक नियुक्त किया गया था। अलीशकरकी सन्तानोंमें शेरअली बेग हुआ। तेमूरी शाह हुसेन बायकराके बाद जब तूरानमें सल्तनत बरबाद हो गई, तो शेरअली काबुलकी तरफ भाग्य-परीक्षा करने आया। एक बार हारनेपर उसने हिम्मत न हारी और अन्तमें युद्धक्षेत्रमें मारा गया। उसका बेटा यारअली और पोता सैफअली अफगानिस्तानमें

ले आये। यारअलीको बाबरने गजनीका हाकिम नियुक्त किया। थोड़े ही दिनों बाद सके मरनेपर बेटे सैफअलीको वही दर्जा मिला। वह भी जल्दी ही मर गया। इस- रस्क बैरम अपने घरवालोंके साथ बलख चला गया। वहीं कुछ दिनों पढ़ता-लिखता हा। फिर समवयस्क शाहजादा हुमायूँका नौकर हो गया। बैरमको साहित्य से गीतसे भी बहुत प्रेम था वह जल्दी ही स्वामीका अत्यन्त प्रिय हो गया। १६ वर्ष उमर हीमें एक लड़ाईमें बैरमने बड़ी वीरता दिखाई। इसकी ख्याति बाबर तक पहुँ गई और खुद उससे कहा: शाहजादाके साथ दरबारमें हाजिर करो। बाबरके मरनेके बाद वह हुमायूँ बादशाहकी छायाके तौरपर रहने लगा। हुमायूँने चाँपानेर (गुजरात) के किलेपर घेरा डाला। किसी तरहसे दाल गलती न देखकर चालीस मुगल बहादुर साथियोंके साथ किलेमें उतर गये, जिनमें बैरम खाँ भी था। किला फतह हो गया। शेरशाहसे चौसामें लड़ते वक्त बैरम साथ था। कन्नौजमें भी वह लड़ा। कन्नौजमें पराजयके बाद मुगल सेनामें जिसकी सींग जिधर समाई, वह उधर भागा। बैरम तो अपने पुराने दोस्त सम्भलके मियाँ अब्दुल वहाबके पास पहुँचा। फिर लखनऊके राजा मित्रसेनके पास जंगलोंमें दिन गुजारता रहा। शेरशाही हाकिम नसीर खाँको पता लगा। उसने बैरमको पकड़ मँगवाया। नसीर खाँ चाहता था, कि बैरमको कत्ल कर दे, पर दोस्तोंकी कोशिशसे किसी तरह बच गया। अन्तमें उसे शेरशाहके सामने हाजिर होना पड़ा, जिसने एक मामूली मुगल सरदारको महत्व न दे उसे माफ कर दिया। बैरम फिर गुजरातके सुलतान महमूदके पास गया, पर उसे अपने स्वामीसे मिलनेकी धुन थी। जब हिजरी ९५० (१५४३-४४ ई०) में हुमायूँ ईरानसे लौटकर काबुल लेने सिन्धकी ओर बढ़ा, तो बैरम अपने आदमियोंके साथ हुमायूँकी ओर से लड़ने लगा। हुमायूँका इसकी खबर लगी, तो उसको खुशीका ठिकाना नहीं था। हिन्दुस्तानमें सफलता मिलनेवाली नहीं थी, इसलिए हुमायूँने ईरानका रास्ता लिया। बैरम भी उसके साथ था। शाही काफिलेमें कुल मिलाकर सत्तर आदमीसे ज्यादा नहीं थे। ईरान से लौटकर हुमायूँने कन्दहारको घेरा। उसने चाहा, भाई कामरांको समझा- बुझाकर खून खराबी रोके। उसे समझानेकेलिए हुमायूँने बैरम खाँको काबुल भेजा, लेकिन वह कहाँ माननेवाला था। कन्दहारपर अधिकार करके बैरम खाँको हाकिम नियुक्त किया। कन्दहार-विजयके बारेमें हुमायूँने स्वयं कहा—

"रोज नौरोज बैरम'स्त इमरोज।
दिले अहबाब बेग़म'स्त इमरोज।"

(आज नववर्ष दिन बैरम है। आज मित्रोंके दिल बेफिकर हैं।)

हिजरी ९६१ (१५५३-५४ ई०) में लोगोंने चुगली लगाई, कि बैरम स्वतन्त्र होना चाहता है, लेकिन, बैरम नमकहराम नहीं था। हुमायूँ एक दिन स्वयं कन्दहार पहुँचा। उसने बहुत चाहा कि बादशाह उसे अपने साथ ले चलें, लेकिन कन्दहारकी

बहुत महत्वपूर्ण स्थान था, जिसके लिए बैरमसे बढ़कर अच्छा शासक नहीं मिल सकता था। अकबरके जमानेमें भी बहुत दिनों तक कन्दहार बैरम खाँके शासनमें रहा, उसका नायब शाहमुहम्मद कन्दहारी उसकी ओरसे काम करता था।

हुमायूँ हिन्दुस्तानकी ओर बढ़ते सतलुजके किनारे माछीवाड़ा पहुँचा। पता लगा, परले पार बेजवाड़ामें तीस हजार पठान डेरा डाले पड़े हैं। पठान लकड़ी जलाकर ताप रहे थे। रातको रोशनीने लक्ष्यके बतलानेमें सहायता की। अपने एक हजार सवारोंके साथ बैरम उनके ऊपर टूट पड़ा। दुश्मनको सख्याका उनको पता नहीं लगा। तीरोंकी वर्षासे पठान घबरा गये। वह सारा माल-असबाब छोड़कर भाग गये। इसी विजयके उपलक्षमें हुमायूँने उसे "खानखाना"की उपाधि दी। तर्दीबेग बैरमका प्रतिद्वन्दी था, लेकिन हेमूसे हारकर भागनेके समय बैरमको मौका मिल गया और उसने इस काँटेको निकाल बाहर किया। अकबरके गद्दीपर बैठनेके दिन अबुल मआलीने कुछ गड़बड़ी करनी चाही थी, लेकिन बैरमने जैसी खूबसूरतीसे इस गुत्थी-को सुलझाया, वह उसका ही काम था। हेमचन्द्रसे पराजित हो मुगल अमीर निराश हो चुके थे, वह काबुल लौट जाना चाहते थे। पर, बैरमने रोक दिया।

हुमायूँके मरनेपर अकबरकी सल्तनतका भार सँभालना बैरमके ऊपर था। खानखानाकी योग्यता और प्रभावको देखकर मरनेसे थोड़ा पहले हुमायूँने अपनी भाँजी सलीमा सुल्तान बेगमकी शादी बैरमसे निश्चित कर दी थी। अकबरके दूसरे सनजलूस (१५५८ ई०)में बड़े धूमधामसे यह शादी हुई। दरबारके कुछ मुगल सरदार और कितनी ही बेगमें इस सम्बन्धसे नाराज थीं। तैमूरी खानदानकी शाहजादी एक तुर्कमान सरदारसे ब्याही जाय, इसे वह कैसे पसन्द कर सकते थे?

अकबरने होश सँभाला। वह खानबाबाके हाथकी कठपुतली नहीं रहना चाहता था। उधर बैरमने भी अपने आपको सर्वेसर्वा बना लिया था। इसके कारण उसके दुश्मनोंकी संख्या बढ़ गई थी। दरबारमें एक दूसरेके खूनके प्यासे दो दल हो गये, जिनमें विरोधी दलके सरपर अकबरका हाथ था। बैरम खाँकी तलवार और राज-नीतिने अन्तमें हार खाई। वह पकड़कर अकबरके सामने उपस्थित किया गया। अकबरने कहा—"खानबाबा, अब तीन ही रास्ते हैं, जो पसन्द हो, उसे स्वीकार करो: (१) राजकाज चाहते हो, तो चँदेरी और कालपीके जिले ले लो, वहाँ जाकर हकूमत करो। (२) दरबारी रहना पसन्द है, तो मेरे पास रहो, तुम्हारा दर्जा और सम्मान पहले ही जैसा रहेगा। (३) यदि हज करना चाहते हो, तो उसका प्रबन्ध किया जा सकता है। खानखानाने तीसरी बात मंजूर की।

हजकेलिये जहाज पकड़ने वह समुद्रकी ओर जाता पाटन (गुजरात)में पहुँचा। जनवरी १५६१में बियाल सहस्रलिंग सरोवरमें नावपर सैर कर रहा था। शामकी

नमाजका वक्त आ गया। खानखाना किनारेपर उतरा। इसी समय मुबारक्ख़ाँ
लोहानी तीस चालीस पठानोंके साथ मुलाकात करनेके बहाने आ गया। बैरम हाथ
मिलानेकेलिये आगे बढ़ा। लोहानीने पीठमें खंजर मारकर छातीके पारकर दिया।
खानखाना वहीं गिरकर तड़पने लगा। लोहानीने कहा—माछीवाड़ामें तुमने हमारे
बापको मारा था, उसीका हमने बदला लिया। बैरमका बेटा और भावी हिन्दीके
महान् कवि अब्दुर्रहीम उस समय चार सालका बच्चा था। अकबरको मालूम हुआ।
उसने खानखानाकी बेगमोंको दिल्ली बुलवाया। बैरमकी बीबी तथा अपनी फूफी
(गुलरुख बेगम)की लड़की सलीमा सुल्तानके साथ स्वयं ब्याह करके बैरमके परिवारके
साथ घनिष्टता स्थापित की। सलीमा बानू अकबरकी बहुत प्रभावशाली बेगमोंमेंसे थी।
तीसरे सनजलूस (१५५८-५९ ई०)में शेख गदाईको सदरे-सुदूर बनाया गया
था। गदाई शीया था और बैरम भी। अमीरोंमें बहुत बड़ी तादाद सुन्नियोंकी थी।
हिन्दुस्तानका इस्लाम सुन्नी था। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ था, कि इतने बड़े
पदपर किसी शीयाको रक्खा गया हो। बैरम खाँके इस कार्यने सभी सुन्नी अमीरोंको
उसके खिलाफ एकमत कर दिया। यह भी बैरम खाँके पतनका एक बड़ा कारण
हुआ। अकबरकी माँ हमीदा बानू (मरियम मकानी), उसकी दूधमाँ माहम अनका
दूधभाई अदहम खान उनका सम्बन्धी तथा दिल्लीका हाकिम शहाबुद्दीन, बैरम खाँ
खिलाफ षड्यन्त्र करनेवालोंके मुखिया थे। वह अकबरको यह भी समझा रहे थे,
बैरम कामराँ मिर्जाके लड़केको गद्दीपर बैठाना चाहता है। ये लोग बैरमके सर्वनाश-
केलिए तुले हुए थे। खानखानाके सलाहकार उससे कह रहे थे—'अकबरको
गिरफ्तार करो।' लेकिन, बैरम ऐसी नमकहरामीकेलिए तैयार नहीं था। जब मालूम
होने लगा, कि बैरमका सितारा डूबने जा रहा है, तो कितने ही सहायक भी उससे
अलग हो गये।

अकबरने अपनी स्थितिको मजबूत देख अपने शिक्षक मीर अब्दुल लतीफके
हाथों लिखकर निम्न सन्देश भेजा—

"चूँकि मुझे तुम्हारी ईमानदारी और भक्तिपर पूरा विश्वास है, इसलिए
सभी महत्वपूर्ण राज-काजको तुम्हारे हाथमें छोड़कर मैं केवल अपने सुख-विलासमें
लगा रहा। अब मैं सरकारकी बागडोरको अपने हाथमें लेनेका निश्चय कर चुका
हूँ। अब यही अच्छा है, कि तुम मक्का हज करने जाओ, जिसे कि इतने दिनोंसे तुम
चाहते थे। हिन्दुस्तानके पर्गनोंमेंसे एक अच्छी-सी जागीर तुम्हारे खर्चकेलिये
जायगी, जिसकी आमदनी तुम्हारा कारपरदाज तुम्हारे पास भेजा करेगा।"

माहम अनका मामूली औरत नहीं थी। इस समय अकबर पूरा उसके प्रभावमें
था। अबुलफजल लिखते हैं—"अपनी महान् बुद्धि और राजभक्तिके बल उसने
हुमायूँको हिन्दुस्तानके ...
... को अपने हाथमें कर लिया। इसमें शक नहीं,

फिरसे बैठानेमें बैरम खाँका सबसे बड़ा हाथ था और अकबरके पहले चार सालोंमें उसने ही सल्तनतको मजबूत कर उसका विस्तार किया।" ग्वालियर और जौनपुरके बड़े राज्य उसने ही १५५८-६० ई०में जीतकर अकबरकी सल्तनतमें मिलाये और रणथम्भौरपर भी अधिकार करनेका असफल प्रयत्न किया। मालवाको भी वह ले चुका होता, यदि दरबारमें बैरमके खिलाफ षड्यन्त्र न होने लगता।

बैरमकी बीबी सलीमा सुल्तान बेगम हुमायूँकी सगी बहिन गुलरख बेगमकी पुत्री हिजरी ९६१ (१५५३-५४ ई०)में पैदा हुई। इस प्रकार हिजरी ९६५ (१५५७-५८ ई०)में जब उसकी शादी बैरमसे हुई, तो वह सिर्फ चार-पाँच सालकी थी, अर्थात् बैरमके मरनेके समय जनवरी १५६० ई०में सात-आठ वर्षकी हो सकी थी। सलीमा बानूका देहान्त हिजरी १०२१ (१६१२-१३ ई०)में हुआ था। वह बहुत सुशिक्षित और बुद्धिमती महिला थी। उसके लिये अकबरने "सिंहासन बत्तीसी"का फारसीमें दुबारा तर्जुमा "खिरदअफजा"के नामसे मुल्ला बदायूँनीसे करवाया। फारसीमें उनका एक पद्य है—

काकुलत्-रा मन् जे-मस्ती रिश्तये-जाँ गुफ्त अम्।
मस्त बूदम् जी सबब हर्फे परीशाँ गुफ्त अम्।"

(मस्तीमें मैंने तेरी अलकोंको प्राणका सम्बन्ध कहा। इसी कारण मस्त हो मैंने चिन्ताके अक्षर कहे।)

३. बेगमोंका प्रभाव (१५६०-६४ ई०)

अकबरने बैरम खाँके हाथसे सल्तनतकी बागडोर छीनी, पर अभी वह उसे अपने हाथमें नहीं ले सका। वस्तुतः माहम अनका अपनी बेटी और सम्बन्धियोंके बलपर बैरम को पछाड़नेमें सफल हुई थी। वह कब चाहती कि अकबर हमारे प्रभावसे निकल जाय? पीर मुहम्मद शिरवानीने षड्यंत्रको सफल बनानेमें अपने आका बैरम खाँसे विश्वासघात किया था। तर्दीबेगका भी सर्वनाश करनेमें उसका ही हाथ था। वह माहम अनकाके अत्यन्त कृपापात्रोंमें था। इस समय बैरमकी आँख मालवापर लगी हुई थी, जहाँ पठानोंकी हुकूमत थी। शजातखाँ (शहजावल खाँ) सूर माण्डूमें पहले सलीमशाह सूरकी ओरसे फिर स्वतंत्र शासक रहा। हिजरी ९६३ (१५५५-५६ ई०)में उसके मरनेपर उसका सबसे बड़ा लड़का बाजबहादुर मालवाकी गद्दीपर उसी साल बैठा था, जिस साल अकबर तख्तपर बैठा था। बाजबहादुर (सुल्तान बायजीद) अयोग्य तथा क्रूर आदमी था। उसने अपने छोटे भाई और कितने ही अफसरोंको मरवाकर अपनेको मजबूत करना चाहा। अपने पड़ोसी गोंड राजाओंकी ओर हाथ बढ़ाना चाहा और बुरी तौरसे हारा। वह संगीतका शौकीन था। उसने अदली (आदिलशाह सूर)से संगीतकी शिक्षा पाई थी, यह हम बतला चुके हैं। मदिरा, मदिरेक्षणा और संगीत उसके जीवनका लक्ष्य था। उसके दरबारमें नृत्य और संगीत-

मैं अत्यन्त कुशल रूपमती गणिका थी, जिसके प्रेममें वह पागल था। इस प्रेमको लेकर कितने ही कवियोंने कवितायें लिखी।

१५६० ई०के आरम्भ माहम अनका (अनगाके पुत्र अदहम खानकी अधी-नतामें मालवा पर आक्रमण करनेकी तैयारी हुई। पीर मुहम्मद शिरवानी कहनेके लिये सहायक सेनापति था, नहीं तो वस्तुतः वही सर्वेसर्वा था। नालायक नौजवा अदहम खाँ अपनी माँके कारण ही प्रधान-सेनापति बनाया गया था। सारंगपुर पास १५६१ ई०में बाजबहादुर की हार हुई। मालवाका खजाना शाही सेनाके हाथमें आया। बाजबहादुरने अपने अफसरोंको कह रक्खा था कि हार होनेपर दुश्मनके हाथमें जानसे बचानेकेलिये बेगमोंको मार डालना। अपने सौंदर्यकेलिये जगत्प्रसिद्ध रूपमतीपर तलवार चलाई गई, लेकिन वह मरी नहीं। अधमरी रूपमतीने अदहम खाँके हाथमें जानेसे बचनेकेलिये जहर खा लिया। अदहमने लूटके मालको अपने हाथमें रखना चाहा और थोड़ेसे हाथी भर अकबरके पास भेजे। पीरमहम्मद और अदहम खाँने मालवामें भारी क्रूरता की। मालवाके हिन्दू-मुसलमानोंमें कोई अन्तर नहीं रक्खा। मालवापर पहिलेसे हकूमत करनेवाले भी मुसलमान थे। विद्वान् शेखों और सम्माननीय सैयदों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। यह खबर अकबरके पास पहुँची वह जानता था, माहम अपने पुत्रके लिये कुछ भी करनेसे उठा नहीं रखेगी, इसलि बिना सूचना दिये वह एक दिन (२७ अप्रैल १५६१ को) थोड़ेसे आदमियोंको ले आगरासे चल पड़ा। खबर मिलते ही माहमने लड़केके पास दूत भेजा, लेकिन अ-बर उससे पहले ही मालवा पहुँच गया। अदहम खाँ हक्का-बक्का रह गया। उसने आत्मसमर्पण करके छुट्टी लेनी चाही। अकबरको मालूम हुआ, कि उसने बाजबहा-दुरके अन्तःपुरकी दो सुन्दरियोंको अपने लिये छिपा रखा है। माहम घबराई। सोचा, यदि यह दोनों अकबरके सामने हाजिर हुईं, तो बेटेका भण्डाफोड़ हो जायगा, इस-लिये उनको जहर देकर मरवा डाला।

इसी समय अकबरने पहले-पहल अपने राजनीतिक साहसका परिचय देते बिजली की गतिसे अदहमपर झपट्टा मारा था। मालवाका काम ठीक करके ३८ दिन बाद (४ जून १५६१) वह आगरा लौट आया। गर्मियोंका दिन था। लौटते वक्त रास्तेमें नरवरके पासके जंगलोंमें शिकार करने गया और पाँच बच्चोंके साथ एक बाघिनको तलवारके एक वारसे मार दिया। इसी समय एक और भी खतरा उसने आगरेमें मोल लिया। हेमूका हाथी हवाई बहुत ही मस्त और खतरनाक था। एक दिन अकबरको उसपर सवारी करनेकी धुन सवार हुई। दो-तीन प्याले चढ़ाकर वह उसके ऊपर चढ़ गया। इतनेसे सन्तोष न कर उसने मुकाबिलेके दूसरे हाथी रनबाघासे भिड़न्त करा दी। रनबाघा हवाईके प्रहारको न बर्दाश्त कर जान लेकर भागा। हवाई उसे छोड़नेकेलिये तैयार नहीं था अकबर हवाईके कंधेपर बैठा रहा। रनबाघाके पीछे-पीछे हवाई जमुनाके खड़े किनारे

नीचेकी ओर दौड़ा। नावोंका पुल पहाड़के नीचे कैसे टिक सकता था? पुल डूब गया। परले पार आगे-आगे रनबाघा भागा जा रहा था और पीछे-पीछे हवाई। लोग साँस रोककर यह खूनी तमाशा देख रहे थे। अकबरने अपने ऊपर काबू पूरा रखते हवाईको रोकनेकी कोशिश की और अन्तमें उसमें सफल हुआ।

१५६२ ई०की भी अकबरके जीवनकी एक घटना है। साकित पर्गना (एटा जिला)के आठ गाँवोंके लोग लोग बड़े ही सर्कश थे। अकबरने स्वयं उन्हें दबानेका निश्चय किया। एक दिन शिकारके बहाने निकला। डेढ़-दो सौ सवारों और कितने ही हाथी उसके साथ थे। बागी चार हजार थे, लेकिन अकबरने उनकी संख्याकी पर्वाह नहीं की। उसने देखा, शाही सवार आगा-पीछा कर रहे हैं। फिर क्या था! अपने हाथी दलशंकरपर चढ़कर वह अकेले परोख गाँवके एक घरकी ओर बढ़ा। जमीनके नीचे अनाजकी बखार थी, जिस पर हाथीका पैर पड़ा और वह फँस कर लुढ़क गया। दुश्मन बाण-वर्षा कर रहे थे। पाँच बाण ढालमें लगे। अकबर बेपर्वाह होकर हाथीको निकालनेमें सफल हुआ और मकानकी दीवार तोड़ते भीतर घुसा। घरोंमें आग लगा दी गई। एक हजार बागी उसीमें जल मरे।

इससे एक साल पहले १५६१ ई०के पूर्वार्द्धकी बात है। अकबर अभी १६ ही वर्षका था। वह जनताके सुख-दुखके जाननेकी कोशिश करता था। साधु-फकीरोंसे मिलने का भी उसे बहुत शौक था। कभी-कभी भेस बदल कर निकल जाता था। एक रात भेस बदले वह आगरामें जमुना पार एक बड़ी भीड़में जा रहा था। किसीने उसको पहचान लिया और दूसरोंसे कहा। गुण्डोंकी पहचानमें आना खतरेकी बात थी। एक मिनटकी देर किये बिना पास आ उसने देखने वालोंकी ओर अपनी पुतलियाँ ऐसी ऐंचातानी बनाईं कि उन्होंने कहा—"इसकी आँखें बादशाह जैसी नहीं हैं।"

जौनपुरका सूबेदार खानजमाँ अलीकुली खाँको बनाया गया था। बाबर, हुमायूँ, अपने तूरानी भाइयोंपर बहुत विश्वास करते थे और उन्हें ऊँचे-ऊँचे पदोंपर रखते थे। लेकिन, ऐन-मौकेपर धोखा देनेसे वे कभी बाज नहीं आते थे। खानजमाँ और उसके भाई बहादुर खाँपर स्वतन्त्र बननेकी धुन सवार हुई। अकबरको भनक लगी। जुलाई १५६१ में वह शिकारके बहाने चल पड़ा। जब यह पता लगा, तो दोनोंको घबराहट हुई और गंगाके किनारे कड़ा (इलाहाबाद जिला)में आकर उन्होंने नजर भेंट की। अकबरने उसे स्वीकार किया और अगस्तके अंत होनेसे पहले ही वह आगरा लौट आया।

उसी साल नवम्बरमें शम्सुद्दीन मुहम्मद खान अतगा काबुलसे आया। नवम्बर १५६१ में अकबरने अतगाको राजनीतिक, वित्तीय और सैनिक विभागोंका मंत्री बनाया। माहम अनगा समझती थी, मैं प्रधान मन्त्री हूँ, विभाग अतगाको क्यों दिये गये? मुनअम खाँको भी अतगाका आगे बढ़ना अच्छा नहीं लगा; लेकिन,

पर मुगल भएडा गाड़ दिया। बाजबहादुर कितने ही वर्षों तक राजदरबारोंमें घूमता रहा। आखिर १५वें सनजलूस (१५७१ ई०)में वह अकबरकी शरणमें आया, जिसने उसे एकहजारी मन्सब के साथ जागीर दे दी, पीछे दोहजारी बना दिया। उज्जैनमें अब भी एक कब्र है, जिसे रूपमती और बाजबहादुरकी कब्र बतलाया जाता है।

युद्धबन्दियोंको गुलाम बनाकर बेंच देनेका रवाज था। अकबरने इसी साल सख्त हुकुम दिया, कि ऐसा न किया जाय। इसी साल एक कड़ी लड़ाईके बाद मेड़ता (राजपूताना)का किला भी फतह हुआ।

(२) अदहम खाँकी हत्या—१६ मई १५६२के दोपहरको अकबर महलमें आराम कर रहा था। शम्सुद्दीन मुहम्मद अतगाके मंत्री बनाये जानेसे माहम अनगा बहुत नाराज थी। उसका नालायक बेटा अदहम खाँ गुस्सेसे पागल हो गया था। अनगाके सम्बन्धी और हितमित्र डरने लगे थे कि शासन उनके हाथमें नहीं रहेगा, इसलिये कुछ करना चाहिये। मुनअम खाँ और अफसरोंके साथ शम्सुद्दीन दरबारमें बैठा अपने काममें लगा हुआ था। इसी समय अदहम खाँ आ धमका। शम्सुद्दीन सम्मानकेलिये खड़ा हो गया, लेकिन उसे स्वीकार करनेकी जगह अदहम खाँने कटार निकाल ली। उसके इशारेपर उसके दो आदमियोंने वार किया और अतगा आँगन में गिर पड़ा। हल्ला-गुल्ला अकबरके कमरे तक पहुँचा। अदहम खाँने चाहा, अकबरको भी इसी साथ खतम कर दूँ, लेकिन शाही नौकरोंने दरवाजेको भीतरसे बन्द कर दिया। अकबरको खबर मिली, तो वह दूसरे दरवाजेसे तलवार लिये बाहर निकला। अदहम खाँको देखते ही उसने पूछा—"अतगाको तुमने क्यों मारा?" अदहम खाँने बहाना करते अकबरके हाथको पकड़ लिया। अकबरने हाथ खींचना चाहा, तो अदहमने बादशाहकी तलवार पकड़नी चाही। अकबरने जोरका मुक्का मारा, जिससे अदहम बेहोश होकर गिर पड़ा। अकबरने आदमियोंको हुकुम दिया—इसे बाँधकर नीचे गिरा दो। हुकुमकी-पाबन्दी आधे दिलसे ही की गई और अदहम मरा नहीं। अकबरने दुबारा हुकुम दिया और लोगोंने पकड़कर फिर उसे नीचे फेंका। अदहमकी गर्दन टूट गई, खोपड़ीसे उसका भेजा निकल आया। अदहमके काममें सहानुभूति रखनेवाले मुनअम खाँ, उसका दोस्त शहाबुद्दीन और दूसरे अमीर जान लेकर भाग गये।

अकबर अन्तःपुरमें गया। माहम अनगा चारपाईपर बीमार पड़ी थी। उसने संक्षेपमें सारी बात बतला दी, यद्यपि साफ नहीं कहा कि अदहम मर चुका है। अनगाने इतना ही कहा—"हुजूरने अच्छा किया।" माहम अनगाको इसका इतना जबर्दस्त आघात लगा, कि चालीस दिन बाद उसने भी अपने बेटेका अनुगमन किया। अकबरने कुतुब मीनारके पास माँ बेटेकेलिये एक सुन्दर मकबरा बनवा दिया। अदहम खाँ तथा उसकी माँके मरनेके साथ अब अकबर पूरी तौरसे स्वतन्त्र था।

अदहमके साथी भगोड़े पकड़े गये, लेकिन अकबरने बड़ी उदारता दिखलाई। मुनअम खाँको मन्त्री और खानाखानाकी पदवी दी। अतका लोग अनगा खानदान से खूनका बदला लेना चाहते थे, लेकिन अकबरने उन्हें समझा-बुझाकर राजी कर लिया। बीचकी अन्धेरगर्दीसे वित्त और भू-करका प्रबन्ध बहुत गड़बड़ हो गया था। चारों और घूसका बाजार गरम था। अकबरने सूर बादशाहोंके एक योग्य हिजड़ेको "एतमाद (विश्वास) खाँ" की पदवी देकर यह काम सुपुर्द किया, जिसने बड़ी सफलतापूर्वक उसे ठीक कर दिया।

इसी साल (१५६२ई०)में ग्वालेरी तानसेन अकबरके दरबारमें आये। तानसेनके संगीतकी ख्याति उस वक्त चारों ओर फैली हुई थी। माँग करनेपर बघेला राजा रामचन्द्रने अकबरके पास तानसेनको भेज दिया।

अकबर सब तरहसे स्वतन्त्र हो लकीरका फकीर नहीं रहना चाहता था। अक्तूबर या नवम्बर १५६२की मानसिक स्थितिके बारेमें उसने कहा है।

"अपने २०वें वर्षके पूरा करनेके समय मैंने अपने भीतर एक बड़ी कड़वाहट अनुभव की। प्रयाणके आध्यात्मिक संबलके अभावके कारण मेरी आत्मा अत्यन्त दुःखी थी।"

१५६३ ई०में अकबरकी सौतेली माँ माह चूचक बेगम (मिर्जा महम्मद हकीम की माँ)ने मुनअम खाँके पुत्र अकबरी सूबेदार गनी खाँको काबुलसे निकाल दिया। मुनअम खाँ फौज लेकर गया, उसे भी बेगमने हरा दिया। हिजरी ९७० के अन्त (अगस्त १५६३)में मुनअम खाँके दरबारमें लौटनेपर अकबरने स्वागत किया। इसी बीच शाह अबुल मआलीने मक्कासे लौटकर काबुल पहुँच कर बेगमकी लड़कीसे ब्याह किया। बेगमने आशा की थी, कि शाह उसकी मदद करेगा, पर अबुल मआली स्वयं काबुलका बादशाह बनना चाहता था। उसने अप्रैल १५६४में बेगमको मार डाला, इसपर बदख्शांसे मिर्जा सुलेमानने आकर मआलीका काम तमाम किया। कुछ समय तक काबुल सुलेमानके हाथमें रहा।

१५६३ ई०में अकबर मथुराके पास शिकार खेलने लगा। सात बाघोंमें पाँच को उसने मारा। यहीं उसे खबर लगी, कि मथुराके हिन्दू यात्रियों पर कर लगाया जाता है। अकबरने कहा। अपने मालिककी पूजाकेलिये जमा किये हुये लोगोंपर कर लगाना खुदाकी इच्छाके विरुद्ध है। उसने उसी समय अपने सारे राज्यमें तीर्थ-कर बन्द करनेका हुक्म दे दिया। इस करसे सरकारी खजानेको दस लाख रुपया साल आमदनी थी। इसी समय अकबर एक दिनमें ३६ मील पैदल चलकर मथुरासे आगरा पहुँचा। कई आदमियोंने उसका अनुसरण करना चाहा, लेकिन तीन ही निभ सके।

(२) घातक आक्रमण—१५६४ई० के आरम्भमें अकबर दिल्ली गया।

११ जुलाईको निजामुद्दीन औलियाके मकबरेकी जियारत करके लौटता माहम अनगाके बनवाये मदरसेके पाससे गुजर रहा था, उसी समय मदरसेके कोठेसे एक हब्शी गुलाम फौलादने तीर मारा। कन्धेके भीतर घुस गये तीरको तुरन्त निकाल लिया गया और हब्शी भी पकड़ा गया। पता लगा, फौलाद, शाह अबुल मग्रालीके मित्र मिर्जा शरफुद्दीन हुसैनका गुलाम है। दिल्लीके शरीफ परिवारोंकी कुछ सुन्दरियोंको अकबरने अपने अन्तःपुरमें डाल लिया। मध्य-एशियामें जिस सुन्दरीपर बादशाहकी नजर पड़ जाती, पति उसे तिलाक देकर बादशाहको प्रदान कर देता। अकबरने एक शेखको अपनी तरुण बीवीको तिलाक देनेकेलिए मजबूर किया था। इज्जतका सवाल था, इसीलिये फौलादने तीर मारा था। लोगोंने फौलादसे पूछताछ करके जानकारी प्राप्त करनी चाही। अकबरने रोककर कहा—न जाने यह किन-किनके ऊपर झूठी तोहमत लगायेगा। फौलादको मृत्युदण्ड मिला। घायल अकबर घोड़ेपर सवार हो महलों में लौट आया और दस दिन बाद घावके अच्छे हो जानेपर आगरे लौटा। २१ साल की उमरमें ऐसे घातक आक्रमणके बाद भी अपने विवेकको न खोना बतलाता है, कि अकबर असाधारण पुरुष था।

(४) जजिया बन्द—कछवाहा राजकुमारीसे ब्याह और राजपूतोंकी घनिष्ठाका असर होना ही था। साथ ही बीरबल भी पहुँच चुके थे। अकबरने पिछले साल तीर्थ-कर उठा दिया था। अब उसने एक और बड़ा कदम उठाया और केवल हिन्दुओंपर जजियाके नामसे जो कर लगता था, उसे अपने सारे राज्यमें बन्द कर दिया। यह कर पहलेपहल द्वितीय खलीफा उमरने अ-मुस्लिमोंपर लगाया था, जो हैसियतके मुताबिक ४८, २४ और १२ दिरहम*सालाना होता था। जजिया केवल

*दाम दिरहमका ही अपभ्रंश है। मूलतः यह ग्रीक सिक्का द्राखमा था। द्राखमा और दिरहम चाँदीके सिक्के थे, जब कि दाम ताँबेका पैसा था, जो एक रुपयेमें ४० होता था। एक दाममें ३१५ से ३२५ ग्राम तक ताँबा होता था। अकबर के समय जजियामें कितना दिरहम लिया जाता था, इसका पता नहीं। महम्मद बिन कासिमने ७१२में सिन्धको जीतते समय हिन्दुओंपर जजिया लगाया था। फीरोजशाह तुगलक (१३५१-८८ई०)ने ४०,४२ और १० तंका जजिया लगाया था। ब्राह्मणोंको जजिया नहीं देना पड़ता था, लेकिन उसने उनपर भी १० तंका ५० जीतल कर लगाया। दिरहम उस समय चाँदीका और दीनार सोनेका सिक्का था। दिरहममें ४८ ग्रेन चाँदी होती थी—रुपयेमें १८० ग्रेनके करीब चाँदी रहती है। एक दाममें २५ जीतल माना जाता था, पर जीतलका कोई सिक्का नहीं था, यह केवल हिसाबकेलिये इस्तेमाल होता था। फीरोजशाहका चाँदीका सिक्का १७५ ग्रेनका था। काफी चाँदीके जीतलको कहते थे, जो पौने तीन ग्रेनकी होती थी। एक तंकामें ६४ काफियाँ होती

अदहमके साथी भागकर पकड़े गये, लेकिन अकबरने बड़ी उदारता दिखाई। मुनइम खाँको मन्त्री और खानखानाकी पदवी दी। अतगा लोग अपना खानदान से इसका बदला लेना चाहते थे, लेकिन अकबरने उन्हें समझा-बुझाकर राजी कर लिया। पीरकी अन्धेरगर्दीसे वित्त और भू करका प्रबन्ध बहुत गड़बड़ हो गया था। चोरी और घूसका बाजार गरम था। अकबरने गए बादशाहोंके एक योग्य हिजड़े "इतमाद (विश्वास) खाँ" की पदवी देकर यह काम सुपुर्द किया, जिसने बड़ी सफलतापूर्वक उसे ठीक कर दिया।

इसी साल (१५६२ ई०)में ग्वालेरी तानसेन अकबरके दरबारमें आये। तानसेनके संगीतकी ख्याति उस वक्त चारों ओर फैली हुई थी। माँग करनेपर बघेला राजा रामचन्द्रने अकबरके पास तानसेनको भेज दिया।

अकबर अब तरहसे स्वतन्त्र हो लकीरका फकीर नहीं रहना चाहता था। अक्तूबर या नवम्बर १५६२की मानसिक स्थितिके बारेमें उसने कहा है।

"अपने २०वें वर्षके पूरा करनेके समय मैंने अपने भीतर एक बड़ी कड़वाहट अनुभव की। प्रयाणके आध्यात्मिक संबलके अभावके कारण मेरी आत्मा अत्यन्त दुःखी थी।"

१५६३ ई०में अकबरकी सौतेली माँ माह चूचक बेगम (मिर्जा महम्मद हकीम की माँ)ने मुनइम खाँके पुत्र अकबरी सूबेदार गनी खाँको काबुलसे निकाल दिया। मुनइम खाँ फौज लेकर गया, उसे भी बेगमने हरा दिया। हिजरी ६७० के अन्त (अगस्त १५६३)में मुनइम खाँके दरबारमें लौटनेपर अकबरने स्वागत किया। इसी बीच शाह अबुल मआलीने मक्कासे लौटकर काबुल पहुँच कर बेगमकी लड़कीसे ब्याह किया। बेगमने आशा की थी, कि शाह उसकी मदद करेगा, पर अबुल मआली स्वयं काबुलका बादशाह बनना चाहता था। उसने अप्रैल १५६४में बेगमको मार डाला, इसपर बदख्शाँसे मिर्जा सुलेमानने आकर मआलीका काम तमाम किया। कुछ समय तक काबुल सुलेमानके हाथमें रहा।

१५६३ ई०मे अकबर मथुराके पास शिकार खेलने लगा। सात बाघोंमें पाँच को उसने मारा। यहीं उसे खबर लगी, कि मथुराके हिन्दू यात्रियों पर कर लगाया जाता है। अकबरने कहा। अपने मालिककी पूजाकेलिये जमा किये हुये लोगोंपर कर लगाना खुदाकी इच्छाके विरुद्ध है। उसने उसी समय अपने सारे राज्यमें तीर्थ कर बन्द करनेका हुकुम दे दिया। इस करसे सरकारी खजानेको दस लाख रुपया सालाना आमदनी थी। इसी समय अकबर एक दिनमें ३६ मील पैदल चलकर मथुरासे आगरा पहुँचा। कई आदमियोंने उसका अनुकरण करना चाहा, लेकिन तीन ही निभ सके।

(३) घातक आक्रमण—१५६४ई० के आरम्भमें अकबर दिल्ली गया।

११ जुलाईको निजामुद्दीन औलियाके मकबरेकी जियारत करके लौटता माहम अनगाके बनवाये मदरसेके पाससे गुजर रहा था, उसी समय मदरसेके कोठेसे एक हब्शी गुलाम फौलादने तीर मारा। कन्धेके भीतर घुस गये तीरको तुरन्त निकाल लिया गया और हब्शी भी पकड़ा गया। पता लगा, फौलाद, शाह अब्दुल मआलीके मित्र मिर्जा शरफुद्दीन हुसैनका गुलाम है। दिल्लीके शरीफ परिवारोंकी कुछ सुन्दरियोंको अकबरने अपने अन्तःपुरमें डाल लिया। मध्य-एशियामें जिस सुन्दरीपर बादशाहकी नजर पड़ जाती, पति उसे तिलाक देकर बादशाहको प्रदान कर देता। अकबरने एक शेखको अपनी तरुण बीबीको तिलाक देनेकेलिए मजबूर किया था। इज्जतका सवाल था, इसीलिये फौलादने तीर मारा था। लोगोंने फौलादसे पूछताछ करके जानकारी प्राप्त करनी चाही। अकबरने रोककर कहा—न जाने यह किन-किनके ऊपर झूठी तोहमत लगायेगा। फौलादको मृत्युदण्ड मिला। घायल अकबर घोड़ेपर सवार हो महलों में लौट आया और दस दिन बाद घावके अच्छे हो जानेपर आगरे लौटा। २१ साल की उमरमें ऐसे घातक आक्रमणके बाद भी अपने विवेकको न खोना बतलाता है, कि अकबर असाधारण पुरुष था।

(४) जजिया बन्द—कछवाहा राजकुमारीसे ब्याह और राजपूतोंकी घनिष्ठताका असर होना ही था। साथ ही बीरबल भी पहुँच चुके थे। अकबरने पिछले साल तीर्थ-कर उठा दिया था। अब उसने एक और बड़ा कदम उठाया और केवल हिन्दुओंपर जजियाके नामसे जो कर लगता था, उसे अपने सारे राज्यमें बन्द कर दिया। यह कर पहलेपहल द्वितीय खलीफा उमरने अ-मुस्लिमोंपर लगाया था, जो हैसियतके मुताबिक ४८, २४ और १२ दिरहम*सालाना होता था। जजिया केवल

*दाम दिरहमका ही अपभ्रंश है। मूलतः यह ग्रीक सिक्का द्राखमा था। द्राखमा और दिरहम चाँदीके सिक्के थे, जब कि दाम ताँबेका पैसा था, जो एक रुपयेमें ४० होता था। एक दाममें ३१५ से ३२५ ग्राम तक ताँबा होता था। अकबर के समय जजियामें कितना दिरहम लिया जाता था, इसका पता नहीं। महम्मद बिन कासिमने ७१२में सिन्धको जीतते समय हिन्दुओंपर जजिया लगाया था। फीरोजशाह तुगलक (१३५१-८८ई०)ने ४०,४२ और १० तंका जजिया लगाया था। ब्राह्मणोंको जजिया नहीं देना पड़ता था, लेकिन उसने उनपर भी १० तंका ५० जीतल कर लगाया। दिरहम उस समय चाँदीका और दीनार सोनेका सिक्का था। दिरहममें ४८ ग्रेन चाँदी होती थी—रुपयेमें १८० ग्रेनके करीब चाँदी रहती है। एक दाममें २५ जीतल माना जाता था, पर जीतलका कोई सिक्का नहीं था, यह केवल हिसाबकेलिये इस्तेमाल होता था। फीरोजशाहका चाँदीका सिक्का १७५ ग्रेनका था। काणी चाँदीके जीतलको कहते थे, जो पौने तीन ग्रेनकी होती थी। एक तंकामें ६४ काणियाँ होती

मालिक पुरुषोंसे ही लिया जाता था, जिससे सल्तनतको भारी आमदनी थी पर अकबरने उसकी कोई पर्वाह नहीं की। वह समझता था, इस प्रकार वह भारी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजाके हृदयको जीत सकेगा। औरंगजेबने ११५ वर्ष बाद राजा जसवन्तसिंहके मरनेके बाद १६७६ ई०में फिर जजिया हिन्दुओंपर लगाया।

लोग समझते थे, अबुलफजलके प्रभावमें आकर अकबर उदार बना; लेकिन तीर्थ कर और जजियाको अबुलफजलके दरबारमें पहुँचनेसे दस साल पहले ही अकबर ने बन्द कर दिया था। २२ वर्षकी उमरमें ही यह समझ गया था, कि शासनमें हिन्दू-मुसलमानका भेद खतम करना होगा।

अकबरकी मांका सौतेला भाई अकबरी दरबारका एक ऊँचा अमीर था। उसका लड़का ख्वाजा मुअज्जम बचपन हीसे बड़े उद्दण्ड और क्रूर स्वभावका था। उसने कई बेगुनाहोंके खूनसे अपना हाथ रँगा। मार्च १५६४में हरमकी एक प्रौढ़ा शालिनी महिलाने अकबरको सूचना दी, कि ख्वाजा अपनी पत्नी मेरी बेटीको देहात में ले जाकर मार डालना चाहता है। अकबर २० आदमियोंको लिये शिकारके बहाने जमुना पार पहुँचा। लेकिन, तब तक ख्वाजा अपनी बीबीको मार चुका था। खून टपकती कटारीको उसने खबर लानेवालेके ऊपर फेंका। अकबरके ऊपर भी वह आक्रमण कर सकता था। शाही आदमियोंने ख्वाजाके बाद एक खतरनाक आदमीका काम पहले ही खतमकर दिया। ख्वाजा पकड़ा गया। अकबरने नौकरोंसे साथ उसे जमुनामें डुबा देनेकेलिये कहा। वह मरा नहीं। फिर ग्वालियरके किलेमें कैद कर दिया गया, जहाँ वह पागल होकर मर गया। अकबरने अपनी दूधमाँके सम्बन्ध का ख्याल नहीं किया और अत्याचारी अदहम खाँको कठोर दण्ड दिया। अपने ममेरे भाईकी भी पर्वाह नहीं की। अन्तःपुरके प्रभावसे बिल्कुल मुक्त २२ वर्षका होते-होते अकबर धार्मिक पक्षपात से भी ऊपर उठ चुका था।

थीं, जैसे रुपयेमें ताँबेका पैसा। जान पड़ता है अकबरके समय चाँदीके तकेकी जगह दाम का रुपया जजियामें लिया जाता था, क्योंकि शेरशाहने प्रायः आजकलके ही चाँदीका रुपया चला दिया था।

अकबर का साम्राज्य
कांची
मदुरा
सीलोन

राज्यप्रसार (१५६४-६५ ई०)

अब अकबरकी सल्तनत काबुल तक फैली हुई थी। जौनपुर, ग्वालियर, मालवा ले लेनेके बाद पूर्वमें उसकी राज्य-सीमा उत्तरी बिहार तक और दक्षिणमें नर्मदा तक पहुँच चुकी थी। पर, वह सारे भारतको एक छत्रके नीचे लाना चाहता था, तभी देश समृद्ध और शक्तिशाली हो सकता था। इसी भावनाने उसे विजयोंके लिये प्रेरित किया। उसका पहला लक्ष्य गोंडवाना था, जिसकी शासिका रानी दुर्गावती थी।

१. रानी दुर्गावतीपर विजय (१५६४ ई०)

रानी दुर्गावतीमहोबाके चन्देल राजाकी लड़की थीं, जिनका ब्याह गढ़ाकटंगाके राजासे हुआ था। गढ़ाकटंगाके राजा मूलतः गोंड थे, पर प्रभुताशाली कुलोंका उच्च वर्णमें परिवर्तन हमेशा देखा गया है। वर्तमान शताब्दीमें ही कितने ही अ-राजपूत राजवंशी रोटी-बेटी करके राजपूत बिरादरीमें शामिल हो गये। रानी दुर्गावतीके राज्यमें आधुनिक मध्य-प्रदेशका प्रायः सारा उत्तरी भाग था। रानीका पति जवानी हीमें मर गया। दुर्गावती अपने पुत्र वीरनारायणकी अभिभाविका होकर पिछले पन्द्रह सालोंसे शासन-भार सँभाले हुई थी। उसकी दूरदर्शिता और वीरताकी दाद देते हुये अबुलफजल लिखते हैं—"बाजबहादुर और मियानों के साथ जबर्दस्त संघर्षोंमें वह सदा विजयी होती रही। अपने युद्धोंमें उसकी सेनामें बीस हजार अच्छे सवार और एक हजार प्रसिद्ध हाथी होते थे।......वाण और बन्दूक चलानेमें रानी बड़ी सिद्धहस्त थी। शिकारमें बराबर जाती और स्वय बन्दूकसे शिकार करती थी।" इसमें शक नहीं, रानी दुर्गावती के राज्यपर अकबर का आँख गड़ाना उचित नहीं समझा जा सकता। उसके शासनमें राज्य बहुत सुखी और समृद्ध था, फिर वह स्त्री भी थी। पर अकबरका स्वप्न दूसरा ही था। आसफ खाँ (प्रथम)ने पन्ना (बुन्देलखण्ड)के राजाको अधीनता स्वीकार करनेको मजबूर करके वहाँकी पन्नाकी खानें शाही कब्जेमें ले लीं। मालवा पहले ही सर हो चुका था। अब अकबरने आसफ खाँको गढ़ाकी ओर बढ़ने का आदेश दिया। रानी दुर्गावतीके लिये कहावत गलत नहीं है—"रानिनमें दुर्गावती और सब गदैया।" लक्ष्मीबाईसे पहले और उसी बुन्देलखण्ड भूमिमें यह वीरांगना पैदा हुई। उसने सुन रक्खा था, अकबरकी विजयिनी सेनाके सामने कोई नहीं ठहर सकता, तो भी हिम्मत नहीं छोड़ी। लेकिन, उसके अनुयायियोंमें उतनी

चौरागढ़के पापका भण्डाफोड़ हो गया है, और जवाबदेही होनेवाली है। वह साथ छोड़ कर भाग गया। अकबरने ऐसी स्थितिमें नहीं पसन्द किया, कि तलवारके बलपर फैसला किया जाय। दिसम्बर १५६५ में मेल करानेके ख्यालसे मुनअम खाँ बक्सर के सामने गंगाके बीच नाव पर खानजमाँसे मिला। खानजमाँने दरबारमें आकर क्षमा प्रार्थना की। क्षमा देकर मार्च १५६६ में अकबर आगराकी ओर लौटा।

जुलाई १५६४ में मालवाके सूबेदार अब्दुल्ला खाँ उज्बेकने विद्रोह किया, जिसे पीरमहम्मदकी जगहपर अकबरने शासक बनाया था। अकबर सेना ले स्वयं उसको दबानेकेलिए चला। नरवरके इलाकेमें हाथियोंका खेड़ा करके ७० हाथी पकड़े। उस समय इस इलाकेके जंगलों में हाथी रहते थे, यद्यपि आज उनका सारे विन्ध्य पर्वतमें कहीं पता नहीं है। माण्डू पहुँच कर अकबरने अब्दुल्लाको हराया। वह गुजरात भाग गया। लौटते वक्त सिपरीमें भी खेड़ा करके बहुत से हाथी पकड़े और अक्तूबर में आगरा लौटा। अकबरको मस्त हाथीको दबानेका बड़ा शौक था। इसी समय खाँडीराय हाथीको उसने वशमें किया। खाँडीराय एक अंकुशकी पर्वाह नहीं करता था। अकबर दो अंकुश लेकर उसकी गर्दन पर बैठा और उस पर काबू करनेमें सफलता पाई। अब्दुल्ला पीछे अपने उज्बेक भाई खानजमाँ से जौनपुरमें जाकर मिल गया।

मिर्जा हकीमका आक्रमण (१५६६ ई०)—खानजमाँके विद्रोहसे अकबरके सौतेले भाई महम्मद हकीमका साहस बढ़ा। उसने काबुलसे आ पंजाबपर आक्रमण किया। इस समय नगरचैन बसा कर अकबर चैन कर रहा था। खबर मिलते ही वह खानखाना (मुनअम खाँ) को राजधानी का भार सौंप कर १७ नवम्बर १५६६ को रवाना हुआ। दिल्लीमें अपने पिताके मकबरेको देखने गया, जिसके पूरा होनेमें अभी तीन सालकी देर थी। फरवरी (१५६७ ई०)के अन्तमें वह लाहौर पहुँचा। महम्मद हकीमने लाहौरमें पहुँच कर अपने नामका खुतबा पढ़वाया, पर भाईके आनेपर सिन्ध पार भागा। लाहौरमें रहते अकबरने कमरगाका महान आखेट किया। चिंगीज खानको भी यह आखेट बहुत पसन्द था। तैमूरने भी इसे अनेक बार दोहराया था। मुहासिरेकी व्यूह-रचनाकी तरह इसमें पचासों मील लम्बे-चौड़े जंगल को सेना से घेर लिया जाता था। इस घेरेको संकुचित करते केन्द्रकी ओर बढ़नेपर जंगलके सारे जानवर इकट्ठा हो जाते। शिकार शुरू होता। इसीको कमरगा कहते थे। एक महीने तक पचास हजार हँकवा लगाये गये थे, जिन्होंने शिकारके जानवरोंको दस मीलके घेरेमें इकट्ठा कर दिया। अकबरने तलवार, भाले, तीर-धनुष, बन्दूक सभी हथियारोंसे चार या पाँच दिन तक शिकार किया। भारतमें शायद पहली और अन्तिम बार इस तरहका शिकार खेला गया। इसी समय आसफ खाँ शरणमें गिरा और अकबरने उसके कसूरको माफ कर दिया। हुमायूँकी कृपासे

संभलकी जागीर पाये तैमूरी मिर्जाओंने विद्रोहकी इसी समय खबर मिली और अकबर आगरा लौटने के लिये मजबूर हुआ। मिर्जाओंने अकबरको बहुत दिनों त[क] हैरान किया। उनके बारेमें हम आगे कहेंगे।

अकबर लाहौरसे लौटते हुये अप्रैलमें थानेश्वरमें छावनी डाले पड़ा था। उस समय वहाँ कोई मेला था। गिरि, पुरी साधुओंमें स्थानके लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। सन्यासी और दूसरे साधु इस समय तक अपने-अपने नागोंके सैनिक संगठन को तैयार कर चुके थे। समझाने-बुझानेसे कोई राजी नहीं हुआ। दोनोंने बादशाहसे प्रार्थना की, कि हमें तलवारके द्वारा अपना फैसला करनेकी आज्ञा दी जाय। अकबरने इजाजत दे दी। दोनों दल आमने-सामने खड़े हुये। पहले तलवार हाथमें लिये एक-एक नागा लड़नेके लिए आगे आया। फिर घमासान युद्ध शुरू हो गया। तलवारोंके बाद यह तीर-धनुष, फिर ईंट-पत्थर पर उतर आये। अकबरने जब देखा, पुरी संख्यामें कम हैं, तो उनकी मददके लिए उसने अपने आदमियोंको संकेत किया। सहायता पा पुरियोंने गिरियोंको मार भगाया। बीस आदमी काम आये। किसी-किसीका कहना है, पुरियोंके दो-तीन सौ आदमी थे और गिरियोंके पाँच सौ। अकबर इस खूनी संघर्षको देखकर बहुत खुश हुआ।

खानजमाँका अन्त (१५६७ ई०)—खानजमाँने मनसे अधीनता नहीं स्वीकार की थी। उसने गङ्गा न पार करनेका वचन दिया था, लेकिन गङ्गा पार कर कालपीकी ओर बढ़ा। अकबर भी मानिकपुरके घाट पर पहुँचा। वह अपने हाथीपर चढ़कर गङ्गामें कूद पड़ा। बड़े ही खतरेकी बात थी, लेकिन अकबरको उसकी पर्वाह नहीं थी। हजार-डेढ़ हजार अनुयायी भी गङ्गामें कूदे। अकबरका अन्दाज ठी[क] साबित हुआ। खानजमाँ और उसके सरदार शराब पीकर मस्त थे। कोई सन्त[री] भी देखभालके लिये नहीं रखा गया था। लड़ाई इलाहाबाद जिलेके एक गाँवमें हुई, जिसका नाम सकरावल या मकरावल था। विजयके उपलक्षमें उसका नाम बदल कर फतहपुर कर दिया गया। खानजमाँ मारा गया। बहादुरने कैदी बन अपना सिर कटवाया। कुछ सरदारोंको अकबरने माफ कर दिया, कितनोंको हाथीके पैरोंके नीचे दबा कर मरवाया। हुकुम दिया, कि तूरानी विद्रोहियोंका सिर काट कर लानेवालेको एक अशर्फी और हिन्दुस्तानीका एक रुपया प्रति सिर इनाम दिया जाये। अकबरके क्रोधका ठिकाना ही नहीं था। मनकुआरसे वह प्रयाग और बनारस गया। दोनों नगरोंने फाटक बन्द करनेकी गुस्ताखी की थी, जिसके लिए उन्हें लूटकर दण्ड दिया गया। बनारससे जौनपुर लौटकर कड़ा आया। खानजमाँकी ...र मुनइम खाँ खानखानाको मिली। इस अभियानसे निवृत्त हो १८ जुलाई ...५६७ को अकबर आगरा पहुँचा।

३. चित्तौड़ रणथंभौर विजय

१. चित्तौड़ पर अधिकार (१५६७ ई०)—जिस समय कोई और खतरा नहीं होता तो, अकबर स्वयं किसी मुहिमके बारेमें सोचता। वह २५ वर्षका था। कछवाहोंसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये पाँच साल हो चुके थे। चित्तौड़के सीसोदिया, राजपूतोंमें शिरोमणि माने जाते थे। बाबरने तब तक अपने सिंहासन को सुरक्षित नहीं समझा, जब तक कि वह राणा साँगाको हरानेमें सफल नहीं हुआ। अकबरका ध्यान मेवाड़की ओर जाना आवश्यक था। उसे बहाना मिलनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। राणाने मालवाके सुल्तान बाजबहादुरको शरण दी थी। अकबरके दरबारमें राणा का लड़का सक्तसिंह रहता था। अकबरका स्कन्धावार धौलपुरमें पड़ा था। एक दिन मजाक करते हुए उसने सक्तसिंहसे कहा—"भारतके अधिकांश राजा और बड़े आदमी मेरे प्रति अपना सम्मान प्रकट कर चुके हैं, राणाने ऐसा नहीं किया। मैं उसे दण्ड देनेकेलिए जाना चाहता हूँ।" सक्तसिंह उस वक्त क्या जवाब देते! उन्होंने भागे-भागे जाकर अपने बाप राणा उदयसिंहको इसकी सूचना दी। बिना हुकुम सक्तसिंहके भागनेको अकबरने बुरा माना। अब उसने अपने इरादेको और भी पक्का कर लिया। इसी समय तैमूरी मिर्जाओंने मालवामें लूट-पाट मचा रक्खी थी। अकबरने उनके दबानेका काम अपने सेनापतियोंको दिया और स्वयं चित्तौड़के खिलाफ कूच किया।

सवा तीन मील लम्बे और करीब १२०० गज चौड़े एक पहाड़के ऊपर बना चचौड़का अजेय दुर्ग था। पहाड़ीका घेरा नीचे आठ मीलके करीब. ऊँचाई चार-पाँच सौ फुट तक थी। चित्तौड़के सामने पूर्वकी ओर एक छोटी सी पहाड़ी चित्तौड़ी है। किलेके भीतर जानेके कई दरवाजे, जिसमें रामपोल किलेके पश्चिम ओर था। पूर्वमें सूरजपोल और उत्तरमें लखौतापोल के दरवाजे थे। किलेके भीतर कई तालाब थे, जिनके कारण वहाँ पानीका कोई कष्ट नहीं हो सकता था।

राणा सीसोदिया और गुहिलौत कहे जाते थे। गुहिल छठीं शताब्दीके अन्तमें इस वंशका मूल राजा था। ७२८ ई०में बाप्पा रावलने मौरी (मौर्य) वंशसे राज्य छीना। यह भी कहा जाता है, कि गुहिल बड़नगर (आनन्दपुर, गुजरात) का नागर ब्राह्मण था। नागर ब्राह्मणसे सूर्यवंशी क्षत्रिय कैसे उत्पन्न हुये, इसपर आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं। इतिहासमें ऐसे हेर-फेर बहुत हुये हैं। यह भी परम्परा है, कि राणाके वंशका सम्बन्ध वलभीके पुराने राजवंश तथा गुजरातके मेड़ोंसे है। खुसरो नौशेरवाँकी बेटी भी इस वंशकी माताओंमें थी। यह भी परम्परा है, कि वंशस्थापिका एक राजमाता विधवा ब्राह्मणी थी। मेवाड़ने पीढ़ियों तक अपनी आनके लिए खूनकी होली खेली, जिसके ही कारण इस वंशका सम्मान भारतमें सर्वोच्च माना गया।

राणा साँगाने बाबरका जबर्दस्त विरोध किया, बाबरके मरनेसे एक साल पहले १५२६ ई०में वह मरे। राणा साँगाकी गद्दीपर इस समय पिताकी मृत्युके बाद पैदा हुआ पुत्र उदयसिंह था।

२० अक्टूबर १५६७ को अकबरने अपना डेरा चित्तौड़के सामने डाला। सारी मुगल सल्तनतकी सैनिक शक्तिको लेकर वह आया था। मुगल सेना दस मील तक पड़ी हुई थी। तीन तोपें किलेकी ओर मुँह करके लगा दी गईं। तीनोंमें एक लखौतापोलके सामने थी। राजा टोडरमलको दूसरी तोप पर नियुक्त किया गया था। अकबरने अपने सामने आध मन भारी गोला ढलवाया। कई बार आक्रमण कर भारी हानिके साथ मुगल सेनाको पीछे हटना पड़ा। अब सुरंग द्वारा रास्ता बनानेके सिवा और कोई चारा नहीं था। लदी हाथी चले जाने लायक सुरंग तैयार की गई। दो बारूदी माइनें रक्खी गईं। पलीता लगाया गया, लेकिन दोनोंका एक बार विस्फोट नहीं हुआ। सैनिक भीतरकी ओर दौड़े, उसी समय दूसरी सुरङ्ग फूटी। दो सौ आदमियोंने अपनी जान खोई, जिनमें बाराका एक सैयद भी था।

अकबर को जल्दी सफलताकी आशा नहीं रह गई। उसने धीरज से काम लेनेका निश्चय किया। राजा टोडरमल और कासिम खाँने दूसरी सुरङ्ग तैयार की। (इसी कासिम खाँने आगरेका किला बनाया था) अकबर स्वयं बिना खाये, बिना सोये सुरङ्ग बनते वक्त उसकी देखभाल करता रहा। २३ फर्वरी १५६८ मङ्गलवारको अकबर किलेकी ओर देख रहा था। एक सरदार टूटी दीवारकी देखभाल कर रहा था। बिना जाने ही अकबरने अपनी बन्दूक "संग्राम" दाग दी। एक घन्टेके भीतर ही प्रतिरक्षी अपने स्थानसे हट गये, किलेमें कई जगह आग लग गई। राजा भगवानदासने बतलाया, जौहर हो रहा है—अन्तःपुरकी रानियाँ अपनी इज्जत बचानेके लिए आगमें जल रही हैं। अगले दिन सबेरे पता लगा, कि जिस सरदारको अकबरने मारा था, वह बेदनौरका राठौर वीर जयमल था, जिसने उदयसिंहके किला छोड़ कर चले आने पर प्रतिरक्षाका भार अपने ऊपर लिया था।

जयमलके बाद किलेकी कमान अब कैलवाके सरदार पत्ताने ली, जो उस समय केवल १६ सालका था। पत्ताका पिता मर चुका था। एकमात्र पुत्रके ख्यालसे उसकी माँने चितामें पतिका अनुगमन नहीं किया था। माँने स्वयं बेटेको हुकुम दिया: केसरिया बाना पहनो और चित्तौड़के लिये प्राण दो। वह स्वयं भी वैसा ही करते अपनी बहूको लेकर रणमें कूदी। कितनी ही और भी क्षत्राणियोंने उनका अनुसरण किया। शाहने बहूको सामने गिरते देखा। पत्ता लड़ते हुये मारा गया। जौहरके अगले दिन अकबर किलेके भीतर गया। अबुलफज़लने लिखा है—"परमभट्टारकने मुझे बतलाया, कि जब मैं गोविन्द श्याम मन्दिरके पास पहुँचा, तो एक महावतने अपने हाथीके पैरोंके नीचे एक

ादमीको कुचलवाया। पूछनेपर कहा—मैं आदमीका नाम नहीं जानता। लेकिन,
कबरको वह एक सरदार-सा मालूम हुआ, क्योंकि बहुतसे लोगोंने उसके साथ
ड़ते हुये अपने प्राण दिये। अन्तमें पता लगा, कि वह पत्ता था। उसे बादशाहके
ामने लाया गया, अब भी उसमें प्राण थे, लेकिन थोड़ी ही देरमें वह मर गया।
बुलफजलके अनुसार तीन सौ औरतोंने जौहरमें प्राण दिये थे। किलेमें प्रवेश करते
मय आठ हजार राजपूतोंने बड़े महँगे दामों अपने प्राणोंको बेंचा। अकबरको इस
ीरताका सम्मान करना चाहिये था, लेकिन उस समय वह चूक गया। उसने कत्ल-
ाम करनेका हुकुम दिया। तीस हजार आदमियोंने प्राण गँवाये। कहा जाता है,
रे हुये लोगोंके जनेऊको तौला गया, तो वह साढ़े ७४ मन (मन=४ सेर) हुआ।
ाल तक अपने गोप्य पत्रोंपर ७४॥का अंक हमारे यहाँ लिखा जाता रहा, जिसका
र्थ था : अगर किसी अनधिकारीने इस पत्रको पढ़ा, तो उसे इतने आदमियोंके
ारनेका पाप लगेगा।*

इस प्रकार फर्वरी १५६८में अकबरने सदाकेलिए निर्जन चित्तौड़पर अधिकार
ाप्त किया।

चार वर्ष बाद राणा उदयसिंह गोगुन्दामें मरा और सीसोदियोंका झगड़ा
उसके पुत्र राणा प्रतापके सुदृढ़ हाथोंमें आया, जिसे अकबर कभी झुका नहीं सका।
जहाँगीरने चित्तौड़को फिरसे बनानेकी मनाही की। १६५३ ई० (हि० १६०४)में
हुकुमकी अवहेलना करनेपर शाहजहाँने स्वय जाकर मरम्मत किये हुये भागको गिरवा
दिया। ४ मार्च १६८० को औरंगजेबने चित्तौड़ पहुँचकर वहाँ सैनिक छावनी स्था-
पित की। इसी समय उसने वहाँके ६३ मंदिर तोड़े। देवकुलमें राणाओंकी मूर्तियाँ
रक्खी थीं, उन्हें भी औरंगजेबने तुड़वा दिया। १७४४ या १७४५ ई०में ईसाई साधु
स्टीफेन टालरने चित्तौड़को जंगली जानवरसे भरा पाया। कुछ साधु अब भी वहाँ रह
रहे थे। मुगल सल्तनतके छिन्न-भिन्न होनेके समय १८वीं सदीके उत्तरार्धमें फिर
चित्तौड़ राणाके हाथमें आया। चित्तौड़के नष्ट होते समय वहाँके लोहार प्रण करके
निकले थे, कि हम अब कभी एक जगह नहीं बसेंगे। अपनी गाड़ियोंको घर बनाये
घुमन्तू (गाड़िया लोहार) चार शताब्दियों तक जगह-जगह घूमते रहे और स्वतन्त्र
भारतमें ही उनमेंसे कितने ही फिर चित्तौड़के भीतर लौटे।

अकबर उस समय यद्यपि चूक गया, पर उसे राजपूतोंकी वीरता नहीं भूली।
उसने जयमल और पत्ताकी सुन्दर मूर्तियाँ बनवाकर आगरा किलेमें स्थापित की। औरंग-
जेबके शासनके आरम्भमें १६६३ ई०में फ्रेंच यात्री बर्नियरने इन मूर्तियोंको दिल्लीके
किलेके दरवाजेपर देखा था। शाहजहाँने १६३८ ई०में इस किलेको फिरसे बनवाना
शुरू किया, जिसके दरवाजेपर उन्हें उसने स्थापित किया। औरंगजेब भला यह क्यों

*प्रतापके संघर्षकेलिये देखो अध्याय २० पृष्ठ २२१-२३

पसन्द करता । बर्नियरकी यात्राके थोड़े दिनों बाद औरंगजेबने उन्हें हटवा दिया
राणा अमरसिंह और उनके पुत्र करणसिंहने जब जहाँगीरकी अधीनता स्वीकार की,
तो उनकी संगमरमरकी दो मूर्तियाँ जहाँगीरने स्थापित की थीं, जिन्हें अजमेरमें रहते
समय १६१६ ई०में बनवाकर वह आगरा ले गया था।

अकबरने चित्तौड़पर चढ़ाईके लिए ख्वाजा अजमेरीसे मनौती मानी थी:
विजय होनेपर मैं पैदल वहाँसे अजमेर-शरीफकी जियारत करूँगा। उसीके अनुसार
२८ फरवरीको वह अजमेरकी ओर पैदल चला। देखा-देखी कितने ही अमीरोंने
नहीं, बल्कि बेगमोंने भी पैदल-यात्रा शुरू की। फरवरीके अन्तमें गर्मी भी आरम्भ हो
गई थी। मुश्किलसे वह चित्तौड़से चालीस मील माडलके कस्बेमें पहुँचे थे, कि लोगों-
के हौसले खतम होने लगे। डूबतेको तिनकेका सहारा, अजमेरसे दूत आकर बोला:
ख्वाजाने सपन दिया है, बादशाहको सवारीपर चलना चाहिये। सब लोग सवारीपर
चढ़ गये और केवल अन्तिम मंजिल पैदल चले। जियारतके बाद मार्च (१५६८
ई०)में अकबर आगरा लौटा। रास्तेमें दो बाघोंके शिकारमें साथका एक आदमी
मारा गया। कालंजर, चित्तौड़ और रणथम्भौर अजेय दुर्ग समझे जाते थे। चित्तौड़-
पर अधिकार करके अकबरकी इच्छा रणथम्भौरको भी लेनेकी थी, लेकिन इसी समय
तैमूरी मिर्जाओं और दूधमाँ जीजी अनगा (शम्सुद्दीनकी बीबी)के कुलवाले—अतका-
खेल—की सरकशीका मामला आया। पहले इनसे भुगत लेना अच्छा समझा गया।
मई १५६२ में शम्सुद्दीनकी हत्या करनेका अदहम खाँको कैसे दण्ड मिला, यह हम
बतला आये हैं। जीजी अनगाका पुत्र मिर्जा अजीज कोका (पीछे खानेआजम) अक-
बरका दूधभाई और लाडला भी था। अतकाखेलको पंजाबमें जागीरें मिली थीं
उनको और ज्यादा दिन तक वहाँ जमने देना अच्छा नहीं, इसलिये अकबरने उ-
पंजाबकी जागीरें लौटाकर दूसरी जगह जागीरें लेनेके लिए मजबूर किया। केवल
मिर्जा कोकाके पास दीपालपुर (देवपालपुर, जिला मांटगोमरी)की जागीर रहने दी।
बाकीमें किसीको रुहेलखण्डमें ले जाकर पटका, किसीको और जगह। अब पंजाबकी
सूबेदारी खानजहाँ हुसेन कुल्लीखाँको मिली। वित्त-विभागको मजबूत करनेकेलिए
शहाबुद्दीन अहमद खाँको वित्त-मन्त्री नियुक्त किया।

(२) रणथम्भौर-विजय (१५६६ ई०)—शेरशाहके अफसर हाजी खाँने
९६६ हिजरी (१५५८-५९ ई०)में रणथम्भौरको राव सुरजनके हाथमें बेच डाला था।
राव सुरजनने इसपर कई महल और दूसरी इमारतें बनवाईं। यह स्वाभाविक गिरिदुर्ग
था। बहुत जगह पहाड़की प्राकृतिक दीवारें थीं। अलाउद्दीनने भी रणथम्भौरपर
अधिकार किया था, लेकिन बहुत समय लगाकर। यहाँ पास-पास दो पहाड़ हैं, जिनमें
नाम रन और दूसरेका थम्भौर है। असली किला थम्भौरके ऊपर है।

१५६८ के अन्तमें अकबरने रणथम्भौरकेलिए तैयारी की। बूँदीकी सीमासे कुछ मील उत्तर जयपुरके पूर्व-उत्तर दिशामें अवस्थित रणथम्भौर उस समय हाड़ा चौहानोंके हाथमें था।* बूँदी पीछे भी हाड़ा चौहानोंके हाथमें रही। फरवरी १५६९ में रणथम्भौरका मुहासिरा शुरू हुआ। पहाड़के ऊपर अवस्थित इस अजेय दुर्गके आरम्भिक तजर्बेने बतला दिया, कि चित्तौड़की तरह इसका भी जीतना आसान नहीं होगा। रणथम्भौरके राजा राव सुरजनसिंहने अन्तिम साँस तक लड़नेका निश्चय कर लिया था। कुँवर मानसिंह बातचीतके बहाने दुर्गके भीतर जानेमें सफल हुए। वह अपने साथ अकबरको भी परिचारकके तौरपर ले गये। कहते हैं, सुरजनसिंहने बादशाहको पहचान लिया। हाड़ोंको कुछ विशेष रियायतें देकर अकबर रणथम्भौर-को बिना लड़े हाथमें करनेमें सफल हुआ। रियायतें कुछ थीं—बूँदीको डोला नहीं देना होगा, उन्हें दीवान-आममें भी हथियारबन्द होकर जानेका अधिकार होगा, वह राजधानीके लाल दरवाजेमें भी अपना नगाड़ा बजाते प्रवेश कर सकेंगे। रण-थम्भौरपर अधिकार करनेके बाद राव सुरजनकी इच्छाके अनुसार अकबरने उन्हें बनारसमें रहनेकी अनुमति दी, फिर दोहजारी मन्सब देकर वहाँका शासक बना दिया। चुनारका किला राव सुरजनके हाथमें था। राव सुरजन जैसे धार्मिक शासक-के अधीन रहकर वाराणसीकी बहुत श्रीवृद्धि हुई। उन्होंने वहाँ ८४ इमारतें और २० घाट बनवाये। राव सुरजनके दो लड़कोंने गुजरातके अभियानमें अकबरके साथ जाकर बड़ी बहादुरी दिखलाई।

(३) कालंजरका आत्मसमर्पण (१५६९ ई०)—रणथम्भौरके बाद अक-बरने अब उत्तरी भारतके तीसरे अजेय दुर्ग कालंजरको लेनेका निश्चय किया। इसी कालंजरके विजय करनेमें बारूदसे झुलसकर शेरशाहने अपनी जान गँवाई थी। बघेला राजा रामचन्द्रका उस वक्त किलेपर अधिकार था, जिसने अकबरकी आज्ञापर तानसेनको उसके पास भेज दिया था। अकबरके जेनरल मजनू खाँ काकशालने कालंजरको घेर लिया। रामचन्द्रने समझ लिया, कि जो हालत चित्तौड़ और रण-थम्भौरकी हुई, वही कालंजरकी भी होगी, इसलिये बेकारकी खूनखराबीसे क्या फायदा? उसने किलेको मजनू खाँके सुपुर्द कर दिया, [...] समाचार अगस्त १५६९ में मिला। अकबरने राजा रामचन्द्रको [...] बड़ी जागीर प्रदान की।

बतलाता है, कि
पास-पास रण

।।

अध्याय १८

गुजरात-विजय (१५७२-७३ ई०)

१. प्रथम विजय (१५७२ ई०)

हुमायूँने थोड़े समयके लिए गुजरातपर अधिकार जरूर किया था, पर वहाँ पहले हीसे एक अलग सल्तनत कायम हो गई थी, जिसका प्रभाव स्थानीय लोगोंपर काफी था, इसलिये हुमायूँके हाथसे निकलते उसे देर नहीं लगी। अकबरने उससे अपने शासनको मजबूत कर लिया था, इसलिये उसका ध्यान गुजरातकी ओर गया। आगे हम देखेंगे, कि कैसे सन्त सलीम चिश्तीके प्रभाव और पुत्रलाभके कारण अकबरने अपनी राजधानी आगरासे सीकरीमें १५७१ ई०में परिवर्तित की और चौदह सालों तक यही अकबरका शासन केन्द्र रही। गुजरात-विजयके उपलक्षमें ही सीकरीका नाम फतेहपुर (विजय नगर) पड़ा। अकबरने ४ जुलाई १५७२ को बरसातमें सीकरीसे गुजरातका अभियान किया। गुजरातमें उस समय मुजफ्फरशाह (३) नाममात्रका सुल्तान था। उसके जागीरदार अपने-अपने इलाकोंके मालिक थे, जो आपसमें लड़ा करते थे। इन्हींमें एतमाद खाँ भी था, जिसने ही गुजरातकी दुरवस्थाको देखकर अकबरको बुलाया। गुजरातमें सूरत, खम्भात और दूसरे कितने ही मशहूर बन्दरगाह थे। सामुद्रिक व्यापारने उसे एक बहुत धनी प्रदेश बना दिया था। अकबर गुजरातको लेकर अपनी राज्यसीमाको समुद्र तक पहुँचा सकता था।

३० अगस्त १५६९ को कछवाहा राजकुमारीसे अकबरका ज्येष्ठ पुत्र सलीम पैदा हुआ था, जो पीछे जहाँगीरके नामसे गद्दीपर बैठा। गुजरातकी यात्रामें जब वह अजमेर और नागौरके बीच फालोदीमें ठहरा था, उसी समय दूसरे पुत्रके पैदा होनेकी खबर मिली, जिसका नाम अकबरने दानियाल रक्खा। सितम्बरमें अकबरने नागौरमें मुकाम किया। पीछेसे कोई आक्रमण न कर दे, इसलिये अकबरने दस हजार सवार खानेकलाँ मीर महम्मद खाँ अतकाके अधीन मारवाड़की ओर भेजे। सिरोही देवरा-चौहानोंकी थी। वहाँके डेढ़ सौ राजपूतोंने झुकनेकी जगह मुगल तलवारोंके सामने जान देना पसन्द किया। अकबर निश्चिन्त हो नवम्बर १५७२ में गुजरातकी राजधानी अहमदाबादके पास पहुँचा। भाग कर किसी खेतमें छिपा मुजफ्फरशाह पकड़ा गया। अकबरने उसे छोटी-सी जागीर दे दी। अपने कुछ आदमियोंने बादशाही रसदपर हाथ मारा था, जिसके लिए उन्हें हाथियोंके पैरोंके नीचे . . गया।

कुछ आदमियोंको लेकर अकबर खम्भात गया, यहीं पहले पहल समुद्रकी थोड़ी देर सैर की। यहीं पोर्तुगीज व्यापारी भेंट लेकर आये। युरोपियन व्यापारियोंके साथ अकबरका यह सर्व प्रथम साक्षात्कार था। अकबरने गुजरातकी सूबेदारी (यह नाम पीछे का है, अकबरके वक्त सूबोंके शासक सिपहसालार कहे जाते थे) मिर्जा अजीज कोकाको दी। इसी समय पता लगा, कि तैमूरी मिर्जा इब्राहीम हुसेन अकबरी अमीर रुस्तम खाँको मारकर आगे बढ़ना चाहता है। सूरतको मिर्जाओंने अपना गढ़ बना रक्खा था। बड़ौदाके पाससे अकबरने एक छोटी सी सेना लेकर इब्राहीमके खिलाफ अभियान किया। माही नदीके घाटपर मालूम हुआ, कि मिर्जा काफी बड़ी सेनाके साथ नदीके दूसरे पार सरनालके कस्बेमें पड़ा हुआ है। लोगोंने सलाह दी, कि कुमक आ जानेपर हमला करना चाहिये, पर अकबर अचानक मिर्जाके ऊपर चढ़ दौड़ना चाहता था। लोगोंने रातको आक्रमण करनेकी राय दी। अकबरने कहा : यह वीरोचित नहीं है। अकबरके साथ केवल दो सौ सैनिक थे, जिनमें मानसिंह, राजा भगवानदास और कितने ही दूसरे सरदार भी थे। सरनालकी सँकरी गलियोंमें मिर्जा को अपनी बड़ी सेनाका कोई फायदा नहीं मिला। अकबर स्वयं लड़ रहा था। यहीं भगवानदासका भाई भूपत मारा गया। अकबरको तीन शत्रु सैनिकोंने घेर लिया। भगवानदासने एकको भालेसे घायल कर बेकार कर दिया और दोसे अकबरने अकेले अच्छी तरह मुकाबिला किया। मिर्जा हार कर भागा। रातके वक्त मुगल सेना उसका पीछा नहीं कर सकी। २४ दिसम्बरको अकबर अपने स्कन्धावारमें लौट गया। राजा भगवानदासको एक झण्डा और नगाड़ा इनाममें मिला। ऐसा इनाम पहली ही बार किसी हिन्दूको मिला था।

सूरत बाकी रह गया था। राजा टोडरमलने शत्रुकी शक्तिका पता लगाया। दिसम्बरके अन्तमें अकबर बड़ौदासे चला। ११ जनवरी १५७३ को सूरतपर मुगल सेनाने घेरा डाल दिया। गोवासे पोर्तुगीज सूरतवालोंकी सहायताकेलिये आये। जब मालूम हुआ, कि सूरतका पतन निश्चित है, तो उन्होंने दरबारमें भेंट अर्पित की। अकबर फिरंगियोंकी जहाजी शक्तिके बारेमें काफी सुन चुका था। उसको डर था, कि कहीं पोर्तुगीज नौसैनिक पोत भी आक्रमण न कर दें, इसलिये उसे गोवाके उप-राज दोम अन्तोनियो दे नरोन्हासे सुलह करके बड़ी प्रसन्नता हुई। खम्भातमें पहले पोर्तगीजोंसे परिचय होनेके बाद धर्म-जिज्ञासाकी तृप्तिकेलिये उसे पोर्तुगीज पादरियोंके सत्संगका बराबर मौका मिलता रहा। हाजी समुद्रके रास्ते खम्भात या सूरतसे मक्का जाया करते थे। अरब समुद्रपर पोर्तगीजोंका अधिकार था। इस समझौते सेहाजियोंकी यात्रा भी सुरक्षित हो गई। अकबर कई सालों तक अपने पाससे खर्च देकर हाजियोंकी बड़ी-बड़ी मण्डली मक्का भेजा करता था।

डेढ़ महीनेके मुहासिरेके बाद २६ फरवरी १५७३ को सूरतने आत्मसमर्पण

किया। शत्रु सेनापति हमजबान पहले हुमायूँकी सेवामें रह चुका था। अकबरने उसकी जान बख्श दी, लेकिन मुँहसे बादशाहकी शानमें बुरा शब्द निकालनेके लिये उसकी जीभ कटवा ली।

यहीं पानगोष्ठीमें अपनी बहादुरीका परिचय देते हुए दूसरोंके साथ अकबरने भी दीवारमें तलवार गाड़ कर उसपर छाती मारना चाहा था और मानसिंहने तलवारको निकाल फेंका था। इसपर अकबर उसका गला घोंट कर मारने ही वाला था, कि लोगोंने बादशाहको खींचकर उसे बचाया। बाप-दादोंके समयसे ही पियक्कड़ी की आदत चली आई थी। अकबरके दो बेटे मुराद, दानियाल और सौतेले भाई भी अत्यधिक शराब पीनेके कारण ही मरे। अकबरने पीछे शराब कम करके ताड़ी और अफीमकी आदत लगा ली। जहाँगीर भी भारी पियक्कड़ था।

सूरत-विजयके बाद अकबर लौटा। १३ अप्रैल १५७३ को सिरोहीमें पहुँचने पर पता लगा, इब्राहीम हुसेन मिर्जा घायल होकर मर गया।

२. तैमूरी मिर्जाओंका उपद्रव

तैमूरकी सन्तानोंमें उमरशेख मिर्जाका पुत्र बायकरा और पोता सुल्तान वैस था, जिसका पुत्र महम्मद सुल्तान था। खुरासानके तैमूरियोंके हाथसे निकल जाने पर महम्मद सुल्तान बाबरके पास काबुल आया। खानदानवालोंने अक्सर धोखा दिया, तो भी बाबरको तैमूरी शाहजादोंके साथ विशेष स्नेह था। वह सबको स्नेह कर रखना चाहता था। बाबरने महम्मद सुल्तानको अच्छी तरह रक्खा। हुमायूँने भी उसपर बहुत दया दिखलाई। सुल्तान मिर्जाके पुत्रोंमें महम्मद हुसेन मिर्जा और हुसेन मिर्जा भी थे। महम्मद सुल्तान मिर्जा और नखवत सुल्तान मिर्जाने दूसरे तैमूरी मिर्जाओंसे मिलकर हुमायूँसे बगावत की। हुमायूँने उन्हें अन्धा करनेका हुकुम दिया। नखवत अन्धा कर दिया गया। महम्मद सुल्तान कुछ दे दिवा कर नकली अन्धा बन बयानाके किलेमें बैठा रहा। कुछ दिनों बाद महम्मद जमान मिर्जा (हिरातके बादशाह सुल्तान हुसेन मिर्जाका पोता) भागकर गुजरात चला गया। महम्मद सुल्तान भी किसी तरह निकल भागा। कन्नौजमें पहुँचकर वहाँ उसने पाँच छ हजारकी सेना जमा की। जिस समय हुमायूँ बङ्गालमें शेरशाहसे उलझा हुआ था, उसी समय महम्मद सुल्तान और बेटोंने दिल्लीके आस-पास लूट-मार मचाई। हुमायूँने अपने छोटे भाई हिंदालको उन्हें दबानेकेलिये भेजा। उसे गुद्द तख्तपर बैठनेकी फिकर हो गई। हुमायूँ हार कर आगरा पहुँचा। अब, सभी मुगल शाहजादों को फिकर पड़ी। महम्मद सुल्तान और उसके बेटे हुमायूँके पास क्षमा माँगी हुये। १५४० दिये गये लेकिन कन्नौजमें शेरशाहसे लड़नेके समय वह हुमायूँका साथ १ भाग गये। कितने ही दूसरे अमीरोंने भी उनका अनुकरण किया।

हुमायूँके भारत लौटनेपर बूढ़ा महम्मद सुल्तान बेटों-पोतोंके साथ फिर दरबारमें हाजिर हुआ। हुमायूँने उसे सम्भल सरकार (मुरादाबाद जिला)में आजमपुर निहटौर आदिके इलाकोंकी जागीर दे दी। महम्मद हुसेन मिर्जा, इब्राहीम हुसेन, मसऊद हुसेन, आकिल मिर्जाके खूनमें बगावत भरी थी। खानजमांसे दूसरी बार जब अकबर लड़ने गया, उस वक्त भी यह साथ छोड़कर अपनी जागीरमें चले गये, सम्भलमें लूट-मार शुरू की। वहांसे भगाये जानेपर दिल्ली होते वह मालवाकी तरफ जा लूट-खसूट करते रहे। बुड्ढा मुहम्मद सुल्तान अब भी तिकड़म भिड़ानेमें लगा हुआ था। मुनअम खाँने उसे पकड़ कर बयानाके किलेमें भेज दिया, जहाँ ही वह मरा। मालवामें मार पड़ी, तो मिर्जा गुजरातकी ओर भागे। वहाँ महमूदशाह नाममात्रका बादशाह था। सूरत, भड़ौच, बड़ौदा, चम्पानेर पर चिंगीज खाँका शासन था। उसने इनका स्वागत किया और भड़ौचमें जागीर दी। इतनी जागीरसे उनका काम कहाँ चलनेवाला था? उन्होंने इधर-उधर हाथ-पैर बढ़ाना शुरू किया। चिंगीज खाँकी त्योरी बदल गई। यह खानदेशकी तरफ भागे। इसी बीच आपसी संघर्षमें चिंगीज मारा गया। खानदेशसे पूरा पड़ता न देखकर मिर्जा गुजरात चले आये। सूरतमें महम्मद हुसेन मिर्जा, चम्पानेरमें शाह मिर्जा और सम्नाल आदिमें इब्राहीम हुसेन मिर्जा सर्वप्रभुत्वसम्पन्न हो बैठ गये।

अकबरसे हार कर सभी मिर्जा पाटनके पास जमा हुये। निश्चय हुआ, इब्राहीम मिर्जा छोटे भाई मसऊद मिर्जाको साथ लेकर हिन्दुस्तानमें लूट-मार करता पंजाब जा वहाँ विद्रोह फैलाये; महम्मद हुसेनमिर्जा और शाह मिर्जा दोनों शेरखाँ फौलादीसे मिलकर पाटन में हलचल मचायें, जिसमें अकबर सूरतका मुहासिरा उठानेके लिये मजबूर हो। लेकिन वह इसमें सफल नहीं हुये। अकबर सूरतको लेकर अहमदाबाद लौटा। इब्राहीम हुसेन मिर्जा लूटता-पाटता नागौर पहुँचा। रायसिंह, रामसिंह आदि अकबरी सरदारोंने इब्राहीमके छक्के छुड़ाये। लाहौर जानेकी जगह वह सम्भलकी ओर चल पड़ा। अकबर गुजरातमें था। हुसेन कुली खाँ काँगड़ाके अभियानमें लगा हुआ था। इब्राहीमने दिल्ली-आगरापर हाथ साफ करना चाहा, लेकिन अमीरोंकी पलटनने मिर्जाको पंजाबकी ओर भागनेके लिये मजबूर किया। उसने रास्तेमें सोनपत, पानीपत, करनाल, अम्बाला आदि शहरोंको लूटा। लाहौरमें पहुँचनेपर पता लगा, हुसेन कुली खाँ दौड़ा आ रहा है। फिर वह लाहौरसे मुल्तानकी ओर भागा, जहाँ घायल हो बन्दी बन मरा।

मसऊद हुसेन मिर्जा गिरफ्तार कर दरबारमें भेजा गया। उसे किला ग्वालियरमें ले जा कर खतम कर दिया गया। महम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा और शेरखाँ फौलादीके साथ हो पाटनमें सैयद महमूद बाराको घेर लिया।

खानेआजम (मिर्जा कोका) खबर सुनते ही अहमदाबादसे यहाँ पहुँचा। मिर्जाने पाँच कोस आगे बढ़कर लड़ाई की। फैसला नहीं हुआ था, इसी समय रुस्तम खाँ और अब्दुल मतलब खाँ तारा कुमक लेकर पहुँच गये। मिर्जा दक्खिनकी ओर भागे। हिजरी ८८० (१५७२-७३ ई०) में अख्तियारुलमुल्कको लेकर उन्होंने गुजरातके कितने ही भागोंपर अधिकार कर लिया। कोका अहमदाबादमें घिर गया। इधर अकबर दूसरी बार गुजरात स्वयं पहुँचा। इसी लड़ाईमें दोनों मिर्जा मारे गये।

कामराँकी बेटी गुलरुख बेगम (अकबरकी चचेरी बहिन) इब्राहीम हुसेन मिर्जाकी बीबी बहादुर औरत थी और साथ ही उसे बापसे दुश्मनीकी विरासत मिली थी। जब मिर्जा करनालकी लड़ाईमें हार कर पंजाबकी ओर भागा, तो वह सूरतसे भाग कर दक्खिन चली गई—इसके लड़केका नाम मुजफ्फर हुसेन मिर्जा था, जिसे मुजफ्फर हुसेन शाह गुजरातीसे नहीं मिलाना चाहिये। मुजफ्फर दक्खिनमें पलता रहा। हिजरी ९८५ (१५७७-७८ ई०)में १५-१६ वर्षका हो, उसने बापके झगड़ेको अपने हाथमें लिया। अकबरके दबाये अमीर उसके पीछे हुये। अकबरी सेनाको हरा वह खम्भात पहुँचा, फिर पाटनमें आ वजीर खाँको घेर लिया। इसी समय टोडरमल पहुँच गये। मिर्जा भाग कर ढोलका, फिर हार कर जूनागढ़ भागा। टोडरमल राजधानी (सीकरी) लौट गये। मिर्जाने आकर वजीर खाँको अहमदाबादमें फिर घेर लिया। असफल हो भागकर खानदेशके स्वामी राजा अलीखाँके पास पहुँचा। राजा अलीखाँको अकबरको खुश करनेके लिये एक बड़ी सौगात हाथ आई, उसने उसे दरबारमें भेज दिया। अकबरने दया दिखलाई, और उसकी बहिनसे सलीमका ब्याह कर दिया। इसके बाद मिर्जाओंका विद्रोह देखनेमें नहीं आया।

३. गुजरातकी दौड़ (१५७३ ई०)

गुजरातमें पूरी तौरसे शान्ति नहीं स्थापित हुई थी। मुजफ्फर मिर्जा और अख्तियारुलमुल्कसे गुजरातके खतरे की खबर अकबरके पास पहुँची। अकबर ३१ सालका था। जवानीका जोश चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। २३ अगस्त १५७३ (२४ रबि० II, ९८१ हि०) को वह एक तेज साँड़नीपर सवार हो कुछ चुने हुए सैनिकोंको लेकर गुजरातकी ओर चल पड़ा। वर्षाका महीना था। वर्षा न होने पर असह्य गर्मी पड़ रही थी। अकबर प्रतिदिन औसतन पचास मीलकी गतिसे चला। कभी-कभी घोड़े और रथपर भी उसने सवारी की। प्रायः छ सौ मीलकी यात्रा अजमेर, जालोर दीसा और पाटनके रास्ते करके ग्यारहवें दिन अहमदाबादके पास पहुँचा। पाटन और अहमदाबादके बीच बालिसनाके छोटेसे कस्बेमें ठहरकर उसने अपनी सेनाका निरीक्षण किया। सब मिलाकर तीन हजार आदमी थे और शत्रुओंकी संख्या बीस हजार थी। [illegible] सौ आदमियोंको अपना शरीर रक्षक चुना, बाकी के तीन ब्रिगेड बनाये। मध्य

ब्रिगेडका संचालन अब्दुर्रहीम खानखानाको दिया, जो कि उस समय १६ वर्षका लड़का था। यह मालूम ही है, जनवरी १५६१ में बैरम खाँके मरनेपर चार वर्षके रहीमको अकबरने अपना धर्मपुत्र बनाया था और उसकी शिक्षा-दीक्षामें कोई कसर नहीं उठा रक्खी। रहीमने पहले-पहल अपने सैनिक कौशलका परिचय यहीं दिया और अन्तमें अकबरका एक बड़ा सेनापति बना।

अकबरके साथ २७ सैनिक अफसर इस दौड़में शामिल हुये थे, जिनमें १५ हिन्दू थे। लाल कलावन्त और साँवलदास, जगन्नाथ तथा ताराचन्द तीन चित्रकार थे। साँवलदास (साँवला)ने सरनालके युद्धका चित्र बनाया था, जो लन्दनकी केन-सिंग्टन म्यूजियमके एक हस्तलेखमें अब भी मौजूद है। लाल कलावन्त प्रसिद्ध गायक बीरबलके पास रहता था। बादशाही सेना अहमदाबादसे कुछ मीलपर साबरमतीके किनारे पहुँची। आशा थी, खानेआजम (कोका)की सेना यहाँ उससे मिलेगी, किन्तु वह नहीं आई। दुश्मन सोच रहे थे—सीकरी बहुत दूर है। दो हफ्तेसे पहले अकबर यहाँ नहीं पहुँच सकता। अकबरके साथ हाथी चला करते थे, वह भी साथमें नहीं थे। अहमदाबादके दरवाजोंसे निकलकर खानेआजम कहीं बादशाही सेनासे मिल न जाये, इसकी देखभाल अख्तियारुलमुल्कने अपने ऊपर ली थी। महम्मद हुसेन मिर्जा १५०० बागी मुगलोंको लिये मुकाबिलेकेलिये तैयार था। नगरके भीतरके सैनिकोंके आनेकी प्रतीक्षा करनेसे इन्कारकर जबर्दस्ती अपने घोड़ेपर चढ़ अकबर नदीकी ओर बढ़ा। सभी पीछे हो लिये। अकबरने सिर्फ दो शरीर-रक्षक अपने पास रखे। बादशाही घोड़ा घायल हो गया। खबर फैलाई गई, अकबर मारा गया। लेकिन, इसका कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि अकबर उनके साथ लड़ रहा था। महम्मद हुसेन मिर्जा घायल होकर पकड़ा गया। अकबरकी विजय हुई। अपने पाँच हजार सैनिकोंको लेकर इख्तियारुल्मुलकने पासा पलटना चाहा। वह भी मारा गया। घायल मिर्जाके कतल करनेका हुकुम देनेमें अकबरने बहुत आगा-पीछा किया, लेकिन लोगोंने सलाह दी, इस साँपको पालना अच्छा नहीं है। मिर्जा सरग सिधारा। लड़ाई समाप्त हो जानेके बाद ही खानेआजम आकर मिल सका।

इस प्रकार दो सितम्बर १५७३ को अकबरने गुजरातके भयंकर विद्रोहको दबा दिया। वहाँ तैमूरी रवाजके अनुसार दो हजार सिरोंका मीनार खड़ा किया गया। शाह मददने राजा भगवानदासके भाई भूपतको सरनालमें मारा था, बदला लेनेके लिये अकबरने अपने हाथों शाह मददका सिर धड़से अलग किया। मिर्जा भाइयोंमें शाह मिर्जा बचकर निकल भागा, लेकिन वह अकबरका कुछ बिगाड़ नहीं सका। गुजरातकी इस दूसरी विजयके बाद अकबर तीन सप्ताहमें चलकर फतहपुर सीकरी पहुँचा। सारा अभियान ४३ दिनमें खतम कर, गुजरातके फतहके बाद ५ अक्टूबर १५७३ सोमवारके दिन सीकरी (अब फतहपुर-सीकरी)में दाखिल हुआ।

गुजरातमें भूकरकी व्यवस्था बहुत खराब हो गई थी। उसके प्रबन्धकेलिये टोडरमल को भेजा, जिन्होंने छ महीनेके भीतर गुजरातकी पैमाइश करके मालगुजारी बन्दोबस्त कर दिया। शासनका खर्च निकालकर ५० लाख रुपया सालाना गुजरात शाही खजानेको मिलने लगा। राजा टोडरमलके बाद कामको ठीकसे चलानेकेलिये दूसरे वित्त-विशेषज्ञ शहाबुद्दीन अहमद खाँको १५७७ से १५८३-१५८४ ई० तक गुजरातका उपराज बनाया गया। शहाबुद्दीनने गुजरातको १६ सरकारों (जिलों) में बाँटा। गुजरातकी विजय स्थायी रही। छोटे-मोटे विद्रोह भले ही कभी हुये, नहीं तो १५७३ ई० की विजयके बाद १७५८ ई० तक गुजरात मुगल सल्तनतका रहा। अन्तमें मराठोंने उसे मुगलोंसे छीन लिया।

१५७४ ई०में सारंगपुर (अहमदाबाद, गुजरात)के हाकिम मुजफ्फर खाँ तुरवतीको बुलाकर अकबरने अपना वकील (प्रधान-मन्त्री) बना टोडरमलको उसके अधीन काम करनेकेलिये कहा। अब अकबरकी प्रशासन-व्यवस्था निश्चित रूप लेने लगी। इसी समय सरकारी सेवाके घोड़ोंको दाग लगानेका नियम स्वीकार किया गया, मन्सब (पद) निश्चित किये गये और शाही (खालसा) भूमिकी व्यवस्था स्वीकार की गई। बतला चुके हैं, मन्सबदार और नीचेके अफसर घोड़ोंको रखनेके लिये तनखा पाते थे, पर उतनी संख्यामें न रखकर पैसे अपनी जेबमें डाल लेते, एक ही घोड़ेको कई जगह दिखलाकर जाँचसे छुट्टी पा लेते थे। इसे रोकनेकेलिये हर घोड़ेके ऊपर जलते लोहेसे दाग लगानेका नियम बनाया गया—इस नियमको अलाउद्दीन खलजी और शेरशाहने भी जारी किया था। मुजफ्फर खाँसे काम न सँभलते देख उसे हटा दिया गया।

इब्राहीम पुत्र मुजफ्फर हुसेन मिर्जाके उपद्रवके समय उसे दबानेकेलिये १५७६ ई०में टोडरमलको गुजरात भेजा गया। हालहीमें टोडरमल बंगालमें सफल अभियान करके ३०४ हाथियोंके साथ दरबारमें लौटे थे। वजीर खाँकी मददकेलिये वह गुजरातकी तरफ दौड़े। अक्तूबर १५७६ में उनकी जगह ख्वाजा शाह मंसूर शिराजीको अस्थायी वित्त-मन्त्री नियुक्त किया गया। मंसूर बड़ा योग्य आदमी था। अपनी योग्यताके बलपर ही वह एक मामूली मुन्शीसे इतने ऊँचे पदपर पहुँचा था। टोडरमलका वह तब तक प्रतिद्वन्द्वी रहा, जब तक कि अपने षड्यन्त्रोंके कारण १५८१ ई०में उसे प्राणदण्ड नहीं मिला। टोडरमल मुजफ्फर मिर्जाको दबा गुजरातमें शान्ति स्थापित कर १५७७ ई०के उत्तरार्धमें कितने ही विद्रोही बन्दियोंको लिये दरबारमें पहुँचे। अब उन्हें शाही वजीरके तौरपर सारे राज्यके प्रबन्धमें लगना पड़ा।

इसी साल नवम्बरमें आकाशमें धूमकेतु दिखाई पड़ने लगा। धूमकेतु अमंगलकी सूचना है, यह आज भी विश्वास किया जाता है। शाह तहमास्पकी मृत्यु

(१५७६ ई० में)के बाद उसके उत्तराधिकारी शाह इस्माईलकी हत्या भी छत्रभंगका प्रमाण मानी गई। भारतमें भी कुछ लोगोंके ऊपर उसका असर रहा।

४. रहीम शासक (१५८४ ई०)

मुजफ्फरशाह गुजरातीने अधीनता स्वीकारकर अकबरके हाथों छोटी-सी जागीर पाई थी। १५७१ ई०में वह विद्रोह करके निकल भागा और १५८३ ई० तक जूनागढ़में रहा। शहाबुद्दीनके कितने ही अनुयायी असन्तुष्ट हो मुजफ्फरशाहके साथ मिल गये। उसने खुलकर विद्रोह शुरू किया, जो आठ वर्ष तक चलता रहा। १५८३ ई०में शहाबुद्दीनकी जगह एतमाद खाँको गुजरातका उपराज नियुक्त किया गया। एतमाद खाँको इतिहासकार निजामुद्दीन अहमद जैसा योग्य बख्शी मिला था। सब होते भी सितम्बर १५८३में मुजफ्फरशाह अहमदाबादमें दाखिल हो शाहकी उपाधि धारणकर गुजरातका बादशाह बन गया। उसने धोखेसे नवम्बरमें मड़ौचमें आत्म-समर्पण किये शाही अफसर कुतुबुद्दीनको मार डाला। इलाहाबादमें सुनकर अकबर जल्दी-जल्दी जनवरी १५८५ में आगरा लौटा—अब फतहपुर सीकरी राजधानी नहीं रह गई थी। अकबरने बैरम-पुत्र अब्दुर्रहीम—जिसे वह प्यारसे मिर्जा खान कहा करता था—को गुजरातका उपराज नियुक्त किया। रहीमने शत्रुको थोड़ी-सी सेनासे जनवरी १५८४ में, पहले अहमदाबादके पास सरखेजमें फिर नान्दौर (राज-पीपला)में हराया। मुजफ्फरशाह भागता फिरा। कच्छमें निजामुद्दीनने उसे बुरी तरह-से हराकर शरण देने वाले राजाके दो-तीन सौ गाँवोंको बरबाद कर दिया। यह खबर मिली तो अकबरने निजामुद्दीनको लौटा लिया। मुजफ्फरशाह काठियावाड़ और कच्छमें १५९१-९२ ई० तक बादशाही सेनाको हैरान करता रहा। पकड़े जाने-पर गर्दन काटकर उसने आत्महत्या कर ली। रहीमने सारे गुजरातमें शान्ति-व्यवस्था स्थापित की। इस सफलताके लिए उसे "खानखाना"की उपाधि मिली।

—०—

अध्याय १६

सीकरी राजधानी (१५७१-८५ ई०)

१. नगरचैन (१५६६ ई०)

सलीमके जन्मसे कुछ पहले सन्त सलीम चिश्तीपर अकबरकी भक्ति हो गई थी। इसीलिये सन्तके स्थान सीकरीमें वह अपनी राजधानी ले गया। इससे पहले राजधानी आगरा थी, जो बाबरके समय हीसे द्वितीय राजधानी चली आई थी। अकबरने आगरामें कई इमारतें बनवाईं—अभी आगराके लाल किलेके बनानेमें देर थी। अकबर नगरके पास कोई दूसरी सुहावनी जगह तलाश कर रहा था। मांडूसे १५६४ ई०में लौटते समय आगरासे सात मील दक्षिण ककराली उसे बहुत पसन्द आई। वहाँ उसने नगरचैन (अमनाबाद) की नींव डाली। एक सुन्दर बगीचेके बीचमें बादशाहकेलिए महल बना। आसपास अमीरोंने भी अपने महल बनवाये। इस प्रकार नगरचैनने एक अच्छी-खासी नगरीका रूप धारण कर लिया। अकबरने कितने ही राजदूतोंसे भी यहीं भेंट की। पीछे सीकरी ने अपनी ओर खींच और अकबरको राजनीतिक संघर्षोंमें भाग लेनेकेलिए हर वक्त रिकाबमें पैर रखनेके लिए मजबूर होना पड़ा, इस प्रकार नगरचैन दिलसे उतर गया। आगराके मह मांडूमें ककराली गाँवके पास अब भी नगरचैनके कुछ ध्वंस मौजूद हैं, यद्यपि बाग पता नहीं है।

आगरामें पहलेसे भी बादलगढ़के नामसे ईंटोंका बना एक किला था। इसी भीतर १५६१-६२ ई०के आरम्भमें अकबरने बंगालीमहलके नामसे एक इमारत बनवाई, जिसके अवशेष अब भी आगराके किलेमें मौजूद हैं। १५६५ ई० (सन-जलूस १०)में अकबरने कासिम खाँको किलेको लाल पत्थरका बनानेका हुकुम दिया। कहाँ गोरके अनुसार इसके बनानेमें १५-१६ साल और ३५ लाख रुपये लगे। किसानों पर इसके खर्चकेलिए खास कर लगाया गया। अकबरने किलेके अतिरिक्त पाँच सौ दूसरी इमारतें भी बनवाईं, जिनमेंसे बहुतोंको गिरवाकर शाहजहाँने अपनी रुचिकी इमारतें बनवाईं। अकबरका बनवाया जहाँगीरी महल अब भी मौजूद है।

२. पीरों की भक्ति

१५६४ ई०में अकबरको जुड़वे लड़के पैदा हुए, जिनका नाम उसने हसन ...र हुसेन रक्खा था। हसन-हुसेन एक महीने ही तक इस दुनियामें रह सके। अकबरके

हरममें बेगमों और रखेलियोंकी गिनती नहीं थी, पर कोई सन्तान नहीं थी। यद्यपि २५-२६ वर्ष कोई ऐसी उमर नहीं है, जिसमें सन्तानसे निराश होनेकी जरूरत हो, तो भी अकबर अधीर होने लगा। इस समय वह पक्का मुसलमान था। पीरों-फकीरों और उनकी कब्रोंसे मुराद पाने की बात पर आजकी तरह उस वक्त भी मुसलमानों में दृढ़ विश्वास था। अकबर कभी दिल्लीके निजामुद्दीन औलियाकी कब्रपर जाकर माथा टेकता, कभी ख्वाजा अजमेरीके मजारपर—अजमेरमें प्रतिवर्ष जियारत के लिए जाता। यह नियम १५७९ ई० तक बराबर चलता रहा। ख्वाजा अजमेरीकी शिष्य-परम्परा हीमें शेख (सन्त) सलीम चिश्ती थे, जो आगरासे २३ मील पश्चिम सीकरीकी पहाड़ीमें रहा करते थे। उनकी सिद्धाईकी बड़ी ख्याति थी। लोग मानते थे, कि उनकी दुआसे मुरादें पूरी हो जाती हैं। चरणोंमें पड़नेपर शेखने तीन पुत्रोंके होनेकी भविष्यद्वाणी की। १५६९ ई० में कछवाही बेगम गर्भसे हुई। अकबरने चाहा, उसकी पहली सन्तान शेख सलीमके चरणोंमें ही हो, इसलिये अपनी बेगमको शेखके झोपड़ेमें भेज दिया। वहीं ३० अगस्त १५६९ को बेटा पैदा हुआ, जिसका नाम शेखके नामपर सलीम रक्खा गया। उसी साल नवम्बरमें एक लड़कीभी पैदा हुई, जिसका नाम खानम सुल्तान पड़ा। अगले साल ८ जूनको एक रखेलके पुत्र हुआ, जिसका नाम मुराद था, पर सीकरीकी पहाड़ीमें पैदा होनेके कारण अकबर उसे "पहाड़ी" कहता था। तीसरा पुत्र भी एक रखेलसे १० सितम्बर १५७२ को अजमेरमें पैदा हुआ। अजमेरके सन्त शेख दानियालके घरमें पैदा होनेके कारण उसका नाम दानियाल रक्खा गया। अकबरकी दो और लड़कियाँ शुकरुन्निसा और आरामबानू हुईं। इस प्रकार अकबरके तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं। पुत्रियोंमें खानम सुल्तान और शुकरुन्निसाका ब्याह हुआ था, आरामबानू अविवाहित ही जहाँगीरके शासनमें मरी। इसके पीछे मुगल शाहजादियोंके अविवाहित रहनेकी प्रथा चल पड़ी।

अप्रैल १५७२ में सन्तान-सम्बन्धी मनौतीके अनुसार अकबर पैदल ही जियारतके लिए रवाना हुआ और १४ मील प्रतिदिनकी चालसे १६ मंजिलोंको पार कर अजमेर पहुँचा। वहाँसे दिल्ली निजामुद्दीन औलियाके चरणोंमें भक्ति प्रकट करनेके लिए गया। उसी साल सितम्बरमें वह फिर अजमेरसे लौटा और वहाँ नागौरमें भी उसने कुछ इमारतें बनवाईं, जिनमें एक १७ छेदोंका फौवारा भी था। इसी साल उसने बीकानेर और जैसलमेरकी राजकुमारियोंसे ब्याह किया और मालवाके सुल्तान बाजबहादुरने भी आत्मसमर्पण किया। जान पड़ता है, राजस्थानमें जंगली गदहे उस समय मौजूद थे। एक दिनमें अकबरने १६ गदहे मारे थे। पुत्र-लाभकी खुशीमें वह पजाबकी भी कई जियारतोंमें गया।

१५७१ के अगस्तमें वह सीकरी चला आया। इसी साल तूरान (मध्य एसिया) के शक्तिशाली उज्बेक खान अब्दुल्लाका दूत दरबारमें हाजिर हुआ।

२. राजधानी-निर्माण

[illegible] अकबरीनामा [illegible] और [illegible] लगा। [illegible]—

"बादशाहके महानदिग पुत्र (सलीम और मुराद) सीकरीमें पैदा हुये। [illegible] था। इस [illegible] बादशाहने हुक्म दिया, शाही इमारतें बनाई जायँ।"

सीकरी गांवके बाहर और [illegible] लगी, पर यह अभी पूरी नहीं हुई। शाही महल और [illegible] इमारतें बनने लगी, [illegible] और दूसरे लोगोंके रहने-सहनेके लिए मकान तैयार किये। [illegible] बाद नगरीका नाम फतेहाबाद रखा गया, पर फतेहपुर ही के नामसे लोगोंने इसे स्वीकार किया। सलीम चिश्ती इन सूनी पहाड़ोंमें अपनी खानकाहमें [illegible] १५३७-३८ ई० से रहने लगे थे। अब यहीं फतेहपुरी बनने लगी। [illegible] बहुतायतसे मिलता है। इमारतोंके बनानेमें उसे [illegible] इस्तेमाल किया गया। शायद [illegible] मस्जिद सीकरीकी सबसे पुरानी इमारत है, जो शाही महलोंसे तीस वर्ष पहले बनाई गई थी।

सलीम चिश्ती एक [illegible] और महत्वपूर्ण फकीर थे। उन्होंने २२ हज किये। पहली बार [illegible] १४ दूसरी बार ८ हज किये। आखिरी बार चार वर्ष मदीनामें रहे और चार वर्ष मक्कामें। मदीनामें रहते भी हजके समय मक्का चले जाते थे। यह बहुत अच्छे विद्वान थे। मक्कावाले उन्हें शेखुलहिन्द (हिन्दुस्तानके सन्त) कहते थे। हजों और यात्राओंके बाद हिजरी ९७१ (१५६३-६४ ई०)में भारत लौट आये। सीकरीकी पहाड़ी गुहामें [illegible] सन्त निजामी* भी कितने ही समय तक रहे। यहीं सलीमने भी अपना डेरा डाला। धीरे-धीरे यहाँ खानकाह (मठ) और मस्जिद बन गई। उसी जगह पीछे हि० ९८२ (१५७४-७५ ई०)में अकबरने इबादतखाना (पूजागृह) की बड़ी इमारत बनवाई। इबादतखानाके पास ही अनूपतालाब था, जिसे अकबरने एक करोड़ रुपयेके चाँदी-सोनेके सिक्कोंसे भरवा दिया था। तालाबके किनारे महल और बैठकें बनी हुई थीं, जिसकी दीवारों-दरवाजों, आँगनों और ताकों की मेहराबोंको जरीके पर्दोंसे सजाया गया था, नीचे मखमली फर्श और रेशमी कालीन बिछे थे। इबादतखानेमें अमीर पूर्वमें, सैयद पश्चिममें, आलिम और मौलवी दक्षिणमें तथा सन्त फकीर उत्तरमें बैठा करते थे। बादशाह जिसपर खुश होता, उसे मुट्ठी भर कर अशर्फियाँ देता। हिजरी ९८३ (१५७५-७६ ई०)में [illegible]

*इन्हें सलीमका भी शिष्य कहा जाता है।

स्वामी मिर्जा सुलेमान अपने पोते शाहरुखके कारण भाग कर हिन्दुस्तान आया, उसका स्वागत अकबरने अनूप तालावके ऊपर किया था।

सलीम चिश्तीके दर्शनके लिए यहीं पर उनकी झोपड़ीमें अकबर आता। मुल्ला बदायूँनी भी शेखकी सेवामें अक्सर हाजिर हुआ करते। मुल्ला कहते हैं—"मैंने जो उनकी करामात यह देखी, कि जाड़ेके मौसिममें फतेहपुर जैसे ठण्डे स्थानमें उनके पास सूती कुर्ता और मलमलकी चादरके सिवा कोई और पोशाक न होती थी। सत्संगके दिनोंमें वह दो बार स्नान करते। खाना आधा तरबूजसे भी कम था।" जहाँगीरने अपनी तुजुकमें लिखा है—"एक दिन मेरे पिताने पूछा : आपकी उमर क्या होगी और आप कब तक इन्तिकाल फरमायेंगे। शाहने फरमाया : गुप्त बातका जाननेवाला खुदा है। बहुत पूछा, तो मेरी (सलीम, जहाँगीर की) ओर इशारा करके फरमाया : 'जब शाहजादा इतना बड़ा होगा, कि किसीकी याद करवानेसे कुछ सीख ले।" शेख सलीमको गाना-बजाना सुननेका बड़ा शौक था, तानसेन तथा दूसरे शाही कलावन्त उनकी सेवाके लिए आया करते थे। हिजरी ६७६ (१५७१-७२ ई०)में ६५ वर्ष की उमरमें सलीमका देहान्त हुआ, अर्थात् अकबरने जब सीकरीमें रहना शुरू किया, उसके थोड़े ही दिनों बाद। शेख बाल बच्चेदार आदमी थे। उनके बड़े बेटे शेख बदरुद्दीन बापके कदमोंपर चलना चाहते थे। मक्कामें गर्मियोंके दिनोंमें नंगे पाँव काबाकी परिक्रमा करते पैरोंमें छाले पड़ गये, बुखार आया और हिजरी ६६० (१५८०-८१ ई०)में वहीं मर गये। दूसरे बेटे शेख इब्राहीमका देहान्त हिजरी ६६६ (१५६०-६१ ई०) में हुआ। सन्तके घरमें लक्ष्मी बरस रही थी, यह इसीसे मालूम होगा, कि शेख इब्राहीमने मरते वक्त २५ करोड़ नकद छोड़ा। यदि यह दाम भी हों, तो भी साढ़े ६२ लाख रुपये होते हैं। इसके अलावा हाथी-घोड़े और दूसरी चीजें अलग थीं। शेख जीवन दूसरे शाहजादे थे, जिनके साथ जहाँगीरने दूध पिया था। वही बड़ा होकर नवाब कुतुबुद्दीन खाँ बने। नूरजहाँ को उड़ा लानेके लिए शेर अफ़गनका शिकार करनेके वास्ते जहाँगीरने अपने इसी गुरुपुत्रको भेजा था। गुरुपुत्र शेर अफ़गनके साथ बहिश्तके यात्री बने—उसी साल जबकि अकबरका देहान्त हुआ।

यद्यपि सीकरीमें इमारतों का निर्माण १५६६ ई०में शुरू हुआ, पर अकबरने दो वर्ष बाद (१५७१ ई० से) यहाँ रहना शुरू किया। सीकरीमें आने से पहले ही अकबरके हृदयमें देशके प्रति विशेष पक्षपात हो चुका था, इसीलिये सीकरीकी इमारतोंपर भारतीय वास्तुकला की स्पष्ट छाप मालूम होती है। जहाँगीरी महल (जोधाबाई महल) यहाँकी सबसे बड़ी और पुरानी इमारतोंमें है। शायद इसमें ही सलीमकी माँ कछवाहा रानी (मरियम जमानी) रहती थी। वैसे सलीमकी एक बेगम तथा शाहजहाँकी माँ जोधपुर-कुमारी भी थी। बड़ी मस्जिदको मक्काकी मस्जिदके नमूने पर बनाया गया था, जिसकी समाप्ति हिजरी ६७६ (२६ मई १५७१-१५ अप्रैल १५७२)

में हुई। मस्जिदके विशाल फाटक (बुलन्द दरवाजा) की समाप्ति चार साल बाद हुई। इसे १५७२ ई० में गुजरातके दुबारा विजयके स्मारकके तौरपर बनवाया गया। दूसरी परम्परा बतलाती है, कि दक्खिन विजयके बाद (हिजरी १०१० सन् १६०२ ई०) उसीके स्मारकके तौरपर इसे बनवाया गया। लेकिन, १५८२ ई०के बाद अकबर मुसलमान नहीं रह गया था, इसलिये इस समय मस्जिद के दरवाजे बनानेकी संभावना नहीं। १५८५ ई०में ही अकबरने सीकरीको ध्वस्त होनेके लिये छोड़ दिया, इसलिये भी यह संभव नहीं।

१५६६ ई०में सलीमका जन्म हुआ था। अकबर आमतौरसे अब सीकरी ही रहने लगा। तूरानी उज्बेकोंके हमलेके डरसे १५८५ की शरदमें अकबरने सदाके लिए सीकरी छोड़ दी। सन्त-भक्तिके जोशमें अकबरने सीकरीको राजधानी बना दिया, लेकिन इतनी बड़ी नगरीके लिए वहाँ कई दिक्कतें थीं। सबसे बड़ी समस्या पानीकी थी। अकबरने पहाड़ीके उत्तर छ मील लम्बी दो मील चौड़ी एक विशाल झील बनवाई। १५८२ ई० में अतिवृष्टिके कारण इसका बाँध टूट गया, जिससे मालूम हुआ कि नगर की स्थिति अनुकूल नहीं है। अन्तिम बार सीकरी छोड़नेके थोड़े ही समय बाद सितम्बर १५८५ में अँग्रेज राल्फ फिच वहाँ पहुँचा था। वह लिखता है—

"आगरा बहुत जनसंकुल और महान नगर है। इमारतें पत्थरकी बनी हुई हैं। अच्छी लम्बी सड़कें हैं। पासमें एक बढ़िया नदी (जमुना) बहती है, जो आगे बंगालकी खाड़ीमें गिरती है। बहुत अच्छी खाईं के साथ यहाँ एक बढ़िया और मजबूत किला है। नगरमें बहुत से मुसलमान और हिन्दू रहते हैं। राजा का नाम खेलाबदीन (जलालुद्दीन) एखेबर (अकबर) है।...यहाँसे हम फतेहपुर गये, जहाँ पर बादशाहका दरबार था। यह नगर आगरासे बड़ा है, लेकिन मकान और सड़कें उतनी अच्छी नहीं हैं। यहाँ बहुतसे मुसलमान और हिन्दू रहते हैं।... बतलाया जाता है, बादशाहके पास हजार हाथी, ३० हजार घोड़े, १४०० पालतू चीते, ८०० बेगमें, बहुतसे बाघ, भैंसे, मुर्गे, बाज रहते हैं, जिन्हें देखकर बड़ा अचरज होता था।...आगरा और फतेहपुर दोनों बड़े शहर हैं। उनमेंसे हरेक लन्दनसे बड़ा और बहुत जन संकुल है। आगरा और फतेहपुरके बीच बारह कोस, (२३ मील) का अन्तर है। सारे रास्तेमें खाने-पीनेकी और दूसरी दूकानें हैं...। लोगोंके पास बहुत बढ़िया रथ हैं, जिनमेंसे कितने ही चारकार्य और सोनेके मुलम्मेसे सज्जित हैं। इनमें दो पहिया होती हैं, दो बैल खींचते हैं...। इन्हें घोड़ा भी खींच सकता है। इनमें दो-तीन आदमी बैठ सकते हैं। इनके ऊपर रेशम या और किसी कीमती कपड़े का ओहार पड़ा रहता है।...सारे भारत और ईरानके व्यापारी यहाँ रेशमी तथा सूती कपड़े, बहुमूल्य पत्थर—लाल, हीरा और मोती—बेचनेके लिये लाते हैं।...फतेहपुर

र दीनों २८ सितम्बर १५८४ तक रहे।...मैंने ह्वोहरी विलियम लीड्सको फतेहपुरमें
लाउदीन एलबरकी सेवामें छोड़ दिया, जिसने उसकी बहुत खातिर की। एक घर,
चि गुलाम, एक घोड़ा और प्रतिदिन छ शिलिंग (४ रुपया) नकद देता था।...
ागरामें १८० नावोंपर नमक, अफीम, हींग, सीसा, कालीन और दूसरी चीजें भर
र जमुना द्वारा मैं सतगाँव (सातगाँव हुगली जिला) गया।"

राजधानीके हटते ही सीकरीकी दशा बिगड़ने लगी। दरबार और अमीरोंके
र रहनेपर व्यापारी सीकरीमें क्या करते? यद्यपि इसका यह मतलब नहीं, कि वह
तुरन्त उजड़ गई। (आज भी सीकरी प्रायः दस हजार आबादीका एक अच्छा खासा
कस्बा है।) मुहम्मदशाह (१७१९-४८ ई०) थोड़े दिनों तक यहाँ आकर रहा, इस
प्रकार अठारहवीं सदीके पूर्वार्धमें चार दिनोंकी चाँदनी आ गई।

अकबर उस समय यहाँ आया था, जब धर्मोंके बारेमें उसे तीव्र जिज्ञासा
थी। १५७४ से १५८२ ई० तक भिन्न-भिन्न धर्मोंके विद्वान् यहीं शास्त्रार्थ करते थे।
"वादे वादे जायते तत्त्वबोधः"के अनुसार अकबरको यहीं तत्त्वबोध हुआ, कि
इस्लाममें उसकी आस्था नहीं रह गई।

सीकरीमें बादशाही इमारतें १५७०से १५८० ई०के बीचमें बनीं। इसके बाद
कुछ छोटी-मोटी मस्जिदें और कब्रें भर बनवाई गईं। सीकरी छोड़ देनेके बाद मई
१६०१ में दक्षिण-विजयसे लौटते वक्त आगरा जाते समय उसने अपनी पुरानी
जधानीको सिर्फ एक नजर देखा था।

अकबरकी यह नगरी पहाड़ीके ऊपर पूर्वोत्तरसे पश्चिम-दक्षिणकी ओर सात
ीलके घेरेमें लम्बी चली गई थी। नगरके पश्चिमोत्तरमें बीस मीलके घेरेमें कृत्रिम
झील थी, जो पानी देनेके साथ-साथ एक और नगरकी रक्षा-परिखाका भी काम
रता था। बाकी तीन तरफकी चहारदीवारियोंका सैनिक मूल्य कुछ भी नहीं था।
गरमें नौ दरवाजे थे, जिनमें चार मुख्य थे—आगरा-दरवाजा (उत्तर-पूर्व), दिल्ली-
रवाजा अजमेरी-दरवाजा, ग्वालियर अथवा धौलपुर दरवाजा। दूसरे दरवाजे
—लाल-दरवाजा, बीरबल-दरवाजा, चदनपाल-दरवाजा, टेढ़ा-दरवाजा और
चोर-दरवाजा। शाधु मोनसेरेत बहुत समय तक सीकरीमें रहा। वह चार ही
दरवाजोंका उल्लेख करता है।

विन्सेन्ट स्मिथने सीकरीकी इमारतोंके बारेमें लिखा है—

"दर्शक उत्तर-पूर्वमें अवस्थित आगरा दरवाजे से जब भीतर घुसता है, तो
वह एक बाजारके ध्वंसावशेषके भीतरसे होता नौबतखाना पहुँच टकसाल और
खजानाकी इमारतोंके बीच हो एक चौकोर मैदानमें पहुँचता है। इसीके पश्चिममें
दीवान-आम है। सड़कसे और दक्षिण-पश्चिम जानेपर दूसरा मैदान मिलता है,

जिसके उत्तरमें ख्वाबगाह (शयनागार) और दक्षिणमें दफ्तरखाना है। फिर यह बड़ी मस्जिदसे शाही दरवाजेपर पहुँचती है।

"दीवान-आमके पश्चिम तथा पासमें दीवानखाना और अन्तःपुरकी इमारतें हैं, जो दक्षिण-पश्चिमकी ओर बड़ी मस्जिदके पास तक चली गई हैं। कितनी ही इमारतें गिर गई हैं, लेकिन अब भी अकबरकी बनवाई काफी इमारतें मौजूद हैं। शाही दरवाजा (बुलन्द दरवाजा) सीकरीकी बहुत विशाल और आकर्षक इमारत है और जैसा कि बतलाया, इसे द्वितीय गुजरात-विजयके उपलक्षमें बनवाया गया था। मुसलमान रहते समय अकबर इसी दरवाजेसे नमाज पढ़ने जाता रहा होगा। एक बार उसे स्वयं इमाम बन कर मस्जिदमें खुतबा (उपदेश) पढ़नेका शौक चर्राया था। १५८१ ई०में काबुलमें रहते वक्त भी इस्लामका बहुत पाबन्द था। आगे इस (१५८२ ई०) "दीनइलाही"की घोषणाके साथ नमाजकी जगह वह दिन-रातमें चार बार सूर्य-पूजा करने लगा।

"इसी मस्जिदके भीतर शेख सलीम चिश्तीका मजार है। शेखकी मृत्यु १५७१ ई०में हुई थी। इसके बादके वर्षोंमें यह इमारत बनाई गई। ऊपरका गुंबोला संगमर्मर नहीं, बल्कि लाल पत्थरका है, जिसके ऊपर पहले सफेद प्लास्तर भी था। इस इमारतमें कुछ वृद्धि, जहाँगीरके दूधभाई सलीम-पुत्र कुतुबुद्दीन (मृ० १६०७) ने की। मजारकी बनावट इस्लामिक नहीं, बल्कि हिन्दू है, जो अकबरकी इमारतोंके लिए स्वाभाविक है। जहाँगीरके कथनानुसार समाधि और सारी मस्जिदके बनानेपर पाँच लाख रुपये खर्च हुए थे। जहाँगीरके कहनेसे यह भी मालूम होता है, कि अकबरने समाधि लाल पत्थरकी बनवाई थी, जिसमें संगमर्मरका काम जहाँगीरने बढ़वाया।

"सलीम चिश्तीके मजारको छोड़ सीकरीकी सभी इमारतें लाल पत्थरकी हैं जो आसपासमें बहुतायतसे मिलता है। अकबरी इमारतों को संगमरमर, सीप और दूसरी वस्तुओंसे, और दीवारों और छतोंको सुन्दर चित्रोंसे अलंकृत किया गया था। ख्वाबगाह और मरियम-महलकी दीवारोंमें अब भी उसके कुछ चिन्ह मिलते हैं। बीरबल महल फतेहपुर सीकरीकी इमारतोंमें एक दुमंजिला छोटी-सी पर, बहुत ही सुन्दर इमारत है, जिसका निर्माण १५७२ई० में हुआ था। इसका निर्माण हिंदू-मुस्लिम मिश्रित शैली तथा प्रस्तर-शिल्प कलाका उत्कृष्ट नमूना है। छत पत्थर शैलीके गोल गुम्बद की है।

"दीवान-खास बाहरसे देखनेपर एक दुमंजिला इमारत मालूम होती है, लेकिन भीतर जाने पर फर्शसे छत तक वह एक ही कमरा है। बीचमें बहुत ही अलंकृत एक षट्कोण पाषाण-स्तम्भ है। इसीके ऊपर अवस्थित गद्दीपर बैठकर अकबर राजकाज देखता था। कमरेके चारों कोनों पर चार मन्त्री—खानखाना, बीरबल, अबुलफजल और

टेकी—लड़े रहते थे।" विन्सेन्ट स्मिथ सीकरीके बारेमें कहता है—"फतेहपुर सीकरी जैसी कोई कृति न उससे पहले निर्मित हुई और न आगे निर्मित की जा सकेगी। यह पाषाणमय अद्भुत घटना, अकबरके विचित्र स्वभावकी क्षणिक भावनाओंका साकार रूप है। उसके उस मूडमें रहते समय बिजलीकी गतिसे आरम्भ करके इसे पूरा किया गया।...दुनिया उस तानाशाहकेलिये कृतज्ञ होगी, जो कि ऐसी प्रेरणादायक चेष्टा ही कर सकता था।"

—०—

अध्याय २०

बंगाल-बिहार विजय (१५६६-८७ ई०)

अकबरको अपनी सल्तनतके हृदय भागपर अधिकार करनेमें बहुत दिक्कतका सामना नहीं करना पड़ा। गुजरात भी दो ही बार फिर हमला करना पड़ा। लेकिन, बिहार, बंगाल, काबुल और दक्खिनने उसको बहुत तंग किया। दक्खिनको तो वह पूरी तौरसे अपने हाथमें कर भी नहीं सका। उसके बेटे और पोते इसीमें उलझे रहे, औरंगजेबके शासनका तो आधा समय इसीके संघर्षमें बीता और वह वहीं औरंगाबादके पास खुल्दाबादमें १७०७ ई०में मरा।

१. सुलेमान करानी संघर्ष (१५६६ ई०)

बंगाल-बिहार शेरशाहका गढ़ था। इसीके बलपर वह दिल्लीपर झंडा गाड़नेमें सफल हुआ था। इसे सर करनेमें अकबरको दसबीस वर्ष लगे। बंगाल और बिहार सदियोंसे पठानोंका गढ़ बना आया था। उनके साथ वहाँके हिंदू राजपूत भी मिल गये थे। इसी वंशके बादशाह शेरशाह और उसका पुत्र इस्लामशाह दो ही असली बादशाह हुये। सलीमशाहके बेटे तथा अपने भान्जेके गलेपर हाथ फेर कर अदलीने सल्तनतकी बागडोर सँभाली। पर, उसकी बेपर्वाही और अत्याचारसे पठान नाराज हो गये। बंगालमें करानी पठानोंका जोर था। उन्हें दबानेके लिये अदली ग्वालियरसे बंगाल गया, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। बंगालके हाकिम ताज खाँने सूरियोंकी अधीनता स्वीकार की थी। सलीमशाहके मरनेके बाद सूरोंमें दौर-दौरा होते ही करानी उससे अलग हो गये। इन्हींका सरदार ताज खाँ था। उसके मरनेके बाद उसका स्थान छोटे भाई सुलेमान करानीने लिया। उसके शासनमें बनारससे कामरूप (आसाम) और उड़ीसा तकका भूभाग था। उसने अपने नामके साथ बादशाह नहीं जोड़ा, वह हमेशा "हजरत आला" (महाप्रभु) लिखवाता था। सुलेमानने बंगालके पुराने सुल्तानोंकी राजधानी गौड़पर १५६४ ई०में अधिकार किया। पहले वही राजधानी रहा, लेकिन वह मलेरियाका घर था, इसलिये उससे दक्षिण-पश्चिम गंगापार टाँडाको उसने अपनी राजधानी बनाया। आजकल टाँडा गंगाके गर्भमें आ चुका है, इसलिए वहाँ उस समयकी कोई निशानी नहीं मिलती।

सुलेमानने रोहतासके किलेको लेना चाहा, जिसमें अब भी बादशाही फौज पड़ी हुई थी। १५६६ ई०में अकबरने खानजमांको भेजा। जौनपुर आदि लेते उसने जमानिया (जिला गाजीपुर) में अपने नामसे शहर बसाया। सुलेमानने बादशाही फौजसे लड़ना पसन्द नहीं किया। अधीनता स्वीकार करते मस्जिदोंमें उसने अकबरके नामका खुतबा पढ़वाया। खानजमांके विद्रोह करने पर सुलेमानने अकबरका साथ दिया। सुलेमान अपने इस्लाम-प्रेमके लिये भी बहुत मशहूर था। उसके साथ डेढ़ सौ आलिम और सन्त बराबर रहते थे। भिनसार ही उठकर नमाज पढ़ता, उसके बाद सूर्योदय तक धर्म-चर्चामें बिताता। हिजरी ९८० (सन् १५७२ ई०)में सुलेमान मर गया। उसका बड़ा लड़का बायजीद गद्दीपर बैठा। कुछ ही महीनों बाद अफगान सरदारोंने उसे मार कर छोटे लड़के दाऊदको गद्दीपर बैठाया। इस समय लोदी खानकी चलती थी, जिसकी रायसे दाऊदको गद्दी मिली। पर, गूजर खाँ अपनेको बड़ा समझता था। उसने बिहारमें बायजीदके बेटेको गद्दीपर बिठा दिया। लोदीने समझा बुझा कर झगड़ेको आगे बढ़ने नहीं दिया। दाऊद अकबरके अधीन रहनेके लिए तैयार नहीं था। उसने बादशाहकी उपाधि धारण की, अपने नामका खुतबा पढ़वाया और दाऊदी सिक्के जारी किये। उसके बाप और चचा अफगानोंसे भाईचारेका रिश्ता रखते थे। दाऊद उनके साथ नौकरों जैसा बर्ताव करने लगा।

२. दाऊद खाँका विद्रोह (१५७२ ई०)

दाऊदको अपनी शक्तिका बड़ा घमण्ड था। उसके पास ४० हजार सवार, एक लाख चालीस हजार पैदल सेना थी, तरह-तरहकी बीस हजार बन्दूकें और तोपें, ३६०० हाथी और कई सौ युद्ध-पोत थे। वह जानता था, अकबर उसके व्यवहारको क्षमा नहीं कर सकता, इसलिये अकबरके आनेसे पहले ही उसने खानजमांके बनाये जमानियाँके* किले पर अधिकार कर लिया।

खबर पानेपर अकबरने मुनअमखाँ खानखानांको जौनपुरके सिपहसालार से मिलकर आगे बढ़नेका हुकुम दिया। मुनअम एक बड़ी सेना लेकर पटना पहुँचा। लोदी खाँ—दाऊदके वजीरने—उसका मुकाबिला किया। बूढ़े मुनअम खाँमें अब जवानीका जोश नहीं था। मामूली संघर्षके बाद उसने नरम शर्तोंके साथ दाऊदसे सुलह कर ली। अकबरने इसे पसन्द नहीं किया और अपने "सर्वश्रेष्ठ जेनरल" राजा टोडरमलको बिहारकी सेनाका कमाण्डर बनाकर भेजा। वित्तमंत्रीका काम कुछ समयके लिये राय रामदासके ऊपर छोड़ टोडरमल बिहारकी ओर बढ़े। यद्यपि दाऊद खाँको गद्दीपर बैठानेमें लोदी खाँका बड़ा हाथ था, पर उसे बूढ़ेसे बहुत डर लगा

*जमानियाको खानजमाँ अलीकुली खाँ शैबानीने बसाया था, परलाल बुझक्कड़ उसे यमदग्नि ऋषिके साथ जोड़ कर सतयुगमें ले जाना चाहते हैं।

रहता था, इसलिये उसने धोखेसे गरवा दिया; अकबरकी सेनाका सिर एक बदंत शत्रुसे अनायास ही छूट गया। अकबरकी फटकार खाकर बूढ़े मुनअम खाँने लौट कर पटनाका मुहासिरा किया। सफलता न देखकर अकबरको आनेके लिये लिखा। वह धार्मिक जियारत करके अभी-अभी अजमेरसे लौटा था। २२ अक्टूबर १५७३ को पुत्रोंका खतना फतेहपुर सीकरीमें हुआ। सलीम उस समय चार वर्षसे थोड़ा ही बड़ा था। फैजी कुछ वर्ष पहले (१५६७ ई०) दरबारमें पहुँचकर कविराज (मलकुश शोअरा) बन चुका था। १५७४ ई०के आरम्भ में छोटा भाई अबुलफजल भी दरबारमें आ चुका था। इसी समय इतिहासकार मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी दरबार में आया।

मुनअम खाँका सन्देश मिलते ही १५ जून १५७६ को अकबर जमुनाके रास्ते एक बड़ी सेना लेकर चला। बादशाहके लिये दो बड़े-बड़े बजड़े थे। नावोंको सजाया गया था। उनपर बाग लगा दिया गया था। दो-दो हाथियोंके साथ विशाल हाथी भी नावपर जा रहे थे। सेनापतियोंमें राजा भगवानदास, कुँवर मान सिंह, राजा बीरबल, शाह बाज खान और नौ-सेनापति (मीरबहर) कासिम भी थे। बरसातकी नदीमें नावोंके लिये खतरा भी था, पर, बड़ी-बड़ी नावोंके लिये इस समय नदीमें पर्याप्त पानी भी होता था। रास्तेमें कई नावें रह गईं; ग्यारहको इलाहाबादमें भी छोड़ना पड़ा। २६ दिनकी नदी-यात्राके बाद वाराणसी (बनारस) पहुँच कर अकबर तीन दिन वहाँ ठहरा। फिर गोमती और गंगाके संगमके आगे सैदपुरमें लश्कर डाला। यहीं स्थल-मार्गसे आनेवाली सेना भी आ मिली। बरसात सैनिक अभियानका समय नहीं है। दसहरेके बाद ही हमारे यहाँ अभियान किये जाते थे। लेकिन, अकबर ऐसी रूढ़िको माननेवाला नहीं था। पहले हीसे योजना बन चुकी थी। सैदपुरके आगे अब लड़ाईका मैदान आनेवाला था, इसलिये अकबर ने बच्चों बेगमोंको जौनपुर भेज दिया। मुनअम खाँको सदेश भेजा: मैं तुरन्त पहुँच रहा हूँ। सैदपुरसे चलकर प्रसिद्ध चौसाघाटपर पहुँचा—वही चौसा, जहाँ १५३९ ई०में हुमायूँने शेरशाहसे हार खाकर तख्तको खोया था। सेना नावसे उतर गंगाके दक्षिणी किनारे पर से चली। यहीं अकबरको शुभ समाचार मिला, कि सिन्धका प्रसिद्ध किला भक्कर (सक्खर और रोड़ीके बीच सिन्धके एक पहाड़ी द्वीपके ऊपर) सर हो गया। अकबर नाव द्वारा ही चल ३ अगस्त १५७४ को पटनाके पास जाकर उतर गया। सैनिक परिषद् बैठी। पता लगा, पटनाको अधिकाश रसद गंगा पार हाजीपुरसे मिल रही है। पहले हाजीपुरपर अधिकार करना आवश्यक समझा गया। वर्षाके कारण यहाँ गंगा, सोन, गण्डक सभी नदियाँ बढ़ी हुई थीं। गंगाका -तो कई मीलका था। हाजीपुरपर अधिकार करनेमें दिक्कत हुई, लेकिन वह -हो गया। पठान सरदारों के सिरोंको नावोंमें रखकर अकबरके सामने ले गये। ने उन्हें दाऊदके पास भेज दिया।

उसी दिन कुम्हराड़से दक्षिण पूर्व प्रायः एक मीलपर अवस्थित पंजपहाड़ीके ऊपर चढ़ कर अकबरने चारों ओर देखा। पंजपहाड़ी पहाड़ी नहीं मौर्यकालके स्तूपोंके अवशेष हैं, जो छोटी-मोटी पहाड़ीसे मालूम होते हैं। दाऊदके पास अब भी २० हजार सवार, बहुतसे जंगी हाथी, तोपें और दूसरे युद्ध-साधन थे, लेकिन उसे आगम अँधेरा मालूम होने लगा और रातको ही वह पटना छोड़कर बंगालकी ओर भाग गया। अकबर उसी रात पटनामें दाखिल होना चाहता था, लेकिन उसे समझा-बुझाकर सवेरे तकके लिये रोका गया। सबेरे दिल्ली दरवाजेसे वह शहरमें प्रविष्ट हुआ। तीस कोस (प्रायः ६० मील) तक दुश्मनका पीछा किया गया। २६५ हाथी और अपार सम्पत्ति हाथ आई; लेकिन दाऊद हाथसे निकल गया। पीछा करनेमें जल्दी करनेकी जरूरत नहीं, इसे अकबरने नहीं माना और मनुअम खाँको बंगालका सूबेदार (सिपहसालार) नियुक्त करके २० हजार सेनाके साथ दाऊदके पीछे जानेका हुकुम दिया। टोडरमल बूढ़ेकी सहायताके लिये भेजे गये। जौनपुर, बनारस, चुनार और कितने ही दूसरे इलाके सीधे शाही प्रबन्ध (खालसा)में कर लिये गये। अकबर लौट पड़ा। सितम्बरके अन्तमें खानपुर (जिला जौनपुर)में पड़ाव पड़ा था। यहीं उसे मुनअम खाँकी सफलताकी खबर मिली। सात महीनेके जबर्दस्त अभियानके बाद १८ जनवरी १५७५ को अकबर सीकरी लौटा।

टोडरमल और मुनअम खाँने गौड़के सामने गंगाके दाहिने किनारे टाँडामें छावनी डाली। वहाँसे वह पठानोंके ऊपर सेना भेजते थे। पठान एक जगह जम कर लड़ते नहीं थे। पर, इससे वह अपने मजबूत किलोंको बचा नहीं सके। पहले सूरजगढ़ (मुँगेर जिला)पर अधिकार हुआ, फिर मुँगेर, भागलपुर और कहलगाँव भी मुगल सेनाके हाथमें आ गये। खबर पा मुनअम खाँ टाँडासे चला। पठान सेनापति गूजर खाँसे टुकरोई* (जिला बालासोर)में जबर्दस्त मुकाबिला हुआ। उसने हाथियोंके सिरोंपर चौरी गायकी पूछें, चीतों-शेरों, पहाड़ी बकरोंके चेहरे और सींग-सहित खाल बाँध दी थी। तुर्कोंके घोड़े देख कर विदके, पीछे हटे। गूजर खाँ बड़े जोरसे मुगल सेना-पंक्तिके गर्भपर टूट पड़ा। कितने ही अमीरोंके साथ खुद मुनअम वहीं खड़ा था। गूजरकी उसीसे मुठभेड़ हो गई। खानखानाके कमरमें तलवार भी नहीं थी। इतना बड़ा सेनापति भला अपनी तलवार कैसे ढो सकता था। सिर्फ कोड़ा हाथमें था। कोड़ेसे क्या लड़ता? सिर, गर्दन और बाहोंपर कई भारी घाव लगे। सिरका घाव अच्छा हो गया, लेकिन उसके कारण आँखोंकी रोशनी खराब हो गई। गर्दनका घाव भरा, पर सिर मुँड़ नहीं सकता था। कन्धेके जख्मके मारे हाथ निकम्मा हो गया, वह उसे सिर तक उठा नहीं सकता था। तो भी बूढ़ा पीछे हटनेके लिये

*मेदिनीपुर और जलेश्वरके बीच

तैयार नहीं हुआ। उसके साथी अमीर भी घायल हुए। इसी समय दुश्मनके हाथी आ गये। खानखानाका घोड़ा बिदकने लगा। नौकरोंने बाग पकड़कर बर्दस्ती ऐंचे खींचा। बेचारा बूढ़ा सफेद दाढ़ीमें कालिख लगने देना नहीं चाहता था, पर मजबूरी थी। घोड़ा दौड़ाये चार कोस तक चला गया। अफगान भी पीछा करते चले आये। तम्बू और रसद-पानी सब लुट गया। इसी समय मुगल सेना लौट पड़ी। पठान बिखरे हुये थे, मुकाबिला कैसे करते? गूजर खाँ लोगोंको बढ़ावा दे रहा था। इसी समय एक तीर लगा, और वह घोड़े परसे गिर पड़ा। सेनापतिको न देखकर पठानोंमें भगदड़ मच गई।

उस दिन शाही फौजको जबर्दस्त हार खानी पड़ी होती, लेकिन पाँतीके दाहिने और टोडरमल अपनी सेनाके साथ चट्टानकी तरह खड़ा था। जेनरल शाहम (जलायर) बायें पार्श्वपर डटा हुआ था। दाऊदने पासा पलटते देखकर स्वयं टोडरमलके पक्षपर आक्रमण किया; पर, टोडरमलने उसे आगे बढ़नेका मौका नहीं दिया। गूजर खाँके मरनेकी खबर पा दाऊदकी हिम्मत टूट गई। वह कटक बनारस की ओर भागा। फारसी इतिहासकार सिन्धके किनारे अवस्थित अटकको अटक बनारस कहते हैं और उड़ीसाके कटकको कटक-बनारस।

टोडरमल दाऊद खाँके पीछे-पीछे थे। कटकमें पहुँच कर दाऊदने किलेको मजबूत करना शुरू किया और निश्चय कर लिया, कि यहीं जम कर लड़ना है। मुकाबिलेकेलिये शाही सेनापति तैयार नहीं थे। भूमि अस्वास्थ्यकर थी, बीमारी फैल गई थी। टोडरमलने बहुत प्रोत्साहित किया, लेकिन कोई असर नहीं हुआ। खानखानाको लिखा: काम बन चुका है, बेहिम्मतीके कारण वह पूरा नहीं हो रहा है। खानखानाके घाव अभी अच्छे नहीं हुए थे, तब भी वह सवारीपर चढ़कर वहाँ पहुँचा। दाऊदने पैंतरा बदला और सुलहकी बातचीत शुरू की। टोडरमल बिल्कुल खिलाफ थे, लेकिन दूसरे जेनरल पिण्ड छुड़ाना चाहते थे। इसी समय घोड़ाघाटमें शाही सेनाने अफगानोंको जबर्दस्त हार दी। दाऊद और ढीला पड़ा। खानखानाने टोडरमलके विरोधकी कोई पर्वाह न कर सुलह कर ली।

विजयके उपलक्ष्में भारी जलसा किया गया। दाऊद स्वयं अधीनता स्वीकार करनेकेलिये आया। उसने कमरसे तलवार खोलकर खानखानाके सामने धर कर कहा— "चूँ ब-मिरशेमा अज़ीज़ाँ ज़ख्मे व आज़ारे रसद्, मन् अज़-सिपाहगरी बेज़ार-म्। हाला दाख़िल दुआगोयानेदरगाह शुदम्।" (आप जैसे अज़ीज़ोंको घाव और कष्ट होता है, इसलिये मैं सिपाहगरीसे बेज़ार हूँ। अब (अकबरी) दरगाहके दुआ करनेवालोंमें शामिल हो गया हूँ।) खानखानाने तलवार उठाकर अपने नौकर को दे दी और हाथ पकड़ दाऊदको अपने पास तकियेके पास बैठा लिया। कुशल-प्रश्न और बातचीतके बाद दस्तरख्वान पर तरह-तरहके खाने, रँग-रँगके शर्बत, स्वादिष्ट मिठाइयाँ चिनी गईं।

खानखाना अपने हाथसे मेवोंकी तश्तरियाँ और मुरब्बोंकी प्यालियाँ दाऊदके सामने बढ़ाता था। नूरचश्म (नेत्र-प्रकाश) बाबाजान (प्रिय बेटा), फरजन्द कहकर बातें करता था। दस्तरख्वान उठा, पान दिया गया। मीरमुंशी कलमदान लेकर हाजिर हुआ। अहदनामा (सन्धिपत्र) लिखा गया। खानखानाने बेशकीमत खलअत, जड़ाऊ कब्जेवाली तलवार तथा बहुमूल्य मोती-जवाहर बादशाहकी ओरसे दाऊदको प्रदान किये। इसके बाद कहा—"हाला मा कमरे-शुमा ब-नौकरी बादशाह मी-बंदीम्। (अब हम तुम्हारी कमरको बादशाहकी नौकरीसे बाँधते हैं।) कमर बाँधनेकेलिए तलवार पेश करनेपर दाऊद आगराकी ओर मुँह करके झुक-झुककर तस्लीम और आदाब बजा लाया। लेकिन, इस जलसेका टोडरमलने पूरा बायकाट किया, और सुलहनामेपर भी अपनी मुहर नहीं लगाई।

ठीक बरसातके दिनोंमें ही खानखानाने टाँडाको छोड़ गौड़ घोड़ाघाटके केन्द्रीय स्थानमें शाही छावनी क़ायम करके अफ़ग़ानोंपर रोब डालना चाहा। गौड़की आबो-हवा बहुत खराब थी। अमीरोंने बहुत समझाया, लेकिन मुनअम खाँने मान गौड़को फिरसे आबाद करना चाहा। गौड़ तो आबाद नहीं हुआ, हाँ, गोर (कब्र) जरूर बहुत आबाद हुई। युद्धमें बच निकले सेनप और सिपाही बीमारीसे बिस्तरेपर पड़े-पड़े मरने लगे। हजारों आदमी आये, लेकिन मुश्किलसे कुछ ही जीते घर लौट पाये। कब्र खोदनेकी भी ताकत नहीं रह गई थी। वह मुर्दोंको गंगामें बहा देते थे। खानखानाको बराबर सूचना मिल रही थी, लेकिन वह जिद पकड़े हुए था। संयोग ऐसा हुआ, कि वही एक आदमी था, जो बिल्कुल बीमार नहीं हुआ। इसी समय पता लगा, जुनेद खाँ पठानने बिहारमें विद्रोह कर दिया है। लोगोंकेलिये दिल्लीके मार्गो छींका टूटा। वह गंगा पार हो टाँडा आया। टाँडा गौड़से अधिक स्वास्थ्यकर था, पर वह यहाँ बीमार पड़ा और ग्यारहवें दिन ८० वर्षकी उमरमें हिजरी ९८२ (सन् १५७४-७५ ई०)में बूढ़ा चल बसा। खानखानाके कोई वारिस नहीं था, इस-लिये वर्षोंकी जोड़ी माया सरकारी खजानेमें दाखिल हुई।

३. दाऊद खाँका दमन (१५७६ ई०)

३ मार्च १५७५ टुकरोईकी लड़ाईने दाऊद खाँकी कमर तोड़ दी थी। टोडरमलकी सलाह बिल्कुल ठीक थी, पर बूढ़े सिपहसालारने दाऊद खाँको पुनः जीवन दान दिया। मुज़फ़्फ़र खाँको बिहारका सूबेदार बनाकर विद्रोह दबानेकेलिए भेजा गया। उसने हाजीपुरको अपना केन्द्र बनाया। चौसासे तेलियागढ़ी (राजमहल) तकके विशाल प्रदेशका शासन मुज़फ़्फ़र खाँके हाथमें आना मुनअमको पसन्द नहीं आया। दोनों सिपहसालारोंके वैमनस्यसे शाही सेनाकी शक्ति कमजोर हुई। मुनअम खाँने गौड़को इस ख्यालसे भी अपना हेडक्वार्टर बनाना पसन्द किया था, क्योंकि घोड़ाघाट इलाके (जिला दीनाजपुर)में उस समय विद्रोह फैला हुआ था, गौड़से वह

उसका दमनकर सकता था। मुनअ्म खाँकी मृत्यु और आपसी झगड़ेसे फायदा उठा दाऊदने संधिकी शर्ते तोड़ दीं और बंगालके द्वार तेलियागढ़ी तक सारे प्रदेशपर अधिकार कर लिया। अकबरको सूचना मिली। उसने खानजहाँ हुसेन कुली खाँ (हेमूको कैद करनेवाले पंजाबके सिपहसालार)को मुनअ्म खाँका उत्तराधिकारी नियुक्त किया। खानजहाँ बदख्शाँ-विजयकी तैयारी कर रहा था। खानेजहाँकी मददकेलिए टोडरमल भी आये। दोनोंने भागलपुरमें पहुँचकर लौटते शाही सैनिकोंको रोका। फिर आगे बढ़ दाऊदको करारी हार देकर तेलियागढ़ीपर अधिकार किया। खानजहाँने आकमहालमें अपना डेरा डाला, जो पीछे (और अब भी) राजमहलके नामसे प्रसिद्ध है। मुजफ्फर खाँने भी सहायता की। अकबरने समझ लिया, मुझे खुद जाना चाहिये। ऐन वर्षाके दिनोंमें—२२ जुलाई १५७६ को—वह सीकरीसे प्रस्थान कर बिराइ गाँवमें पहुँचा। यहीं सैयद् अब्दुल्ला खाँने बंगाल-विजयकी खबर दी और दाऊदका सिर आँगनमें पटक दिया। यह युद्ध १२ जुलाईको हुआ था। राजमहलसे बिराइ ग्यारह दिनमें वह पहुँचा था। अकबरको आगे जानेकी जरूरत नहीं थी।

१२ जुलाईके राजमहलके निर्णायक युद्धके बारेमें कहा जाता है: मुजफ्फर खाँ बिहारसे पाँच हजार सवारोंके साथ आकर १० जुलाईको खानजहाँसे मिला। दोनोंने तुरन्त दाऊदपर हमला करनेका निश्चय किया। सेना-पंक्तिके मध्य भागका कमांडर खानजहाँ था। उसके सामने दाऊद स्वयं सेना लेकर लड़ा था। मुजफ्फर खाँकी सेनाके सामने दाऊदका चचा जुनैद था। वाम पार्श्वमें अवस्थित टोडरमलकी सेनाका मुकाबिला करनेकेलिए दाऊदका सर्वश्रेष्ठ सेनापति हिन्दूसे कट्टर मुसलमान बना कालापहाड़ था। १२ जुलाई बृहस्पति था, जिस दिन राजमहल (आकमहल)के पास वह घमासान लड़ाई हुई। टोडरमल हमेशा पहले रहते थे। उन्होंने कालापहाड़पर आक्रमण किया। जुनैद पिछली शामको तोपके गोलेसे घायल हो उसी दिन मर गया। कालापहाड़ घायल होकर भागा। दाऊदका घोड़ा फँस गया, उसे बन्दी बनाया गया। बदायूँनीने दाऊदके अन्तके बारेमें लिखा है—

"प्याससे परेशान दाऊदने पानी माँगा। उसके जूतेमें पानी भरकर सामने लाया गया। कैदीने उसे पीनेसे इन्कार किया। खानजहाँने अपनी सुराहीसे पानी दिया, जिसे उसने पिया। खानजहाँ ऐसे सुन्दर नौजवानको मारना नहीं चाहता था, लेकिन जेनरलोंने मजबूर किया, क्योंकि उसको जीता रखनेपर उनकी राजभक्तिपर संदेह किया जा सकता था। खानजहाँने सिर काटनेका हुकुम दिया। दो प्रहारसे काम नहीं बना, तीसरे प्रहारमें सिरको धड़से अलगकर दिया गया। फिर उसमें भुस भर कर, सुगन्ध लगा सैयद अब्दुल्ला खाँके हाथमें देकर बादशाहके पास भेजा।"

दाऊदका बेसिरका शरीर टाँडामें दबा दिया गया। इस प्रकार प्रायः २३६ (१३४०-१५७६ ई०)के बाद बंगालका स्वतंत्र राज्य समाप्त हुआ, जिसके प्रतिष्ठ

शासक पठान थे। सारे समय एक शासक नहीं रहा। अधिक समय तक जगह-जगह पठान सर्दार अलग-अलग शासन करते रहे। कभी-कभी सुलेमान या दाऊद जैसा कोई अधिक शक्तिशाली व्यक्ति पैदा होता, जिसकी अधीनता स्वीकार करनेकेलिये सारे पठान-सरदार मजबूर होते। पठान शासकोंने बिहार-बंगालमें बहुत-सी मस्जिदें और दूसरी इमारतें बनवाईं, जो उनकी यादगारके तौरपर अब भी मौजूद हैं।

४. राणा प्रतापसे संघर्ष (१५७६ ई०)

उदयसिंहके समय चित्तौड़ हाथसे निकल गया। उसके बाद फिर वह मुगल सल्तनतके छिन्न-भिन्न होनेके बाद ही राणाके हाथमें आया। उदयसिंहको राणा प्रताप जैसा सुयोग्य पुत्र मिला, जो १५७२ ई०में सीसादियोंकी गद्दीपर बैठा। पूर्वजोंकी वीरताके पँवाड़े और सम्मानको छोड़कर उसे और क्या मिला? अकबर राजपूतोंके साथ भाईचारा चाहता था: अजमेर, बीकानेर, जैसलमेरका दिखाया रास्ता सभी स्वीकार करें। पर, मेवाड़ न डोला देनेकेलिये तैयार था और न नामकेलिये भी अधीनता स्वीकार करनेकेलिए। अकबरने चित्तौड़-विजयके समय वीर राजपूतोंके लोहेको देख लिया था। वह और भी नरम शर्तोंके साथ सीसोदियोंसे मेल करता, पर राणा साँगाके उत्तराधिकारी एक ही रास्ता जानते थे—म्लेच्छके साथ हमारा किसी तरह मेल नहीं हो सकता। अकबर म्लेच्छ था। आमेर और दूसरोंने अपनी लड़कियोंको देकर अपना धर्म छोड़ा। प्रताप ऐसा नहीं कर सकता। धीरे-धीरे राजस्थानके प्रायः सारे ही राजाओंने मुगलोंको लड़कियाँ दीं। अकबरको दोतरफा सम्बन्ध अभीष्ट था। वह चाहता था, राजपूत राजकुमारियाँ अपने धर्मके साथ मुगल-महलमें रहें। चाहता था, धर्म व्यक्तिगत चीज हो, जातिके तौरपर हम सब एक बन जाएँ। १६वीं सदीके उत्तरार्धमें हिन्दुओंकेलिये यह बहुत कड़वा घूँट था। यदि इस कड़वे घूँटको उस समय हमारे देशने पी लिया होता, तो संभव है, हमारा इतिहास ही दूसरा होता। जिन राजपूतोंने अपनी लड़कियाँ मुगल शाहजादोंको दीं, उन्होंने भी उसकी अजब व्याख्या कर डाली: "हमने दूषित अँगुलीको ही अपने शरीरसे काट फेंका। हमारा खून मुगलोंमें भले ही गया, लेकिन मुगलोंका खून हमारे शरीरमें नहीं आने पाया।" इसी व्याख्याके कारण मुगलोंको डोला देनेवाले राजवंशोंकी भी रोटी-बेटी सीसोदियोंके साथ चलती रही।

प्रतापकी वीरता और त्याग इतिहासके पन्नोंमें सोनेसे लिखा गया है। पर, हमारे देशका कल्याण अलग-अलग राजवंशोंमें बँटनेसे नहीं था। सारे देशको एकछत्र करनेमें इन वंशोंका उच्छेद आवश्यक था, जैसा कि १९४८में हुआ। हमें यह भूलना नहीं चाहिये, कि प्रताप एक तरफ अपने कुल और धर्मकी आनपर मरमिटनेवाला वीर था, तो दूसरी तरफ वह उस भावनाका प्रतीक था, जो देशके सैकड़ों टुकड़ोंमें बाँटनेकेलिये तैयार थी। प्रायः चौथाई शताब्दी (१५७२-९७ ई०) तक

प्रतापने अकबरकी ज़बर्दस्त शक्तिका मुकाबिला किया। अकबरको राज्यके किसी न किसी कोनेमें उलझे रहना पड़ता था। उस समय प्रताप अपने बहादुर योद्धाओंके साथ अड़ावलाकी घाटियोंसे निकलकर मुगल शासित भूमि तक आक्रमण करता। जब दुश्मनकी अधिक सेना आती देखता, तो अड़ावलाकी पहाड़ियों और उसके जंगलोंकी शरण लेता। मारे-मारे फिरते प्रताप और उसके बच्चे जंगलके कन्दमूल पर गुजारा करते। प्रताप अडिग रहा। कुम्भलनेर, गोगुंडा आदि पहाड़ी किलोंको उसने मजबूत किया। इन संघर्षोंके कारण बनास और बेरिसकी उर्वर-उपत्यकायें बेचिरागी हो गईं। प्रतापका राज्य उस समय नई राजधानी (उदयपुर)के पश्चिम कुम्भलनेरसे रिकमनाथ तक प्राय: ८० मील लम्बा और मीरपुरसे सिरोहा तक उतना ही चौड़ा रह गया था। मानसिंहने प्रतापको समझानेकी कोशिश की। प्रतापने अछूतकी तरह उनके सामने थाली रखवाई और स्वयं साथ बैठनेकी जगह अपमानजनक शब्द कहे। मानसिंहने थालीसे दो दाने उठाकर अपनी पगड़ीमें रखे और मेवाड़-उच्छेदकी प्रतिज्ञाके साथ चल दिया। १५७६ ई०के अभियान द्वारा अकबर प्रतापको मार और मेवाड़को अपनी सल्तनतमें मिला लेना चाहता था।

हल्दीघाटी (१५७६ ई०)—अकबर बंगालमें पठानोंकी शक्ति खतम करनेमें करीब-करीब सफल हो चुका था। अब उसका ध्यान प्रतापकी ओर गया। वसंतकी शोभा बढ़ाते मानसिंहके नेतृत्वमें मांडलगढ़ (बूँदी और चित्तौड़के बीच) एक विशाल सेना जमा हुई। शाही सेनाका लक्ष्य मांडलगढ़से सौ मीलपर अवस्थित गोगुंडा (दक्षिण अड़ावला)का जबर्दस्त पहाड़ी दुर्ग था। हल्दीघाटीकी लड़ाईसे तीन साल पहले हिजरी ९८१ (१५७३-७४ ई०)में ख्वाजा गयासुद्दीन कजवीनीको आसफ खाँकी उपाधि मिली थी। रानी दुर्गावतीका विजेता अब्दुल अजीज आसफ खाँसे भिन्न यह दूसरा जेनरल था। गोगुंडा जानेकेलिये उससे १३-१४ मीलपर हल्दीघाटी (हल्दीदर्रा) पार करनी पड़ती थी। राणाने तीन हजार सवारोंके साथ इसी घाटीमें शाही सेनासे मुकाबिला करनेका निश्चय किया। टाडके शब्दोंमें—"इसी घाटीमें मेवाड़के वह फूल तैयार थे, जिन्हें एक स्मरणीय संघर्ष करना था। एक कुलके बाद दूसरा कुल अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने राणाकी वीरताका अनुकरण करनेकेलिये होड़ लगा रहा था। सबसे घमासान होती लड़ाईके बीच प्रतापके साथ लाल झंडा फहरा रहा था।...लेकिन, यह दुर्दम्य वीरता अकबरकी अनेकों तोपों और अनगिनत सेनाके सामने बेकार थी। २२ हजार राजपूत उस दिन हल्दीघाटीकी रणाङ्गणमें जमा हुए थे, जिनमें सिर्फ आठ हजार जीवित युद्धक्षेत्रसे बाहर निकले।"

जनवरीके महीनेमें घाटके मुँहपर खमनौर गाँवके पास यह संग्राम हुआ। धार्मिक [illegible] गाजी बननेकी लालसासे इतिहासकार बदायूँनी आसफखाँके साथ इस युद्धमें शामिल हुआ था, जिसने हल्दीघाटीकी लड़ाईका आँखोंदेखा वर्णन किया है। उस दिन

देह चला देनेवाली धूप और गरम लू चल रही थी, जिससे आदमीकी खोपड़ी पिघल रही थी। बदायूँनी अपने सरदार आसफ खाँसे पूछ बैठा—"इस घमासान लड़ाईमें शत्रु और मित्र राजपूतोंमें आप कैसे फर्क कर सकते हैं?" आसफ खाँने जवाब दिया—"जिधरके भी राजपूत मरें, इससे इस्लामको लाभ ही है।" बदायूँनीने बहुत खुशी प्रकट करते हुये लिखा : चित्तौड़के वीर जयमलका पुत्र मर कर दोजखमें गया। मुगलोंकी ओर डेढ़ सौ मुसलमान और कितने ही हिन्दू मारे गये। मालूम होने लगा था, शायद अकबरी सेनाको भारी हानि उठानी पड़ेगी। इसी समय प्रताप घायल हो गया। राणाका स्वामि-भक्त घोड़ा चेतक अपने स्वामीको लेकर बाहर भागा। स्वयं मर गया, पर चेतकने प्रतापको बचा लिया। मुगल सेनामें दम नहीं था, कि भागते शत्रुका पीछा करती। इसकेलिये अकबर मानसिंहपर कुछ नाराज भी हुआ। राणाका मशहूर हाथी बदायूँनीकी सौंगाती ले जानेके लिये सौंपा गया, इसे हम पहले बतला चुके हैं।

प्रताप और भी दूर चौड़में हटनेकेलिये मजबूर हुआ। लेकिन, पीछे अपने जीवनमें ही उसने चित्तौड़, अजमेर और माडलगढ़को छोड़ कर सारे मेवाड़को अपने अधिकारमें कर लिया, और पश्चिमोत्तर सीमान्तकी रक्षाकेलिये १२ वर्ष तक पंजाबमें रुका अकबर कुछ नहीं कर सका। प्रतापने १५६७ ई० में एक परम यशस्वी वीर के तौर पर अपने शरीरको छोड़ा। अपने उत्तराधिकारी पुत्र अमरसिंहको उसने यही वसीयत की, कि सीसोदियोंके झण्डेको नीचे न गिरने देना। मुगल इतिहासकार प्रतापकी वीरताको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे, पर, विन्सेन्ट स्मिथके शब्दोंमें—"वे नर-नारी भी स्मरण करनेके योग्य हैं, बल्कि पराजित विजेतासे भी महान् हैं।"

५. बंगाल-बिहारमें फिर विद्रोह (१५७४ ई०)

बंगाल-सिपहसालार दिसम्बर १५७८में मरा। उसकी जगह मुजफ्फरखाँ [illegible]

[illegible]

[illegible]

अधिकारी), सदर (धर्मादा विभाग-अध्यक्ष) आदि पदोंपर दूसरे आदमी नियुक्त किये गये। उन्हें हुकुम हुआ, घोड़ों पर दाग लगानेके कानूनकी मजबूतीसे पाबन्दी की जाये और बिना आज्ञाके कब्जाकी हुई जमीनको छीनकर खालसा कर लिया जाये। इस कड़ाईसे बंगाल-बिहारके मुसलमान अमीर सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। आखिर उनकी जेबपर हाथ डाला जा रहा था। पूर्वी सूबोंमें काम करनेवाले सैनिकोंको जो विशेष भत्ता मिलता था, उसमें भी काट-छाँट की गई। अकबरने आज्ञा दी : बंगालमें रहनेवाले सैनिकोंका वेतन दूना किया जाये और बिहारमें काम करनेवालोंका ड्योढ़ा। ख्वाजा शाह मंसूर इस समय अकबरका वित्त-मन्त्री था। उसने इस वृद्धिमें

मगड़ी और स्वेच्छाचारी था, जिसके कारण काफी समयसे वह उपेक्षित था। अकबरने चिहजारी मन्सब और खानेआजमकी उपाधि देकर उसे यह काम सौंपा। शाहबाज़ ाँको राजपूतानेकी मुहिमसे बुला कर कोकाकी मददके लिए भेजा। वित्त-मन्त्री ाह मंसूर कानूनोंकी कड़ाई करनेके कारण बदनाम हो गया था, इसलिये उसे हटा र वज़ीर खाँ (गुजरातके गवर्नर आसफ खाँ के भाई)को वित्त-मन्त्री नियुक्त किया। ाहबाज़ खाँने विद्रोहियोंको जनवरी १५८१ में सुल्तानपुर बिलहरीमें (अयोध्यासे ५ कोसपर जौनपुर और अयोध्याके बीच) करारी हार दी। बादशाही सेनाका ल्ला भारी हो गया और १५८४ ई० तक बिहार-बंगालके विद्रोहियोंको दबा दिया ाया। उड़ीसापर अधिकार करनेकी बात थोड़े दिनोंके लिए छोड़ दी गई। अकबरने ाहुत से विद्रोहियोंके साथ दया उदारता दिखलाई, यद्यपि विद्रोह फैलानेवाले मुल्लोंके ाथ नहीं। जौनपुरके काज़ी मुल्ला अहमद यज्दी तथा बंगालके काजीको नाव द्वारा मुनामें डुबाकर बहिश्त भेज दिया गया।

ं. मालगुजारी बंदोबस्त

अकबरके आरम्भिक शासनमें हर साल मालगुजारी बन्दोबन्द हुआ करता था, जो सरदर्दका काम था। १५वें सनजलूस (१५७०-७१ ई०)में मुजफ्फर खाँ तुर्बती—जो उस वक्त दीवान (वित्त-मन्त्री) था—ने टोडरमलकी सहायतासे प्रादेशिक कानूनगोओंकी जमाबन्दीको दस मुख्य कानूनगोओंको दिखला कर नई जमाबन्दी तैयार कराई। २४ वें-२५ वें सनजलूस (१५७६-८० ई०)में शाह मसूरने वार्षिक जमाबन्दीकी जगह दशाब्दिक जमाबन्दी आरम्भ की। इसके लिए १५ वें से २४ वें सनजलूसके दस वर्षोंकी मालगुजारीके औसतको आधार माना गया। टोडरमल इसमें सहायता कर रहे थे, लेकिन बंगालके विद्रोहके कारण जब उन्हें उधर जाना पड़ा, तो सारा भार शाह मंसूरके ऊपर पड़ा।

जमाबन्दी और मालगुजारीके बन्दोबस्तकी व्यवस्थामें परिवर्तन करने हीसे सतोष नहीं किया गया, बल्कि इसी समय (१५८० ई० में) राज्यको पहलेपहल १२ सूबोंमें बाँटा गया, जो थे—(१) आगरा, (२) अजमेर, (३) अहमदाबाद (गुजरात), (४) लाहौर (पंजाब), (५) मुल्तान, (६) काबुल, (७) दिल्ली, (८) मालवा, (९) इलाहाबाद, (१०) अवध, (११) बिहार और (१२) बंगाल। पीछे काश्मीर पर विजय करनेके बाद उसे लाहौरमें, सिन्धको मुल्तानमें और उड़ीसाको बंगालमें शामिल कर दिया गया। अकबरके शासनके अन्तमें दक्षिणके विजयके बाद तीन और सूबे—(१३) खानदेश, (१४) बरार और (१५) अहमदनगर—मिल कर सारी सल्तनत १५ सूबोंमें बँट गई। सूबोंके सत्रको अभी सूबेदार नहीं, सिपहसालार कहा जाता था, जिसके नीचे भिन्न-भिन्न विभागोंके अध्यक्ष (सचिव) होते थे—(१) दीवान

(वित्त), (२) बख्शी (सैनिक वेतन-विभाग), (३) मीर-अदल (न्यायाध्यक्ष, विशेषकर मायदण्डवाले न्यायाध्यक्ष), (४) सद्र (धर्माध्यक्ष), (५) कोतवाल (पुलिस), (६) मीर-बहर (सामुद्रिक बंदर, घाट आदिका अध्यक्ष) और (७) वाकया-नवीस (अभिलेख-रक्षक)।

७. मानसिंह राज्यपाल (१५८७-१६०५ ई०)

यद्यपि बंगाल-बिहारमें विद्रोह दबा दिया गया, पर समस्या तब तक पूरी तौरसे हल नहीं हुई, जब तक कि १५८७ ई०में मानसिंहको वहाँका सिपहसालार नियुक्त नहीं किया गया। इसके बाद प्रायः अकबरके शासनके अन्त (हिजरी १०१४—सन् १६०५ ई) तक मानसिंह ही इस पदपर रहे। हाजीपुर-सोनपुरके पास अब भी मानसिंहकी बनवाई इमारतों और बागोंके अवशेष मिलते हैं, यह हम मानसिंहके प्रकरणमें बतला आये हैं। उन्हें पूर्वकी आबोहवा पसन्द नहीं थी, इसलिये प्रायः अजमेरमें रहते और उनके सहायक बंगाल-बिहारका काम देखते। इससे पहले मानसिंह काबुलके सिपहसालार रहे थे। राजा भगवानदासके मरनेपर १५८९ ई०में उन्हें राजाकी उपाधि मिली। पाँच हजारीसे ऊपरके मन्सब पहले केवल शाहजादोंके लिए ही सुरक्षित थे, लेकिन अकबरने उसकी अवहेलना करके मानसिंहको सात-हजारीका मन्सब दिया। मानसिंहने प्रादेशिक राजधानी आग्महालको रक्खा, जिसका नाम अकबरनगर बदल दिया गया, लेकिन लोगोंने राजमहल नामको स्वीकार किया। राजमहल मानसिंहके शासनमें एक समृद्ध नगर बन गया था। १६४० ई० में राजमहल बंगालकी राजधानी था। उस समय साधु मेनरिकने सूबेदारके अभिलेख-संग्रहालयको देखा था, जिसमें १६०५ ई० (अकबरके समय)के भी कागजात मौजूद थे। उसके पीछे भी कितने ही समय तक राजमहल राजधानी रहा। फिर उसके महल बंगलोंमें ध्वंसावशेषके रूपमें परिणत हो गये। मानसिंहके शासन-कालमें हिन्दुओंको कोई शिकायत नहीं हो सकती थी। मानसिंहका नाम अब भी मानभूम जिलेके साथ जुड़ा हुआ है। शायद सिपहसालार मुजफ्फर खाँ तुर्वतीने ही बिहारके मुजफ्फरपुर कस्बेको आबाद किया, पर उस समय गंगाकेपार मुजफ्फरपुर नहीं, बल्कि हाजी प्रधान नगर था, जिसे बंगालके एक पुराने शासक हाजी इलियासने बसाया था।

—•—

अध्याय २१

सांस्कृतिक समन्वय (१५६३-१६०५ ई०)

धर्मके सम्बन्धमें अकबरके जीवनको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है—

१. पक्का सुन्नी मुसलमान	१५५६-७४ ई०
२. धर्मोंका जिज्ञासु	१५७४-८२ ई०
३. अ-मुस्लिम धर्माचार्य	१५८२-१६०५ ई०

१. अकबर सुन्नी मुसलमान (१५५६-७४ ई०)

तैमूरी वंश मध्य-एसियामें भी इस्लामिक कट्टरताका पक्षपाती नहीं था। यद्यपि देशोंको लूटनेमें तैमूरने महमूद गजनवी और दूसरे मुस्लिम विजेताओंका अनुकरण किया था; पर, राजकाजमें तैमूर शरीयत नहीं, चिंगीजके तूरा (यास्सा*)को सर्वोपरि मानता था। बाबर, हुमायूँ भी इस बातमें तैमूरके अनुयायी थे। अकबर बचपनसे ही इस बातको सुनता आ रहा था, इसलिये उसके दिलमें मजहबी कट्टरता को जगह नहीं मिल सकती थी। शायद उसने शाह तहमास्प और अपने पिताके उस वार्तालापको भी सुना था, जिसमें तहमास्पने हुमायूँको बहुसंख्यक हिन्दू प्रजासे अपनायत स्थापित करनेके लिये कहा था। इस्लामके भीतर भी शिया-सुन्नीका विवाद कम कड़वा नहीं था। दोनों एक दूसरेको काफिर समझते थे। बैरम खाँ शिया था और इसी तरह कितने ही और भी बड़े-बड़े जेनरल भीतरसे शिया रहते, बाहरसे सुन्नी होनेका दिखावा करते थे। अकबरकी शिक्षा उतनी संकीर्णताके साथ नहीं हुई थी। यह बतला चुके हैं, कि निरक्षर रहते भी अकबर अत्यन्त सुशिक्षित था। फारसी और तुर्की भाषा और साहित्यका उसने श्रवण द्वारा अच्छी तरह अध्ययन किया था। वह जन्मजात सैनिक था। वह सैनिक परम्पराकी भी पर्वाह नहीं करता था, यह इसीसे मालूम है, कि उसने बहुत सी लड़ाइयाँ बरसातके वर्जित मौसिममें जीतीं। परम्परा नहीं, बल्कि प्रयोग तजर्बेको वह प्रमाण मानता था। आदमी की स्वाभाविक भाषा क्या है, इसके बारेमें उसने बहुत सुना था। मुल्ला कहते थे—असली या अल्लाकी भाषा अरबी है। उसने तजर्बेके लिये आगराके पास एकान्तमें "गुंगमहल" बनवा उसमें कुछ शिशुओंको रख दिया। खाने-पीनेका अच्छा प्रबन्ध था, पर सख्त

*देखो मध्यएशियाका इतिहास, खंड १, पृष्ठ ४६५-६७

मनाई थी, कि कोई उनसे बातचीत न करे। कुछ वर्ष बाद देखा गया, तो मालूम हुआ, कि वह किसी भाषाका नहीं बोल सकते अर्थात् भाषा कमाईकी देन है।

खतरनाक खेलोंका उसको बहुत शौक था। अनेक बार मस्त हाथियोंको वश करनेके लिये उसने किस तरह अपनेको खतरेमें डाला, इसके बारेमें हम बतला चुके हैं। संगीतसे उसका अत्यधिक प्रेम था। तानसेनको इसीलिये उसने अपने दरबारके नवरत्नोंमें शामिल किया। यह स्वयं अच्छा पखावजी (तबला बजानेवाला) था। राजकाजके गम्भीर कामोंमें लगा हुआ भी वह मदारियों और नटोंके खेलोंको बहुत शौकसे देखता था। अपनी मनोरंजक कहानियों और विनोदकी बातोंके लिये बीरबल और मुल्ला दोपियाजा उसके दरबारमें मान्य हुये। अकबर रातको मुश्किलसे तीन घन्टे सोता था; पर, उसका शरीर फौलादी था। ऐसे चुस्त बादशाहके पास-पड़ोसमें सुस्त आदमियोंका गुजारा नहीं हो सकता था। उसके स्वभावमें क्रोध भी था, पर उसपर नियन्त्रण करनेमें वह असाधारण रूपसे सक्षम था। पर, जब वह नियन्त्रण टूट जाता, तो फिर थोड़े समयकेलिए वह सब-कुछ भूल जाता। अपने दूधभाई अदहम खाँको किस तरह कोठेसे नीचे गिरा कर मरवाया, यह इसका एक उदाहरण था। चिराग जलानेवालेने तख्तके पास सोनेकी गुरआली भी थी, जिसके लिये उसे भी नीचे गिरवा कर मरवा दिया। यूरोपियन यात्री जेस्विट साधु पेरुस्चीने अकबरके स्वाभावके बारेमें लिखा है—

"बादशाह बहुत कम ही क्रोधमें आता है, लेकिन जब क्रुद्ध हो जाता है, तो यह कहना मुश्किल है, कि वह कहाँ तक जायगा। अच्छी बात यह है, कि वह जल्दी ही शान्त हो जाता है। उसका क्रोध क्षणिक होता है, जल्दी ही दूर हो जाता है। वस्तुतः वह सज्जन, कोमल और कृपालु स्वभावका है।"

सैनिकके साथ-साथ कूटनीतिज्ञके गुण भी उसमें कूट-कूट कर भरे थे। साधु बरतोलीके* अनुसार—"वह कभी किसीको मौका नहीं देता, कि कोई जान ले कि उसके हृदयके अन्तस्तलमें क्या है, या कौन से धर्म या विश्वासको मानता है। वह वही करता, जिससे उसका अपना अर्थ पूरा होता। वह अपनी ओर करनेके लिए कभी एक पक्षको और कभी दूसरे पक्षको सहारा देता। दोनों पक्षोंको अच्छी-अच्छी बातोंसे प्रोत्साहित करता और अपने सदेहोंको बतलाता, "मैं तुम्हारे बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तरोंको अपने पथ-प्रदर्शनके लिये चाहता हूँ, जिसमें कि छिपे सत्यको जान सकूँ।" चाहे जो उत्तर मिलता, वह कभी उसे सतुष्ट नहीं करता। विवादका कभी अन्त नहीं होता, क्योंकि प्रतिदिन फिर उसीसे आरम्भ होता। सभी बातोंमें बादशाह अकबरका यही ढङ्ग था।

*साधु देनियल बरतोलीने अकबरके दरबारमें पहुँचे जेस्विट साधुओंके का सुसम्पादित संस्करण १६६३ ई० में प्रकाशित किया था।

ह किसी तरहकी रहस्यवादिता और धोखेमें नहीं आता था। वह ऐसा सच्चा और द था, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। पर, वस्तुतः वह इतना आत्म-नर्भर और पक्के विचारोंवाला, अपनी बातों और कामोंमेंसे एक दूसरेके विरोधी था घुम-घुमौवा प्रकृतिका था, कि बहुत कोशिश करनेपर भी उसके मनकी थाह लगाना मुश्किल था। अक्सर ऐसा होता था, कि एक आदमी उसे जैसा आज देखता था, अगले दिन वह उससे बिल्कुल उल्टा मालूम होता था। बहुत ध्यानसे देखने था काफी दिनों तक घनिष्ठ परिचय रखनेके बाद भी कोई उसे आखीरमें उससे अधिक नहीं जान सकता, जितना कि पहले दिन।"

अकबरके स्वभावके बारेमें उन साधुओंका कथन वास्तविकतासे दूर नहीं हो सकता। लेकिन, अकबरके बारेमें यह उस समयकी बात है, जब कि वह प्रौढ़ हो चुका था। धर्मभीरु सुन्नी मुसलमानका उसका जीवन ३२ वर्षकी उमरमें पहुँचते-पहुँचते खतम हो गया, इसलिये आरम्भिक कालके अकबरको जाननेकेलिये हमें पादरियोंके कथनसे अधिक सहायता नहीं मिल सकती। मानसिक स्वच्छन्दता पहले भी उसमें थी। ख्वाजा मुजफ्फर अली बैरम खाँका दीवान था। खानखानाके जब बुरे दिन आये, तो भी ख्वाजाने साथ नहीं छोड़ा। खानखानाका कसूर माफ हुआ, तो ख्वाजाके भी दिन लौटे। फिर तरक्की करते-करते हिजरी ९७१ (१५६३-६४ ई०)में वह वकील-मुतलक (सर्वाधिकारी)के पदपर पहुँच कर मुजफ्फर खाँ और उमदतुल्मुल्ककी पदवीसे अलङ्कृत हो सल्तनतके अमीरुल्उमरा बने। इन्हींकी सिफारिशपर १५६५-६६ ई०में (सनजलूस १०) में अकबरने शेख अब्दुन्नबीको सद्रे-सदूर (धर्मादाका सर्वोपरि अध्यक्ष) नियुक्त किया। शेख अब्दुन्नबीके प्रकरणमें हम बतला आये हैं, कि कैसे उन्होंने रेशमी कपड़ा पहने देखकर २२ वर्षके अकबरको डण्डा लगा दिया था। अकबरने शेखकी जूतियाँ सीधी करनेमें आनाकानी नहीं की थी। लेकिन, अन्तमें (नवम्बर १५८१) हानिकारक समझकर इस पदको उठा दिया और शेख अब्दुन्नबी का सितारा डूब गया। काजी यजदीने फतवा देकर अकबरको काफिर बना उसे राज्यसे वंचित करना चाहा, यह भी हम देख चुके हैं। अकबर अपने विचारोंमें स्वतन्त्र होता जा रहा था। तो भी अभी समय अनुकूल नहीं समझता था, इसलिये वह देखेको अनदेखा कर देता था।

आरम्भिक जीवनमें इस्लाम और पीरों-फकीरोंका वह कितना भक्त था, यह इसीसे मालूम होता है, कि वह वर्षों हर साल अजमेर शरीफकी जियारत करने जाता रहा और १५७९ ई०के सितम्बरमें आखिरी बार उसने यह यात्रा की, लेकिन अगले साल (१५८० ई०)में भी शाहजादा दानियालको उसने अपनी तरफसे भेजा। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता, कि इस समय तक उसके विचारोंमें भारी परिवर्तन नहीं आया था, पर, तो भी एक समय अपने विरुद्ध प्रचारको देखकर वह नियमपूर्वक

दिनमें पाँच बार नमाज पढ़ने लगा था। अजमेरसे लौटते वक्त रास्तेमें एक विशाल मस्जिद उसके साथ थी। १५८० ई०में मीर अबू तुराब मक्कासे पैगम्बरकी पत्थर की चरणपादुका लेकर आया। अकबर अच्छी तरह जान सकता था, कि यह बनावटी चीज है, लेकिन उसने स्वागत करनेके लिये बड़ी धूमधामसे तैयारी की, और स्वयं कुछ दूर जा अपने कन्धेपर उस भारी पत्थरको ढोया। अकबरको कितनी ही बार ऐसे ढोंग जबर्दस्ती रचने पड़ते। एक बार अकबर अजमेरकी दरगाहमें पाँच कोस पैदल चल कर गया, उसके बारेमें बदायूनीने कुढ़के-कुढ़के अपने इतिहासमें लिखा—"समझदार आदमी इसपर हँसते और कहते : कैसी विचित्र बात है, बादशाह सलामतको ख्वाजाके ऊपर इतनी भक्ति है, जबकि हरेक चीजकी असली बुनियाद, हमारे उस पैगम्बरको इन्कार कर दिया, जिसके दामनसे ख्वाजा जैसे लाखों पीर पैदा हुए।

अकबर बड़ी भक्तिसे पीरो-फकीरोंकी कब्रोंकी जियारत करता था। १५७५से ८० ई० तक उसने हुकुम दे रक्खा था, कि जो कोई हज करना चाहे, उसे सर्वके लिये शाही खजानेसे पैसा दिया जाय। पीछेके बारेमें बदायूनी लिखता है—"लेकिन, अब बात उल्टी हो गई है। वह उसका नाम भी सुनना नहीं चाहता। इसके लिये छुट्टी माँगना मौतकी सजावाले गुनाह सा हो गया है।" १५७६ के अक्तूबरके आसपास अकबरने सुल्तान ख्वाजाको मीर-हाज बनाकर हाजियोंके काफिलेके साथ राजपूतानेके रास्ते भेजा, और स्वयं अहराम (हजकी पोशाक) पहन कर मीर हाजके पीछे-पीछे कई कदम तक चला। १५७६ ई०में उसका यह कार्य ढोंग नहीं कहा जा सकता।

सलीम चिश्तीकी भक्तिसे अकबर आगरा छोड़ कर सीकरीमें आ बसा, लेकिन उसके ऊपर शाह साहबकी छाया एक सालसे अधिक नहीं रही। ३७ वर्षका होते-होते अकबर दुनियाँको काफी देख चुका था। इसमें सीकरीके इबादतखानेमें होनेवाले शास्त्रार्थो-सत्संगोंने भी बहुत सहायता की। इबादतखाना बनवानेका हुकुम १५७५ ई०के आरम्भमें दिया गया था। पहले इसमें मुसलमान मुल्ला ही आते थे। चिंगीज खाँके पोते कुबले खानने भी धर्मोंकी जिज्ञासाके लिये यही काम किया था, जिसे उससे तीन शताब्दियों बाद अकबर दोहरा रहा था। धार्मिक शास्त्रार्थ-मुबाहिसे अकबरको बहुत पसन्द थे। उसके शब्दोंको उद्धृत करते हुए अबुलफजल लिखते हैं—"दर्शन-सम्बन्धी शास्त्रार्थ इतना आकर्षक था, कि वह मुझे सभी चीजोंसे खींच लेता था। राजके आवश्यक कामोंमें गफलत न हो, इसके लिये मुझे जबर्दस्ती अपनेको पकड़ता।" जिस जगह अकबरने इबादतखाना बनवाया था, वहींपर किसी समय अब्दुल्ला नियाजी सरहिन्दी भी रह चुके थे और जहाँ पीछे शेख सलीम (जो गुरु भी कहे जाते हैं)ने डेरा डाला था। आज इबादतखानेका कहीं पता नहीं। शायद वह १५७१ई०में बनी शेख सलीमकी महान् मस्जिदके पश्चिमोत्तरमें

था। गुरुवारके दिन सूर्यास्तके बाद अकबर इबादतखानेमें आता और शास्त्रार्थमें स्वयं मध्यस्थ बनता था। दो-तीन वर्ष तक इबादतखाना मुसलमान आलिमोंके ही सत्संगका स्थान रहा, लेकिन १५७८ ई० या उसके पहले हीसे हिन्दू, पारसी आदि धर्मोंके विद्वानोंके लिये भी छूट हो गई। मखदूमुलमुल्क मुल्ला सुल्तानपुरी और शेख अब्दुन्नबी इस्लामके नामपर अपनी विद्वत्ताके ज़ोरसे एक दूसरेको नीचा दिखाते थे। अबुलफज़ल और मुल्ला बदायूँनी जैसे नौजवान भी पहुँच गये, जो बूढ़ोंकी पगड़ी उछालनेमें किसी तरहकी दया-माया नहीं दिखलाते थे। ये नौजवान वह सारी पुस्तकें पढ़े हुये थे, जिन्हें पढ़ कर लोग आलिम-फाज़िल होते थे। अकबर इस तमाशेको बड़े शौकसे देखता था। उसकी सहानुभूति बूढ़े मुलटोंके खिलाफ थी। तरुण बदायूँनीको देखकर उसने कहा था—"हाजी इब्राहीम किसीको साँस नहीं लेने देता, यह उसका कल्ला तोड़ेगा। विद्याका बल था, दिल निडर, जवानीकी उमंग, बादशाह खुद पीठ ठोंकनेके लिये तैयार था। बुड्ढोंका बल बुड्ढा हो चुका था। वह हाजीसे भी बढ़ कर शेख अब्दुन्नबीपर प्रहार करने लगा।" आज़ाद लिखते हैं—"इन्हीं दिनों शेख अबुलफज़ल भी आन पहुँचा। उसकी विद्याकी झोलीमें तर्कोंकी क्या कमी थी! उसकी भगवान्की दी बुद्धिके सामने किसीकी मजाल क्या थी! जिस तर्कको चाहा, चुटकीमें उड़ा दिया। बड़ी बात यह थी, कि शेख और शेखके बापने मख्दूम और सदर अब्दुन् नबी आदिके हाथसे वर्षों तक ऐसी चोटें सही थीं, जो कभी मरनेवाली नहीं थीं। आलिमोंमें परस्पर विरोध और मतभेदके रास्ते खुल ही गये थे। चन्द दिनोंमें यह हालत हुई, कि गौण प्रश्नों की बात तो अलग, स्वयं इस्लामके असली सिद्धान्तोंपर भी आक्षेप होने लगे। हर बातमें पूछा जाता : कारण बताओ, "क्यों ऐसा हो।" अन्तमें बहस-मुबाहिसे इस्लामिक विद्वानोंके भीतर ही तक सीमित नहीं रह गये, बल्कि दूसरे धर्मवाले विद्वान भी इसमें भाग लेने लगे। अकबर मजहबमें "बाबा-वाक्य प्रमाणम्" को छोड़ कर हर बातकी खुद खूब छानबीन करने लगा।

लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं, कि अकबर इस्लाम या धर्मसे बिल्कुल फिर गया था। हिजरी ६८७ (१५७८-७६ ई०) तक भी बदायूनीके अनुसार, बादशाह "रातको प्रायः इबादतखानेमें आलिमों और शेखों (सन्तों)के सत्संगमें गुजारता। खासकर शुक्रकी रातको तो रात भर जागता और धार्मिक सिद्धान्तोंकी छानबीनमें लगा रहता।" आज़ादके शब्दोंमें "मुल्ला एक दूसरेके ऊपर जबानोंकी तलवारें खींच कर गिर पड़ते, कटे-मरते थे। आपसमें कुफ्र और बेइज्जतीकी बातें लाकर एक दूसरेको बरबाद किये डालते थे। शेख सदर और मख्दूमुलमुल्कका यह हाल था, कि एकका हाथ और दूसरेकी गर्दन। दोनों तरफके रोटीतोड़े और शोरबेचट् करनेवाले मुल्लोंने दोतरफा धड़े बाँधे हुये थे।......एक आलिम एक कामको हलाल कहता, दूसरा उसीको हराम साबित कर देता। ..अबुलफज़ल और फैज़ी भी आ गये थे। उनके भी पक्षपाती दरबारमें पैदा हो गये थे। वह हर वक्त उकसाते रहते

थे।......आखिर इस्लामके विद्वानोंके ही हाथों यह बरबादी हुई कि इस्लाम और दूसरे मजहब एक जैसे हो गये। आलिम और शेख सबसे बढ़ कर बदनाम हुये।–अकबर हरेक मजहबके विद्वानोंको इकट्ठा करता और सब बातें जानना चाहता।–समझवाला आदमी था, किसी मजहबका दावेदार उसे अपनी तरफ खींच भी नहीं सकता था। वह भी सबकी सुनता और अपनी मनसमझौती कर लेता था। मुल्ला आखिर लड़ते-लड़ते आप ही बेइतबार हो गये।" आजाद और भी लिखते हैं–"बंगालकी मुहिम कई वर्ष जारी रही। मालूम हुआ, अधिकांश आलिमों और शेखों के बाल-बच्चे फाके और गरीबीसे तबाह हैं। दयालु बादशाहको रहम आया। हुकुम दिया, सब शुक्रवारको इकट्ठा हों, नमाजके बाद हम स्वयं रुपये बाँटेंगे। चौगानके मैदानमें एक लाख औरत मर्द जमा हो गये। उनमें धीरज नहीं रहा। बेचारोंकी हालत बुरी थी। भीड़में ८० आदमी पैरोंसे कुचल कर मर गये।...उनकी बगलसे अशर्फियोंकी नेवलियाँ निकलीं। बादशाहने देख लिया, कि अशर्फियाँ रखनेवाले भी खैरात लेने आये हैं। शेख सदरको बर्खास्त कर दिया। धर्मादेकी सम्पत्तिकी बरबादी की खबर लगी, तो अकबरने उसकी जाँच करवाई। मालूम हुआ, मस्जिदें और मदरसे खंडहर पड़े हुए हैं और मुल्ले धर्मादेके पैसेको हजम कर रहे हैं। इस तरह इस्लामकी धाक और श्रद्धा जो बचपनसे अकबरके दिलमें थी, वह उठ गई। जौनपुरी मुल्ला अहम्मद यज्दी और मुअज्जिजमुल्क आदिने अकबरके खिलाफ फतवा दिया। अकबर आगरेसे दस कोसपर अवस्थित बसीराबादमें था, जब मुल्लोंके लिये हुकुम भेजा, कि दोनों मुल्लोंको अलग-अलग यमुनाके रास्ते ग्वालियर पहुँचा दो। थोड़े ही समय बाद दूसरा हुकुम आया, कि इनका किस्सा खतम कर दो। दोनोंको एक टूटी नावमें डाला, और थोड़ी दूर आगे जाकर पानीकी चादरका कफन दे भँवरकी कब्रमें दफन कर दिया।"

अकबरके विश्वासके डिगानेके लिये ये बातें हो रही थीं। फैजी और अबुल-फजलके पिता शेख मुबारक-जैसा दिग्गज आलिम बादशाहके इन विचारोंका समर्थक था। किस तरह सन् १५७९ के सितम्बरके आरम्भमें उन्होंने महजर (आवेदन) तैयार करके बादशाहके फैसलेको आलिमोंके फैसलेसे भी ऊपर साबित करते हुये रक्खा और कैसे डरके मारे मुल्लाओंने उस पर अपनी मुहरें लगा दीं, इसे हम बतला चुके हैं।

सनजलूस ३० (१५८६ ई०)के बाद बदायूनीके अनुसार जमानेका रंगबिलकुल बदल गया, क्योंकि दीन बेचनेवाले मुल्ला भी उसकी हाँमें हाँ मिलाने लगे। पैगम्बरपर सन्देह, कुरानके भगवत्वाक्य होनेपर चुप्पी, दिव्य चमत्कार और करामात, प्रलय जिन-परी फरिश्तोंके माननेसे इन्कार हो गया। कुरानकी प्रामाणिकता और उसके अल्ला के वचन होनेके सबूत माँगे जाने लगे। पुनर्जन्मपर पुस्तकें लिखी गईं। निरपत्र

किया गया, कि अगर मरनेके बाद पाप-पुण्यका फल है, तो वह पुनर्जन्मसे ही हो सकता है, दूसरा रास्ता नहीं है। बादशाहका दूधभाई जो खानेआजम इस्लामके विरोधी भावोंको देखकर नाराज़ हो हिन्दुस्तान छोड़ काबा चला गया था। उसी खानेआजमने काबासे लौट कर तोबा की और अकबरके दरबारमें अपनी दाढ़ी चढ़ाई। हिजरी ९९७ (१५८८ ई०)में मुहिमको जीत कर लौटा, तो बादशाहने उससे कहा : हमने पुनर्जन्मके पक्के प्रमाण पैदा कर लिये हैं। शेख अबुलफज़ल इसे तुम्हें समझायेंगे, तुम स्वीकार करोगे ना? स्वीकार करनेके सिवा और उत्तर क्या हो सकता था?

बदायूनी लिखते हैं—"बीरबलने यह साबित किया, कि सूर्य भगवान्के रूपका प्रकाश है, क्योंकि वनस्पतिका उगाना, अनाजका पकाना, फूलोंका खिलाना, फलोंको फुलाना, दुनियाको प्रकाशित करना, सारे संसारका जीवन उसीसे बँधा हुआ है। इसलिये उसकी उपासना करनी चाहिये। उदयकी दिशाकी ओर मुँह करना चाहिये, अस्तकी ओर नहीं। इसी तरह आग, पानी, पत्थर और पीपलके साथ सारे वृक्ष ईश्वरकी महिमाको प्रकट करते हैं। गाय और गोबर भी ईश्वरकी महिमा हैं। साथ ही तिलक और जनेऊकी भी प्रशंसा की। तारीफ यह, कि आलिमों-फ़ाजिलों और खास दरबारियोंने भी इसकी पुष्टि की, और कहा कि वस्तुतः सूर्य महान् प्रकाश है, वह सारी दुनियाका हित्, बादशाहोंका संरक्षक है। जितने अकबालमन्द बादशाह हुये, सबने उसकी महिमा गाई। हुमायूँके ज़मानेमें भी यह प्रथा जारी थी, क्योंकि यह चिंगीज तुर्कोंका तुरा था। पुराने समयसे नौरोज़ (नववर्ष)का उत्सव मनाते थे। अकबर जिस दिन तख्तपर बैठा, उस दिनसे ही नववर्षोत्सव मनाया जाने लगा। अब उसमें हिन्दुस्तानके रीति-रवाजोंको भी शामिल कर लिया गया। अकबरने स्वयं ब्राह्मणोंसे पूजा-पाठ और मन्त्र सीखे। "सिंहासनबत्तीसी" के अनुवाद लिखानेवाले पुरुषोत्तम ब्राह्मण उसे एकान्तमें हिन्दुओंकी पूजा-विधि बतलाते थे। "महाभारत" के तर्जुमा करने वाले देवी ब्राह्मणको एकान्तमें चारपाईपर बैठाकर रस्सियाँ डाल अधरमें खींच लेते। वहाँसे वह अग्नि, सूर्य तथा दूसरे देवी देवताओंके पूजाकी विधि बतलाते। सूर्यके मन्त्रको बादशाह आधी रातको जपा करता था। राजा दीपचन्दने एक मर्तबे कहा : हुज़ूर अगर गाय खुदाके लिये पवित्र वस्तु न होती, तो क़ुरानका सबसे पहला सूरा (अध्याय) गाय (बकर) क्यों होता? इसपर बादशाहने गायके मांसको हराम कर दिया और हुकुम निकाल दिया, कि जो गायको मारेगा, वह मारा जायगा। हकीमों और तबीबोंने समर्थन करते हुये कहा : गायके गोश्तसे तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं, वह रद्दी और दुष्पच है। पर, इसका मतलब यह नहीं था, कि अकबर अब इस्लामको धत्ता बतला चुका था। हिजरी ९८७ (सन् १५७९-८० ई०)में ही मीर-हाज अबुतुराब मक्कासे पैगम्बरके चरणचिह्नका पत्थर ले आया। चाहे लोक संग्रहके लिये ही सही—अकबरने खुद उसका सम्मान किया था, यह हम बतला आये

है। बदायूनीके अनुसार इसी साल सलाह हुई, कि "ला इलाहा इल्लिल्लाहके" साथ "अकबर खलीफतुल्लाह" (अकबर अल्लाहका नायब) कहा जाय। बाहर करने पर हल्ला-गुल्ला होता, महलमें कहनेका निश्चय किया गया। कितने ही लोग सलाम-अलैकुमकी जगह "अल्लाहु अकबर" और उत्तरमें "जल्ले जलालहु" कहने लगे। अकबरके बहुतसे सिक्के मिले हैं, जिनके ऊपर यह वाक्य अंकित है।

१५७६ के जूनके अन्तमें अकबरने एक नई गुरताखी पैदा की। सीकरीके मुख्य मस्जिदके इमामको हटा कर महीनेके पहले शुक्रवारको स्वयं मेम्बरपर खड़ा होकर उसने खुतबा पढ़ा। कविराज फैजीने उसे पद्यबद्ध तैयार किया था। इसकी कुछ पंक्तियाँ थीं—

जिसने हमें बादशाहत दी,
जिसने हमें ज्ञानी हृदय और मजबूत बाँह दी,
जो हमें न्याय और समदर्शिताकी ओर ले जाता है,
जो हमारे हृदयसे विषमताको हटाता है,
उसकी प्रशंसा हमारे मनों और विचारोंसे परे है।
अल्लाहु अकबर (भगवान् महान्) है।

यद्यपि १५८२ ई० तक अकबरने इस्लामका चेहरा उतार नहीं फेंका था, लेकिन इससे तीन वर्ष पहले हीसे उसका विश्वास डिग गया था। पर, वह सदा एक अल्लाह (तौहीद इलाही अल्लाकी एकता, ब्रह्म-अद्वैत) पर विश्वास रखता था।

१५८० ई०के आरम्भमें मुल्ला सुल्तानपुरी और शेख अब्दुन् नबीको मक्कामें निर्वासित करना इस बातकी सूचना थी, कि अकबर अब इस्लामसे विमुख हो चुका है।

२. पारसी-धर्मका प्रभाव

अकबरकी माँकी भाषा फारसी थी। महलोंमें तुर्कीसे भी ज्यादा फारसी बोली जाती थी। फारसीका साहित्य अधिक विशाल था, जिसे अकबर पढ़वाकर सुनता रहता था। फारसी साहित्यमें इस्लामके विरोधी भाव बीज-रूपमें मौजूद थे। ईरानियोंने इस्लामकी तलवारके सामने सिर झुकाया, अपने अग्निपूजी मजहबको भी कुर्बान कर दिया; पर, अपनी उच्च संस्कृतिके प्रेमको वह कभी छोड़ नहीं सके। इसीको प्रकट करते फिरदौसीने "शाहनामा"में प्राचीन ईरानकी महिमा बढ़ा-चढ़ा कर गाई, और उजड्ड असभ्य अरबोंको दिल खोलकर कोसा। अकबरने इसे अपने मनकी बात समझी। वह फिरदौसीके निम्न शेरको बार-बार पढ़वा कर सुनते मजा लेता था—

ज-शीरे-शुतुर खुर्दन् व सूसमार।
अरबरा बजाये रसीद'स्त कार।

कि तख्ते-कियाँ-रा कुनद् आरज़ू।
तफ़ू बरतू ऐ चर्खे-गर्दां तफ़ू।

(ऊँटके दूध और सुसमार खानेवाले अरबोंको तूने प्रभु बना दिया, कि वह ईरानके शाहोंके तख्तकी कामना करे। ओ घूमनेवाले आसमान, तेरे ऊपर थू है, थू है।)

अकबरको कोई फ़िरदौसी नहीं मिला, कि वह प्राचीन भारतके शाहनामेको लिखवाता। शाहनामा सुननेके बाद पूछनेपर उसे मालूम हुआ, कि हिन्दुस्तानका शाहनामा "महाभारत" संस्कृतमें मौजूद है। उसने उसे फारसीमें अनुवाद करनेका हुकुम ही नहीं दिया, बल्कि देवी पंडितके मुँहसे अर्थ सुन कर स्वयं फारसीमें नक़ीब खाँसे लिखवाना शुरू कर दिया। पर, इतनी फ़ुरसत कहाँ थी? बादशाहने दो रात ही "महाभारत" लिखवाया। तीसरी रात बदायूनीको बुला कर कहा: तुम नक़ीब खाँके साथ मिल कर तर्जुमा करो। तीन-चार महीनेमें १८ पर्वोंमेंसे २ पर्व अनुवादित किये गये। मुल्ला बदायूनीके अनुवादमें कतरब्योंत देख कर उन्हें बादशाहके मुँहसे हरामखोर और शलगमखोरकी पदवी मिली। मुल्ला शीरी, नक़ीब खाँ और हाजी सुल्तान थानेसरीने थोड़े-थोड़े अंशका अनुवाद किया। फिर फ़ैज़ीको हुकुम हुआ, कि इसको गद्य-पद्यमें करो। वह भी दो पर्वसे आगे नहीं बढ़ सके। हुकुम था, कोई बिन्दी-विसर्ग छोड़ी न जाय। अनुवादका नाम शाहनामाके ढङ्ग पर "रज़मनामा" रक्खा गया। दोबारा सुन्दर अक्षरोंमें लिखवाकर चित्रोंसे सुसज्जित करवा अमीरोंको हुकुम दिया, कि पुण्यार्थ इसे लिखवा कर बाँटें। मुल्ला बदायूनीको इसके लिये १५० अशर्फ़ियाँ (दस हज़ार टका) मिलीं।

फारसी-संस्कृति और धर्मके प्रति बचपनसे जो सम्मान अकबर और उसके दरबारमें था, उसने अकबरको हिन्दू धर्मकी ओर खींचनेमें विशेष काम किया और अन्तमें हिन्दू-पारसी मिश्रित संस्कृतिने उसे अनुयायी बना दिया। आग और सूर्यकी पूजा पारसी भी करते हैं, जो हिन्दुओंमें भी पाई जाती है। अकबरको क्या मालूम था, कि पारसी धर्म, संस्कृति और भाषा उसी मूलसे निकली है, जिससे कि हिन्दुओंकी संस्कृति धर्म और संस्कृत भाषा।

१५७८ ई०के अन्तमें पारसी मोबिद (पुरोहित) दरबारमें बुलाये गये, जिनसे उसने पारसी धर्मके बारेमें बहुत सी बातें जानीं। पारसियोंकी तरह उसने कमरमें गुश्ती बाँधी। लोग समझने लगे, अकबरने जर्थुस्ती धर्म स्वीकार कर लिया। लेकिन, उसके कुछ समय ही बाद तिलक-जनेऊ पहन कर दरबारमें उपस्थित हुआ। इन दोनों धर्मोंकी ओर अब उसका बहुत झुकाव था। नौसारी के पारसी पुरोहितोंके मुखिया दस्तूर मेहरजी राणाको अकबरको अपने धर्मके बारेमें बतलानेका विशेष मौका मिला। १५७३ ई०में सूरतके मुहासिरेके समय अकबरका डेरा कंकड़ाखाड़ामें पड़ा हुआ था।

उसी समय पहलेपहल पारसी पुरोहितोंसे मिलनेका उसे मौका मिला था। उस समय भी उसने मोबिदोंसे बहुत सी बातें जानी थी और राणाको अपने दरबारमें आनेके लिये आग्रह किया था। किस समय राणा दरबारमें आये, यह कहना मुश्किल है, पर १५७८-७९ ई०के शास्त्रार्थोंमें वह अवश्य शामिल होते थे। दस्तूर मेहरजी राणा अपनी मृत्युके समय (१५९१ ई०) तक अकबरके बड़े सम्मानभाजन रहे। अकबरने दस्तूरको दो सौ बीघेकी खानदानी माफी प्रदान की थी, जिसे उनके लड़केने डयौढ़ी कर दिया। राणाके आनेपर पारसी विधिके अनुसार महलमें अग्निकी स्थापना हुई, जिसकी पूजा आदिका काम अबुलफजलको सौंपा गया। मार्च १५८० से अकबर खुले तौरसे सूर्य और अग्निके सामने दण्डवत् करने लगा। रातको जब दीपक जल जाते, तो वह और सारे दरबारी खड़े होकर हाथ जोड़ते। अकबरने कहा था—"दीप जलाना सूर्यको याद करना है।" पारसी धर्मके स्वागतमें बीरबलकी पूरी सहायता प्राप्त थी। बीरबलकी परम्परामें सूर्योपस्थान था। अन्तःपुरमें हिन्दू महिलायें होम करती थीं, इसलिये पारसियोंकी अग्नि पूजा कोई नई बात नहीं थी। कुछ दिनों बाद (१५८९ ई०) अकबरने महीनों और दिनोंके लिये पारसी नाम स्वीकार किये और पारसियोंके चौदह उत्सवों को भी मनाने लगा। अकबर पारसी धर्मकी तरह ही हिन्दू, जैन और ईसाई धर्मके प्रति भी सम्मान प्रकट करता था, इसीलिए सभी उसे अपने-अपने धर्मका मानते थे।

३. हिन्दू-धर्म का प्रभाव

पोर्तुगीज पादरियोंके अनुसार अकबर हिन्दू पूजा-पाठ और रीति-रवाजोंकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होता गया। इबादतखानेके शास्त्रार्थ १५७५ से १५८२ ई०के अन्त तक चलते रहे। काबुलकी मुहिमपर रवाना होनेके समयसे पहले ही, जान पड़ता है, इबादतखानेकी इमारतको तोड़ दिया गया। किस तरह पुरुषोत्तम पंडित और देवी पंडितने अकबरको हिन्दू-धर्मकी बातें बतलाईं, यह बतला चुके हैं। बीरबल तो हर वक्त उसके साथ रहनेवाले नर्म-सचिव थे। वह भी हिन्दू-धर्मकी बारीकियोंको समझाते थे। अकबर यह भी जानता था, कि उसकी प्रजामें सबसे अधिक संख्या हिन्दुओंकी है। मानसिंह, राजा भगवानदास, बीरबल जैसे विश्वासपात्र दूसरे नहीं मिल सकते थे; इसलिये भी हिन्दूधर्मकी ओर उसका आकृष्ट होना स्वाभाविक था। हिन्दुओंकी कुछ बातें उसने पारसियोंमें ही नहीं, अपने पूर्वज तुर्कोंमें भी देखी थीं। तुर्क भी अपने संबंधीके मरनेपर भद्र होते थे, इसलिये अकबरने भी हिन्दुओंके इस रवाजको अपनाया। अपनी माँ मरियम मकानीके मरने पर अकबरने भद्र कराया था। खाने आजम मिर्जा अजीज कोकलतासकी माँ (अकबरकी दूधमाँ) जीजी अनगा जब मरी, उस वक्त भी अकबरने भद्र कराया, खानेआजमने भी बादशाहका अनुसरण किया। पता लगा, दरबारी लोग भी बड़े-छोटे भद्र हो रहे हैं। वह

तक उनको रोकनेकेलिये सन्देश आये, तब तक चार सौ सिर और मुँह सफाचट हो गये थे। विचारोंमें हिन्दू हमेशासे उदार रहे, इसलिये देवी पंडितने अकबरको यह समझा दिया : इस्लाम, हिन्दू धर्म, सूफी मत ही नहीं, दुनियाके सभी धर्मोंमें सच्चाई है, सभी एक भगवानको मानते हैं, सूफी "हमाँ ओ स्त" (सभी वह है) कहते हैं, हम "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म ही है) मानते हैं।

इस परिवर्तनके साथ अकबरको भारतकी हरेक बात भाने लगी। मुल्ला बदायूनी लिखते हैं : वह अरबीके अपने विशेष अक्षरों--(ह अ स ब् आदि)के फर्कको नहीं पसंद करता था। "अब्दुल्ला"को वह "अब्दुला" "अहदी"को "अहदी" कहना पसन्द करता था। मुन्शी लोग इलाहाबादको इलाहाबास लिखते थे। अभी तक बादशाह और दरबारी तुर्कोंकी पोशाक—लम्बा चोगा, कमरमें कमरबन्द—पहनते थे, अब उसने हिन्दुस्थानकी चौबन्दी स्वीकार की, चोगे और अमामे को उतार कर जामा और खिड़कीदार पगड़ी अपनाई। दाढ़ीको धत्ता बताया और तख्तकी जगह सिंहासनपर बैठने लगा। दरबारकी सारी सजावट हिन्दू ढङ्गसे होने लगी। बादशाहकी देखादेखी अमीरोंने भी तूरानी छोड़ कर हिन्दुस्तानी लिबास स्वीकार किया।

नववर्ष (नौरोज) का उत्सव पहलेसे चला आया था। उसे भी अकबरने हिन्दू रूप दिया। उस दिन सोनेकी तराजूपर बादशाह बारह चीजों (सोना, चाँदी, रेशम, सुगन्ध, लोहा, ताँबा, जस्ता, तूतिया, घी, दूध, चावल और सतंजा) से तुलता, ब्राह्मण हवन करते, दक्षिणा ले आशीष दे घर जाते। जन्मदिन (चाँद्र मास रजब ५) पर भी चाँदी, राँगा, कपड़ा, बारह मेवा, मिठाई, तिलके तेल आदिसे तुलता और सभी चीजें ब्राह्मणों और गरीबोंमें बाँट दी जातीं। दशहरेका भी उत्सव बड़ी शान-शौकतसे मनाता, ब्राह्मणोंसे पूजा करवाता, माथेपर टीका लगाता, मोती-जवाहरसे जड़ी राखी हाथमें बाँधता, अपने हाथपर बाज बैठाता, किलेके बुर्जोंपर शराब रखी जाती। सारा दरबार इसी रंगमें रंग जाता।

अकबर सुबहसे जमुनाके किनारेकी ओर पूर्व रुखवाली खिड़कियोंपर बैठता और सूर्यके उदय होते ही दर्शन करता। जो लोग सबेरे जमुना स्नान करने आते, वह भी झरोखे पर बादशाहका दर्शन करते, महाबली बादशाहका जयजयकार बोलते। आजाद कहते हैं—"अकबरने सब कुछ किया। राजपूतोंने भी जान की कुर्बानी हृदसे गुजार दी।" जहाँगीरने अपने तुजुकमें लिखा है : "अकबरने हिन्दुस्थानके रीति-रवाजको आरम्भ में सिर्फ ऐसे ही स्वीकार कर लिया, जैसे दूसरे देशका ताजा मेवा, या नये मुल्कका नया सिंगार, या यह, कि अपने प्यारों और प्यार करनेवालोंकी हर बात प्यारी लगती है।" अकबर इस्लामका विरोधी न होता, यदि उसके सांस्कृतिक समन्वयको स्वीकार किया गया होता। पर, मुल्ले टूट जानेके लिये तैयार थे, झुकनेके

लिये नहीं। अकबर अशोक की तरह सभी पाषण्डों (धर्मों) का एक समान आदर करता था। लेकिन, मुल्ले उसे धर्मसे पतित कह कर बदनाम करते थे।

हिन्दुओंने अकबरकी महिमा गानेमें कसर नहीं उठा रक्खी। एक पुरानी पोथी पेश की गई, जिसमें लिखा था, कि प्रयाग (इलाहाबाद)में मुकुन्द ब्रह्मचारीने अपना सारा शरीर काट-काट कर हवन कर दिया। मरनेसे पहले उन्होंने अपने शिष्योंके पास लिख कर रख दिया था, कि हम जल्दी ही एक प्रतापी बादशाह होकर पैदा होंगे। शिष्योंने यह कहना शुरू किया, कि मुकुन्द ब्रह्मचारी ही अकबरके रूपमें पैदा हुये हैं। कहीं हिन्दू बाजी मार न लेजायँ, इसलिये हाजी इब्राहीमने बीड़ा खाई एक गढ़ी-गढ़ी किताब निकाली, जिसमें शेख इब्न-अरबीका वचन उद्धृत करते कहा गया था, कि अंतिम पैगम्बर मेंहदीकी बहुत-सी बीवियाँ होंगी, उसकी दाढ़ी मुंडी होगी। अकबर वही मेंहदी है।

अकबर हिन्दुओं के बुरे रीति-रवाजोंको हटानेमें भी आनाकानी नहीं करता था। उसने सती होनेकी मनाही कर दी। हिन्दुओंके आग्रह करने पर अकबरने कहा—"अच्छी बात है, लेकिन जैसे विधवा सती होती है, वैसे ही स्त्रीके मरनेपर पुरुषको भी सता होना चाहिये।" और कहनेपर कहा—"विधुर सता न हो, लेकिन यह जरूर इकरार करे, वह फिर ब्याह नहीं करेगा।" एक दो वर्ष बाद उसने सती रोकनेके कानूनको कड़ाईके साथ इस्तेमाल किया और कहा जो औरत खुद सती नहीं होना चाहती, उसे पकड़ कर जलाना जुर्म है। मुसलमानोंको भी हुकुम दिया : बारह वर्षकी उमर तक लड़केका खतना न किया जाय, उसके बाद लड़केके ऊपर छोड़ दिया जाय, चाहे करे या न करे। राजा भगवानदासका भतीजा जयमल किसी जरूरी हुकुमको लिये दौड़ा-दौड़ करता आ रहा था, चौसाके पास लूसे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी बीबी जोधपुरके मोटा राजा उदयसिंहकी लड़की थी। उसने सती होनेसे इन्कार कर दिया। उसका पुत्र (जिसका भी नाम उदयसिंह था) और सम्बन्धी कुलकी नाक कटती देखकर उसे जलानेके लिये उतारू थे। अन्तःपुरमें अकबरके पास बहुत तड़के यह खबर पहुँची। वह तुरन्त एक घोड़ेपर चढ़ा और किसी को साथ चलनेके लिये न कह दौड़ा। ऐन-वक्त पर पहुँच गया, और राजपूतनी सती होनेसे बच गई। पहले तो जबर्दस्ती करनेवालोंको उसने मौतकी सजा देनी चाही, लेकिन पीछे कैदकी सजा कर दी।

गुरु नानक (जन्म १४६८ ई०)की मृत्यु अकबरके पैदा होनेसे चार वर्ष पहले १५३८ ई०में हुई थी। अभी सिक्ख धर्म आरम्भिक अवस्थामें था। नये पंथके प्रति अकबरके दिलमें कोई आकर्षण नहीं हुआ। गुरु अर्जुनदेव उसके समयमें मौजूद थे, लेकिन उसने उनके प्रति सम्मान नहीं दिखाया। मौजिजों और करामातोंकी परीक्षा करके उसने देख लिया था, कि यह सब धोखे धड़ीकी बातें हैं, इसलिये पीरों और गुरुओंके प्रति अन्तमें उसका विश्वास नहीं रह गया। बीरबल जरूर सिक्ख धर्मको अच्छी दृष्टिसे देखते थे।

४. जैन-धर्मका प्रभाव

जैन धर्मने अकबरके ऊपर विशेष प्रभाव डाला था। जैन मुनि हीर विजय सूरि, विजयसेन सूरि और भानुचन्द्र उपाध्याय अकबरके दरबारमें पहुँचे थे। भानुचन्द्रने कादम्बरीकी टीकामें जलालुद्दीन अकबरका नाम बड़े आदर के साथ लिया है। हीर-विजयका प्रभाव अकबरके ऊपर सबसे अधिक पड़ा। जैन परम्परा बतलाती है, कि उन्होंने अबुलफज़ल, शेख मुबारक आदि बीस अमीरों के साथ अकबरको जैन धर्ममें दीक्षित किया। १५८२ ई०में काबुलसे लौटनेके बाद अकबरने गुजरातके सिपहसालारको मुनि हीरविजयको दरबारमें भेजनेके लिये लिखा। मुनि अहमदाबादमें पहुँचे। सिपह-सालारके कहनेपर उन्होंने दरबारमें जाना स्वीकार किया। जैन मुनियोंके नियमके अनुसार पैदल ही अहमदाबादसे चलकर वह सीकरी पहुँचे थे। सीकरीमें धूमधामसे स्वागत हुआ। अबुलफज़लको मेहमानदारीका काम सुपुर्द किया गया। कुछ दिनों धर्म और दर्शनपर बातचीत हुई। इसके बाद हीरविजय आगरा गये। वर्षाके अन्तमें फिर वह सीकरी आये। उन्होंने बादशाहसे कहा, वर्षके कुछ दिनोंमें प्राणिवध बन्द किया जाय, चिड़ियों-को पिंजड़ेसे और बन्दियोंको जेलसे मुक्त कर दिया जाय। अगले साल (१५८३ई०) अकबरने उसीके अनुसार फरमान जारी किया और आज्ञा उल्लंघन करनेवालेको मृत्यु-दण्ड निश्चित किया। मुनिके प्रभावसेही अकबरने अपने शिकार-प्रेमको छोड़ा, मछली मारना भी बन्द कर दिया। अकबरने हीरविजयसूरिको "जगद्गुरु" की उपाधि दी। अकबरने बहुत सी चीजें भेंट देनी चाही, लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। १५८४ ई०में वह आगरा और प्रयाग होते गुजरात लौटे। तीन साल बाद बादशाहने लिखित फरमान जारी करके जजियाको बन्द किया, और करीब-करीब सालके आधे दिनोंमें जानवरोंके मारनेकी मनाही कर दी। भानुचन्द्र उपाध्याय दरबारमें बने रहे। १५६३ ई०में दूसरे मुनि सिद्धिचन्द्र लाहौरमें अकबरसे मिले। उन्हें भी उपाधि और जैन तीर्थोंके प्रबन्धका काम सौंपा। शत्रुञ्जयके तीर्थयात्रियोंका कर बन्द कर दिया। शत्रुञ्जय पर्वत (काठियावाड़में पालीतानाके नजदीक) पर आदीश्वरका मन्दिर हीरविजय सूरिने बनवाया था, जिसमें १५६० ई०के एक अभिलेखमें सूरि और अकबर की प्रशंसा की गई है। १५६२ ई०में हीरविजयसूरिने निराहार रह कर अपना शरीर छोड़ा।

५. ईसाई धर्मका प्रभाव

पोर्तुगीजोंने काठियावाड़में दामनके बन्दरगाहपर १५५८ ई०में अधिकार कर लिया। उसके पन्द्रह साल बाद (१५७३ ई०में) अकबर गुजरात गया। उस समय उसने पोर्तुगीजोंके बारेमें सुना ही नहीं, बल्कि पोर्तुगीज प्रतिनिधियोंसे मुलाकात और सुलह की। कुछ साल बाद अकबरने अपना दूत-मण्डल सुलहकी शर्तोंके तै करनेकेलिये गोआ भेजा। १५७८ ई०में गोआके वायसराय मेनेजेसने अन्तानियो कबरालको अपना दूत

बना कर अकबरके दरबारमें भेजा। अन्तानियोने १५७३ ई०में भी सफलता-पूर्वक समझौतेकी बात की थी। अन्तानियो कुछ समय सीकरीमें रहा। अकबरको उसने ईसाई धर्म और उसके रीति-रवाजोंके बारेमें कितनी ही बातें बतलाईं। पर वह साधु (पादरी) नहीं था, इसलिये विशेष जाननेके लिये अकबरने किसी विद्वान पादरीको बुलानेकी सोची। १५७६ ई०में बंगालका बड़ा पादरी (विकार जेनरल) साधु जुलियन परेरा सातगाँवमें रहता था। अकबरने उसे दरबारमें बुलाया और उससे ईसाई धर्मके बारेमें बहुत सी बातें पूछ कर जानीं। लेकिन, साधु परेराका ज्ञान कम था, वह अच्छा साधु भर था। एक पोर्तुगीज पियेत्री तवारेश अकबरकी नौकरीमें था, जो कुछ पीछे हुगली बन्दरका कप्तान हो गया। वह भी अकबर को इससे पहले अधिक जानकारी नहीं दे सका।

(१) प्रथम जेसुइत मिशन (१५८० ई०)—इबादतखानेमें शास्त्रार्थोंका जोर था, इसी समय दिसम्बर १५७८ ई०में अकबरने गोवाके पोर्तुगीज अधिकारियोंके पास ईसाई धर्मके विद्वानोंको भेजनेके लिए एक पत्र भेजा, जिसके कुछ वाक्य थे—

"मैंने अपने दूत अब्दुल्ला और दामेनिको पेरेजको इसलिये भेजा है, कि तुम अपने दो विद्वान् आदमियों को मेरे पास भेजो, जो अपने साथ धर्मकी पुस्तकें, विशेषकर सभी इञ्जीलोंको लायें। मैं सच्चे दिलसे उनकी विशेषताओंको जानना चाहता हूँ। मैं अधिक जोर देकर कहता हूँ, कि वह अपनी पुस्तकोंको लिये हमारे राजदूतों के साथ आयें। उनके आनेसे मुझे अत्यन्त संतोष होगा। वह मेरे प्रिय होंगे और मैं सभी सम्भव तरीकोंसे उनका सम्मान करूँगा। अगर वह चाहेंगे, तो मैं उन्हें बड़े सम्मानके साथ और उचित इनाम देकर लौटा दूँगा। उन्हें मुझसे डरना नहीं चाहिये।"

अब्दुल्ला सितम्बर १५७६में गोआ पहुँचा। पोर्तुगीज उपराजने उसका बड़ा स्वागत किया। गोआके पादरी सालोंसे जिस बातकी आकांक्षा कर रहे थे, उसे अनायास ही अकबरने उनके लिये सुगम कर दिया। उन्होंने नवम्बरमें बादशाहके निमंत्रणको स्वीकार कर लिया। इसीलिये साधु रिदाल्फो अक्वाविवाकी अधीनतामें अन्तानियो मोनसेरा और फ्रांसिस्को एनरिकेज दो साधुओंका भेजना ते किया गया। एनरिकेज वेरा ईरानी मुसलमानसे ईसाई हुआ था और दुभाषियेका काम अच्छी तरह कर सकता था, क्योंकि वह फारसी-भाषी था। साधु रिदाल्फो (जन्म १५५० ई०) नेपल्सके राजके एक अत्यन्त प्रभावशाली ड्यूकका लड़का था और पिता के विरोध करनेपर भी जेसुइत सम्प्रदायके साधुओंमें दीक्षित हुआ। २८ वर्षकी उमरमें सितम्बर १५७८में काफिरोंको ईसाई बनानेके उत्साहमें वह गोआमें उतरा। आनेसे एक महीने बाद ही बीजापुरके सुलतानके बीच नौकरोंको ईसाई बनानेमें सफल हुआ। वह गोआमें दर्शनका प्रोफेसर था। उसने स्थानीय भाषा (कोंकणी) को बहुत तत्परतासे सीखकर फारसी पढ़ी।

। ॰ साधु अन्तोनियो मोनसेरेत स्पेनका निवासी था। अकबरके दरबारमें एक बार शास्त्रार्थके समय उसने पैगम्बरके धर्मपर कड़े शब्दोंमें जबर्दस्त प्रहार किये, जिसकेलिये अकबरको रोकनेकी जरूरत पड़ी। १५८२ ई०में वह गोआ लौटा। मोनसेरेतको दूतमण्डलका इतिहासलेखक नियुक्त किया गया था। उसने हर रोजकी घटनाओंको उसी रात लिख डालनेका नियम बना लिया था। (पादरियोंके तीसरे मिशनसे यह सुनकर अकबरको बड़ा खेद हुआ, कि उसे अरबोंने बन्दी बना लिया है।) मोनसेरेतका विवरण वास्को द-गामाके बाद उत्तर भारतके बारेमें सबसे पुराना यूरोपीय अभिलेख है। इसमें अकबरके १५८१ ई०के काबुल-अभियानका बहुत अच्छा वर्णन है। मोनसेरेत शाहजादा मुरादके अध्यापकके तौरपर अकबरके साथ जलालाबाद (अफगानिस्तान) तक गया था।

अकविवा और उसके दोनों साथी गोआसे समुद्रके रास्ते १७ नवम्बर १५७९ को दामन पहुँचे। वहाँसे बलसार और नौसारी होते दिसम्बरमें सूरतमें सल्तनतके भीतर दाखिल हुए। १५ जनवरी १५८०को उन्होंने एक कारवाँके साथ फिर यात्रा शुरू की। मार्गमें डाकुओंका डर था, इसलिये किसी सशस्त्र बड़े कारवाँके साथ ही यात्रा की जा सकती थी। कुकरमुंडा, तलोदा (खानदेश), फिर सुल्तानपुर होते नर्मदा पार हो माँडू और उज्जैन पहुँचे। ६ फरवरीको सारंगपुर (जिला देवास) पहुँच छ दिन चल कर सिरोंज आनेपर अकबरके भेजे सैनिकोंने उसका स्वागत किया। नरवर, ग्वालियर और धौलपुर होते २८ फरवरीको पादरी सीकरी पहुँचे। अकबर उनसे मिलनेकेलिये इतना उत्सुक था, कि नगरमें पहुँचते ही उन्हें अपने पास बुलाया और रातको दो बजे तक बात करता रहा। उसने बहुत-सा धन देना चाहा, लेकिन भोजन आदिकी आवश्यक चीजोंको छोड़कर साधुओंने कोई चीज स्वीकार नहीं की। पेरेजने दुभाषियाका काम किया। उसे हिदायत कर दी गई, कि साधुओंको कोई कष्ट न होने पाये।

अगले दिन दीवानखासमें अकबरने उनसे मुलाकात की। ३ मार्चको स्पेनके राजा फिलिप (१५६६-७२ ई०)केलिये छपी सुन्दर जिल्द बँधी बाइबिल अकबरको भेंट की गई। (पीछे १५६५ ई०में यह और दूसरी यूरोपीय पुस्तकें अकबरने ईसाई साधुओंको दे दीं।) बाइबलको अपनी पगड़ी हटा कर उसने बड़े सम्मानके साथ सिरपर रक्खा और भक्तिभावसे चूमा। साधु अपने साथ ईसा और कुमारी मरियमके चित्र लाये थे। अकबरने अपने चित्रकारोंको उन्हें उतारनेकेलिये कहा। महलके एक भागमें साधुओंको एक छोटा-सा मन्दिर बनानेकी इजाजत दी। अकबर एक दिन स्वयं वहाँ दर्शन करनेकेलिये गया। उसने अपने दस वर्षके पुत्र मुरादको ईसाई धर्म और पोर्तुगीज भाषा सीखनेकेलिये मोनसेरेतके सुपुर्द किया। साधुओंको राजधानीमें धर्म-उपदेश करनेकी पूरी छूट थी। इसी समय एक पोर्तुगीज मर गया। उसकी शव-यात्रा शहरमें क्लेश और मोमबत्तियोंके साथ निकाली गई। लेकिन पादरी धर्मान्ध मुल्लोंसे

बेड़ा नहीं था। आगे हम देखेंगे, कि इसकी तरफ उसका ध्यान गया था; किन्तु, समुद्रमें कूदकर ही वह सागर-विजय कर सकता था। रावी या हुगली नदियोंकेलिये तैयार किये गये बजड़े पोर्तुगीजी नौसेनाका मुकाबिला नहीं कर सकते थे।

१५७५ ई०में गुलबदन बेगमके हज करनेकेलिये अकबरने दामनके पास बूलसर गाँवको पोर्तुगीजोंको देकर पारपत्र प्राप्त किया था। गुलबदन बेगमके खैरियतके साथ लौटनेपर उसने उक्त गाँवको छीन लेनेका हुकुम दिया। पर पोर्तुगीजोंने मुगल सेनाको सफल होने नहीं दिया और साथ ही एक मुगल जहाजको भी पकड़ लिया। इसी समय दियोगो लोपेस कूतिन्होके अधीन पोर्तुगीज नौसैनिक बेड़ा सूरतके पास ताप्तीमें पड़ा हुआ था। उसके कुछ सैनिक शिकारकेलिये मुगल सीमाके भीतर यह समझकर उतर गये कि वह मित्रदेश है। मुगल सैनिकोंने उनपर आक्रमण करके नौको पकड़ लिया और सूरतमें लाकर उन्हें इस्लाम स्वीकार करनेके लिये कहा। इन्कार करनेपर कत्ल कर दिया। उनके सरदार ला सेरदाके सिरको काटकर राजधानीमें भेजा गया। अकबरने अनजान होनेका बहाना करके इस झगड़ेकेलिये अफसोस प्रकट किया।

१५८० ई०में राजादेशके अनुसार कुतुबुद्दीनने १५ हजार सवार एकत्रित किये और दामनके इलाकेमें लूट-मार की। १५ अप्रेल १५८२को उसने दामन बन्दरगाहपर आक्रमण किया, लेकिन पोर्तुगीज नौसेनाने उसे हटनेकेलिये मजबूर किया। पोर्तुगीज साधुओंके कहनेपर अकबरने इस बातसे अपनी अज्ञता प्रकट करते कहा : कुतुबुद्दीन सिपहसालार है, उसने स्थितिको देखकर अपनी जिम्मेवारीपर यह काम किया होगा। चूँकि उसकी नीयत खराब नहीं थी, इसलिये उसको कुछ कहा नहीं जा सकता। पीछे अकबरका हुकुम जानेपर कुतुबुद्दीनने अपनी सेना तुरन्त हटा ली। इसी समय पोर्तुगीजोंने दिव (सौराष्ट्र)पर हुए मुगल आक्रमणको भी विफल कर दिया। इसमें तो शक नहीं, कि पोर्तुगीज साधु केवल धर्म-प्रचारकेलिये वहाँ नहीं पहुँचे थे, बल्कि वह अपने प्रभु—स्पेन-पोर्तुगालके राजा—की सेवा भी बजा लाना चाहते थे। तो दरबारसे लौटे। इसी समय अकबरने यूरोपके राजाओं—विशेषकर पोर्तुगालके राजाके दरबारमें दूतमण्डल भेजनेकी बात सोची। तुर्कोंसे तुर्कोंसे उसकी पटती नहीं थी, चाहता था, पोर्तुगालसे मिलकर तुर्कोंको दबाया जाय। जब यह मालूम हुआ, कि केथलिकोंके पोपका यूरोपके राजाओंपर जबर्दस्त प्रभाव है, तो उसके पास भी अकबरने धार्मिक जिज्ञासा प्रकट करते लिखा : मैं मुसलमान नहीं हूँ। मेरे पुत्र अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्मको स्वीकार कर सकते हैं।

मिश्नरी गोआके आदेशपर लौटनेकेलिये तैयार थे, लेकिन अन्तमें अकविवाको शाहजादा मुरादके शिक्षकके तौरपर रहने दिया गया।

काबुलके अभियानके कारण इबादतखानेका शास्त्रार्थ बन्द हो गया था। अब उसका फिर प्रबन्ध किया गया। एक रात दीवानखासमें मुसलमान, हिन्दू, ईसाई विद्वान

जमा हुए। कुरान और बाइबलके महत्वपर बहस छिड़ गई। अकबरने कहा, निश्चित दिनोंमें शास्त्रार्थ चलता रहे, जिसमें मुझे मालूम हो, कि कौन धर्म अधिक सच्चा है। अगली शामको सभामें दोनों बड़े शाहजादे और कितने ही अमीर तथा अधीन राजा भी मौजूद थे। फिर सभामें उपस्थिति कम होने लगी और नौबत यहाँ तक पहुँची, कि सिर्फ ईसाई साधु ही वहाँ जानेकेलिये रह गये। अकबरकी जिज्ञासा पूरी हो गई थी, पुराने धर्मोंसे उसे आशा नहीं रह गई। उसने सोचा, यदि इस्लाम, ईसाई या हिन्दू किसी एक धर्मको स्वीकार करें, तो दूसरोंके सम्मिलित-विरोधका सामना करना पड़ेगा। व्यवहारमें वह अधिकाधिक हिन्दू विधि-विधानों और रीति-रवाजोंकी तरफ खिंचता जा रहा था और वैसा ही आचरण भी करता था। उसने सोचा, सभी धर्मोंकी अच्छी-अच्छी बातोंको लेकर एक नये धर्म—दीन-इलाही—की स्थापना की जाय। इस प्रकार पाँच वर्षके बाद १५८२ ई०में धार्मिक शास्त्रार्थ बन्द हो गये।

यूरोपमें दूतमण्डल भेजनेमें यद्यपि सफलता नहीं हुई, किन्तु अकबरने उसके लिये कोशिश जरूर की। दूत-मण्डलका मुखिया सैयद मुजफ्फर और सहायक साधु मोनसेरत बननेवाले थे। साधुओंको गोआसे लानेवाले ईरानी (शिया) अब्दुल्ला खाँको गोआसे आगे नहीं जाना था। कितने ही समय तक तैयारीके बाद १५८२ ई०की गर्मियोंमें दूतमंडल रवाना हुआ। ५ अगस्तको सूरत पहुँचकर उन्हें यह जानकर बहुत अफसोस हुआ, कि एक दिन पहले वहाँ दो ईसाई तरुणोंको कतलकर दिया गया। जैन व्यापारियोंने एक हजार मुहर देकर उनके प्राण बचानेकी कोशिश की, लेकिन शाही अफसरोंने नहीं माना। पोर्तुगीजोंके साथ सम्बन्ध बहुत खराब हो चुका था और उन्हींकी सहायता से दूतमण्डल यूरोप जा सकता था। सैयद मुजफ्फर जबर्दस्ती भेजा गया था, वह भाग कर दक्खिन चला गया। अब्दुल्ला खाँ मोनसेरतके साथ दामन और फिर गोआ गया। उस समय कोई अनुकूल जहाज भी नहीं जा रहा था, इसलिये गोआके अधिकारियोंने दूतमण्डलकी यात्रा अगले सालके लिये मुल्तवी कर दी। अन्तमें अब्दुल्लाको राजधानी लौट आना पड़ा।

अकविवा इस सारे समय सीकरीमें था। अब अकबरकेविचारोंमें भारी परिवर्तन देखकर उसने सीकरीमें रहना बेकार समझा। बड़ी मुश्किलसे उसे इजाजत मिली और वह १५८३ में वह गोआ लौट सका। जेसिवत पादरी अपने इलाकोंमें लोगोंको ईसाई बनानेमें नग्न पशु-बलका प्रयोग करते थे। हिन्दू मन्दिरोंको तोड़ना, हिन्दुओंके भावोंको हर तरहसे ठेस पहुँचाना, छल-कपट जैसे भी हो हिन्दुओंको अपने धर्ममें दीक्षित करना, यह बातें उनके लिये आम थीं—निष्ठुर सेन्ट जेवियर उनके लिये आदर्श था। ऐसे ही किसी व्यवहारसे हिन्दू आपेसे बाहर हो गये और गोआ पहुँचनेके दो महीने बाद अपने चार यतीके साथ अकविवा मारा गया। पोपने अपने धर्म-प्रेमका परिचय देते हुए १८९३ में उसे संत शहीद घोषित किया। अकविवा सीकरी छोड़ते वक्त अपने साथ एक हस्त

गुलाम-परिवारको भी ले गया, जिसमें माँ-बाप, दो बेटे तथा कुछ और आदमी थे। बहुत दिनोंसे मुसलमानोंमें रहते वह रँग और नाममें ही ईसाई थे। अकबरकी माँ इसका विरोध करती रही, लेकिन अकबरने उन्हें जानेकी इजाजत दे दी।

पादरी बड़ी लालसासे दरबारमें आये थे। वह समझते थे, अकबर ईसाई हो जायगा फिर हिन्दुस्तानका कान्स्तन्तिन बनकर अपनी सारी प्रजाको ईसाई बनवा देगा। सफल न होनेपर उन्होंने अंगूर खट्टे की कहावत चरितार्थ की और कहा, कि अकबर सिर्फ तमाशाकेलिए साधुओंसे पूछताछ करना चाहता था।

पोर्तुगीजोंसे भिन्न अँग्रेज जेसित साधु टामस स्टिफन अक्तूबर १५७६ में गोआ पहुँचा। शायद भारतमें रहनेवाला वह पहला अँग्रेज था, जिसने चालीस वर्ष तक गोआ और आसपासमें कैथलिक धर्मका प्रचार किया। कोंकणी भाषापर उसका पूरा अधिकार था। इस भाषाका उसने पहिला व्याकरण बनाया, जो उसके मरनेके बाद १६४० ई०में गोआमें छपा। कोंकणी ईसाइयोंकेलिये उसने एक बहुत लम्बी कविता रची। १० नवम्बरको अपने बापके नाम हिन्दुस्तानके बारेमें लिखा उसका लम्बा पत्र हकल्विट द्वारा १५८६ ई०में प्रकाशित हुआ। इसेही पढ़कर अँग्रेजोंको पहले-पहल हिन्दुस्तानके प्रति दिलचस्पी हुई, जिसका अन्तिम परिणाम भारतमें अँग्रेजोंके राज्यका कायम होना था।

१५८१ ई०में इंगलैण्डकी रानी एलिजाबेथने लेवान व्यापारी कम्पनीको पूर्वी भूमध्यसागरमें व्यापार करनेका अधिकार पत्र दिया। इसी कम्पनीने १५८३ ई०में लन्दनके एक व्यापारी जान न्यूबरीको हिन्दुस्तान भेजा। वह हिन्दुस्तानमें आनेवाला पहला अँग्रेज बनिया था। उसके साथ एक सोनार विलियम लीड्स और एक चित्रकार जेम्स स्टोरी भी हिन्दुस्तान आये। इन्हें भारतके बारेमें जो ज्ञान था, वह स्टिफनके पत्रोंसे ही था। लन्दनका दूसरा बनिया राल्फ फिच भी दुनियाकी सैर करनेके लिये इनमें शामिल हो गया था। त्रिपोली (सीरिया)से स्थलमार्ग द्वारा हलब, बगदाद होते हुये होरमुज़ (ईरान) पहुँच जहाज पकड़ना चाहा। पोर्तुगीज किसी दूसरेका पूर्वमें आना सहन नहीं कर सकते थे। होरमुजमें उन्होंने इन अँग्रेजोंको पकड़ कर जेलमें डाल दिया, फिर कुछ दिनों बाद गोआ भेज दिया। गोआमें भी वह जेलमें बन्द रहे, और साधु स्टिफनकी जमानतपर छोड़े गये। जेम्स स्टोरी चित्रकार होनेसे जेसितोंका कृपापात्र बन गया। वहीं उसने एक अधगोरी लड़कीसे ब्याह कर अपनी दूकान खोल ली और देश लौटनेका ख्याल छोड़ दिया। उसके तीन साथी प्रोटेस्टेन्ट होनेसे कैथलिकोंकी दृष्टिमें नास्तिक थे। उन्हें खतरा मालूम हुआ, इसलिये जमानतके जप्त होनेकी पर्वाह न कर चुपकेसे निकल भागे और बेलगाँव, बीजापुर, गोलकुण्डा, मुसलीपटम, बुरहानपुर होते मांडू पहुँचे। यात्रामें थोड़ा-बहुत व्यापार करके वह अपना खर्च चला लेते थे। मांडूमें उन्हें अब अकबरी दरबार देखनेकी इच्छा हुई और उज्जैन, सिरोज होते बरसातमें बढ़ी हुई बहुत सी नदियोंको कितने ही बार

सीट कर पार कर वह आगरा पहुँचे। इनमें फिच ही लौटकर इंगलैंड आ सका। १५८५ ई०के जुलाई या अगस्तके आरम्भमें यह अकबरकी राजधानी फ़तेहपुर सीकरी पहुँचे। २२ अगस्तको अकबरने काबुल-अभियानके लिये प्रयाण किया। लीड्स अकबरका जौहरी हो गया। वह सुनार-जौहरी था। न्यूबरी और फ़िच २८ सितम्बर तक ठहरे रहे। न्यूबरीने इरान या कुस्तुन्तुनियाँ होकर लौटनेका निश्चय किया और फ़िचको बंगाल और पेगू (बर्मा) जानेके लिये कहा। फ़िच बंगाल और बर्माकी यात्रा करके १५९१ ई०में इंगलैंड लौटा। न्यूबरीका फिर पता नहीं लगा। फिचने सोनारगाँव (ढाका जिला) के बन्दरगाहसे हिन्दुस्तान छोड़ा। न्यूबरीकी मण्डलीको १५८३ ई०के आरम्भमें इंगलैंड छोड़ते समय रानी एलिजाबेथने हिन्दुस्तान और चीनके बादशाहोंके लिये सिफारिशी पत्र लिखे थे। रानीने जलालुद्दिन अकबरका नाम सुन लिया था और उसके नाम कम्बाउ (कम्बात)के राजाके तौरपर पत्र लिखा था।

(२) द्वितीय जेसुइत मिशन (१५९० ई०)—१५८३ ई०में अकविवाके चले जानेके बाद सात वर्ष तक किसी ईसाई मिशनरीके अकबरके दरबारमें पहुँचनेका पता नहीं लगता। १५९० ई०में एक ग्रीक (यूनानी) पादरी लेउ ग्रिमोन घूमता-घामता पंजाब पहुँचा और अकबरके दरबारमें पूछताछ होनेपर उसने गोआसे पादरियोंको बुलानेकी सलाह दी। अकबरने गोआको एक जोरदार पत्र लिखा। ग्रिमोनके बारेमें अपने अफसरोंके पास उसने एक अच्छा सिफारिशी पत्र दिया। गोआमें ग्रिमोनने खूब बढ़ा-चढ़ा कर अकबरकी श्रद्धा-भक्तिको बतलाया। पोर्तुगीज साधु एदवर्द लेवतन और क्रिस्तोफ़र दीवेगा एक सहायकके साथ गोआसे भेजे गये, जो १५९१ ई०में अकबरके पास लाहौर पहुँचे। अकबरने उनका अच्छा स्वागत किया। हर तरहकी सुभीता दे महलमें ही उनको एक घर रहनेके लिये दिया। अमीरों और शाहजादोंके पढ़नेके लिये पादरियोंने एक स्कूल भी खोल दिया। उनको यह जानते देर नहीं लगी, कि अकबर ईसाई बननेवाला नहीं है। अब उन्हें वहाँ रहना पसन्द नहीं आया। लेकिन, उनके ऊपरवालोंने साधु लेवतनको वहीं रहनेके लिये आज्ञा दी। वेगा लौट गया। शायद अभी भी आशा थी, लेकिन, वह कभी पूरी होनेवाली नहीं थी, इसलिये १५९२ ई०में दूसरा साधु भी गोआ लौट गया। शायद इसमें उन्होंने उतावलापन दिखलाया, जिसके लिये पोपके दरबारमें उनकी भर्त्सना हुई। अकबरकी धार्मिक जिज्ञासा हर समय तीव्र नहीं रह सकती थी। इसी वक्त राजकीय कार्य उसे सिन्धके झगड़ोंकी ओर आकृष्ट कर रहे थे, ऐसे समय वह एकान्त मनसे पादरियोंके सरमनको सुननेके लिये कैसे तैयार हो सकता था? उसकी जिज्ञासाका मतलब भी पादरी गलत लगा रहे थे। वह सभी धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता था, इसलिये शास्त्रार्थ, सत्सङ्ग द्वारा पारसी-जैन धर्माचार्योंके ज्ञानसे लाभ उठाना चाहता था। वह सभी धर्मोंके प्रति सम्मान दिखलाना चाहता था, इसीलिये सब को खुश नहीं कर सका।

हिजरी १००० (१५९१-९२ ई०) में पैगम्बर मुहम्मदके मदीना प्रवासके हजार साल हो रहे थे। इसके उपलक्षमें अकबरने एक "सहस्रवर्षी इतिहास" (तारीख अलफी) लिखवाया। ११ मार्च १५९२में अकबरका ३७ वाँ सनजलूस शुरू हुआ। इसी साल सहस्राब्दीके उपलक्षमें नये सिक्के ढाले गये। हिजरी १००२ (१५९३-९४ ई०)में अकबरने कई आज्ञायें जारी कीं, जिनसे मालूम होगा, कि धार्मिक सहिष्णुताका वह कितना ख्याल रखता था—

"बचपनमें या और तरहसे जो हिन्दू अपनी इच्छाके विरुद्ध मुसलमान बना लिया गया हो, यदि वह अपने बाप-दादोंके धर्ममें लौटना चाहता हो, तो उसे इसकी आज्ञा है।

"किसी आदमीको उसके धर्मके कारण बाधा नहीं दी जा सकती। हरेक आदमी अपनी इच्छानुसार जिस धर्ममें चाहे, उसमें आ सकता है।

"यदि कोई हिन्दू औरत मुसलमानसे प्रेम करके मुसलमान हो जाये, तो उसे उसके पतिसे जबर्दस्ती छीन कर उसके परिवारको दे देना चाहिये।

"यदि कोई गैर-मुस्लिम अपना गिर्जा, यहूदी धर्म-मन्दिर, देवालय या पारसीसमाधि बनाना चाहे, तो उसमें कोई बाधा नहीं देनी चाहिये।"

यूरोपियन इतिहासकार अकबरकी सदिच्छाओंमें भी दुरिच्छा और उदारतामें भी दोष निकालनेसे नहीं चूकते। उपरोक्त बातको उद्धृत करके विन्सेन्ट स्मिथने यह बतलाना चाहा है, कि अकबरकी उदारता और सहिष्णुताका स्रोत इस्लामके पास पहुँचते-पहुँचते सूख जाता था। वस्तुतः इसमें अकबरका दोष नहीं था। इस्लामके दावेदार फूटी आँखों भी दूसरे धर्मको समृद्ध रहते नहीं देखना चाहते थे। वह एकतरफा फैसला चाहते थे, जिसके लिये अकबर तैयार नहीं था।

(३) तृतीय जेस्वित मिशन (१५९४ ई०)—अकबरने गोआके पोर्तुगीज उपराजको विद्वान् पादरी भेजनेके लिये तीसरी बार (१५९४ ई०)में पत्र लिखा। पादरियोंमें इसकेलिये उत्साह नहीं था, लेकिन पोर्तुगीज उपराज उसके राजनीतिक महत्वको भी समझता था। इस बार अपनी धर्मान्धताकेलिये प्रसिद्ध सेन्त फ्रांसिस जेवियरके भतीजेके बेटे साधु जेरोम जेवियर, एक पोर्तुगीज इमानुयेल पिन्हेरो तथा साधु बेनेदिक्त गोयेजको भेजनेका निश्चय किया गया। प्रथम मिशनका आर्मेनियन दुभाषिया इन साधुओंके साथ भी भेजा गया। जेरोम कई सालोंसे हिन्दुस्तानमें ईसाई धर्मका प्रचार कर रहा था। उसने बड़ी लगनके साथ इस कामको उठाया और वह लगातार २३ वर्षों तक (अकबरके मरनेके बहुत पीछे तक) मुगल-दरबारमें रहा। साधु पिन्हेरो अधिकतर लाहौरमें पड़ा रहा, अकबरके साथ घनिष्ठता स्थापित करनेका उसे मौका नहीं मिला। उसने कितने ही पत्र लिखे थे, जिनसे उस समयकी स्थितिपर बहुत प्रकाश पड़ता है। गोयेज दरबारसे प्रायः अलग-अलग हिन्दुस्तानमें

आठ वर्ष रहा। जेसुइत नेताओंने जनवरी १६०३में उसे तिब्बत भेजा। वह तिब्बत होते चीन पहुँचकर वहीं १६०७ ई०में मरा। अकबरके आखिरी वर्षों और जहाँगीरके शासनकाल तकके इतिहासकी बहुमूल्य सामग्री इन जेसुइत पादरियोंके पत्रों और लेखोंमें मिलती है।

तीनों साधु दुभाषियेके साथ ३ दिसम्बर १५६४में गोआसे दामन, अहमदाबाद, पाटन, राजस्थान हो पाँच महीने बाद ५ मई १५६५में लाहौर पहुँचे। उनकी यात्रा एक बड़े कारवाँके साथ धीरे-धीरे हुई थी, नहीं तो दो महीनेसे अधिक समय नहीं लगता। खम्भात और लाहौरके बीचके अधिकांश भूभागको उन्होंने निर्जन और रेगिस्तानी कहते लाहौरके नजदीकके कुछ मंजिलों तककी ही जमीनको उर्वर बतलाया है। रास्तेमें गर्मी और धूलसे उनकी बुरी हालत थी। कारवाँमें ४०० ऊँट, १०० गाड़ियाँ, सैकड़ों घोड़े और बहुसंख्यक पैदल यात्री थे। जल दुर्लभ था, जहाँ मिलता भी, खारा सा होता। लाहौरमें पहुँचनेपर अकबरने उनकी बहुत खातिर की और पहुँचते ही उनसे मुलाकात की। सम्मान दिखलानेमें अकबरने इतनी उदारता दिखलाई थी, जिसकी वह आशा नहीं कर सकते थे। उसने उन्हें अपने आसनके एक भागमें या युवराजके बैठनेके स्थानमें बैठाया। उन्हें सिजदा (दंडवत) करने नहीं दिया, जो कि राजाओंकेलिये भी अनिवार्य था। साधु अपने साथ मसीह और कुमारी मरियमकी भारी मूर्ति ले आये थे। अकबरने उनके सामने बड़े अदबसे सिर झुकाया और भारीपनका ख्याल न कर देर तक अपने हाथमें लिये रहा। एक दिन वह उनकी प्रार्थनामें भी गया और ईसाइयोंकी तरह घुटने टेक हाथ उठा कर प्रार्थना की। १५ अगस्तके मरियमके महोत्सवमें उसने अपनी सुन्दर मूर्तियोंके साथ प्रार्थना-भवनको सजानेकेलिये कीमती जरीके पर्दे भेजे। अकबर और शाहजादा सलीम कुमारी मरियमके प्रति विशेष भक्ति दिखलाते थे। साधुओंके साथ एक पोर्तुगीज चित्रकार आया था, जिससे अकबरने कई चित्र बनवाये। शाहजादाने गिर्जा बनानेकेलिये बारमें एक अच्छी जगह प्राप्त की और अपने खर्चसे वहाँ इमारत बनवा देनेकेलिये कहा। सिमोनकी तरह जेवियर और पिनहेरोने भी लाहौरसे १५६५के अगस्त सितम्बरके अपने पत्रोंमें उल्लेख किया है, कि अकबर इस्लामके खिलाफ है। जेवियर कहता है—

"बादशाहने अपने दिमागसे मुहम्मदके धर्मको बिल्कुल निकाल दिया है। उसका झुकाव हिन्दू धर्मकी ओर है। भगवान् और सूर्यकी पूजा करता है।... वह एक हिन्दू उसके दृष्टान्त हैं। मैं नहीं जानता, मुसलमान इसे कैसा सोचते हैं। बादशाह मुहम्मदका भी मजाक उड़ाता है।"

महलके पास एक सुन्दर स्थानको गिर्जेकेलिये मिलनेका उल्लेख करते पिनहेरो ने है—

"इस बादशाहने मुहम्मदके झूठे धर्मको नष्ट कर दिया, उसे बिल्कुल बदनाम

कर दिया। इस शहरमें न कोई मस्जिद है, न कुरान।...जो मस्जिदें पहले थीं, उन्हें घोड़ोंका अस्तबल या गोदाम बना दिया गया है। मुसलमानोंको अत्यन्त लज्जित करनेके लिये प्रत्येक शुक्रवारको ४७ या ५० सूअर लाकर बादशाहके सामने लड़ाये जाते हैं। वह उनके खाँगों (दंस्ट्रा)को लेकर सोनेसे मढ़ा कर रखता है। बादशाहने अपना एक धर्म बनाया है, जिसका वह खुद पैगम्बर है। उसके बहुतसे अनुयायी हैं, लेकिन पैसेके लिये ही। वह भगवान् और सूर्यकी पूजा करता है। वह हिन्दू है और जैन सम्प्रदायका अनुगमन करता है।..हमारे स्कूलमें बहुत ऊँचे मन्सबके अमीरोंके लड़के तथा बादशाहके तीन बेटे पढ़ते हैं, दो शाहजादे ईसाई होना चाहते हैं।..."

इसमें शक नहीं, ईसाई साधुओंने यहाँ कितनी ही बातोंमें अतिशयोक्तिसे काम लिया है और बादशाहके इस्लामके सख्त विरोधी होनेकी बातको बढ़ा-चढ़ा कर कहा है। शायद वह इस्लामके साथ अपने हृदयकी घृणाको अकबरके नामसे प्रकट करना चाहते थे। हम अकबरके फरमानको उद्धृत कर चुके हैं, जिसमें उसने हरेक आदमी-को अपनी इच्छानुसार बिना किसी बाधाके धर्म स्वीकार करनेके लिये रहा है। १६०१ ई०में पिन्हेरोका स्थान लेनेकेलिये साधु कोर्सी लाहौर पहुँचा। उसने अकबरको मरि-यमका चित्र प्रदान किया, जिसे उसने बड़े सम्मानके साथ स्वीकार किया। उसने पोपके बारेमें भी कितनी ही बातें पूछीं। अप्रैल १६०१में जब वह आगरेकी तरफ चला, तो जेवियर और पिन्हेरो उसके साथ थे। २० मार्च १६०१में लिखे एक पत्रको देकर अकबरने एक दूतमण्डल गोआ भेजा। साधु गोयेज इस दूतमण्डलके साथ था। मईके अन्तमें यह गोआ पहुँचा। भेंटमें एक कीमती घोड़ा, शिकारी चीता और दूसरी बहुत-सी चीजें थीं। बुरहानपुर और असीरगढ़में पकड़े गये कितने ही पोर्तुगीज बन्दी स्त्री-पुरुषोंको भी अकबरने गोयेजके साथ जाने दिया। अकबरने अपने इस पत्रमें धर्म-जिज्ञासाकी कोई बात नहीं की थी, दोनों देशोंमें व्यापार और दूसरी तरहके अच्छे सम्बन्ध स्थापित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। उसने कुछ चतुर शिल्पि-योंको भी माँगा था।

गोआमें रहते समय साधु गोयेजको तिब्बत जानेका हुकुम मिला। कैथलिक आशा करते थे, कि तिब्बतमें धर्म-प्रचार करनेमें बड़ी सफलता होगी। साधु मचादो आगरामें गोयेजका स्थान लेनेकेलिये उसके साथ भेजा गया। अकबर बुरहानपुरसे अप्रैल १६०१में चलकर मईमें आगरा पहुँच चुका था। वहीं गोयेज और मचादो दर्बारमें हाजिर हुए। अकबरने पिन्हेरोको लाहौर जानेकी सम्मति दी। वहाँका नया सिपहसालार कुलिचखान ईसाइयोंका विरोधी था। पिन्हेरोने बादशाहसे एक आज्ञापत्र देनेकेलिये प्रार्थना की, जिसमें बिना किसी बाधाके इच्छुकोंको वह ईसाई बना सके। अब तक ऐसी आज्ञा सिर्फ मौखिक थी, लेकिन अब अकबरने अपना मुहर किया हुआ पत्र पिन्हेरोको प्रदान किया।

जिस समय जेज़ुइत कैथलिक अपना प्रभाव बढ़ानेमें लगे हुए थे, उसी समय उनका विरोधी एक अँग्रेज बनिया जान मिल्डेनहाल भी यहाँ पहुँचा। मिल्डेनहाल १६००ई०में ईस्ट इण्डिया कम्पनीका नौकर हुआ। उसे व्यापारकी सुविधा प्राप्त करनेके लिये रानी एलिजाबेथने अकबरके पास पत्र देकर भेजा। मिल्डेनहाल लन्दनसे जहाजमें चलकर १२ फर्वरी १५९९को सिरिया (शाम)के तटपर उतरा। फिर स्थल-मार्गसे चल २४ मईको हलब पहुँच यहाँ एक सालसे अधिक रह कर ७ जुलाई १६००को कारवाँके साथ प्रस्थान किया। इराक, ईरान होते कन्दहारमें वह अकबरके राज्यकी सीमामें दाखिल हुआ। कन्दहारसे १६०३ई०के आरम्भमें लाहौर पहुँच कर अपने आनेकी सूचना बादशाहको दी, जिसने उसे आगरा चलनेकेलिये कहा। २१ दिनकी यात्रा करनेके बाद उसे दरबारमें उपस्थित होनेका मौका मिला। भेंटमें उसने २९ कीमती घोड़े भी प्रदान किये, जिनमें एक-एकका दाम ५०से ६० गिन्नीतक था। पूछनेपर मिल्डेनहालने बतलाया, कि इंगलैंडकी रानी बादशाहसे मैत्री करना चाहती है और यदि अँग्रेज पोर्तुगीज जहाजों या उनके बन्दरगाहोंपर अधिकार करें, तो इसे बुरा नहीं मानना चाहिये। अकबरको तो यह मनकी बात थी, क्योंकि पोर्तुगीजोंको दबानेकेलिये उसके पास जंगी बेड़ा नहीं था और यहाँ फिरंगी ही आपसमें लड़नेकेलिये तैयार थे। कुछ दिनों बाद अकबरने मिल्डेनहालको ५०० गिन्नीकी कीमत की भेंटें दे उसकी बड़ी तारीफ की। जब अकबरने अपने जेस्वित मित्रोंसे इसके बारेमें सलाह ली, तो उन्होंने अँग्रेजोंको चोर और भेदिया बतलाकर बदनाम किया। मिल्डेनहालको मनक लग गई। वह अलग-अलग रहने लगा। अकबरने उसे बुला कर कीमती खलअत दे मीठी-मीठी बातें कीं। जेस्वित काम बिगड़ता देख पाँच-पाँच सौ गिन्नी रिश्वत दे प्रभावशाली दरबारियोंको अपनी तरफ करनेमें सफल हुए और मिल्डेनहालके साथ आये आर्मेनियन दुभाषियेको भी उन्होंने उड़ा दिया। भाषासे अपरिचित बेचारा अँग्रेज अब अपने भावोंको प्रकट नहीं कर सकता था। फारसी पढ़नेमें छ महीने लगा वह फिर दरबारमें जाने लगा। जेस्वित साधुओंकी चालके मारे उसकी पेशी नहीं की जा रही थी। उसने बादशाहसे सारी बातें कहनेकेलिये इजाजत माँगी। १६०५ ई०के किसी बुधके दिन मिलनेकी इजाजत मिली। फिर अगले रवि-वारको यह बतलानेकेलिये उसे कहा गया, कि इंगलैंडके साथ दोस्ती करनेसे हमें क्या लाभ है। सलीम (पीछे जहाँगीर) मिल्डेनहालका समर्थक था। उसने कहा: पिछले दस-बारह सालोंसे जेस्वितोंके साथ हमारा सम्बन्ध है, लेकिन न किसी फिरंगी बादशाहका दूतमण्डल हमारे यहाँ आया न कीमती भेंटे ही। मिल्डेनहालने वचन दिया, कि इंगलैण्डसे दूतमण्डल भी आयेगा और भेंट भी। अकबरने मुहरके साथ फरमान देते हुए उसकी प्रार्थना स्वीकार की। अकबरके मरनेके साल भर बाद मिल्डेनहाल कज़वीन (ईरान)में था, जहाँसे उसने ३ अक्तूबर १६०६ को एक पत्र लिखा था।

इस समय अकबरका फरमान उसके साथ था। उस समय किसको मालूम था, कि अँग्रेजोंने अँगुली पकड़नेमें जो सफलता पाई है, उससे एक समय वह पहुँचा पकड़ने में सफल होंगे। अँग्रेज दूतका उद्देश्य धार्मिक बिल्कुल नहीं था, जब कि पोर्तुगीज धर्मकी आड़में दरबारमें पहुचे थे। लेकिन, अकबरको उस समय यह तो मालूम हो हो गया, कि ईसाइयोंमें भी शिया-सुन्नीकी तरह दो सम्प्रदाय—प्रोटेस्टेन्ट और कैथलिक—एक दूसरेके कलेजेमें छुरा भोंकनेकेलिये तैयार हैं।

६. दीन-इलाही (१६८२ ई०)

अकबर धर्ममें अशोककी तरहकी ही उदारता रखना चाहता था। वह लामजहब या धर्म-विरोधी नहीं था, यद्यपि मुस्लिम लेखकोंने वैसा दिखलानेकी बड़ी कोशिश की है। फैजी और अबुलफजलको यह गुमराह करनेवाले बतलाते हैं, पर जहाँ तक धार्मिक उदारता का सम्बन्ध है, उसे इन दोनों भाइयोंके दरबारमें आनेसे वर्षों पहले जजिया और तीर्थ-कर उठाकर अकबरने दिखला दिया था। अबुलफजल लामजहब हो सकते थे और उन्होंने बदायूँनीके पूछनेपर कहा भी—"अब तो लामजहबियतके कूचेमें सैर करनेकी इच्छा है।" पर, अकबर परमेश्वरको माननेका इन्कारी नहीं था। उसका परमेश्वर बहुत कुछ सूफियों और वेदान्तियोंका ब्रह्म था। अकबरकी यह धार्मिक भावना एक और तरहसे भी सिद्ध है। अजमेरसे पंजाबके पीरोंकी जियारतगाहोंकी यात्रा करते समय पाकपट्टनसे चलकर वह नन्दनाके इलाकेमें पहुँचा और वहाँ पहाड़की तराईमें जानवरोंको घेर कर कमरगा-शिकार खेलने लगा। सिमट कर इकट्ठा हुए बहुतसे जानवरोंको उसने मारे। इसी समय कलिंग-विजयके नर-संहारके समय अशोककी तरहकी घटना उसके मनपर घटी। उसने एकाएक शिकार बन्दकर दिया। एक पेड़के नीचे एक विचित्र समाधि-सी लग गई। उसे एक विचित्र आनन्द आया। गरीबोंमें उसने बहुत-सा धन बँटवाया। जिस वृक्षके नीचे यह अवस्था पैदा हुई थी, वहाँ स्मारकके तौरपर एक विशाल इमारत और बाग लगानेका हुकुम दिया। उसी वृक्षके नीचे बैठकर उसने सिरके बाल मुँड़ाये, बिना कहे ही कितने ही दरबारियोंने भी सिर मुँड़ा लिये। अकबर शिकारका इतना प्रेमी था, पर उसी दिनसे उसने शिकार खेलना छोड़ दिया। इस घटनासे भी मालूम होगा, कि ऐसा व्यक्ति धर्मसे विमुख नहीं हो सकता।

पुराने धर्मोंमें हरेकके साथ उसने सहानुभूति दिखलाई और चाहा कि सभी इस ढंगको अपनायें। उसमें सफलता न देख उसने सारे धर्मोंके सारको लेकर एक नये धर्म—दीन-इलाही (भगवानका धर्म)—का आरम्भ किया। अकबरसे पहले भी भारतके धार्मिक झगड़ोंको मिटानेकेलिये ऐसा ख्याल अलाउद्दीन खलजीको आया था। अलाउद्दीन खलजीकी विजयपताका सुदूर दक्षिण तक फहराई थी। जहाँ तक अलाउद्दीनकी सेना पहुँची, वहाँ तक अकबर और औरंगजेबकी भी नहीं पहुँच सकी।

यदि उसके सिपहसालारों और अफसरोंने मन्दिरोंको तोड़ने और दूसरी तरहसे धर्मान्धताका परिचय दिया, तो उसका सारा दोष उसी तरह अलाउद्दीनपर नहीं लगाया जा सकता, जिस तरह हुसेन खाँ टुकड़ियाकी पशुताका दोष अकबरपर। अलाउद्दीनने नये धर्मकी स्थापना शान्ति और समन्वयके विचारसे ही करना चाहा होगा, पर मुस्लिम इतिहासकार उसको दूसरा ही रूप देते हैं —

"सर्वशक्तिमान् अल्लाने पवित्र पैगम्बरको चार मित्र दिये, जिनकी शक्ति और साहसके बलसे शरीयत और धर्म स्थापित हुआ...और जिसके द्वारा कयामत तक पैगम्बरका नाम रहेगा।...अल्लाहने मुझे भी उलुग खान, जफर खान, नुसरत खान हलब खान जैसे चार मित्र दिये हैं, जिन्होंने मेरी बदौलत राजसी वैभव और सम्मान प्राप्त किया है। मैं समझता हूँ, इन चारों मित्रोंकी सहायतासे मैं एक नये धर्मकी स्थापना कर सकता हूँ और मेरी तथा मेरे मित्रोंकी तलवारें सभी आदमियोंको इस धर्ममें ला सकती हैं।"...पान गोष्ठीमें ऐसी बातें करते, अपने अमीरोंसे उसने सलाह ली।

दिल्ली कोतवाल अलाउलमुल्कने सुल्तानका विरोध करते अपनी राय देते हुए कहा—

"हुजूरको मजहब, शरीयतको बहसका विषय नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि यह पैगम्बरकी चीज है, बादशाहोंकी नहीं। मजहब और शरीयत दिव्य प्रेरणासे प्रेरित होते हैं। यह आदमीकी योजनाओं और उपायों द्वारा स्थापित नहीं होते। आदमके समयसे आज तक यह उसी तरह पैगम्बरों और भगवान्के दूतोंका काम रहा है, जैसे बादशाहोंका काम शासन करना। कभी किसी राजाने पैगम्बरका पद नहीं पाया और न आगे—जब तक कि यह दुनिया है—पायेगा। हाँ, कुछ पैगम्बरोंने राजाके कर्तव्यको जरूर पालन किया। हुजूरको मेरी यही सलाह है, कि इस विषयमें कभी बात न करें।...हुजूर जानते हैं, चिंगीज खानने मुस्लिम नगरोंमें कितनी खूनकी नदियाँ बहाईं, मुसलमानोंके बीच वह कभी भी मुगल धर्म या प्रतिष्ठान नहीं स्थापित कर सका—बहुतेरे मुगल मुसलमान हो गये, लेकिन कभी कोई मुसलमान मुगल नहीं बना।"

अलाउद्दीनको अपने मुसलमान अमीरोंके खिलाफ जानेकी हिम्मत नहीं हुई। उसने वचन दिया, कि अब इस तरहकी बातें मेरे मुँहसे कभी नहीं निकलेंगी। अकबर यद्यपि दीन इलाहीको चलानेमें सफल नहीं हुआ, पर उसका शासन सिर्फ मुसलमानोंके मुकाबलेपर अवलम्बित नहीं था, उसकी शक्तिके जबर्दस्त स्तंभ राजपूत थे, इसलिये किसी अलाउलमुल्कको न ऐसी सलाह देनेकी जरूरत थी और न अकबरको माननेकी।

(१) दीन-इलाहीकी घोषणा—जेसुइत साधुओंके अनुसार दीन इलाहीकी स्थापनाका आवाहन निम्न प्रकार हुआ—

"काबुलसे लौटनेके बाद अकबर अपने अमीरों तथा मुल्लाओंके [illegible] हुआ था। अब तक गुप-चुप चलती योजनाको उसने मुझे धीरेसे बताने [illegible]

अपनेको एक नये धर्मका संस्थापक और मुखिया बनाना चाहा। इस धर्मको कुछ मुहम्मदके कुरानसे, कुछ ब्राह्मणोंकी पुस्तकोंसे और कुछ हद तक अपने अनुकूल इंजीलकी बातोंको लेकर बनाया गया।

"ऐसा करनेकेलिये उसने एक बड़ी परिषद् बुलाई, जिसमें आसपासके शहरोंके बड़े-बड़े विद्वान् और सेनपों को निमन्त्रित किया। साधु रिदल्फोको उसने नहीं बुलाया, क्योंकि उससे विरोधके सिवाय और किसी प्रकारकी आशा नहीं थी।...जब सब इकट्ठा हो गये, तो उसने कहना शुरू किया : 'एक प्रधान व्यक्ति द्वारा शासित साम्राज्यकेलिये यह बुरी बात है, कि उसके लोग आपसमें बँटे और एक दूसरेके खिलाफ हों।' उसने मुगल राज्योंमें नाना धर्मोंका उल्लेख किया, जो कि केवल आपसमें मतभेद ही नहीं रखते, बल्कि एक दूसरेके शत्रु हैं। "'इसलिये इन सबको हमें एक करना है। लेकिन, इस ढंगसे, कि वह एक हो और सब भी हों। हरेक धर्ममें जो अच्छाइयाँ हैं, उन्हें छोड़ना नहीं होगा।'"इस प्रकार भगवान्‌का सम्मान होगा, लोगोंमें शान्ति फैलेगी और राज्यकी सुरक्षा रहेगी। "यहाँ उपस्थित लोग अपनी-अपनी राय दें, जब तक वह कह नहीं लेंगे, मैं कुछ नहीं करूँगा।'

"ऐसा कहनेपर जिन (खुशामदी) अमीरोंकेलिये बादशाहके छोड़ दूसरा कोई ईश्वर नहीं, उसकी इच्छाके सिवा कोई धर्म नहीं था, वह एक स्वरसे बोले—हाँ, अपने पद और महान् प्रतिमाके कारण भगवान्‌के अधिक नजदीक होनेसे बादशाह ही सारे राज्यकेलिये देवता, पूजापद्धति, बलि, रहस्य, नियम और दूसरी पूर्ण तथा विश्व-धर्मकी बातोंको निश्चित करे।"

"इस कार्रवाईके समाप्त होनेके बाद बादशाहने एक बहुत ही प्रसिद्ध तथा अत्यन्त विद्वान् शेख (मुबारक)को बुलाकर चारों ओर यह घोषित करनेकेलिये कहा, कि जल्दी ही सारे मुगल साम्राज्यकेलिये मान्य धर्म दरबारसे भेजा जायगा, सभी लोग सम्मानके साथ उसे स्वीकार करनेकेलिये तैयार हों।"

जेसुइत पादरियोंके लिखे अनुसार अकबरके विचारोंको सभीने एक रायसे अनुमोदन किया, पर बदायूँनी—जो सम्भवतः इस सभामें स्वयं उपस्थित था—के अनुसार सभी एक राय नहीं थे—

"साम्राज्यमें नये धर्मकी स्थापनाकेलिये जो परिषद् बुलाई गई थी, उसमें राजा भगवानदासने कहा : 'मैं खुशीसे विश्वास कर सकता हूँ, कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंके पास खराब धर्म है। लेकिन, यह भी बतलाना चाहिये, कि नया धर्म कैसा है और उसके बारेमें क्या राय है, जिसमें कि हम उसपर विश्वास करें।' हजरतने थोड़ी देर इसपर विचारा, फिर राजापर जोर देना छोड़ दिया। लेकिन...(अन्तमें) इस्लाम विरोधी पंथ स्थापित हुआ ही।"

मानसिंहने भी अपने धर्मपिता राजा भगवानदाससे—जैसे ही भाव कुछ साल बाद प्रकट किये। १ दिसम्बर १५८७को मानसिंहको बंगाल-बिहारका सिपहसालार नियुक्त किया गया। खानखाना अब्दुर्रहीम और मानसिंह शाही पान-गोष्ठीमें बैठे थे। अकबरने, बदायूँनीके अनुसार, नये धर्मके अनुयायी बनानेकी बात चलाई और मानसिंहने बादशाहकेलिये जान देने की बात कहते हुए माननेसे इन्कार कर दिया। अकबरने फिर इसके बारेमें अपने सर्वोच्च अमीरसे कोई बात नहीं की।

दीन-इलाही (तौहीद-इलाही = ब्रह्म अद्वैत) धर्ममें शामिल हुए अमीरोंमेंसे कुछके नाम हैं—

१. अबुलफजल (खलीफा)
२. फैजी (कविराज)
३. शेख मुबारक (नागौरी)
४. जाफरबेग आसफखाँ (कवि)
५. कासिम काबुली (कवि)
६. अब्दुस्समद (चित्रकार, कवि)
७. आजमखाँ कोका (मक्कासे आनेपर)
८. शाहमुहम्मद शाहाबादी (इतिहासकार)
९. सूफी अहमद
१०. सदरजहाँ (महामुफ्ती)
११., १२. सदरजहाँके दोनों पुत्र
१३. मीरशरीफ अमली
१४. सुल्तान ख्वाजा सदर
१५. मिर्जा जानी (हाकिम ठट्ठा)
१६. नकी शुस्तरी (कवि)
१७. शेखजादा गोसाला (बनारसी)
१८. राजा बीरबल

(२) दीक्षा—दीन-इलाहीमें प्रवेशकेलिये एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखना पड़ता था, जिसके कुछ वाक्य होते थे—"मनूकि फलाँ, इब्न फलाँ बाशम्, ब-तूँय व रग़बत, व शौके-क़लबी अज़-दीने-इस्लाम मजाज़ी, व तक़लीदी, कि अज़-पिदरान दीदः व शुनीदःबूदम्, अबरा-व तबर्रा नमूदम्। व दर-दीने-इलाही अकबरशाही दर आमदम्। व मरातिब-चहारगाना इख़लास, कि तर्के-माल-व-जान-व-नामूस-व-दीन-बाशद्, कबूल नमूदम्।"

(मैं अमुकका पुत्र अमुक हूँ, अपनी खुशी और हार्दिक इच्छासे इस्लामके बाह्य और गतानुगतिक धर्म—जिसे कि बाप-दादोंसे मैंने देखा-सुना है—से इन्कार करता हूँ और दीन-इलाही अकबरशाहीमें दाखिल होता हूँ, तथा चार प्रकारकी आचार-सम्बन्धी बातों—माल-जान-सम्मान-दीनके त्यागको स्वीकार करता हूँ।)

बदायूँनी द्वारा उद्धृत वाक्यावलिको मुस्लिम प्रवेशार्थियोंकेलिये समझना चाहिये, हिन्दुओंके प्रतिज्ञापत्रमें कुछ भेद रहा होगा। "आईन अकबरी" (अबुलफजल) के अनुसार सभी धर्मोंकी बहुतसी बातें एक समान दीन-इलाहीमें स्वीकार की गई हैं, खुदा और इन्सान एक है। "बादशाह राष्ट्रका धार्मिक नेता है। अपने कर्तव्य पालनको वह ...र प्रसन्न करनेका एक साधन मानता है। उसने अब उस द्वारको खोल दिया है, जो सच्चे रास्तेकी ओर ले जाता है, और सभी सत्यके खोजियोंकी प्यासको बुझाता है।"

"जिज्ञासुको जाननेकेलिये अधिकाधिक मौका दिया जाता था। जब उसे तोष हो जाता, तो उसे रविवारके दिन—जबकि विश्व-प्रकाशक सूर्य अपने चरम प्रतापमें अवस्थित होता है—दीक्षा दी जाती है। नये आदमियोंको दाखिल नेमें कड़ाई और हिचकिचाहट रखते भी सभी वर्गके हजारों आदमी विश्वासी, नये धर्मकी दीक्षाको सब तरहके आनन्द-प्राप्तिके साधन मानते हैं।"

"(दीक्षाके) समय जिज्ञासु अपनी पगड़ी हाथमें ले सिरको हजरतके चरणोंमें रता है।...फिर हजरत अपना हाथ फैलाकर शिष्यको ऊपर उठा उसके सिरपर गड़ी रख देते हैं। ...इसके बाद हजरत शिष्यको शस्त देते हैं, जिसपर महानाम और 'अल्लाहु अकबर, खुदा रहता है।"

शस्त शायद तावीज या माला थी। दीक्षाके समय बादशाहकी तस्वीर भी दी जाती थी, जिसे दीन-इलाहीके माननेवाले अपनी पगड़ीमें लगाते थे। शस्त महानाम हिन्दुओंके कंठी मन्त्रकी तरहकी बात थी। अबुल्फ़जलके अनुसार दीन-इलाही माननेवाले एक दूसरेको देखनेपर "अल्लाहु अकबर" और उत्तर "जल्ले जलालहू" (उसका प्रताप) कह कर देते थे। मृतक श्राद्धकी जगह दीन-इलाहीमें जीते जी अपना श्राद्ध कर डालनेको कहा गया था, ताकि अपनी अन्तिम यात्रामें उसे दूसरोंके ऊपर अवलम्बित न रहना पड़े। हरेक भगत अपने जन्मदिवसपर भोज देता था। अपने शिष्योंको गुरु अकबरने मांस-भोजन न करनेका आदेश दिया था। हाँ, वह दूसरेको मांस खाने दे सकते थे; पर, जिस महीनेमें आदमीका जन्म हुआ है, उसमें मांससे कोई सम्पर्क नहीं रखनेकी हिदायत थी। भगतको अपने मारे हुये पशुके पास भी उसे नहीं फटकना चाहिये, और न शिकारको खाना चाहिये। कसाई, मछुये और चिड़ीमारके बर्तनसे पानी नहीं पीना चाहिये। दरसनिया (दर्शनीय, दीन-इलाहीके अनुयायी) को गर्भिणी, वृद्धा, बाँझ और मासिकधर्मकी अवस्था तक न पहुँची लड़कीसे प्रसंग नहीं करना चाहिये।

दरसनियोंकी अन्त्येष्टि-क्रियाके बारेमें कहा गया था: मृत स्त्री या पुरुषकी गर्दनमें कच्चा चावल और एक पकी ईंट बाँधकर नदीमें नहलाकर ऐसी जगह जला देना चाहिये, जहाँ पानी न हो। मुर्देको पूर्वकी ओर सिर और पश्चिमकी ओर पैर करके दफना भी सकते थे। गुरु (अकबर) ने अपने शिष्योंको इसी तरह सोनेके लिये भी कहा था। जिसका अर्थ मुल्लोंने लगाया था कि इस काफिरने पश्चिम दिशामें अवस्थित काबाका अपमान करनेके लिये यह ढंग निकाला है।

(३) विधि-विधान—दीन-इलाहीके विधि-विधान, १५८२ ई०की परिषद्में नियुक्त कार्यालयने १५८३ और १५८४ ई०में प्रचारित किये। १५८८ से १५९४ ई० तक और भी बहुत से आदेश निकले, जो पीछे सुरक्षित नहीं रह सके, क्योंकि दीन इलाही अकबरके साथ ही प्रायः नामशेष हो गया। धर्मका संस्थापक होनेसे अकबरका

सन् १५८३ ई०) हुकुम दिया : सभी इन्सान खुदाके बन्दे हैं, उन्हें लौंड़ी-गुलाम बना कर बेचना महापाप है और उसने सबको आज़ाद कर दिया। लेकिन वह अपने स्वामीकी सेवा छोड़ना नहीं चाहते थे। अब इनका नाम "चेला" पड़ गया। प्रातः सूर्यकी पूजा और नाम जप कर अकबरके झरोखेपर आनेसे पहले हजारों हिन्दू-मुसलमान, स्त्री-पुरुष, तथा कितने ही रोगी-अपाहिज भी सामने जमा हो जाते थे। बादशाहको झरोखेपर देखते ही सभी दण्डवत् करते। सुल्तान ख्वाजा अमीन (मीर-राज) खास चेलोंमें था। मरनेपर उसकी कब्र नये ढंगसे बनवाई गई : चेहरेके सामने एक जाली रक्खी गई, जिसमें कि सारे पापोंको हरनेवाली सूर्य-किरणें रोज सबेरे उसके मुँह-पर पड़ें।

दीन-इलाही अकबरशाहीके सम्बन्धमें बहुत-सी पुस्तिकायें, पूजा-पद्धतियाँ, धर्म-शास्त्र तैयार किये गये थे। अनुयायियोंकी संख्या हजारों नहीं लाखों तक पहुँच गई थी; पर, १६०५ ई०के बाद, सभी चेले अपने-अपने धर्ममें लौट गये। उन्हें नफा-की जगह नुकसान होनेकी भी नौबत आ सकती थी, जिसकेलिये वह तैयार नहीं थे। अनुयायियोंके बिना पुस्तकें कैसे बच पातीं? कुछ ही समय बाद दीन-इलाही पानीकी लकीरकी तरह मिट गया।

बढ़ सकते थे। कांगड़ेका अजेय किला पहाड़के ऊपर था, नीचे बाग और घुड़दौड़का मैदान था। मुगल सेनाने वहीं डेरे डाल दिये। नगरके एक छोरपर भवानीके प्रसिद्ध मन्दिरके चारों ओर भवनका उपनगर था। हजारों हिन्दुओंने उसके लिये अपनी जानें दीं, लेकिन वह भवनको बचा नहीं सके।

बदायूँनीके अनुसार, देवीके मन्दिरका सोनेका छत्र गोलीसे टूट-फूट गया और बहुत समय तक वैसा ही बना रहा। वहाँ दो सौके करीब श्यामा गायें थीं, जिनकी बहुत पूजा की जाती थी। उन्हें भी मुगल सेनाने मार डाला। भला जिस बीरबलके नामपर यह काम हुए, उसे कांगड़ावाले कैसे क्षमा कर सकते थे?

किला कांगड़ामें राजाके महलपर तोप दागी गई। राजा भोजन कर रहा था। मकान गिरा और ८० आदमी दबकर मर गये। राजाकी जान बड़ी मुश्किलसे बची। वह सुलह करनेके लिये तैयार हो गया। किला लेने में अब कोई दिक्कत नहीं थी, पर इसी समय खबर लगी, कि इब्राहीम मिर्जा गुजरातकी ओरसे हार खाकर दिल्ली-आगरे को लूटता मारता लाहौरकी ओर बढ़ रहा है। लाहौरका बचाना जरूरी था। खानजहाँने युद्ध-परिषद् बुला कर सलाह ली। अमीरोंने कहा: पहले लाहौरको बचाना चाहिये। लेकिन, कांगड़ा किला सर हो चुका था, उसे बीचमें छोड़ना अच्छा नहीं था। सेनापतियोंने उसे नहीं माना, इस पर उसने सबको यह बात लिख कर मुहर कर देनेको कहा, ताकि उनसे जवाबदेही ली जाये। उन्होंने कागज लिख कर दे दिया। कांगड़ाके राजा से अब कड़ी शर्तें मनवानेकी जरूरत नहीं थी। शर्तोंमें एक थी: चूँकि कांगड़ा राजा बीरबलको जागीर दिया गया है, इसलिए उसके वास्ते पाँच मन (अकबरी) सोना तौल कर देना चाहिये। राजा सस्ते छूट गया। किलेके सामने एक बड़ी इमारत तैयार की गई, जहाँ मुल्ला महम्मद बाकरने खड़े होकर अकबरके नामका खुतबा पढ़ा। जब बादशाहका नाम बोला गया, तो लोगोंने अशर्फियाँ बरसाईं, जयजयकार किये। कांगड़ाकी कोई जीत नहीं रह गई और चालीस साल बाद १६२० ई०में जहाँगीरने ही उसपर अधिकार किया।*

२. काबुलपर अधिकार (१५८१ ई०)

अकबरकी इस्लामके प्रति उपेक्षाने मुल्लाओंके खिलाफ कर दिया था। १५८० ई०में जौनपुरके काजी मुल्ला महम्मद यज्दीने अकबरके काफिर हो जानेका फतवा दिया, बंगालके काजीने भी अपने काजीभाईका समर्थन किया। पूर्वी सूबोंमें किस तरह विद्रोह हुआ, इसे हम बतला चुके हैं। अकबरकी बातोंको बढ़ा चढ़ा कर सारे इस्लामिक जगत्में फैलाया गया। तूरानके उज्बेक खान अब्दुल्लाने अकबरके साथ चिट्ठी-पत्री बन्द कर दी। बहुत समय बाद पत्र लिखा, तो साफ कह दिया: तुमने इस्लाम छोड़ा और हमने-

*देखो "हिमाचल-प्रदेश"

हुई थी। तूरानसे ही बाबर आया था, तूरानसे ही हुमायूं, अकबर और इनके सबके स्थानक आये थे। अकबरकी सेनामें भी तूरानी अमीरों और सैनिकोंकी बड़ी संख्या थी, इसलिये यह लड़ाईकी बात थी। इन बातोंका प्रभाव काबुल और उसके शासक मिर्जा मुहम्मद हकीमपर पड़ना जरूरी था। इस्लामके नामी समर्थकोंकी नजर अकबरके इस भाईके ऊपर थी। यद्यपि बंगाल-बिहारकी शान्त हुई थी, लेकिन अकबरने उसके लिये मुजफ्फर खाँ, टोडरमल आदिको नियुक्त किया, और पश्चिमोत्तरके खतरेको सबसे ज्यादा महत्त्व कर अपना ध्यान इधर और लगाया, पर हम बतला आये हैं। पूर्व और पश्चिमोत्तरके विद्रोही एक दूसरेसे बहुत दूर थे। जौनपुरसे पेशावरका सम्बन्ध जोड़ना बहुत मुश्किल था। मासूम खाँ काबुलने पटनाकी जागीरसे अपने भाइयोंके साथ सम्बन्ध जोड़नेकी बहुत कोशिश की, पर वह लिखा-पढ़ी छोड़ कर अधिक क्या कर सकता था? बीचके इलाके के मुल्ले भी यद्यपि बिगड़े हुये थे, पर वह अधिक प्रभाव नहीं रखते थे। हुमायूँके पुत्र मुहम्मद हकीममें कोई भी ऐसी योग्यता नहीं थी, कि लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता। वह सिर्फ षड्यन्त्रकारियोंके हाथमें खेल सकता था। अकबरकी हजार आँखोंसे वे षड्यन्त्र छिपे नहीं थे। उसे मालूम हो गया था, कि उसमें कौन-कौन शामिल हैं।

दिसम्बर १५८०में काबुलके अफसर नूरुद्दीनने पंजाबपर आक्रमण किया। इसके बाद दूसरे अफसर शादमानने भी, जो लड़ाईमें मारा गया। उसके सामानकी तलाशी लेते समय शाह मंसूर और दूसरे कितने ही बड़े-बड़े अमीरोंके पत्र पकड़े गये। दो अफसरोंके असफल हो जानेपर १५ हजारकी सेना लेकर मिर्जा हकीम स्वयं पंजाब पर चढ़ा। बिहारी रोहतासके नामका एक दूसरा किला भी रोहतास झेलम जिलेमें शेरशाहने बनवाया था। अकबरी किलादार यूसुफके पास लोभ देकर किला समर्पण करनेकेलिये प्रस्ताव आया, लेकिन उसने इन्कार कर दिया। रोहतासको बिना लिये ही मुहम्मद हकीम आगे बढ़ा। लाहौरके दरवाजे बन्द मिले, मिर्जा बाहर बागमें ठहरा। अकबरके आनेकी खबर सुन मिर्जाको काबुलकी ओर भागना पड़ा, इसे हम पहले बतला चुके हैं। उसके मामा फरीदने विश्वास दिलाया था, कि तुम्हारे कदम रखनेकी देर है, सारे लोग काफिर अकबरके खिलाफ होकर तुमसे मिल जायेंगे। लेकिन वह बात नहीं हुई। इस सलाहका एक फायदा जरूर हुआ, कि मिर्जाने लोगोंको नाराज न करनेके लिये लूट-मार नहीं की। भगदड़में चनावको पार करते समय उसके चार सौ आदमी डूबकर मर गये।

मिर्जा हकीमके पास भेजे पत्रोंके पकड़े जानेपर उसके स्थानपर शाहकुलीको रखकर ख्वाजा मंसूरको अकबरने कैद कर दिया था। ख्वाजाके पकड़े हुये पत्रोंमें एक उसके आमिल शरफबेगका भी था, जिसमें लिखा था: मैं मिर्जाके मामा फरीदूनों से मिला, वह मुझे मिर्जाके पास ले गया। यद्यपि पंजाबके सभी परगनोंपर अपने आमिल

(हाकिम) तैनात कर दिये हैं, लेकिन हमारे (ख्वाजा मंसूरके) परगनेको छोड़ दिया। कुछ दिन बाद फिर मंसूरको उसके पदपर बहाल कर दिया। मिर्जा हकीमका पुराना नौकर और दीवान मलिकसानी वजीरखाँ अभियानके आरम्भ में मिर्जासे नाराज होकर अकबरकी ओर चला आया। सोनीपतके मुकाममें अकबरने उसे नौकरी में रख लिया। पहलेके परिचय के कारण वजीरखाँ ख्वाजा मंसूरके पास उतरा। इस प्रकार ख्वाजाका पलटता भाग्य फिर उलट गया। लोगोंने कहना शुरू किया, वजीरखाँ जासूसी करने आया है। उधर राजा मानसिंहने अटकसे शादमानके सामानमें मिले ख्वाजाके तीन पत्रोंको भेजा। ख्वाजा मंसूरपर सन्देह बढ़ गया। कैदसे छुड़ाने केलिये कोई जमानत देनेके लिये तैयार नहीं हुआ। मुल्ला बदायूँनीने इसका जिक्र करते हुये लिखा है—"तुम सुलतानोंकी खिदमतसे बचो। यह ऐसे हैं, कि सलाम करो, तो जवाब देना भी बड़ी बात समझते हैं, और खफा हो, तो गर्दन मारना कोई बात नहीं।"

अकबर चाहता था, मेरे सेनापति महम्मद हकीमसे लड़कर उसे भागनेके लिये मजबूर न करें। वह स्वयं आकर उसे पकड़ना चाहता था। इसी कारण मानसिंह और खानेजहाँ लाहौरमें किलाबन्द हो गये थे। अकबर ५० हजार सवार, ५ सौ लड़ाकू हाथी और बहुत बड़ी संख्या में पैदल सेना लिये चला। अपनी सेनाको आठ महीनेकी तनख्वाह अग्रिम देकर ८ फरवरी १५८१ को सीकरीसे रवाना हुआ। सलीम और मुराद दोनों शाहजादे उसके साथ चल रहे थे। १२ वर्षका सलीम सेनाके किस काम आ सकता था? मुरादका अध्यापक साधु मोनसेरत भी साथ था, जिसने इस अभियानके बारेमें बहुतसी बातें लिखी हैं। उनसे मालूम होता है, कि अकबरने राजधानी का प्रबन्ध अच्छी तरहसे किया था, सूबों और मुख्य नगरोंके लिये भी इन्तिजाम कर दिया था। उसके साथ मोड़ोंसी बेगमें थीं। जहाँ पड़ाव पड़ता, वहाँ बाजार लग जाता। मोनसेरतको आश्चर्य होता था, कि इतनी बड़ी सेनाके लिये चीजोंकी भारी आवश्यकता होनेपर भी वह बहुत सस्ती थीं।

मथुरा, दिल्ली होते सोनीपत पहुँचनेपर मलिकसानी वजीरखाँ अपने मालिक मिर्जा हकीमसे बिगाड़ करके पहुँचा, जिसके बारेमें हम बतला चुके हैं। २७ फरवरी १५८१ में पानीपत छोड़ अकबर थानेसर, शाहाबाद होते अम्बालाकी ओर बढ़ा, जहाँ मलूवाहाकोटके पास पेड़से शाह मंसूरको लटका दिया गया, इसे हम बतला चुके हैं। बदायूँनीकी तरह मोनसेरतने भी लिखा है—

"सेना शाहाबादमें आई, जहाँ बादशाहकी आज्ञासे शाह मसूरको एक पेड़से लटका दिया गया।...बादशाहने जल्लाद, रक्षियों तथा कुछ अमीरोंको हुक्म दिया, कि उक्त स्थानपर शाह मंसूरके साथ ठहरें। फिर बादशाहने उसके सामने अबुल-फजलको लड़कपनसे इस आदमीके साथ जो मेहरबानी की थी, उसे कहनेके लिये कहा। कहे मुताबिक अबुलफजलने मंसूरकी कृतघ्नताके लिये भर्त्सना की, उसने

अम्बालासे सरहिन्द और फिर अगली मंजिल पायलमें पहुँचनेपर खबर मिली, कि हकीम पंजाबसे चला गया। अकबरके दिलके ऊपरका भारी पत्थर हट गया, लेकिन वह काबुल पहुँचनेका निश्चय कर चुका था। नावोंके पुलोंसे सतलुज और व्यासको पारकर पहाड़के नजदीक-नजदीक आगे बढ़ते अपनी राजगद्दीके उपलक्षमें बनवाये कलानूरके बागमें उसने डेरा डाला। रावीको भी नावोंके पुलसे ही पार किया, लेकिन चनाबमें इन्तिजाम नहीं हो सका। नावें भी थोड़ी थीं। सेनाके उतरनेमें तीन दिन लगे। रोहतासमें किलादार यूसुफने बादशाहका दिल खोलकर स्वागत किया। रोहतासले अकबर सिन्धनदकी तरफ चला। इस अभियानके समय भी शास्त्रार्थ और धर्मचर्चा होती रही। साधु मोनसेरतने फारसीमें लिखी अपनी एक पुस्तक भेंट की, जिसपर खूब वाद-विवाद हुआ। सिन्ध वैसे भी महानद है और बरसातके कारण तो यह पूरा समुद्र बन गया था। इस समय नावोंका पुल संभव नहीं था, इसलिए सारी सेना नावोंसे पार उतरी। अकबरको सिन्धके किनारे ५० दिन तक रुकना पड़ा, इस बीच मिर्जा हकीम अपनी सेनाके साथ पार उतर भाग जानेमें सफल हुआ।

सतलुजके किनारे वाली सिकन्दरके सेनापतियोंकी बात अकबरके सेनपोंने भी सिन्धके बाँये किनारे दोहराई। कई परिषदें हुईं। सबमें उनका वही रुख रहा। अकबर इस समय शिकार खेलता फिरता था। साधु मोनसेरतने भी अकबरको यही सलाह दी, कि भाईके साथके झगड़ेको चरम सीमा तक नहीं पहुँचाना चाहिये। लेकिन, बादशाहका संकल्प तो वज्र जैसा दृढ़ था। उसने शाहजादा मुरादके साथ कई हजार सवारों और पाँच सौ हाथियोंको दे मानसिंह तथा दूसरे अनुभवी अफसर नदी पार भेजे। इसके दो दिन बाद अकबर मोनसेरतसे भूगोल और धर्म-सम्बन्धी बातें करता रहा, जिसका वर्णन जेसित साधुने कई पृष्ठोंमें लिखा है।

१२ जुलाईके करीब अकबर भी सिन्ध पार हुआ। सिन्धके तटपर इंजीनियर-जेनरल कासिम खाँको अधीनतामें उसने भारी साज-सामानके साथ एक सेना रख दी, ताकि रास्तेपर खतरा न हो और पास-पड़ोसके शरकशोंको दबाया जा सके। मानसिंहके प्रकरणमें हम बतला चुके हैं, कि अफगानों के रसद लूटनेकी बातको कैसे भयंकर पराजयका रूप दिया गया था। यह खबर अकबरके पास भी पहुँची, लेकिन उनकी अप्रामाणिकता जल्दी ही सिद्ध हो गई। मुरादकी उमर इस समय ११ वर्षकी थी, उसे भी एक सेनाका फील्ड-मार्शल बनाया गया था। कहा जाता है, १ अगस्त-की लड़ाईमें वह घोड़ेसे कूद पड़ा और भाला हाथमें लिये बोला : चाहे कुछ भी हो, मैं यहाँसे एक इंच भी पीछे नहीं हटूँगा।

पार उतर काबुल नदी और सिन्धुके संगमपर अकबरने डेरा डाला। इस समय वह मिस्त्रीखानेमें जाकर स्वयं काम करता था। प्रथम पीतरकी तरह अकबरको भी हाथसे काम—विशेषकर कलपुर्जेका बहुत पसंद था। बारूदी हथियारों और गोला-बारूद

तैयार करनेपर वह बारीकीसे ध्यान देता। बचे समयमें साधु मोनसेरतके शास्त्रार्थको सुनता। मिर्जा हकीमने काबुल लौटते वक्त पेशावरको जला दिया : घरफूँक नीति सभी युद्धोंमें कुछ न कुछ बरती जाती है, कोई नहीं चाहता, पीछा करनेवाले शत्रुको खाने-पीने और दूसरी चीजोंकी सुविधा हो। पेशावरमें रहते समय गोर खत्री (गोर खत्री) देखने गया। यही इमारत पीछे पेशावरकी तहसीलदारी बना। सन्नीन अपने बापसे पहले खैबर दर्रेमें घुसा और अली मस्जिदमें ठहरता सुरक्षित जलाला-बाद पहुँच गया। उसका छोटा भाई मुराद मानसिंहके साथ ३ अगस्तको काबुलमें दाखिल हुआ। मिर्जा हकीम काबुल छोड़कर पहाड़ोंमें भाग गया। अकबरने ६ अगस्त १५८१ (शुक्रवार १० रज्जब) को दादाकी राजधानी काबुलमें प्रवेश करते लोगोंको सान्त्वना देते घोषणा निकाली। वह सिर्फ सात दिन रहा, क्योंकि काम हो गया था और लौटते वक्त वह कश्मीरको भी लेना चाहता था। पर, सेना थकी हुई थी, इसलिये इस संकल्पको स्थगित करना पड़ा।

मोनसेरतके अनुसार अकबरने अपने बहनोई बदख्शांके शासक ख्वाजा हसन को काबुलका इन्तिजाम सुपुर्द किया और अपनी बहिनको कह दिया : "मैं मुहम्मद हकीम का नाम भी नहीं सुनना चाहता। तुम्हें यह सूबा दे रहा हूँ, जब चाहूँगा, तब ले लूँगा। मुहम्मद हकीम काबुलमें रहे या न रहे, इसकी मुझे पर्वाह नहीं, पर खबरदार कर देना कि अगर उसने फिर ऐसी बात दोहराई, तो उसके साथ दया नहीं दिखाई जायगी।" लेकिन बहिनने भाईके राजकाज सँभालनेमें कोई बाधा नहीं डाली।

अली मस्जिदमें लौट कर अकबरने तीन हजार गरीबोंको खैरात देकर काबुल-विजय मनाई। अकबरके साथ सदा सफेद तम्बूकी मस्जिद चला करती थी, लेकिन अली मस्जिदमें उसे गाड़ने नहीं दिया। आखिर मुल्लोंने कुफ्रका फतवा देकर उसके साथ जितना अनिष्ट हो सकता था, उतना करही डाला था; फिर पक्का मुसलमान साबित करने के लिये मस्जिद खड़ा करनेसे फायदा क्या! अटकके पास कासिम खाँके बनवाये नावोंके पुलसे उसने सिन्ध पार किया। आगेकी पंजाबकी नदियाँ इसी तरह पार की गईं, सिर्फ रावीमें थाह पा लोग बिना पुलके उतर गये। सिन्धके किनारेके सूबेका सिपहसालार (राज्यपाल) कुँवर मानसिंह बनाये गये।

१ दिसम्बर १५८१ को अकबरने राजधानीमें पहुँच काबुल-विजयको बड़े धूम-धाममें मनाया। सारा अभियान केवल दस महीनेमें समाप्त हुआ, लड़ाई नाममात्र हुई, पर उससे महालाभ हुआ, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। अभियानके आरम्भमें चारों ओर [illegible] रा दिखाई देता था : पूर्व बिगड़ा हुआ था। मिर्जा हकीम पंजाबकी ओर [illegible] था, मुसलमान अमीरोंमेंसे बहुत कमपर विश्वास किया जा सकता [illegible]न जनताको भड़का दिया था। अकबर केवल हिन्दू सैनिकों-[illegible] ही विश्वास कर सकता था, और इसमें शक नहीं, वह अपने दारमदार

अपना सब कुछ निछावर करनेकेलिये तैयार थे। वर्षके अन्तमें उसके सारे दुश्मन सूखे पत्तेकी तरह तितर-बितरकर दिये गये थे, गुप्त शत्रुओंकी हिम्मत टूट गई थी। कुफ्रका फतवा कुछ नहीं कर सका। अब उसे धर्मान्ध मुल्लों और उनके अनुयायियोंसे डरनेकी जरूरत नहीं थी।

काबुलमें मिर्जा मुहम्मद हकीम फिर शासन करने लगा। अकबर किसीका अत्यहित नहीं चाहता था, इसलिये मिर्जाको उसने नहीं छेड़ा। मुगल शाहजादोंमें शराबकी बुरी लत थी। हकीम भी उसमें पड़ा, और उसीके कारण ३१ सालकी उमरमें १५८३ ई०के अन्तमें मर गया। अकबर काबुलके सीमान्ती सूबेको अब अपने ही हाथोंमें रखना चाहता था, इसलिये उसने उसका सिपहसालार मानसिंहको बनाया। मानसिंह, काबुलके ख्यालसे ही सिन्धके पासवाले प्रदेशके सिपहसालार (सूबेदार) बनाये गये थे। मिर्जाके मरनेसे पहले ही तूरानी अब्दुल्ला खाँ उज्बेकने अकबरके बहनोईसे बदख्शाँको छीन लिया था और इस प्रकार काबुलके नजदीक पहुँच गया था। अब्दुल्ला खाँ उज्बेक खानोंमें अत्यन्त शक्तिशाली था। ऐसे शत्रुके सीमान्तके पास पहुँचनेपर अकबर निश्चिंत कैसे रह सकता था? उसने २२ अगस्तको फिर राजधानी सीकरी छोड़ी और १३ साल तक फिर आगरा नहीं देख सका। नवम्बरमें राजमाता भी आ गई। दिसम्बरके आरम्भमें अकबरका डेरा रावलपिंडीमें था। यहीं मानसिंहने फरीदूनके साथ मिर्जा हकीमके लड़कोंके आनेकी खबर दी। उनके साथ पीछे अकबरी दरबारका प्रसिद्ध चित्रकार फर्रुखबेग भी था। फरीदूनपर विश्वास नहीं किया जा सकता था। कुछ दिनों तक नजरबन्द रख अकबरने उसे मक्कामें निर्वासित कर दिया। अगले तेरह सालोंकेलिये राजधानी लाहौर हो गई। कश्मीरके सुलतान यूसुफ खाँने कई बार बुलौवा भेजनेपर भी दरबारमें आनेसे बचना चाहा। अकबरको नाराज करनेकेलिए यह काफी था। अब नजदीक आ जानेपर उसको डर लगा, इसलिये १५८५ई०के अन्तमें उसने अपने तीसरे पुत्र हैदरको दरबारमें भेजा। अकबर चाहता था, सुलतान स्वयं आकर अधीनता स्वीकार करे। खतरेको और बढ़ता देखकर उसने अपने सबसे बड़े लड़के याकूबको भेजा। सुलतानकी इन चालोंने अकबरको बहानेका मौका दे दिया।

३. कश्मीर-विजय

स्वातके यूसुफजई पठानोंने काबुलकी विजयके बाद भी सिर झुकाना पसन्द नहीं किया, जिसकेलिये अकबरको उधर ध्यान देना पड़ा। इसी लड़ाईमें बीरबल* मारे गये। स्वातकी मुहिमके साथ-साथ ही कासिम खाँ और राजा भगवानदासकी अधीनतामें कश्मीरपर भी एक सेना भेजी गई। सुलतान यूसुफ खाँने १५८६ ई० के आरम्भमें

*वही, पृष्ठ १२

प्रतिरोध करना व्यर्थ समझकर सुलह करनी चाही, लेकिन अकबरने नहीं माना। यूसुफने बारामूला आनेवाले रास्तेके बुलियास दर्रेको बन्द कर दिया। इसीसे राज-धानी (श्रीनगर) में पश्चिमकी ओरसे पहुँचा जा सकता था। वर्षा और बर्फने बाधा डाली, साथ ही रसदकी कमी हो गई। स्वातमें जैन खाँ और राजा बीरबलके मरनेकी खबरसे भी मुगल सेनापतियोंने सुलह करके पीछे लौटना ही अच्छा समझा। तै हुआ: खुतबामें बादशाहका नाम पढ़ा जाये, अकबरी सिक्के चलाये जायें; टकसाल, केसरकी खेती, दुशालेका शिल्प तथा शिकारके नियमोंका नियन्त्रण शाही अफसरोंके हाथमें रहे। लेकिन, अकबरको सुलह कार्रवाई पसन्द नहीं आई।

युसुफ और उसके पुत्र याकूबने दरबारमें आकर आत्मसमर्पण किया। सुलतानको अकबर माफ नहीं करना चाहता था। यदि राजा भगवानदासने वचन न दिया होता, तो शायद उसे जानसे भी हाथ धोना पड़ता। भगवानदासने सुलतानको जेलमें डालना भी वचन-भंग समझा और उन्होंने अपने पेटमें कटारी मार ली। घाव खतरनाक था, लेकिन शाही जर्राहोंने अच्छी तरह चिकित्सा की और वह बच गये। राजा भगवानदासने क्षणिक पागलपनमें आकर आत्महत्या करनेकी कोशिश की थी। बदायूँनीका कहना है, कि राजाने वचन-भंगकी बातके कारण ही राजपूती आनकी रक्षाकेलिये ऐसा किया था।

याकूब खाँको तीस-चालीस रुपये मासिक पेन्शन मिलती थी। उसने देख लिया, अकबर सुलहनामेको माननेकेलिये तैयार नहीं है। एक दिन वह भागकर कश्मीर चला गया और संघर्षकी तैयारी करने लगा। इंजीनियर मुहम्मद कासिम खाँको सेना देकर दक्षिणमें भिमरसे हो पीर-पंजालके रास्ते आक्रमण करनेका हुकुम हुआ। याकूबकी सहायताकेलिये लोग तैयार नहीं थे, इसलिये अधिक प्रतिरोधके बिना ही शाही सेना राजधानी श्रीनगरमें दाखिल हुई। याकूबको अन्तमें आत्मसमर्पण करना पड़ा। कश्मीर-को अब एक सरकार (जिला) बना कर काबुलके सूबेमें मिला दिया गया। तबसे १८वीं सदीके मध्य तक—जब कि मुगल सल्तनत छिन्न-भिन्न हुई—कश्मीर मुगल शासनके अधीन रहा। यूसुफ खाँ और उसका बेटा बिहारमें निर्वासित कर दिये गये, वहाँ पीछे राजा मानसिंहको उनकी देखभालका काम सुपुर्द किया गया। प्रायः सालभर नजरबंद रहनेके बाद यूसुफ खाँको पंजसदी मन्सब मिला, जिसकेलिये उसे २१०० से २५०० रुपये मासिकका वेतन मिलता था। मानसिंहके अधीन वह कितने ही सालों तक काम करता रहा। उसका लड़का अकबरकी एक कश्मीर-यात्रामें दरबारमें हाजिर हुआ।

अकबर भू-स्वर्ग कश्मीर-उपत्यकाकी तारीफ बहुत सुन चुका था और उसे देखनेकी बड़ी इच्छा थी। २२ अप्रैल १५८६को लाहौरसे चलकर मईके अन्तमें वह पहुँचा। उसने भिमरसे पीरपंजाल पार किया, जिसे आजकल सुरंग द्वारा पार करते हैं। जाड़ोंमें भी रास्ता खुला रहनेकेलिये वहीं और नीचे

आज दूसरी सुरंग तैयार की जा रही है। अकबरके मुख्य-इन्जीनियर कासिम खाँने रास्तेको ठीक करवाया था। पहाड़की जड़में भिमरमें शाहजादा मुराद और बेगमोंको छोड़ कर उन्हें रोहतास (जेहलम शहरके पास) में मिलनेकेलिये कह दिया गया था। अकबर कश्मीरकी मनोरम उपत्यकाकी सैर कर बारामूला, पखली (हजारा जिला) होते अटक पहुँचा। रोहतासकी जगह परिवार यहीं आकर मिल गया। अटकसे काबुल पहुँच कर उसने वहाँ दो महीने बिताये। यहीं उसे राजा भगवानदास और राजा टोडरमलके मरनेकी खबर मिली। इंजीनियर मुहम्मद कासिमके हाथमें काबुलको छोड़ कर ७ नवम्बरको वह काबुलसे भारतकी ओर रवाना हुआ।

४. सिन्ध-बिलोचिस्तान-विजय (१५९१ ई०)

(१) सिन्ध-विजय—कश्मीर और काबुल अब अकबरके हाथमें थे, लेकिन सिन्धनदका निचला भाग अब भी स्वतन्त्र था। उसके बिना सारे उत्तरी भारतपर अकबरका शासन नहीं कहा जा सकता था। मुलतान यद्यपि अरब-विजयके समयसे सिन्धके साथ रहा और भाषा तथा रीति-रवाजकी दृष्टिसे भी वह सिन्धसे घनिष्ठ संबन्ध रखता था; पर सिंधसे अलग मुलतान बाबरके समयसे ही मुगल सल्तनतमें था। पुराने मुलतान सूबेमें तीन सरकारें (जिले) थीं—मुलतान, दीपालपुर और भक्कर। भक्करके मजबूत दुर्गपर १५७४ ई०में अकबरके सेनप केशू खानने अधिकार किया था। अब बादशाहने मुलतानसे दक्खिन सिन्ध-उपत्यका—विशेषकर ठट्टा—को समुद्रके किनारे तक अपने हाथमें करनेका निश्चय किया। कन्दहार निकल गया था। सिंधसे बिलोचिस्तान कन्दहारपर भी अधिकार किया जा सकता था। इस मुहिमका महत्व अकबरकी दृष्टिमें बहुत था, तो भी इसके विजयमें स्वयं भाग लेनेकी उसने जरूरत नहीं समझी। इस कामकेलिये उसने अब्दुर्रहीम खानखानाको नियुक्त किया, जिन्होंने गुजरातके अन्तिम विजयमें अपनी योग्यताका परिचय दिया था। १५९० ई०में रहीमको मुलतानका सिपहसालार नियुक्त करके ठट्टापर अधिकार करनेका हुकुम हुआ। ठट्टाका स्वामी तरखन मिर्जा जानीका रवैया कश्मीरके सुलतानकी तरह ही था, वह दरबारमें हाजिर होकर अधीनता स्वीकार करनेसे बचना चाहता था। जानीने दो बार मुकाबिला किया, लेकिन अन्तमें आत्मसमर्पण करना पड़ा। ठट्टाके बाद १५९१ ई० में सिहवानका दुर्ग* शाही सेनाके हाथमें आ गया। दरबारमें आनेपर बादशाहने जानीके साथ अच्छा बर्ताव किया और उसे ठट्टाको जागीरमें दे तीन हजारी मन्सब प्रदान किया। जानीने इस्लाम छोड़कर दीन-इलाही स्वीकार किया और अकबरका बहुत भक्त हो गया। दक्षिणकी मुहिममें भी वह बादशाहके साथ रहा और जनवरी

*सिहवान लरकाना जिलेमें एक शहर और प्राचीन दुर्ग था। फारसीमें इसे रुविस्तान भी कहते थे, पर यह आधुनिक सीवी नहीं है।

१६०१में असीरगढ़की विजयके बाद मरा। सलमान इसी मासमें राजकुमारको मरते हैं। यह तूरानके किसी प्रभावशाली खानदानकी सन्तान था।

अगस्त १५९२में चनावके किनारे शिकार करते अकबरने दूसरी बार कश्मीर केलिये प्रयाण किया। इसके थोड़े ही समय बाद खबर आई थी, कि खानखानाने सिन्धको जीत लिया। उसे पता लगा, कश्मीरके शासकके मंत्रीने विद्रोह करके अपनेको सुल्तान घोषित किया है। भिम्बरमें पहाड़के भीतर घुसते ही विद्रोही सरदारका सिर काट कर उसके सामने हाजिर किया गया। इस यात्रामें वह सिर्फ आठ दिन कश्मीर-उपत्यकामें रहा और बारामुला दर्रेको पार कर पखली, रोहतास होते लाहौर पहुँचा। यहीं उसको खबर मिली, कि उड़ीसाके अफगान सरदारोंको राजा मानसिंह ने हरा दिया। उड़ीसाको बंगाल-सूबेमें मिला दिया गया। वह १७५१ ई० तक बंगालका ही अंग रहा, जब कि अलावर्दी खाँ (मुर्शिदाबादके नवाब) उसे मराठोंको दबानेकेलिये मजबूर हुआ। इस प्रकार पश्चिममें सिन्ध और पूर्वमें उड़ीसा हाथमें आनेसे समुद्रतटके दो अत्यन्त महत्वपूर्ण भूभाग अकबरके हाथमें आ गये।

(२) बिलोचिस्तान-विजय (१५९५ ई०)—खानखाना सिन्ध-मुलतानमें बैठे अब बिलोचिस्तान और कन्दहारके विजयकी तैयारी कर रहे थे। फरवरी १५९५ में इतिहासकार मीर मासूमके अधीन एक सेनाने जाकर क्वेटासे दक्षिण-पूर्व सीबीके किले पर अधिकार कर लिया, जिसपर कि परनी अफगानोंका अधिकार था। पठानोंने जबर्दस्त प्रतिरोध किया, पर शाही सेनाके सामने उनकी क्या चलती? इस किलेके जीतनेके बाद सीमा सूबा कन्दहारके पास तक पहुँच गई। समुद्रके किनारे तक मकरानका इलाकाभी अब अकबरकी सल्तनतमें था। कन्दहार कितने दिनों तक खैर मनाता? दो महीने बाद अप्रैलमें बिना लड़ाईके उसपर अधिकार हो गया। कन्दहारपर ईरानका कब्जा था। उसका ईरानी सूबेदार मुजफ्फर हुसेन मिर्जाका अपने सम्बन्धियोंसे झगड़ा था और उधर उज्बेक अब्दुल्लाखाँके आक्रमणका डर वक्त हर रहता था, इसलिये उसने स्वयं अकबरके पास दूत भेजकर कहा: कन्दहारको आप स्वीकार करें। अकबरने शाहबेगको नियुक्त किया, जिसने कन्दहारले लिया। १५९५ से १६२२ई० तक कन्दहार मुगल सल्तनतमें शामिल रहा। जहाँगीरने इसे खो दिया, फिर उसके पुत्र शाहजहाँने १६४८ से १६४९ई० तक उसपर अधिकार रक्खा। इसके बाद वह सदाके लिये मुगल सल्तनतसे अलग हो गया।

तूरानी उज्बेकखान अब्दुल्लाका उल्लेख पहले हो चुका है। यह १५५६ई०से 'बुखाराका कर्ता-धर्ता हो गया', अर्थात् उसी साल, जिस साल कि अकबर गद्दीपर बैठा। उसने अपने राज्यको बढ़ाते हुये बदख्शाँ, हिरात और मशहद तक पहुँचा दिया। ... १५८३ई० में बैठा था, पर अपने बाप इस्कन्दर तथा चचा पीरमुहम्मद ... भी वही सर्वेसर्वा था। १५६१ ई०में उसने अपने पिताको "खाकानेबरी;

(पृथिवी-राज) घोषित किया। "अब्दुल्ला असाधारण आदमी था, इसमें सन्देह नहीं। खोजकसे समरकन्दकी ओर जानेवाले रास्तेसे जीलानउति डाँडेपर एक चट्टानके ऊपर उसने निम्नअभिलेख खुदवाया है—"रेगिस्तानको पार करनेवालों और जल-थलके यात्रियोंको मालूम होना चाहिये, कि ६७६ हिजरी (२६ मई १५७१-१४ मई १५७२ई०) में खलाफतके सहायक, महाखाकान सर्वशक्तिमान् महाखान इस्कन्दरखान-पुत्र अब्दुल्लाके तीस हजार सैनिकों और बोरका खानके पुत्रों दरवेशखान-बाबाखान आदिकी सेनाओंके बीचमें युद्ध हुआ। उसकी सेनामें सुल्तानके पचास सम्बन्धी और तुर्किस्तान-ताशकन्द-फरगाना-दश्तेकिपचकके चालीस हजार योद्धा थे। तारोंके सौभाग्य-सूचक समायोगसे शाहकी सेनाको विजय प्राप्त हुई। उपर्युक्त सुल्तानोंमें बहुतसे मारे गये और बहुतसे बन्दी हुये। इस एक महीनेके भीतर इतना खून बहा, कि जीजक नदीके पानीके ऊपर खून तैरता रहा...।"*

अब्दुल्ला शैबानियों (उज्बेकों) का सबसे बड़ा खान था। शाह तहमास्पके मरनेपर अब्दुल्लाकी शक्ति और बढ़ गई। अकबरको ऐसे जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वीसे चिन्तित होना ही चाहिये था। ६ फरवरी १५६७ को अब्दुल्ला (२) के मरनेके बाद यह खतरा दूर हो गया। उसके उठतेही सल्तनतमें अराजकता फैल गई। अब अकबर पश्चिमोत्तरसे निश्चिन्त था, इसीलिये उसका ध्यान दक्खिनके दिग्विजयकी ओर गया।

अध्याय २३

दक्खिनके संघर्ष (१५६३-१६०१ ई०)

१. अहमदनगर-विजय (१५६३-६७ ई०)

दक्खिनकी बहमनी सल्तनतको अपने राज्यमें मिलानेकी अकबरकी बड़ी इच्छा थी और यह इच्छा उसके बेटे, पोते, परपोतेमें तब तक रही, जब तक कि वे सल्तनतें मुगल-साम्राज्यमें मिला नहीं ली गईं। अकबरको उनसे नाराज होना ही चाहिये था, तेमूरी मिर्जाओंको उनसे सहायता मिली थी, यह हम देख चुके हैं। काबुल-कन्दहार, कश्मीर-सिंध तक अपनी सीमाको पहुँचा कर अब अकबरने दक्खिनकी ओर मुँह किया। पश्चिमोत्तरमें अपने बाप-दादाओंकी भूमि फरगानाके लौटानेकी आशा नहीं रह गई थी, अथवा तूरानियोंसे मुकाबिला बड़े तरद्दुदका काम था। उसकी जगह दक्खिनका लेना आसान था। अकबरने पहले सामसे काम लेना चाहा और समझाने-बुझानेके लिये दूत भेजे। अगस्त १५६१ में उसके चार दूतमण्डल खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा भेजे गये। दक्खिनकी ओर बढ़नेपर सबसे पहले खानदेश आता था, जहाँपर फारूकी वंशका राजा अली खाँ शासन करता था। यह बड़ा ही समझदार, भलेमानुस, बहादुर और प्रतिभाशाली आदमी था। उसके शासनमें ताप्ती-उपत्यका बड़ी समृद्ध थी। उसने अकबर-से महाबलीका मुकाबिला करना नहीं चाहा। उसकी राजधानी बुरहानपुरमें थी, जो दक्खिनके व्यापारमार्गपर होनेसे बड़ी धनी नगरी थी। वहाँ तारकशी और रेशमकी बुनाईका बहुत अच्छा काम होता था। राजा अलीके राज्यमें असीरगढ़का प्रसिद्ध किला था, जो दक्खिनकी कुंजी माना जाता था। इसे अपने हाथोंमें किये बिना कोई विजयी आगे बढ़ नहीं सकता था। समकालीन इतिहासकार इसे यूरोप और एशियाका सबसे मजबूत और हथियारबन्द किला मानते थे। अलीको अपनी ओर करनेके लिए कविराज फैजीको भेजा गया था, इसीसे खानदेशका महत्त्व मालूम होगा। फैजीको यह भी हुकुम हुआ था, कि यहाँसे वह अहमदाबादके सुल्तान बुरहानशाह (बुरहानुलमुल्क)के पास भी जाये, वहाँके लिये अलग दूतमण्डल भेजा गया था। खानदेशके बाद अहमदनगर पहुँचना सबसे आसान था।

फैजीने राजा अलीको किस तरह अपनी ओर करनेमें सफलता पाई, इसे हम बतला चुके हैं।• १५६१ ई०के अन्तमें दक्खिनके सुल्तानोंके पास भेजे गये दूतमण्डल

• वही, पृष्ठ ८१-८२

लौट आये। वह अपने काममें सफल नहीं हुये। बुरहानुलमुल्कने अच्छी भेंट नहीं भेजी। उसके भेजे १५ हाथी, कुछ कपड़े और थोड़ेसे जवाहिर पर्याप्त नहीं समझे गये। बुरहानुलमुल्कको गद्दी पानेमें अकबरने सहायता की थी और उससे अधिक आशा रक्खी जाती थी। अब मालूम हुआ, वह झुकना नहीं चाहता। इसकेलिये अकबरको क्रोध आना वाजिब था। युद्ध होना अनिवार्य हो गया। पहले ७० हजार सवारोंकी बड़ी सेनाका प्रधान सेनापति (फील्ड-मार्शल) शाहजादा दानियालको नियुक्त किया गया। युद्धपरिषदने नियुक्ति उचित नहीं समझी, इसलिये अकबरने इसकी जगह खानखाना अब्दुर्रहीमको मुहिमका प्रधान-सेनापति बनाया।*

जिस समय अकबर दक्खिनके ऊपर लालच भरी नजर डाल रहा था, उसी समय वहाँके सुल्तान आपसमें लड़ रहे थे—वस्तुतः आपसी लड़ाई उनमें सदासे चली आती थी। बुरहानुलमुल्कके मर जाने पर उसका लड़का इब्राहीम गद्दीपर बैठा, जिसे बीजापुरकी सेनाने १५९५ई०में हरा दिया। अहमदनगरपर प्रहार करनेवाले भी फूटसे बचे नहीं थे। खानखानाको प्रधान-सेनापति बनाकर शाहजादा मुरादको भी अकबरने साथ कर दिया था। मुराद गुजरातका उपराज था। वह चाहता था, चढ़ाई गुजरातसे की जाय। पर, रहीम मालवासे आक्रमण करना चाहते थे। इस प्रकार इन दोनोंमें एकता नहीं थी। तो भी विशाल अकबरी सेनाके सामने ठहरना आसान नहीं था। मुहासिरा शुरू हो गया। सौभाग्यसे चाँद बीबी जैसी वीरांगना अहमदनगरको मिली थी। वह बुरहानुलमुल्ककी बहिन, तथा अपने भतीजेकी संरक्षिका थी। अकबरको दो वीर स्त्रियोंसे मुकाबिला करना पड़ा—रानी दुर्गावती और चाँद बीबी सुल्ताना। दोनोंने बतला दिया, कि स्त्री-जाति युद्ध-कौशल और बहादुरीमें पुरुषोंसे कम नहीं है। चाँद बीबीका मुकाबिला इतना सख्त था, कि अकबरके सेनापतियोंने नरम शर्तोंपर उससे सुलह करना चाहा, जिसे अबुलफजलने अनुचित कहा। निश्चय हुआ, बुरहानुलमुल्कके पोते बहादुरको सुल्तान बनाया जाय। वह अकबरको अपना अधिराज माने, हाथी, मोती-जवाहर और दूसरी मूल्यवान् चीजें भेंट भेजी जायें और बरारका सूबा मुगल-साम्राज्यको दे दिया जाय। यद्यपि राजधानीके प्राकार कितनी ही जगह बुरी तौरसे ध्वस्त हो गये थे, पर अहमदनगर लोहेका

*अकबरके शासनके इतिहासको कई समसामयिक इतिहासकारोंने लिखा, जिनमें अबुलफजलकी "आईन अकबरी" और "अकबरनामा" का भारी महत्व है। बदायूँनीने अपने गुपचुप लिखे इतिहासमें बहुत कुछ साम्राज्यके बख्शी निजामुद्दीन अहमदके ग्रन्थ "तबकात-अकबरी" से लिया। निजामुद्दीन अक्तूबर १५९४ में ४५ वर्षकी उमरमें मर गया। उसके साथ ही "तबकात" समाप्त हो गई। वह कलमकी तरह तलवारका भी धनी था, यह गुजरातके प्रकरणमें हम देख चुके हैं। दक्खिन-विजयकेलिये निजामुद्दीनकी तलवार नहीं रह गई थी और न उसकी कलम।

बना था, इसलिए १५९६ ई०के आरम्भ (इलाहीमासारम्भ १०)में [illegible] हलचल हो गई। दक्षिणके अभियानका बदला अन्यत्र [illegible] हुआ।

हिजरी १००४ (सन् १५९५-९६)से चार वर्ष तक उसकी भारतमें भयंकर प्रकोप रहा था। समसामयिक इतिहासकार नूरुलहक्कने लिखा है—

"इसके साथ एक प्रकारका प्लेग भी आया, जिसने गाँवों और नगरोंको खाली कर दिया, शहरों और उनके सभी घरोंको निर्जन बना दिया। अनाज और दूसरे पदार्थोंके अभावमें आदमी आदमीको खाते थे। सड़कें और गलियाँ मुर्दोंसे भर गई थीं, उन्हें हटानेकी शक्ति किसीमें नहीं रह गई थी।"

शेख फरीद बुखारी (मुर्तजा खान)के निरीक्षणमें सहायता पहुँचानेकी कोशिश की गई, लेकिन उससे विशेष लाभ नहीं हुआ। इस भयंकर अकालने उसकी भारतमें कैसी प्रलय मचाई, इसका उल्लेख तक करनेकी समसामयिक इतिहासकारोंने आवश्यकता नहीं समझी। जेसुइत पादरियोंके कथनानुसार १५९७ ई०में लाहौरमें भी बड़ी महामारी फैली। लोगोंने अपने बच्चोंको भी छोड़ दिया और पादरियोंको ईसाई बनानेका बड़ा मौका मिला। अकालों और महामारियोंका ईसाई मिशनरी खूब लाभ उठाते रहे, यह हालमें भी हमने देखा है।

१५९७ ई०के ईसाई त्योहार ईस्टर-दिवसको अकबर लाहौरके अपने महलमें सूर्य-महोत्सव मना रहा था। इसी समय महलमें आग लग गई। महल अधिकतर लकड़ीका बना था। महलके साथ कीमती कालीन, शाल, हीरा-मोती, बहुत सी दूसरी मूल्यवान् चीजें नष्ट हो गईं। सोने-चाँदीकी पिघली धारें पानीकी तरह सड़कोंमें बहीं। अकबर महलके पुनर्निर्माणकेलिये लाहौर छोड़ गर्मियाँ बिताने कश्मीर चला गया। यह कश्मीरका तीसरा प्रवास था। साथु पिन्हेरोको मिर्जा बनानेकी देखभालकेलिये छोड़ कर वह जेवियर और गोयेजको अपने साथ ले गया था। छ महीने बाद नवम्बरमें अकबर लाहौर लौटा। जेवियरके पत्रसे मालूम होता है, कि अकालकी छायासे कश्मीर भी नहीं बच पाया था। कितनी ही माताओंने अपने बच्चोंको छोड़ दिया, जिन्हें उठा कर पादरियोंने बपतिस्मा दिया। जेवियर दो महीने बहुत बीमार रहा, जिसमें अकबरने उसके साथ बहुत स्नेह और दया दिखलाई। जब जेवियर अच्छा हुआ, तो अकबर बीमार पड़ गया और उसने भी उसी तत्परतासे देखभाल की। पादरीको अकबरके शयनकक्षमें भी जानेकी इजाजत थी, जो बड़ेसे बड़े अमीरोंको भी नसीब नहीं था। यद्यपि कासिम खाँने रास्तेको ठीक करनेकी कोशिश की थी, लेकिन तब भी कश्मीरके पहाड़ोंसे लौटते समय बहुतसे हाथी, घोड़े और आदमी भी मर गये। अपने बापकी तरह ही सलीम भी नहीं जानता था, भय किस चीजका नाम है। शाहजादा सलीमको एक बाघिनने करीब-करीब मार-सा डाला था। जेसुइतोंने कुमारी मरियमकी कृपाको रक्षाका कारण बतलाया। सलीम हर वक्त मरि-

यमकी ताबीज गलेमें रखता था। अकबरके कश्मीर हीमें रहते समय ७ सितम्बरको लाहौरमें बने नये गिर्जेकी प्रतिष्ठा हुई।

चाँद बीबीकी धीरताके कारण अहमदनगरको अच्छी शर्तोंके साथ सुलह करनेका मौका मिला था, लेकिन वह अधिक समय तक लाभ नहीं उठा सका। बरारको दे डालनेका बहाना करके कितने ही दरबारी चाँद बीबीके शत्रु हो गये और उन्होंने उसके प्रभावको हटा कर सन्धिकी शर्तोंको तोड़ते बरारको दखल करना चाहा। मुगल फिर लड़ाई छेड़नेकेलिये मजबूर हुये। दक्खिनपर पूरा अधिकार करने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिलता, लेकिन अयोग्य शाहजादा मुराद रहीमकी टाँग खींचनेकेलिये तैयार था। तो भी फरवरी १५९७में गोदावरीके तटपर सुपाके पास अष्टीमें एक जबर्दस्त लड़ाई हुई। अहमदनगरका सेनापति सुहेलखान बीजा-पुरकी सेनाकी सहायता पाकर बहादुरीसे लड़ा। खानखानाको विजय बड़े मँहगे मोल मिली। वस्तुतः उसे विजय इसीलिये कहना चाहिये, कि युद्धक्षेत्रपर मुगलोंका अधि-कार था। इतनी क्षति उठानी पड़ी, कि शत्रुका पीछा नहीं किया जा सका। राजा अली खाँ अकबरकी ओरसे बड़ी बहादुरीके साथ लड़ता मारा गया और उसकी जगह-पर लायक पिताका नालायक पुत्र मीरा बहादुर खानदेशका शासक बना।

दक्खिनमें रहीम और मुरादकी अनबन देखकर अकबरने दोनोंको हटा मिर्जा शाहरुखको सेनापति बनाया। मिर्जा शाहरुख बदख्शाँका शासक था, जिसे उज्बेकोंने वहाँसे भगा दिया था। अबुलफजल भी इस समय दक्खिनमें थे। उन्हें अकबरने हुकुम भेजा, कि शाहजादा मुरादको दरबारमें भेज दे। यही वह समय था, जब कि तूरानी अब्दुल्ला खानकी मृत्यु हुई। इस खबरको सुनकर १५९८ ई०में अकबर पश्चि-मोत्तरसे निश्चिन्त हो गया और उसी सालके अन्तमें लाहौरसे प्रस्थान कर वह आगरा पहुँचा। अबसे आगरा ही अकबरकी राजधानी बना। अकबरको लायक पुत्र नहीं मिले थे, सभी अयोग्य और सभी एक दूसरेको अपने रास्तेका काँटा समझ लेनेवाले थे। इसके कारण अकबरको कई महीने आगरेमें रुक जाना पड़ा। हिजरी १००८ के आरम्भ (जुलाई १५९९ ई०)में वह दक्खिन जानेकेलिये स्वतन्त्र हुआ। उसने राजधानी और अजमेरके सूबेका शासन शाहजादा सलीमको देकर हिदायत की, कि मेवाड़के राणाको पूरी तौरसे अधीनता स्वीकार करनेकेलिए मजबूर करे।

भारी पियक्कड़ीके कारण मई १५९९में शाहजादा मुराद दक्खिनमें मर गया। मुराद समझता था, मैं सलीमसे अधिक योग्य हूँ और मुझे ही गद्दी मिलनी चाहिए। अकबरकी मृत्युके समय यदि वह जिन्दा रहता, तो सलीमको उतनी आसानीसे तख्तपर बैठनेका मौका नहीं मिलता।

२. अकबर दक्खिनमें (१५९९ ई०)

इसी सालके मध्यमें अकबर दक्खिनकी ओर चला। १६०० ई०के आरम्भमें बिना विरोधके उसने बुरहानपुरपर अधिकार कर लिया। अकबरके तीसरे पुत्र दानियाल और खानखानाको अहमदनगरपर अधिकार करनेका काम सौंपा। चाँद बीबी ही अहमदनगरको बचा सकती थी, लेकिन उसे दूसरे दरबारियोंने मार डाला, या जहर खाकर आत्महत्या करनेकेलिए मजबूर किया था। फरिश्ताके अनुसार हमीद खाँने एक भीड़को लेकर चाँद बीबीको मार डाला। दूसरे कहते हैं, चीता खान हिजड़ेने चाँद बीबीकी हत्या कर दी। अगस्त १६००में बिना कठिनाईके अहमदनगरके किलेपर अधिकार कर अकबरी सेनाने १५०० दुर्गरक्षकोंको तलवारके घाट उतारा। तरुण सुल्तान बहादुरको उसके परिवारके साथ जन्म भरकेलिए ग्वालियरके किलेमें कैद कर दिया गया। लेकिन, सारे राज्यको मुगल सेना नहीं ले सकी। उसके बड़े भागपर मुर्तजा खाँका अधिकार रहा।

३. असीरगढ़-विजय (१६०१ ई०)

खानदेशके स्वामी राजा अलीके पुत्र मीराँ बहादुरखाँने बापका अनुसरण करना पसन्द नहीं किया। उसने समझा, असीरगढ़ जैसा अजेय दुर्ग हाथमें रहनेपर मुगल मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अकबरने अब असीरगढ़ लेनेका निश्चय कर लिया। बुरहानपुरकी ओर जाते समय वह इस किलेके कुछ मीलके फासलेसे गुजरा था। असीरगढ़ सतपुरा पर्वतमालाके समुद्रतलसे २३०० फुट और आसपासके मैदानसे ६०० फुट ऊँची एक पहाड़ीपर अवस्थित है। उत्तरी भारतसे सुदूर दक्खिनको जानेवाला मार्ग (दक्षिणपथ) यहींसे गुजरता था, इसलिए इस किलेका महत्व स्पष्ट है। सभी समकालीन यात्रियोंने इस किलेकी दृढ़ताकी तारीफ की है—तोपों, युद्ध सामग्री और रसदसे इससे अधिक मजबूत भरे-पूरे दुर्गकी कल्पना नहीं की जा सकती। पहाड़ीकी पीठपर ६० एकड़ जमीनपर कितने ही जलाशय पानीकी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए तैयार थे। दो जगहोंको छोड़ सीधी खड़ी पहाड़ीके ऊपर पहुँचनेका कोई रास्ता नहीं था। स्वाभाविक गिरिदुर्गको एकके पीछे एक घेरनेवाली तीन प्राकारोंसे मजबूत किया गया था। किलेपर अधिकार करनेपर वहाँ ११०० छोटी-बड़ी तोपें, बहुत-सी विशाल मार्तोलें, भारी बारूदकी राशि और बहुत तरहकी रसद मिली।

किलेका बाकायदा मुहासिरा अप्रैल १६०० के आरम्भमें शेखफरीद बुखारी (मुर्तजाखान) और अबुलफजलके नेतृत्वमें शुरू हुआ। सारी विशाल तोपोंके रहते भी पता लग गया, कि किलेको तोड़ना शक्तिसे बाहर है। सुरंग लगानेका यहाँ मौका नहीं था। अब घिरावा डालकर बैठनेके सिवा और कोई काम नहीं था। किलेके भीतर इतना रसद पानी मौजूद था, कि प्रतिरक्षी अनिश्चित काल तक डटे रह सकते थे।

असीरगढ़पर अकबरने कैसे अधिकार किया, इसके बारेमें समसामयिक लेखक परस्पर-विरोधी बातें करते हैं। मुगल इतिहासकारोंका कहना है, कि भयंकर महामारीके कारण दुर्गरक्षकोंको आत्मसमर्पण करना पड़ा। साधु जेरोम जेवियर उस समय अकबरके साथ था। वह लिखता है, कि अकबरने धोखेसे सफलता पाई। मीराँ बहादुरको अकबरके डेरेमें बुला वचन-भंग करके कैद कर लिया गया। जेवियरके वर्णनके अनुसार मार्च या अप्रैल १६०० में अपने शत्रुकी बातपर विश्वास कर बहादुरशाह शेख फरीदसे मिलने किलेसे बाहर चला आया। फरीदने बहुत समझाया, कि बादशाहके सामने अधीनता स्वीकार करो। बहादुर माननेसे इनकार कर किलेमें लौट गया। इस समय बहादुरके साथ बहुतसे सैनिक थे, फरीद उसे गिरफ्तार करनेकी हिम्मत नहीं कर सकता था।

बिना विरोधके बुरहानपुरपर अधिकार करके अकबर ३१ मार्चसे ही वहाँके महलमें डेरा डाले पड़ा था। ६ अप्रैलको किलेके पास पहुँच कर उसने भिन्न भिन्न सेनपोंमें स्थान और काम बांटे। रात और दिन किलेपर गोलाबारी होने लगी। मईमें बहादुर खानने अपनी माँ और पुत्रको ६० हाथियोंके साथ अकबरके पास सुलहकी शर्तोंके पूछनेके लिये भेजा। अकबर बिना शर्त आत्मसमर्पण चाहता था। बहादुर इसके लिये तैयार नहीं था। जूनमें धावा बोल कर मुगल सेनाने पासकी पहाड़ीपर अधिकार कर लिया, जिससे मुख्य किलेकी ओर बढ़ना आसान हो गया। यहाँ तक अबुलफजल और जेवियर दोनोंका वर्णन एक समान है। इसके आगे उनमें मतभेद है। साधु जेवियरके पत्रोंसे मालूम होता है, कि १६ अगस्तको अहमदनगरके पतनकी खबर तीन दिन बाद २२ अगस्तको असीरगढ़में पहुँची, जिसका बहादुरशाहके ऊपर असर पड़ा। अहमदनगरसे अच्छी खबर आई, पर अगस्तमें आगरेसे सलीमके खुले विद्रोहका बुरा समाचार भी मिला। अब अकबर असीरगढ़से जल्दी छुट्टी लेना चाहता था। २२ अगस्तके बाद सुलहकी बातचीत शुरू हो गई। खानदेशके रवाजके मुताबिक गद्दीके सबसे नजदीकके उत्तराधिकारी सात शाहजादे बराबर असीरगढ़में रहते थे, सिर्फ सिंहासनपर सबसे ज्येष्ठको जानेका मौका मिलता था। सातोंमेंसे बहादुरशाह सिंहासनपर बैठनेके लिये गया था, दूसरे शाहजादे भी किलेके भीतर थे। किलादार एक अबीसीनियन था। सात पोर्तगीज तोपची अफसर किलेकी रक्षाका काम कर रहे थे। अकबर दो लाख आदमियोंको लेकर किलेको घेरे हुये था। सब तरफसे कोई आशा न देख कर अकबरने शपथपूर्वक मीराँ (बहादुर) शाहको बात करनेके लिये बुलाते कहा कि उसे आजादीसे लौटने की छुट्टी दे दी जायगी। पोर्तगीज अफसरोंने मना किया, लेकिन बहादुरशाह निमन्त्रण स्वीकार कर अधीनता स्वीकार करनेके चिह्नके तौरपर गलेमें चद्दर डाल कर बाहर निकला। अकबरने दरबारमें उसका स्वागत किया। बहादुरने सम्मान दिखलाते हुये तीन बार सिज्दा किया।

इसी समय मुगल अफसरोंमेंसे शेख फरीदने सिजदा (दण्डवत्) करानेके बहाने उसका सिर पकड़ कर जमीनपर गिरा दिया, अकबरने इसे नापसन्द किया। इसके बाद बहादुरसे कहा गया, कि किले के रक्षकोंके पास आत्मसमर्पण करनेका हुक्म भेजो। बहादुरशाहने ऐसा करनेसे इन्कार कर लौट जाना चाहा। इसपर जबर्दस्ती पकड़ उसे गिरफ्तार कर लिया गया। अबीसीनीय दुर्गपालने जब खबर सुनी, तो उसने अपने पुत्र मुकर्रबखानको इस धोखापूर्ण वचन-भंगका विरोध करनेके लिये भेजा। अकबरने उससे पूछा—क्या तुम्हारा बाप किलेको समर्पित करनेके लिये तैयार है? मुकर्रबने कहा—मेरा बाप समर्पण करना तो दूर, उसकी बात करना भी पसन्द नहीं करेगा। उसने यह भी कहा, कि यदि मीरांजी नहीं लौटाया गया, तो उसका स्थान उसके उत्तराधिकारीको देंगे और चाहे जो भी हो, किलेको समर्पित नहीं करेंगे।

जेसुइत साधुके कहनेके अनुसार इस मुँहफट बातको सुन कर अकबरने उसे तुरन्त मारनेका हुक्म दे दिया। दुर्गपालने इसके बाद अकबरके पास सन्देश भेजा: मैं ऐसे झूठे बादशाहका मुँह भी नहीं देख सकता। फिर उसने अपने दुर्गरक्षकोंसे कहा—

"साथियो, जाड़ा आ रहा है। मुगल मुहासिरा उठा कर घर लौटनेके लिये मजबूर होंगे, क्योंकि उनकी सेनाके नष्ट होनेका डर पैदा हो जायेगा। किलेपर कोई जबर्दस्ती अधिकार नहीं कर सकता। भगवान् या दुर्गरक्षकोंका विश्वासघात ही वैसा करानेमें सफल हो सकता है। जो ईमानदारीके रास्तेपर चलते हैं, वह अधिक सम्मानके भाजन हैं। इसलिये तुम दिलोजानसे अपने स्थानकी रक्षा करो।...मैं अपने जीवनका काम पूरा कर चुका, इसलिये मैं ऐसे नीच बादशाहका चेहरा देखना बर्दाश्त नहीं कर सकता।" यह कह कर उसने गलेकी चादरको कस कर अपनेको खतम कर दिया।

दुर्गपालके मरनेपर दुर्गरक्षकोंने जितने ही समय तक किलेकी रक्षा करते मुगलोंको बड़ी परेशानीमें डाला। अकबरने साधु जेवियरसे काम लेना चाहा। पर, पोर्तगीजोंकी खानदेशके साथ सन्धि थी, इसलिये साधु अकबरकी बात माननेके लिये तैयार नहीं था, और मुँहलगा होनेसे उसने दोटूक जवाब भी दिया। अकबरने नाराज होकर हुकुम दिया, कि जेसुइत साधुओंको शाही निवासस्थानसे हटाकर तुरन्त गोआ भेज दिया जाये। साधु जानेके लिये तैयार थे, लेकिन उनके किसी मित्र अमीरने सलाह दी, कि यहाँसे न जायें, नहीं तो रास्तेमें मारे जायेंगे। वह कुछ दूर जा चुके थे। उन्हें इसीमें तब तक रहनेके लिये सलाह दी गई, जब तक कि बादशाहका गुस्सा हट न जाये। सचमुच थोड़े ही समय बाद उन्होंने फिर अकबरको पहले ही जैसा देखा।

बहादुरशाहके गिरिफ्तार करनेसे कोई काम नहीं बना। अकबरका गुनाह बेकार हुआ। बिना दुर्गरक्षकोंको हतोत्साह नहीं कर सकता था। इलाहाबादमें सलीमकी कर्रवाइयोंको सुन कर अकबरका दिमाग परेशान था, इसलिये वह अनिश्चित काल

तक वहाँ बैठा नहीं रह सकता था। उसने सीसेके गोलोंकी जगह सोने चाँदीके गोलोंको इस्तेमाल किया। दुर्गरक्षकोंके मुखिया एक-एक करके खरीद लिये गये। सातों उत्तराधिकारी शाहजादोंके लिये कोई रास्ता नहीं रह गया और साढे दस महीनेके मुहासिरेके बाद १७ जनवरी १६०१ को असीरगढ़ने आत्मसमर्पण किया।

किलेके फाटक खुलनेपर भीतर एक शहर बसा मालूम हुआ। कुछको लकवा या आँखकी बीमारी जरूर थी, लेकिन वह ऐसी नहीं थी, जिससे किलेको खतरा हो सकता था। अबुलफ़जलने लिखा है : २५ हजार आदमी महामारीसे असीरगढ़के भीतर मर गये। फिरिश्ताके अनुसार समर्पण करनेके समय भी दुर्गरक्षाकेलिये काफी आदमी मौजूद थे।

अकबरने दुर्गरक्षकोंकी जानें बख्श दीं। बहादुरशाह और उसके परिवारको ग्वालियरके किलेमें कैदकर दिया गया। उनके खर्चकेलिये चार हजार मुहर सालाना पेन्शन निश्चित हुई। सात शाहजादोंको भिन्न-भिन्न दूसरे किलोंमें रख दो-दो हजार अशर्फी सालाना पेन्शन कर दी गई। सातों पोर्तुगीज तोपचियोंकी भी जान-बख्शी हुई, यद्यपि उन्हें बुरा-भला जरूर कहा गया—तुमने ईसाई धर्मको छोड़कर झूठे इस्लामको कबूल किया। वहाँ जितने पोर्तुगीज या दूसरे ईसाई स्त्री-पुरुष मिले, जेवियरके सुपुर्द कर दिये गये। उन्होंने ७० से अधिक—कुछ मरणासन्न बच्चों—को भी बपतिस्मा दिया।

अकबर दक्खिनका काम पूरा कर चुका। नये विजित भूखण्डके अहमदनगर, बरार और खानदेशके तीन सूबे बनाये गये, जिन्हें मालवा और गुजरातके साथ मिल कर शाहजादा दानियालके अधीन कर दिया गया। २० अप्रैल १६०१ को लिखा एक विजय-अभिलेख असीरगढ़में लगा दिया गया। खानदेशका नाम उपराजके नामपर दानदेश रक्खा गया, यह सीकरीके बुलन्द दरवाजेके अभिलेखसे पता लगता है, लेकिन लोगोंने दानदेशको नहीं स्वीकार किया और आज भी महाराष्ट्रके इस भागको लोग खानदेश ही कहते हैं। अकबरका मझला पुत्र मुराद मर चुका था, जेठा सलीम बागी होकर इलाहाबाद में बैठा था। अकबरने शायद उसकी अक्ल ठीक करनेकेलिये ही दक्खिनके पाँच सूबोंको कनिष्ठ पुत्रको प्रदान किया।

अकबर दक्खिनसे लौटकर मई १६०१के आरंभमें आगरा पहुँचा। अब अकबरके कर्मठ जीवनका अन्त हो गया। उसके बाद उसने कोई नई विजय नहीं की न अपने बड़े लड़केके विद्रोहको छोड़कर किसी और कठिनाईका सामना करना पड़ा।

—•—

अध्याय २४

अन्तिम जीवन (१६०१-५ ई०)

१. सलीमका विद्रोह (१६०० ई०)

अकबर अपने बेटोंसे बहुत प्रेम करता था। उसने सलीमको दुवाज़ार और बारहहज़ारी, मुरादको दसहज़ारी और दानियालको आठहज़ारी मन्सब दिया था। मुराद पहलेही मर चुका था, दानियाल दक्खिनमें था। यह भी बतला चुके हैं, कि सलीमको आगरा और अजमेरके सूबोंको देकर मेवाड़पर आक्रमण करनेका हुकुम हुआ था। राजा मानसिंह भी उसके साथ थे। अकबरने सलीमको तमन, तोग (तुर्कीझण्डा), अलम, नगारा, फर्राशखाना आदि सभी बादशाही सामान, एक लाख अशर्फी नगद तथा सवारीके लिये अम्मारी-सहित हाथी प्रदान किया था। मानसिंह बंगाल-बिहारके सिपहसालार थे, लेकिन बादशाह के हुकुम के अनुसार युवराजके साथ थे। दानियाल, सलीमका प्रतिद्वन्द्वी था। उसका प्रभाव भी कम नहीं था। साम्राज्यके सबसे बड़े फील्ड-मार्शल रहीम खानखाना उसके ससुर थे। बीजापुर सुल्तान इब्राहीम आदिलशाहने अपनी बेटी बेगम सुल्तानकी शादी शाहज़ादा दानियालसे करनेकी प्रार्थना की। अकबरको खुश होना ही चाहिये था, क्योंकि अहमदनगरके बाद अब बीजापुर भी उसके कदमोंपर सिर झुकानेकेलिये तैयार था।

सलीमको राणासे लड़नेमें कोई दिलचस्पी नहीं थी, वह कोई खेल-तमाशा भी नहीं था। उसकी जगह उसे अजमेरके इलाकेमें शिकार खेलना अधिक पसंद था। उसने अपने आदमियोंको राणासे लड़नेके लिये भेजा था। १५६७में प्रतापके मरनेपर मेवाड़-पति राणा अमरसिंह पिताकी तरह ही योग्य वीर था। उसने मुगल सेनाके छक्के छुड़ाये।

सलीम बहुत असंतुष्ट था, कि वार बीता जा रहा है, न जाने कितने सालों तक मुझे गद्दीके लिये प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। क्या जाने तब तक मैं खुद न रहूँ और मुरादकी तरह अपनी सारी मुरादें साथ लिये जाना पड़े। वह जानता था, अबुलफ़ज़ल और रहीम उसे पसन्द नहीं करते। चापलूस मुसाहिब भी आगमें घी डालते थे। इसी बीच (१६०० ई०में) खबर आई, बंगाल में विद्रोह हो गया, उसमान खाँने मानसिंहकी सेनाको हरा दिया। मानसिंह उधर जानेकेलिये मजबूर हुये। मानसिंह यद्यपि सलीमके साले थे, पर अकबरको अपना सब कुछ समझते थे। उनके रहते समय सलीमके ऊपर कुछ

मैंकुश था। जब वह बंगालकी ओर चले, तो सलीमको खुलकर खेलनेका मौका मिला। मेवाड़की मुहिमको छोड़कर आगरा जा उसने शहरके बाहर डेरा डाल दिया। अकबरकी माँ हमीदा बानू (मरियम मकानी) लालकिले में थीं। दुर्गपाल किलिच खाँ अकबरका नामी सिपहसालार था। उसने किलेसे निकलकर सलीमका खूब स्वागत किया, नजर भेंट की, खैरख्वाहीकी बहुत सी-बातें कहीं, ऐसे उपाय सुझाये, कि सलीम समझने लगा, इससे बढ़कर हमारा कोई खैरख्वाह नहीं होगा। मुसाहिबोंने बहुत समझाया, कि इस पुराने पापीको गिरफ्तार कर लेना चाहिये, लेकिन शाहजादाने उनकी बात नहीं मानी।

सलीम शिकार खेलनेके बहाने जमुना पार गया। दादी (मरियम मकानी)को असली बातका पता लग गया। वह बेटेसे भी ज्यादा पोतेपर स्नेह रखती थी। बुला भेजा, लेकिन सलीम नहीं आया। फिर वह स्वयं चली। खबर पातेही सलीम नाव-पर बैठकर इलाहाबाद की ओर भागा। दादी बेचारी निराश लौट गई। इलाहाबादमें पहुँचकर सलीमने पुराने अमीरोंकी सारी जागीरें जब्त कर लीं। इलाहाबाद आसफखाँ मीरजाफरके हाथमें था, जिसे सलीमने छीन लिया। बिहार, अवध और दूसरे पासके सूबोंपर भी कब्जा कर सबपर उसने अपने हाकिम नियुक्त किये। बिहारके तीस लाखसे अधिकके खजानेको ले सूबेको अपने कोका (दूधभाई) शेरजीवन—सलीम चिश्तीके पुत्र—को प्रदान कर उसे कुतुबुद्दीन खान की पदवी दी।

मानसिंहने बंगाल जा शेरपुर-अताई (जिला मुर्शिदाबाद) में उसमानखाँ पठानको पूरी तौर से हरा दिया। उसके बाद हिजरी १०१३ (१६०४-५) तक मानसिंह बंगालमें ही रहे।

अकबरकी सारी आशायें सलीमपर केन्द्रित थीं। दानियाल और भी ज्यादा पियक्कड़ और नालायक था। सलीमके पुत्र तथा मानसिंहके भांजे खुसरोको वह बहुत प्यार करता था, पर इसका यह अर्थ नहीं कि दादा बेटेकी जगह पोतेको गद्दी देना चाहता था। सलीमके विद्रोहकी खबर मिल गई थी। आगरा पहुँचकर अकबरने बेटेको बुलानेके लिये कई सन्देश भेजे। एक बार खबर मिली, सलीम तीस हजार सवारोंके साथ आ रहा है और राजधानीसे ७२ मीलपर अवस्थित इटावा पहुँच भी गया है। सलीमने इलाहाबाद में अपनेको बादशाह घोषित करके अपने नामके रुपये और अशर्फियाँ ढलवाईं और उन्हें दिल जलानेकेलिये अकबरके पास भी भिजवाया। मशहूर चित्रकार ख्वाजा अब्दुस्समदके पुत्र मुहम्मद शरीफको सलीमका लँगोटिया यार और मददगार समझकर अकबरने उसे समझाने-बुझानेकेलिये भेजा और यह भी कहलवाया कि बंगाल और उड़ीसाकी जागीर तुम्हें दी जाती है। जहाँगीरके मुसाहिब उसे कब चुप बैठने देनेवाले थे! उन्हींकी सलाहपर तीस हजार सवार लेकर वह इटावा गया था। अकबरने समझ लिया, दालमें कुछ काला है। उसने फरमान

भेजा : यद्यपि पुत्रके देखने की इच्छा अत्यधिक है, बूढ़ा बाप दीदारका प्यासा है, लेकिन इस धूमधामसे प्यारे बेटेका मिलने आना बहुत बुरा मालूम होता है। मिलना चाहते हो, तो तुम्हारा मुजरा कबूल हो गया, आदमियोंको जागीरोंपर भेज दो और साधारण तौरसे अकेले चले आओ, बापकी दुखती आँखोंको रोशनी और निराश दिलको खुश करो। अगर लोगोंके फुसलानेसे तुम्हारे दिलमें कुछ सन्देह है—जिसका हमें कोई ख्याल भी नहीं—तो कोई बात नहीं; इलाहाबाद लौट जाओ, दिलके सन्देहको हटा दो। जब तुम्हारे हृदयमें कोई शंका न रह जाये, तब सेवामें उपस्थित होना।

फरमान इतना प्रेम भरा था, कि जहाँगीर भी लज्जित हुआ और वहीं ठहर कर उसने प्रार्थना की, कि दास, सिवा सेवा और दर्शनके और कोई ख्याल मनमें नहीं रखता। इसके उत्तरमें अकबरका जो पत्र मिला, उससे वह इलाहाबाद लौट गया। बादशाहने बेटेको सारे बंगालकी जागीर दे दी और यह भी लिख दिया, कि उसके प्रबन्धकेलिये तुम अपने आदमी नियुक्त करो। इस समय शासन-शक्तिके दो केन्द्र बन गये। अकबर जीवनके अन्तपर था, सलीम भावी बादशाह था, इसलिये विश्वासपात्र आदमियोंकी हालत भी डाँवाडोल हो गई थी। अबुलफजल अब भी दक्खिनमें थे। इस समय अकबरको उनका अभाव खटकने लगा और जल्दी आनेकेलिये फरमान भेजा। सलीमको सारी बातोंका पता लगता रहता था। उसने सोचा, यदि बूढ़ा वजीर बादशाहके पास पहुँच गया, तो न जाने क्या करा दे, इसलिये कैसे धोखेसे रास्तेमें अबुलफजलको मरवा दिया, इसे हम बतला चुके हैं। अकबरको अपने ऐसे मित्रके मारे जानेका भारी अफसोस हुआ।

लेकिन, अब तो बीती नहीं, आगेकी सुध लेनी थी। सलीमका दिल साफ करना चाहता था। उसको समझा-बुझा कर लानेकेलिये चारों ओर नजर दौड़ाई, तो सलीमा सुलतान बेगम (खदीजा जमानी) पर उसकी नजर गई। सलीमा बैरमखाँ की सात वर्षकी विधवा अकबरकी फूफेरी बहिन थी, जिसे बादशाहने बैरमके परिवारके साथ घनिष्ठता स्थापित कर कछवाहोंको भुलानेकेलिये ब्याहा था। अकबरकी बीबियोंमें सलीमा बहुत प्रभावशाली, चतुर और मिठबोली थी। अपने सौतेले बेटे सलीमके साथ उसका बहुत अच्छा सम्बन्ध था, इसलिये अकबरने सलीमा हीको अपना सन्देशवाहक बनाया। बेटेकेलिये जो सौगातें भेजीं, उनमें "फतह-लश्कर" नामक प्रसिद्ध हाथी, कीमती खलअत, बहुमूल्य वस्तुयें, मेवे-मिठाइयाँ, पोशाक और जेवर थे। सलीमा १६०२ ई०के अन्त या १६०३ ई०के आरम्भमें इलाहाबाद गई। सभी बातें बतलाईं, नीचा-ऊँचा दिखलाया। सलीम यदि दूसरोंकी बातोंपर न चलता, तो विद्रोही न होता। सलीमा का जादू चल गया। वह उसे ले आगरेकेलिये रवाना हुई। अप्रैल १६०३के आसपास अकबरको खबर मिली, कि सलीम इटावा आ गया है। सलीमा बेगमने अकबरकी माँ मरियममकानीको लिखा, कि आप

लीमको अपनी रक्षामें लें। मरियम मकानी एकदिनकी मंजिल आगे बढ़कर पोतेको
रने महलमें ले गईं। उन्होंने बाप-बेटेकी मुलाकातका प्रबन्ध किया। एक तरफ मरि-
म मकानी और दूसरी तरफ सलीमाने सलीमको पकड़ा। बापके सामने आ उसने
दमों पर सिर रख दिया। अकबरने उठाकर देर तक उसे छातीसे लगाये आँसू बहाया
र अपनी सिरपेच उतार बेटेके सिरपर रख दी। पुनः युवराजकी उपाधि दी, बाजे बज-
ये, उत्सव मनाया। सलीमने उस दिन १२ हजार अशर्फियाँ और ७७० हाथी बापको
ट किये। हाथियोंमें ३६४ इतने अच्छे थे, कि उन्हें बादशाहने अपने फीलखानोंमें
मिल किया, बाकीको लौटा दिया। अकबरको हाथियोंसे बड़ा प्रेम था, यह सलीम
नता था। बापने कहा, तुम्हें जो हाथी पसंद हो माँगो। सलीमके माँगनेपर उसे दे दिया।

प्रतापके उत्तराधिकारी राणा अमरसिंहने बादशाही इलाकेमें भी आक्रमण शुरू
र दिये थे। अकबरने सलीमको मेवाड़की मुहिमपर भेजा। वह रवाना हो सीकरी
हुँचा। खजाना और कुछ सामानके पहुँचनेमें देर देख वह फिर बिगड़ गया। बापके
स शिकायत करते कहा: सारी सेना और सामान जुटा लें, फिर मैं मुहिमपर जाऊँगा,
स वक्त मैं अपनी जागीरपर जाना चाहता हूँ। अकबरने देखा, काम बिगड़ रहा है,
सलिये उसने अपनी बहिनको समझानेके लिये भेजा। उसने नहीं माना। बापको
जाजत देनी पड़ी। कुछ अमीरोंने अकबरसे कहा, उसे हाथसे जाने नहीं देना चाहिये,
किन अकबर तैयार नहीं हुआ। जाड़ेकी सर्दी थी। दूसरे दिन सलीमके पास यह कह
र एक बहुमूल्य सफेद समूरी पोशाक भेजी—यह मुझे बहुत पसन्द आई, चाहता हूँ,
म इसे पहनो। उसके साथ कुछ और भी सौगातें भेजीं। १० नवम्बर १६०३को
थुराके पास यमुना पार हो सलीम इलाहाबाद पहुँचा और बापके साथ हुए मेलको
ड़े धूमधामसे मनाया। कान भरनेके लिए अब भी उसके मुसाहिब मौजूद थे। इसी
मय सलीमकी मुख्य बेगम—राजा मानसिंहकी चचेरी बहिन तथा सलीमके बड़े लड़के
सरोकी माँ शाह बेगम—मर गई। सलीम शाह बेगमको बहुत प्यार करता था। शाह
गमको पतिका ससुरके साथ बर्ताव और अपने बेटे खुसरोकी बापका स्थान लेनेकी
काक्षाने बहुत परेशान कर दिया, जीवन भार मालूम होने लगा और अफीम
ाकर उसने जान दे दी। जहाँगीरने तुजुकमें लिखा है—"जो प्रेम मेरा उसके साथ
ा, उसके कारण उसकी मृत्युके बाद मेरे कई दिन दुःखभरे रहे। मुझे जीवन दूभर
ालूम हो रहा था। चार दिन तक मैंने मुँहमें न अन्न डाला न पानी।" अकबरने बेटेको
ीरज बँधाते पत्र लिखा और साथमें खलअतके साथ अपने सिरकी पगड़ी भी भेजी।

१६०४ ई०के आरम्भमें बीजापुर सुल्तानने दानियालसे ब्याहनेके लिये मीर
मालुद्दीन हुसेन और इतिहासकार फरिश्ताके साथ अपनी लड़कीको भेजा।
ोदावरीके किनारे पैठनमें शाहजादेने ब्याह किया। इसी साल अप्रैलके आरम्भमें
त्यधिक शराबके पीनेके कारण दानियाल बुरहानपुरमें मर गया।

शराबसे मरे अपने दोनों बेटोंकेलिये अकबरको बहुत अफसोस था। अब उसके लिए एक शेखूजी बच रहा था—अकबर सलीमको प्यारसे शेखूजी कहा करता था। उसको भी शराब और अफीमकी बुरी आदत पड़ गई थी। अप्रैल १६०४में अपने किसी वाकयानवीस (घटना-लेखक) की बदमाशीसे सलीम इतना नाराज हुआ, कि उसकी जिन्दा खाल उतरवा ली। अकबरको जब यह खबर मिली, तो उसके दिलको बहुत धक्का लगा। उसने कहा—"शेखूजी, हम तो बकरीकी खाल भी उतारते नहीं देख सकते, तुमने यह संगदिली कहाँसे सीखी?" अकबरने देखा, बड़ा बेटा भी अपने दोनों भाइयोंके कदमोंपर चल रहा है। उसकी इच्छा हुई, अबकी खुद जा बेटेको समझा कर अपने साथ लाये। तदनुसार १६०४ ई०की गर्मियोंमें इलाहाबाद जानेका निश्चय कर लिया। उसने अगस्तमें यमुना पार आगरेसे छ मीलपर सेना जमा करवाई। वह खुद नावपर चला, लेकिन नाव फँस गई। वर्षा भी इतनी हुई, कि बादशाही शामियानेको छोड़ कर सभी तम्बू बाढ़की लपेटमें आ गये। दादीको भय लगने लगा, अबकी बाप-बेटेमें मेल नहीं, बल्कि खूनी लड़ाई होगी। उसने बेटेको बहुत रोकनेकी कोशिश की, पर सफल नहीं हुई। इससे बुढ़ियाकी हालत बहुत बुरी हो गई। खबर सुनते ही अकबर लौट कर माँकी चारपाईके पास बैठा। माँ बोलनेकी शक्ति खो चुकी थी। चार दिन बाद २९ अगस्तको बानूने शरीर छोड़ दिया। अकबर अपनी माँसे अत्यन्त प्यार करता था। शोकमें भद्र करवाया, दूसरे १४०० आदमियोंने भी उसका साथ दिया। बेटेने माँकी अर्थीको कुछ दूर तक अपने कन्धेपर उठाया। अमीरोंने भी कन्धे लगाये। फिर उसे पति (हुमायूँ) के साथ दफन होनेकेलिए दिल्ली भेज दिया। हमीदा बानूने अपने घरके खजानेकेलिए कहा था, कि उसे मेरे सभी पुरुष-सन्तानोंमें बाँट दिया जाये। कहते हैं, अकबरने माँकी इच्छाकी कोई पर्वाह न करके सबको अपने खजानेमें डलवा दिया। सलीमको भी खबर लगी। बादशाहके वकील मीराँ सदरजहाँने शाहजादेको समझाया। सलीमको अक्ल आई। वह अक्तूबरमें इलाहाबादसे रवाना हो ९ नवम्बरको अपने आदमियोंको शहरसे दूर रख कर राजधानीमें पहुँचा। उसके साथ उसका द्वितीय पुत्र परवेज (१४ वर्ष) भी था। सलीम अपने साथ बापकी भेंटकेलिये दो सौ अशर्फियोंके साथ एक लाख रुपयेका हीरा और चार सौ हाथी लाया था। अकबरके सामने उसने सिज्दा किया। बाप उसे पकड़ कर भीतर खींच ले गया और बेटेके मुँहपर कई थप्पड़ लगाये, बहुत बुरा-भला कहा। फिर उसकी शराब पीनेकी आदतको दूर करनेके लिए उसे पासके स्नानागारमें बन्द रखनेका हुकुम दिया। चिकित्सक राजा शालिवाहन, दो नौकर [illegible] तथा अर्जुन हकीमको उसके ऊपर नियुक्त किया। चिकित्सक शराब-अफीमकी आदत छुड़ानेकेलिये प्रयत्न करने लगा। सलीमको बुरी सलाह देनेवालोंको पकड़कर जेलमें डलवा दिया गया। कांगड़ाके पास मऊ (नूरपुर) के राजा बसुको पकड़ने [illegible] लग गया और वह वहाँसे भाग निकला।

सलीमको चौबीस घंटे तक अफीम नहीं दी गई। बुरी हालत देखकर बाप स्वयं अपने हाथसे बेटेके पास अफीम ले गया। बेगमोंने बहुत समझाया-बुझाया। इस पर उसने उसे नौकर-चाकरके साथ एक उपयुक्त महलमें रखवा दिया। सलीम अब पूरी तौरसे बापकी बात माननेकेलिये तैयार था। अकबरने दानियालके सूबे उसे दिया और वह आगरेमें रहने लगा।

इसी बीच सलीम और उसके बड़े बेटे खुसरोके मनमुटावको बढ़ानेवाली एक घटना घटी। एक दिन हाथियोंकी लड़ाईका इन्तिजाम किया गया। अकबरको बचपन-से ही इसका बहुत शौक था। सलीमका एक बहुत विशाल हाथी था, जिसका नाम गिराँबार (बहुमूल्य) था। लड़ाईमें दूसरा हाथी उससे टक्कर नहीं ले सकता था। सलीमके बेटे खुसरोके पास भी एक जबर्दस्त हाथी था, जिसका नाम आपरूप था। दोनोंको लड़ानेका निश्चय हुआ। बादशाही हाथी रनथमन भी उनकी जोड़ीका था। निश्चय हुआ था, दोनोंमें जो दबे, उसकी मददके लिये रनथमन पहुँच जाये। बादशाह और शाहजादे झरोखेमें बैठे तमाशा देख रहे थे। इजाजत लेकर जहाँगीर और खुसरो घोड़ेपर चढ़ कर मैदानमें गये। गिराँबार और आपरूप पहाड़की तरह एक सरेसे टकराने लगे। खुसरोका हाथी भागा, जहाँगीरके हाथीने उसका पीछा किया। पूर्व निश्चयके अनुसार हाथीवान् रनथमनको लेकर आपरूपकी मददके लिए बढ़ा। जहाँगीरके नौकर नहीं चाहते थे, कि गिराँबार हारे। उन्होंने रनथमनको रोकना चाहा। हाथीवान् नहीं रुका। जहाँगीरके नौकरोंने बर्छे और पत्थरोंसे आक्रमण किया। बाद-शाही हाथीवान्के सिरपर एक पत्थर लगा, खून बहने लगा। खुसरोने दादाके पास आकर बापके नौकरोंकी ज्यादती तथा शाही हाथीवान्के घायल होनेकी बात सुनाई। अकबरको बहुत गुस्सा आया, लेकिन उसने अपनेको दबाया। जहाँगीरका लड़का खुर्रम—पीछे बादशाह शाहजहाँ—दादाके पास रहता था। अकबरने उससे कहा—"जाओ, अपने शाहभाईसे कहो, कि शाह बाबा कहते हैं : दोनों हाथी तुम्हारे हैं, दोनों हाथीवान् तुम्हारे हैं, जानवरका पक्ष ले हमारा अदब भूल जाना यह कैसी बात है!"

खुर्रमके लिये उस समय आशा थी, कि जहाँगीरके बाद उसे ही गद्दीपर बैठना है। उसने बापसे जाकर कहा। लौट कर दादाको बतलाया, कि शाहभाई कहते हैं—"हजरतके मुबारक सिरकी कसम है। सेवकको इस बेहूदा बातकी बिल्कुल खबर नहीं, गुलाम कभी ऐसी गुस्ताखी गवारा नहीं कर सकता।" अकबरको और क्या चाहिये था! खुसरो (जन्म १५८७)को कभी-कभी अकबरने जरूर कहा था, कि तू बापसे ज्यादा होशियार है, पर वह अपने बेटेको सिंहासनसे वंचित करके पोतेको सिंहासन नहीं देना चाहता था। खुसरोमें कोई असाधारण गुण भी नहीं था। उसको यह अभिमान जरूर था, कि मैं शाहका सबसे बड़ा पोता हूँ, मेरा मामा दरबारका सबसे बड़ा अमीर, सल्तनत

का फील्ड-मार्शल राजा मानसिंह है। भाग्य हँस रहा था, क्योंकि उसका हाथ खुसरोके छोटे भाई खुर्रमके ऊपर था। खुर्रम भी जोधपुरके राजा मालदेवकी पोतीका पुत्र था।

२. मृत्यु (१६०५ ई०)

अकबर ६३ वर्षका था। उसकी माँ एक ही साल पहले मरी थी। यह नहीं कहा जा सकता था, कि वह बिल्कुल पका टपकनेवाला फल था। सारा जीवन वह एक अत्यन्त कर्मठ पुरुष रहा। अन्तिम जीवनमें पुत्रके विद्रोहको बर्दाश्त करनेको छोड़ उसके लिये कोई काम नहीं था, गोया जीवनका उद्देश्य ही खतम हो गया था। अकबरके सबसे प्रभावशाली अमीर और सेनापति राजा मानसिंह और दूधभाई अजीज कोका सलीमकी हरकतोंको देख कर चाहते थे, कि उसे वंचित कर खुसरोको गद्दीपर बैठाया जाये। आखिर अकबरके फौलादी शरीरने भी जवाब दे दिया। २० सितम्बर १६०५ रविवारको अकबरने सूर्यकी पूजा-पाठ अच्छी तरह से की। अगले दिन पेचिश हो गई। शाही चिकित्सक हकीम अलीने आठ दिन तक कोई दवा न दी, सोचा स्वाभाविक तौरसे शरीरको उसका मुकाबिला करने देना चाहिये। इससे कोई लाभ न देख डर कर पूरी मात्रामें दवाइयाँ देने लगे। इसी बीच सलीम और खुसरोके हाथियोंकी लड़ाइमें उनके नौकरोंमें जो झगड़ा हुआ था, उसके कारण अकबरको और धक्का लगा, जिससे हालत बिगड़ गई। भारतके भाग्यका अस्त होने वाला सूर्य रोग-शैय्यापर पड़ा था। बादशाहोंके मरनेके समय जो बातें हुआ करती हैं, वह इस समय हुये बिना कैसे रह सकती थीं?

अमीर अपना अपना दाँव-पेच लगा रहे थे। दरबारके सबसे बड़े अमीर राजा मानसिंह और खानेआजम मिर्जा कोका अपने भाजे और दामादको पीठपर थे। खुसरोकी एक ही बीबी थी, और वह भी खानेआजमकी बेटी। दोनोंने सोचा, सलीम रास्तेका काँटा है, यदि इसे हटा दिया जाये, तो काम बन जायगा। सलीमके समर्थकोंकी भी कमी नहीं थी। बख्शी शेख फरीद "मुर्तजा खाँ" सारी सल्तनतका बख्शी (सैनिक वित्तमन्त्री) था। वह बराबर सलीमको सजग किया करता था। खुसरो कई सालोंसे हजार रुपया रोज अपने नैरताहोंमें इसी दिनके लिये बाँटता आ रहा था। एक बार सलीम बापको देखने के लिये नावपर चढ़ जमुनाके किनारे पहुँच उतरना ही चाहता था, कि उसे सजग कर दिया गया। वह अपने महलमें लौट गया। खानेआजम और मानसिंहने अमीरों और से नापतियोंकी बैठकमें प्रस्ताव पेश किया, कि बादशाहको इतना कष्ट देनेवाले बेटेको वंचित कर दिया जाय। लेकिन, अधिकारोंने इसका सख्त विरोध किया, और कहा यह चगताई वंशके नियमके विरुद्ध है। बैठकमें कोई निश्चय नहीं हो सका। सलीम-समर्थक रामदास कुछवाहा इस गड़बड़को खूब देख रहा था। खजाना उस समय बड़ी चीज था, उसकी रक्षाके लिए उसने उसपर अपने विश्वासपात्र राजपूतोंको नियुक्त कर दिया।

शेख फरीदने प्रभावशाली सेनापति बारहाके सैयदोंको सलीमकी ओर किया। उन्होंने सलीमके पक्षमें अपनेको घोषित किया। वह समझने लगे, हमारी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि बादशाहकी अन्तिम घड़ियोंमें मानसिंहको खुसरोके साथ बंगाल नहीं भेज दिया जाता।

खानेआजम और मानसिंहके हथियारबन्द आदमी चारों ओर लगे हुए थे। सलीम यदि इस समय घरसे बाहर निकलता, तो कैद कर लिया जाता। इसलिये सलीम खतरनाक बीमारीमें भी बापसे मिलने नहीं जा सका। बीमारीके समय खुर्रम बराबर दादाके पास रहता और वह सारी बातें समझा कर बापके न आनेका कारण बतलाता था। बापने खुर्रमसे बहुत कहा, चारों ओर दुश्मन हैं, मेरे पास चले आओ; लेकिन, वह राजी नहीं हुआ। माँ भी दौड़ी-दौड़ी लेनेकेलिये आई, बहुत समझाया, लेकिन, खुर्रम नहीं हटा। इसमें शक नहीं, दादाकी मृत्युशय्याके पास खुर्रमका बना रहना सलीमके बड़े लाभकी बात सिद्ध हुई।

सलीम बापसे मिलनेकेलिये छटपटा रहा था, लेकिन उसके हितैषी खतरेसे आगाह करते उसे जानेसे रोकते थे। अन्तमें सलीम बापके पास पहुँचा। उसने गले से लगाकर बेटेको बहुत प्यार किया। दरबारके अमीरोंको बुलवाया, फिर बेटेसे कहा—"पुत्र, मैं नहीं चाहता कि तुझमें और मेरे खैरख्वाहोंमें बिगाड़ हो। इन्होंने वर्षों मेरे साथ युद्धों और शिकारोंमें तकलीफें उठाईं, लेग और हुफंगके मुँहपर अपनी जान जोखिममें रक्खी, मेरे यश और प्रताप, राज्य और धनकी तरक्कीमें ये प्राण न्यौछावर करते रहे।" इसी समय अमीर भी आ गये। फिर उनकी तरफ मुँह करके शाहने कहा–"मेरे वफादारो, मेरे प्यारो, अगर भूलसे भी मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया हो, तो माफ करना।" यह बात सुनकर जहाँगीर बापके पैरोंमें सिर रख फूट-फूट कर रोने लगा। फिर अकबरने कहा—"खानदानकी औरतों और अन्तःपुरकी बेगमोंकी रोज-खबर लेनेसे गफलत न करना। मेरे पुराने सेवकों और खैरख्वाह साथियोंको न भूलना।" उसने खुसरोके समर्थकोंको भी हानि न पहुँचानेकी शपथ लेनेको कहा। सलीमने शपथ ली और उसका पालन किया।

२२ अक्तूबरके सनीचरको साधु जेवियरका अपने साथियोंके साथ महलमें बुलावा आया। उसे बीमारके पास ले जाया गया। पादरी समझता था, बादशाह मृत्युशय्यापर पड़ा हुआ है, अन्तकालमें उसको मुक्तिके बारेमें कुछ शिक्षा देंगे, लेकिन उसे दरबारियोंसे घिरा बहुत खुश देखा, इसलिये मुजरा करके लौट आया। सोमवारके दिन पता लगा, हालत बहुत खराब हो गई है। साधुने फिर पास जाना चाहा, लेकिन इजाजत नहीं मिली। अन्तिम समय तक अकबरका होश-हवास दुरुस्त रहा, यद्यपि मरनेसे कुछ पहले बोलनेकी शक्ति जाती रही। सलीमने जब अन्तिम बार विदा किया, तो अकबरने इशारेसे शाही सरपेच और पैरोंके पास पड़ी तलवारको बाँधने-

फेलिये कहा। फिर उसने कमरेसे जानेके लिये संकेत किया। बाहर लोगोंने बड़ी हर्षध्वनिके साथ भावी बादशाहका स्वागत किया। अकबरने भगवानका नाम लेनेका प्रयत्न किया। अन्त कालमें उसे किसी पादरी या मुल्लाकी दुआकी आवश्यकता नहीं पड़ी। मुस्लिम इतिहासकार बतलाना चाहते हैं, कि अकबरने अन्तमें इस्लामको फिर स्वीकार किया, पर यह बिल्कुल गलत है। २७ अक्तूबर १६०५ गुरुवार (हि०१०१४, १२ जमादी बुधवार) की मध्य-रात्रिके थोड़े ही समय बाद भारतका भाग्यतारा अस्त हो गया।

अकबरकी मृत्युके बारेमें तरह-तरहकी खबरें उड़नी स्वाभाविक हैं। कुछ लोग कहते हैं, सलीमने जहर दिलवा दिया था। बदायूँनीने शाहजादा मुराद और दानियाल दोनोंके जिन्दा रहते समय इससे तेरह-चौदह वर्ष पहलेके बारेमें लिखा है—"एक दिन बादशाहके पेटमें दर्द हुआ और इतना सख्त, कि धीरज धरना मुश्किल हो गया। उस वक्त छटपटाते हुए वह ऐसी बातें करता था, जिससे सन्देह होता था, उसे सलीमने जहर दे दिया है। बार-बार कहता था: शेखू बाबा, सारी सल्तनत तुम्हारी थी, हमारी जान क्यों ली?" इससे अधिक सन्देहकी और क्या पुष्टि हो सकती है? तब सलीमके दोनों भाई मौजूद थे, इसलिये ऐसे संदेहकी गुन्जाइश थी। पर, इस वक्त उसकी कोई जरूरत नहीं थी, विशेषकर जब कि उसके प्रतिद्वन्द्वी खुसरो और उसके समर्थक राजा मानसिंह भी दूर भेज दिये गये थे और चारों ओर सलीमका ही प्रभाव था। टाडने बूँदीके इतिहासका उदाहरण देते हुए लिखा है, कि अकबरने राजा मानको जहर देकर पिण्ड छुड़ाना चाहा। इसकेलिये एक सी दो गोलियाँ बनवाईं, जिनमेंसे एक बिना जहरकी अपने लिए रक्खी थी। जल्दीमें जहरवाली गोली स्वयं खाली।

हालेंही फ़ान डेन ब्रोयेकने अकबरकी मृत्युके २३ वर्ष बाद (१६२८ ई०) एक और परम्परा सुनी थी—"बादशाह सिन्ध ठट्ठाके शासक जानी-पुत्र मिर्जा गाजीसे किसी गुस्ताखीकेलिये नाराज हो गया। उसने उसे जहर देना चाहा। इसकेलिये उसने अपने हकीमोंसे एक तरहकी दो गोलियाँ बना एकमें जहर रखनेकेलिये कहा। उसने विष-युक्त गोलीको गाजीको देना और निर्विषको अपने खाना चाहा, लेकिन, गलतीसे बात उलटी हो गई। वह गोलीको अपने हाथमें हिला रहा था और भ्रमसे निर्विष गोली गाजीको देकर विषैलीको खुद खा गया। जब भूल मालूम हुई, तो विष सारे शरीरमें व्याप्त हो चुका था, इसलिये परिहार करनेमें सफलता नहीं हुई।"

सारी सामग्रीको देखकर विन्सेन्ट स्मिथकी राय है, कि अकबर स्वाभाविक मृत्युसे मरा।

अकबरकी मृत्युपर जितना शोक लोगोंने मनाया, उतना उसके इतरात्र नहीं मनाया होगा, इसमें शक नहीं। उन्हें अब मरे नहीं जिन्दा बादशाह। इसकी आवश्यकता थी। लेकिन, शिष्टाचारका पालन करना तो आव-

१३८ था। प्रथाके अनुसार अकबरके शवको किलेके दरवाजेसे नहीं बल्कि दीवार तोड़कर निकाला गया। जहाँगीर और अकबरके पोतोंने कन्धा दिया। अकबरने अपने जीवनकालमें ही सिकन्दरामें अपने लिये मकबरा बनवाना शुरू किया था। किलेसे तीन मील चलकर अर्थी वहाँ पहुँचाई गई। उसके साथमें पुत्र तथा थोड़ेसे आदमी शोक प्रकट कर रहे थे। जेसिवत इतिहासकारने ठीक ही लिखा है—"दुनिया इसी तरह उनके साथ व्यवहार करती है, जिनसे उसे भलाई, भय या हानिकी आशा नहीं रहती।"

जहाँगीर (सलीम)ने भले ही जीवनमें अपने बापको तंग किया हो, लेकिन अब वह अपने पिताका परमभक्त था। "तुज़ुक-जहाँगीर" में बापका उल्लेख करते वह सदा अत्यन्त सम्मान प्रकट करता है। जहाँगीरको अपने पिताका बनवाया मकबरा पसन्द नहीं आया, इसलिये कई नये नक्शोंके देखनेके बाद उसने फिरसे बनवाया और १५ लाख रुपया उसपर खर्च किया, आजके मोलसे ३-४ करोड़ रुपया। औरंगजेबको दक्खिनकी लड़ाइयोंमें पड़े रहते समय १६६१ ई०में खबर मिली: "जाट मकबरेके पीतलके बड़े-बड़े फाटकोंको तोड़ ले गये, सोने-चाँदी, हीरा-मोतीके अलङ्कारोंको लूट ले गये, जिसे कामका नहीं समझा, उसे उन्होंने नष्ट कर दिया। उन्होंने अकबरकी हड्डियोंको भी जला दिया।" सिकन्दराको देखनेवाले शायद यह नहीं जानते, कि हम खोखली कब्रको देख रहे हैं। अकबरसे यदि पूछा जा सकता, तो वह यही कहता: मुझसे ३२५ वर्ष बाद महाप्रयाण करनेवाले भारतके राष्ट्रपिता (गांधीजी)की तरह मेरी शरीरकी राखको भी बिना कोई निशान रक्खे बहा-उड़ा देना। भारतके दोनों बड़े सपूतों अकबर और गांधीकी खोखली समाधियोंपर यदि श्रद्धाके फूल चढ़ाये जायें, तो इसमें आश्चर्य और दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं। दुःख तो यह है, कि अकबरकेमूल्यको अभी भी हमारे देशने अच्छी तरह नहीं समझा।

३. आकृति, पोशाक आदि

(१) आकृति—प्रौढ़ावस्थामें उसे देखनेवालोंने लिखा है: अकबरका शरीर मझोले कदका (शायद ५ फुट ७ इंच) का था। उसका ढाँचा बहुत मजबूत, न पतला-दुबला न मोटा था। छाती चौड़ी, कमर पतला और बाहें लम्बी (दीर्घबाहु) थीं। बचपन हीसे अधिक घुड़सवारी करनेके कारण उसके पैर पीछेकी ओर थोड़े मुड़े हुए थे। चलते वक्त बाँयें पैरको जरा सा घसीटकर चलता मालूम होता, जिससे लँगड़ानेका सन्देह होता था, पर पैर बिल्कुल ठीक थे। उसका सिर दाहिनी ओर जरा सा झुका रहता था। अकबरकी पेशानी खुली और चौड़ी थी। नाक कुछ छोटी थी। नथुने, क्रोध सा प्रकट करते हुए कुछ फूले हुए थे। नाकके बीचमें हड्डी कुछ उठी हुई थी। बाँयें नथुने और ओंठके बीचमें मटर भरका एक मस्सा था। उसकी भौंहें पतली काली थीं। छोटी चमकीली आँखोंकी आकृति मंगोल रक्तका परिचय देती

दे दे, इसका भी पूरा ध्यान दिया जाता। पर, वह सभी व्यंजनोंका रस लेना पसन्द नहीं करता था। मांससे उसकी रुचि नहीं थी। अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें उसने उसे बिल्कुल ही छोड़ दिया था। वह स्वयं कहता था—"बचपनसे ही जब भी मेरेलिए मांस पकता, मैं उसे नीरस पाता, उसे पसन्द नहीं करता। मैंने अपने इस भावको प्राणि-रक्षाकी आवश्यकता की ओर प्रेरणा समझा और मांसभोजनसे परहेज करने लगा।" वह कहा करता था—"आदमीकेलिए ठीक नहीं है, कि वह अपने पेटको प्राणियोंकी कब्र बनावे।" उसने मांसको बिल्कुल ही क्यों नहीं त्याग दिया, इसकेलिये कहता था—"मैं अपने लिए इसे बिल्कुल त्याज्य इसीलिये नहीं करता, कि दूसरे भी बहुतसे इसका अनुसरण करके झंझटमें पड़ेंगे।"

अकबरको फल बहुत पसन्द थे। अंगूर, अनार, तरबूज उसके अत्यन्त प्रिय फल थे और इन्हें किसी समय भी खाता रहता था। उसके खानेकेलिए देश-विदेशसे तरह-तरहके फल आते थे।

(५) मद्य-पान—अकबरके वंशमें पियक्कड़ी स्वाभाविक बात थी। कभी-कभी वह खतरनाक रूप भी ले लेती, यह सूरतकी घटनासे मालूम है, जबकि वह स्वयं अपनी निर्भयता दिखानेकेलिए तलवारकी नोकपर छाती मारनेकेलिए तैयार हो गया और बचानेका प्रयत्न करनेकेलिये बेचारे मानसिंहको गला घोंट कर मार देना चाहता था। लेकिन, प्रौढ़ावस्थामें उसने इस तरहकी पियक्कड़ी छोड़ दी। वह देशी, नहीं देशी शराबको ज्यादा पसन्द करता था। १५८० ई०में उसे ताड़ी पसन्द आई और वह उसे पीने लगा। फिर अफीमका माजून भी सेवन करने लगा। कभी-कभी जब लोग शास्त्रार्थमें लगे रहते, तो वह पिनकमें सो जाता। मोनसेरतने यह भी लिखा है—अकबर शायद ही कभी शराब पीता, उसे अफीम ज्यादा पसन्द है।

शायद भारतमें अकबर पहला राजा था, जिसने तम्बाकू पिया। पोर्तुगीज अपने साथ तम्बाकू गोआ लाये थे। असदवेगने लिखा है—

"बीजापुरमें मुझे तम्बाकू मिला। हिन्दुस्तानमें ऐसी चीज कभी नहीं देखी थी, इसलिए मैंने उसे ले लिया और एक जड़ाऊ सुन्दर हुक्का तैयार किया। तीन हाथ लम्बा आबीनका सबसे बढ़िया नैचा था। सुखा कर उसे रँगवाया, फिर उसके दोनों छोरोंपर नग जड़वाये। एक अण्डाकार येमनी सुन्दर मूँगेको मैंने मुँहाली बना उसमें लगा दिया। देखनेमें बहुत सुन्दर था। आगकेलिये एक सुनहली चिलम भी तैयार की। बीजापुरके सुल्तान आदिल खाँने मुझे एक बड़ा ही सुन्दर पनबट्टा दिया था। उसे मैंने बढ़िया तम्बाकूसे भर लिया। तम्बाकू ऐसा था, कि जरा-सी आग लग जाने, तो बराबर चलता रहता। सबको मैंने एक चाँदीकी तश्तरीमें अच्छी तरह सजाया।...हुजूर (अकबर) मेरी भेंटको स्वीकार कर बड़े खुश हुए। उन्होंने पूछा, इतने थोड़े समयमें मैंने कैसे इतनी विचित्र चीजोंको जमा कर लिया? हुक्केवाली

(६) शिकार—शिकारका अकबरको बचपन हीसे बहुत शौक था। कमरगह (शिकारजिर्गा)का आयोजन कर जानवरोंको इकट्ठा कर दिया गया। अकबरने चार-पाँच दिन तक खूब शिकार खेला। इसके बाद उसका दिल एकदम उलट गया और पीछे उसने शिकार खेलनेसे हाथ ही हटा लिया। सिकन्दरशाह सूरीकी पराजयके समय उसके यहाँसे मिली धन-सम्पत्तिमें एक शिकारी चीता भी था। बैरम खाँके बहनोई हुसेन कुल्ली खाँ खानेजहाँका बाप वलीबेग जुलकदर चीतेको अकबरके पास ले गया। चीतेका नाम था फतहबाज और चीतावानका दुंदू। दुंदूने चीतेकी चालाकीको इतनी अच्छी तरह दिखलाया, कि अकबर मुग्ध हो गया। उसी दिनसे उसको चीतोंका शौक हो गया। उसके चीतेखानेमें सैकड़ों चीते रहते थे, जो ऐसे सधे हुए थे, कि जरा-सा इशारेपर काम करते थे। इनके बदनपर कमखाब और मखमलकी झूलें पड़ी रहतीं, गलेमें सोनेकी जंजीरें और आँखोंपर जरदोजीके चश्मे लगे रहते। वह बहलोंकी सवारीपर चलते, जिनमें जुतनेवाले बैल भी सजाये रहते—सींगोंपर सुनहली-रुपहली सिंगोटियाँ चढ़ी होतीं, सिरपर जरदोजीका ताज और बदनपर जरीकी झूलें रहतीं।

हाथियोंपर काबू पानेकेलिए अकबरने अनेक बार अपनी जान खतरेमें डाली, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। जंगली हाथियोंके बझानेमें भी उसे बड़ा आनन्द आता था।

(७) विनोद—संगीत और वाद्यका उसको अत्यधिक प्रेम था। पहली ही उमरमें पहुँच कर तानसेनने अकबरके इस शौकको और बढ़ा दिया। उसके पास भारतके एकसे एक बढ़ कर कलावन्त रहते थे। हमारा उत्तरी भारतका संगीत अकबरकी गुण-ग्राहकताका कृतज्ञ है। यह बतला चुके हैं, कि उसे तबले या पखावजके बजानेका अच्छा अभ्यास था।

(८) दिनचर्या—रातमें अकबर शायद ही कभी तीन घंटेसे अधिक सोता। अपराह्णमें थोड़ी देर आराम करके वह विद्वानोंकी सभामें जाता। जब शास्त्रार्थोंका दौर था, तो वह सब धर्मोंके सिद्धान्तों और विशेषताओंको जाननेकी कोशिश करता। घंटे-डेढ़ घंटे बितानेके बाद हाकिमों द्वारा भेजी अर्जियाँ पढ़वा कर सुनता और उचित हुकुम लिखवाता। आधी रातको वह अपनी पूजा-पाठमें लग जाता। तीन घंटे सोनेके बाद भिनसारे ही उठ जाता और शौच-स्नानसे निवृत्त होकर दो घंटे फिर पूजा-पाठमें लग जाता। सूर्योदयके साथ दरबारमें पहुँचता। उससे पहले ही दरबारी और दूसरे वहाँ उपस्थित रहते। उनकी बातें सुनता। गरीब और साधारण आदमियोंके पास खुद उठ कर जाता और उनकी बातें, अर्जियाँ गौरसे सुनता। फिर अस्तबलों, हथिसारों, ऊँटखानों, हरिनखानोंके जानवरोंके पास जाकर उनकी हालत देखता। इसके बाद कारखानों और मिस्त्रीखानोंको देखने जाता। उसे बन्दूक, तोप और दूसरे

नये-नये हथियारोंको देखने हीका नहीं, उन्हें बनानेके ढंगको भी सीखनेका बहुत शौक था। कितनी ही बार वह मिस्त्रियोंकी तरह खुद भी काममें लग जाता।

उसमें इतनी सादगी थी, कि कभी-कभी तख्तके आगे फर्शपर सबके साथ बैठ जाता और बेतकल्लुफीके साथ बातें करता।

(७) अकबरकी सन्तानें—हम पहले बतला चुके हैं, कि अकबरके तीन पुत्र सलीम, मुराद (पहाड़ी) और दानियाल थे। तीन बेटियोंमें खानम सुल्तान सलीमसे छोटी और मुरादसे बड़ी थी, बाकी शुकरुन्निसा और आराम बानू दानियालके बाद पैदा हुई थीं। आराम बानू जीवन भर अविवाहिता रही, यह भी बतला आये हैं।

पोतोंमें खुसरो सबसे बड़ा और तख्तका उत्तराधिकारी समझा जाता था। इसकी माँ शाह बेगम जहाँगीरकी चहेती बीबी, राजा भगवानदासकी लड़की तथा मानसिंहकी चचेरी बहिन थी। अपने पुत्र और पतिके आचरणोंसे तंग आकर किस तरह उसने जहर खा आत्महत्या कर ली, इसे हम बतला चुके हैं। महत्त्वाकांक्षी खुसरोने दादाके समय ही बापसे बिगाड़ पैदा कर लिया था, इसका नतीजा अन्तमें उसके लिए बहुत बुरा हुआ और बाप बेटेके खूनका प्यासा हो गया। खुसरोका सौतेला भाई खुर्रम शाहजहांके नामसे गद्दीपर बैठा।

—०—

अध्याय २५

शासन-व्यवस्था

१. प्रशासनिक-क्षेत्र

शासन-व्यवस्थाकी बहुत-सी बातें अकबरने अपने पहलेके बादशाहों, विशेषकर शेरशाहसे ली थीं। मुसलमान बादशाहोंमें अलाउद्दीन खिलजी कितनी ही बातोंमें अकबरका समकक्ष था, यद्यपि धार्मिक उदारता दिखला कर अपने तख्तको खतरेमें डालना नहीं चाहा। अकबरको पहले हीसे कुछ बातें मिल गई थीं, जिन्हें उसने आगे बढ़ाया। उसका राज्य पहले बारह और अन्तमें पन्द्रह सूबोंमें बँटा था, जो ये—

१. आगरा	९. अवध
२. दिल्ली	१०. इलाहाबाद
३. अजमेर	११. बिहार
४. अहमदाबाद (गुजरात)	१२. बंगाल
५. लाहोर (पंजाब)	१३. बरार
६. काबुल	१४. खानदेश
७. मुल्तान	१५. अहमदनगर
८. मालवा	

जौनपुर शर्की राज्यकी राजधानी था। अकबरके समय जौनपुरकी जगह इलाहाबाद सूबा और राजधानी बना।

हरेक सूबेमें कई सरकारें होती थीं, यही पीछे जिला कही जाने लगीं। एक सरकारमें कई परगने होते थे। सूबा आगरेमें १३ सरकारें और २०३ परगने थे—आगरा सरकारमें ३१ परगने थे और क्षेत्रफल १८६४ वर्गमील। परगने आज भी प्रायः वही हैं, हाँ, कहीं-कहीं सरकारोंकी संख्या बढ़ा दी गई। उदाहरणार्थ सूबा बिहारकी सारन सरकारको अँग्रेजोंके समय तोड़ कर चम्पारन और सारनके दो जिलोंमें विभक्त कर दिया गया। सरकारों और परगनोंके बारेमें हर जिलेके गजेटियरमें सूचना मिलती है। परगनोंमें एक या अधिक महाल होते थे। मालगुजारी करोड़ दाम (ढाई लाख रुपया) होने से उन्हें करोड़ी-महाल भी कहते थे और इन अफसरोंको करोड़ी या

नये-नये हथियारोंको देखने ही का नहीं, उन्हें बनानेके ढंगको भी सीखनेका बहुत शौक था। कितनी ही बार वह मिस्त्रियोंकी तरह खुद भी काममें लग जाता।

उसमें इतनी सादगी थी, कि कभी-कभी तम्बूके आगे फर्शपर सबके साथ बैठ जाता और बेतकल्लुफीके साथ बातें करता।

(७) अकबरकी सन्तानें—हम पहले बतला चुके हैं, कि अकबरके तीन पुत्र सलीम, मुराद (पहाड़ी) और दानियाल थे। तीन बेटियोंमें खानम सुल्तान सलीमसे छोटी और मुरादसे बड़ी थी, बाकी शुकरुन्निसा और आराम बानू दानियालके बाद पैदा हुई थीं। आराम बानू जीवन भर अविवाहिता रही, यह भी बतला आये हैं।

पोतोंमें खुसरो सबसे बड़ा और तख्तका उत्तराधिकारी समझा जाता था। इसकी माँ शाह बेगम जहाँगीरकी चहेती बीबी, राजा भगवानदासकी लड़की तथा मानसिंहकी चचेरी बहिन थी। अपने पुत्र और पतिके आचरणोंसे तंग आकर किस तरह उसने जहर खा आत्महत्या कर ली, इसे हम बतला चुके हैं। महत्वाकांक्षी खुसरो-ने दादाके समय ही बापसे बिगाड़ पैदा कर लिया था, इसका नतीजा अन्तमें उसके-लिए बहुत बुरा हुआ और बाप बेटेके खूनका प्यासा हो गया। खुसरोका छोटा भाई खुर्रम शाहजहाँके नामसे गद्दीपर बैठा।

—०—

अध्याय २५

शासन-व्यवस्था

१. प्रशासनिक-क्षेत्र

शासन-व्यवस्थाकी बहुत-सी बातें अकबरने अपने पहलेके बादशाहों, विशेषकर शेरशाहसे ली थीं। मुसलमान बादशाहोंमें अलाउद्दीन खिलजी कितनी ही बातोंमें अकबरका समकक्ष था, यद्यपि धार्मिक उदारता दिखला कर अपने तख्तको खतरेमें डालना नहीं चाहा। अकबरको पहले हीसे कुछ बातें मिल गई थीं, जिन्हें उसने आगे बढ़ाया। उसका राज्य पहले बारह और अन्तमें पन्द्रह सूबोंमें बँटा था, जो ये—

१. आगरा	९. अवध
२. दिल्ली	१०. इलाहाबाद
३. अजमेर	११. बिहार
४. अहमदाबाद (गुजरात)	१२. बंगाल
५. लाहौर (पंजाब)	१३. बरार
६. काबुल	१४. खानदेश
७. मुल्तान	१५. अहमदनगर
८. मालवा	

जौनपुर शर्की राज्यकी राजधानी था। अकबरके समय जौनपुरकी जगह इलाहाबाद सूबा और राजधानी बना।

हरेक सूबेमें कई सरकारें होती थीं, यही पीछे जिला कही जाने लगीं। एक सरकारमें कई पर्गने होते थे। सूबा आगरेमें १३ सरकारें और २०३ पर्गने थे—आगरा सरकारमें ३१ पर्गने थे और क्षेत्रफल १८६४ वर्गमील। पर्गने आज भी प्रायः वही हैं, हाँ, कहीं-कहीं सरकारोंकी संख्या बढ़ा दी गई। उदाहरणार्थ सूबा बिहारकी सारन सरकारको अँग्रेजोंके समय तोड़ कर चम्पारन और सारनके दो जिलोंमें विभक्त कर दिया गया। सरकारों और पर्गनोंके बारेमें हर जिलेके गजेटियरमें सूचना मिलती है। पर्गनोंमें एक या अधिक महाल होते थे। मालगुजारी करोड़ दाम (ढाई लाख रुपया) होने से उन्हें करोड़ी-महाल भी कहते थे और इन अफसरोंको करोड़ी या

आमिल कहा जाता था । आमिलोंके नाम और उनके अत्याचारोंकी कहावतें वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें भी बूढ़ोंके मुँहपर थीं । हम यह भी बतला चुके हैं, कि करोड़ियों- के अत्याचारोंको दबानेके लिये टोडरमलको कड़ाईसे काम लेना पड़ा ।

२. सरकारी अफसर

अफसरों और मन्सबोंके बारेमें पहले भी जहाँ-तहाँ कुछ उल्लेख हो चुका है, यहाँ भी उन्हें इकट्ठा कर दिया जाता है—

१. सिपहसालार—अकबरकी शासन-व्यवस्था सैनिक थी । जिसका सारा जीवन लड़ाइयोंमें बीता हो, उसके लिये यह स्वाभाविक ही था । हरेक सूबेके शासक या राज्यपालको सिपहसालार (जेनरल या फील्ड-मार्शल) कहा जाता था । उसकी सहायताके लिये दीवान (वित्त-सचिव), २. बख्शी (सैनिक वित्त-सचिव), ३. मीर- अदल (प्रधान-जज), ४. सद्र (धर्मार्थ सचिव), ५. कोतवाल (पुलिस इन्स्पेक्टर जेनरल), ६. मीरबहर (जल-विभाग सचिव) और ७. वाकयानवीस (अभिलेख रक्षक) बादशाहकी ओरसे नियुक्त होते थे । सिपहसालार उन्हें कैसे पसन्द कर सकते थे ? वे तो बादशाहके आदमी होते थे ।

२. फौजदार—सरकार (जिला)के सर्वोच्च अधिकारी (जिला मजिस्ट्रेट)को उस समय फौजदार कहा जाता था । वह सिपहसालारके आदमी और उसीके अधीन थे । सरकारमें शान्ति और व्यवस्था कायम रखना फौजदारका काम था । विद्रोहियों- को दबानेके बाद जो लूटकी सम्पत्ति मिलती, उसका पंचमांश शाही खजानेमें भेजना पड़ता ।

बड़े बड़े शहरोंमें कोतवाल होते थे, जिनके हाथ पुलिस रहती थी । ये मालगुजारी भी वसूल करते थे । कोतवालके हाथमें अपने क्षेत्रका पूरा नियंत्रण होता था । उनके और काम थे—घरों और आदमियोंके नामका रजिस्टर रखना, विदेशियोंकी आने-जानेपर नजर रखना, चीजोंके भावों और नाप-तौलको ठीक रखनेकी ओर ध्यान देना, निस्सन्तान या उत्तराधिकारीविहीन मृत पुरुषोंकी सम्पत्ति- को अपने अधिकारमें लेना, गाय, भैंस, घोड़े, ऊँटके मारनेकी निषेधाज्ञाको भंग न होने देना, इच्छाके विरुद्ध सती न होने देना, १२ वर्षसे कम उमरमें [illegible] [illegible]ना, निषिद्ध दिनोंमें किसी जानवरको न मारने देना, इत्यादि ।

३. केन्द्रीय अधिकारी—शासन सैनिक ढंगका होनेसे, अधिकारियोंके दर्जे (रुतबे, पद) भी उन्हींके अनुसार थे । असैनिक और सैनिक अधिकारी, अधिकारोंमें कोई भेद नहीं था । उदाहरणार्थ टोडरमल कभी वित्त-मंत्री, कभी [illegible] [illegible] यह कर काम करते, कभी वह फील्ड-मार्शल होकर लड़ाईके मैदानमें भी अपना जौहर दिखलाते । सेनापति (सिपहसालार) केवल नामसे नहीं काम- से भी [illegible] होते थे । केन्द्रीय मंत्रियोंकी संख्या और कामकी तरह देना बहुत मुश्किल है । उनमें मुख्य ये थे—

१. वकील—प्रधान-मन्त्री को वकील कहते थे। और भी स्पष्ट करनेके लिये कभी-कभी वकीलकुल (सर्वमन्त्री) भी कहा जाता था। टोडरमलको भी वकीलकुल कहा गया है, अबुलफ़ज़ल भी इस पदसे सम्मानित थे, और कितने ही दूसरे भी।

२. वज़ीर—आजकल वज़ीर मन्त्रीको और वज़ीरेआज़म प्रधान-मन्त्रीको कहा जाता है, लेकिन उस समय वित्त-मन्त्रीको वज़ीर कहा जाता था, जिसे अक्सर दीवान पुकारा जाता था। दीवान सूबेके भी और सारी सल्तनतके भी होते थे, इसलिये उनमें भेद करनेके लिये दीवान-सल्तनत और दीवान-सूबाका शब्द इस्तेमाल किया जाता था।

३. बख्शी—बख्शी असलमें भिक्षुका ही मंगोल रूप है। आज भी मंगोलियामें भिक्षुको इसी नामसे पुकारा जाता है। चिंगीज़के राजकालमें लिखा-पढ़ीका काम पठित होनेके कारण बौद्ध भिक्षुओंने सँभाला था। उसी समयसे बख्शीके पदका आरम्भ हुआ। भारतमें इसके मूल इतिहासका पता नहीं रह गया। शायद बाबरके साथ ही यह पद भारतमें आया। बाबर और उसके पूर्वज तेमूर चिंगीजी राजनीतिक व्यवस्थाके जबर्दस्त पक्षपाती थे, यह हमें मालूम ही है। अकबरके समय बख्शी सैनिक वित्त-मन्त्रीको कहते थे। सूबोंके बख्शी हुआ करते थे, और सल्तनतके भी। यह दर्जा बहुत ऊँचा तथा मन्त्रियोंके बराबरका था। सलीमका पल्ला भारी करनेवाला बख्शी शेख फ़रीद (मुर्तज़ाखान) सल्तनत का बख्शी था। बख्शी सेनाकेलिये रँगरूट भर्ती करता, उसका रजिस्टर रखता। सभी मन्सबदारों के नाम उसके पास लिखे रहते। महलके गारदकी नामावली भी उसीके हाथमें रहती। वेतनका बाँटना, हिसाब-किताब रखना उसीके जिम्मे था। वह सेनपों और सेना-पंक्तियोंके स्थान निश्चित करता और आवश्यकता पड़नेपर स्वयं सेनापतिका काम करता।

४. सद्र—सारी सल्तनतके धर्माध्यक्षको सद्र या सदरस्सुदूर (सदरोंका सदर) कहा जाता था। यह धर्म और धर्मादा-विभागका सर्वोच्च अधिकारी था। १५८२ ई॰में अकबरने इस पदके महत्त्वको खतम कर दिया। सदर पहले इस्लामके नामपर सल्तनतमें सफ़ेदको स्याह, स्याहको सफ़ेद जो भी चाहता, कर डालता था।

३. मन्सब

मन्सब (पद) चिंगीज़के समय या उससे पहलेसे चले आते थे। चिंगीज़की सेना दशिक, शतिक, साहस्रिक और दससाहस्रिक (तुमान)में बँटी हुई थी। अकबरके समय शाहज़ादोंको छोड़कर किसीको पंजहज़ारीसे ऊपरका मन्सब नहीं दिया जाता था, अपवाद सिर्फ़ राजा मानसिंहकेलिए किया गया, जिन्हें अकबरने हफ़्त (सात)-हज़ारीका मन्सब प्रदान किया था। हम पहले बतला चुके हैं, कि अकबरने सलीमको दावज़्दह (बारह)हज़ारी, मुरादको दह-हज़ारी और दानियालको हफ़्त-हज़ारीका मन्सब दिया था। मन्सब (पद) सैनिक थे, इसलिए हरेक मन्सबदारको निश्चित संख्यामें

घोड़े, हाथी, ढोनेवाले जानवर, सिपाही रखने पड़ते थे। मन्सबकी पहली, दूसरी, तीसरी श्रेणीके अनुसार उन्हें वेतन मिलता था। "आईन अकबरी" में उसे निम्न प्रकार लिखा है—

मन्सब	घोड़े	हाथी	भारवाहन	मासिक वेतन (रुपया)		
				प्रथम	द्वितीय	तृतीय
दहबाशी दहिक	४	०	०	१००	८०	७५
बीस्ती (२०)	५	१	२	१३५	१२५	११५
दोबीस्ती (४०)	७	१	३	२२१	२००	१८५
पंजाही (५०)	८	२	४	२५०	२४०	२३०
सेहबीस्ती (६०)	८	२	४	३०१	२८५	२७०
चहारबीस्ती (८०)	९	३	५	४१०	३८०	३५०
यूजबाशी (शतिक)	१०	३	७	७००	६००	५००
पंजसदी	३०	१२	२७	२५००	२३००	२१००
हजारी	६४	३१	६७	८२००	८१००	८०००
पंजहजारी	३४०	१००	२६०	३००००	२९०००	२८०००

घोड़ों और हाथियोंकी अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। घोड़े इराकी, मजनिसी, तुर्की, याबू, ताजी और जंगली छ श्रेणियोंमें विभक्त थे। सवारोंकी तनखाह घोड़ोंकी श्रेणीके अनुसार होती थी : इराकीको ३० रुपया, मजनिसीको २५ रुपया, तुर्कीको २० रुपया, याबूको १८ रुपया, ताजीको १५ रुपया, जंगलवाले सवारको ११ रुपया मासिक मिलता था। हाथियोंकी भी पाँच श्रेणियाँ थीं। भारवाहन तीन प्रकारके होते थे—ऊँट, खच्चर और बैलगाड़ी। प्यादे सैनिकोंकी तनखाहें साढ़े ११, १० और ८ रुपये महीने थी। सवारोंमें ईरानी-तूरानी जवानोंको २५ रुपये मिलते थे, जबकि हिन्दी सिपाही २० रुपया पाते थे, खालसा सैनिकका वेतन १५ रुपया था। मन्सबदारोंके कुल भेद ६६ थे। बाकायदा सेनाके अतिरिक्त सहायक सैनिक होते थे। दागदार कहे जाने वाले दागी घोड़ेवाले मन्सबदारोंकी इज्जत ज्यादा थी। सभी मन्सबदारोंको बादशाहको मुजरा करते समय नजर भेंट करनी पड़ती थी, जो निम्न प्रकार थी—

१. साधारण लोग	१ दाम (ढाई नयापैसा)
२. मध्यम श्रेणीके	१ रुपया
३. तर्कशबन्दसे दहबाशी तक	४ ,,
४. दोबीसीसे दोसदी तक	१ अशर्फी (=९ रुपया)
५. दोसदीसे पाँच सदी तक	२ ,,
६. पाँच सदीसे हजारी तक	४ ,,
७. हजारीसे पंजहजारी तक	१० ,,

४. भूकर

राज्यकी आयके लिए और भी कर थे, पर सबसे अधिक आमदनी भू-करसे हुआ करती थी। जजिया और तीर्थ-कर अकबरने उठा दिये थे, इसे हम बतला चुके हैं। अकबरकी मृत्यु और जहाँगीरके गद्दीपर बैठनेवाले साल (१६०५ ई०)में सल्तनतकी आमदनी १७ करोड़ ४५ लाख दाम अर्थात् ४ करोड़ सवा ३६ लाख रुपया थी।

अकबरी रुपयेका सामग्रीके रूपमें मूल्य निम्न तालिकासे मालूम होगा। (अकबरी मन साढ़े ५५ पौंड = २६ सेरका होता था, आजकलका मन ८२ पौंडका है। अकबरी सेर आजके सेरका दो-तिहाई अथवा १०॥ छटाँकका था।)

खाद्य	मूल्य प्रति अकबरी मन		आजके प्रति मनसे मूल्य
	दाम	रुपया	
गेहूँ	१२ दाम	४·८ आना	७·५ आना
जौ	८ ,,	३·२ ,,	४·८ ,,
चावल (बढ़िया)	११० ,,	२ रु० १२ आ०	४ रु० २ आ०
,, (घटिया)	२० ,,	४ ,,	१२ ,,
मूँग	१८ ,,	७·२ ,,	११·४ आ०
उड़द	१६ ,,	६·४ ,,	६·६ ,,
मोठ	१२ ,,	४·४ ,,	६·६ ,,
चना	१६॥ ,,	६·६ ,,	६·६ ,,
ज्वार	१० ,,	४ ,,	६ आ०
चीनी	१२८ ,,	३ रु० १·२ ,,	४ रु० १२·८ ,,
खाँड	५६ ,,	१ ,, ६·४ ,,	१ ,, १५·६ ,,
घी	१०५ ,,	२ ,, १० ,,	३ ,, १५·५ ,,
तिल-तेल	८० ,,	२ ,,	३ ,,
नमक	१६ ,,	६·४ ,,	६·६ ,,

हमारा मन अकबरीका प्रायः ड्योढ़ा १$\frac{२}{६४}$, या १·४७ मन अथवा ५६·१८ सेर है, इसे आजकल (अगस्त १६५६ ई०)के भावोंसे प्रतिमन मिलाइये—

खाद्य वस्तु	अकबरके समय	अगस्त १९५६	वृद्धि गुना (बार)
गेहूँ	०७'५ दा०	१६ रु० ८ आ०	४० ”
चावल बढ़िया	४ द० २ ”	५० ”	१२ ”
” घटिया	०१२	१० ”	४० ”
मूंग	०११'४	२५ ”	३६ ”
उड़द	०६'६ ”	१२ ”	५५ ”
माठ	०६'६ ”	२५ ”	६६ ”
चना	०६'६ ”	१५ ”	२५ ”
चीनी	४ द० १२'८	३५ ”	७ ”
घी	२ ,, १५'५	२०० ”	२१५ ”
तिल-तेल	२ ,,	१२० ”	४० ”
नमक	०६'६	१० ”	१७ ”

इससे मालूम होगा, कि अकबरके जमानेसे आज चीजोंका भाव कितना बढ़ गया है, अर्थात् रुपये की खरीदनेकी ताकत कितनी कम हो गई है। दूसरी मास वस्तुओंमें भेड़-बकरीका मांस आजके सेरसे पौनेचार पैसा प्रतिसेर बिकता था, जबकि आजकल वह डेढ़से ढाई रुपया सेर तक बिकता है। दूध प्रायः डेढ़ पैसा सेर बिकता था, जबकि आज वह आठ आनासे १ रुपया प्रतिसेर है।

मामूली मजूरी प्रतिदिन २ दाम (प्रायः सवा ३ पैसा) थी, और कारीगरकी ७ दाम (प्रायः १० पैसा)। इस हिसाबसे सिपाहियों और सैनिक अफसरोंका वेतन काफी था। उसके मुकाबिलेमें मजूर और कारीगर कम मजूरी पाते थे। तो भी मजूर अपनी रोजकी मजूरीसे ५ सेर गेहूँ खरीद सकता था। एक दिनकी मजूरीसे ज्वार ८ सेर मिल सकती थी। जौ तो वह ७ सेर पा सकता था। कारीगर एक दिनकी मजूरीसे २५ सेर जौ खरीद सकता था।

५. सिक्के

अकबरके सिक्के ताँबे, चाँदी, सोने तीन प्रकारके थे। चाँदीके सिक्कोंको किसी जमानेमें तका कहते थे, लेकिन शेरशाहने ही दो तंकोंको मिलाकर रुपया बना दिया, वही रुपया अकबरके समयमें भी चलता था। इसमें १७२'५ ग्रेन चाँदी होती थी। हमारे यहाँ अभी हालमें जो रुपया चलता था, उसमें १८० ग्रेन चाँदी होती थी, अर्थात् दोनों रुपये करीब-करीब बराबर थे। रुपयेमें ४० दाम होते थे। शेरशाहका एक दाम ३२३'५ ग्रेनका होता था, वही अकबरके दामका भी वजन था। एक रुपयेमें ४० दाम, या २० डबल दाम होते थे। दामको काल्पनिक तौरसे २५ जीतलों में बाँटा गया था, लेकिन उसका कोई सिक्का नहीं था। इस प्रकार सिक्के निम्न प्रकार के थे—

२५ चीतल	= १ दाम
४० दाम या २० डबल दाम	= १ रुपया
६ रुपया	= १ मुहर (अशर्फी)

अकबरी मुहर शुद्ध सोनेकी होती थी, जिसका वजन १७० ग्रेन या १ तोलेसे कुछ कम (११·२ माशा) होता था। साढे ६ रुपया तोला सोना होना बतलाता है, कि चाँदीका मूल्य उस वक्त अधिक था। अकबरके सिक्कोंकी उसके पहलेके सिक्कोंसे तुलना निम्न प्रकारकी जा सकती है—

राजा या राजवंश (काल)	लिपि	लांछन	सोना (ग्रेन)	चाँदी (ग्रेन)	ताँबा (ग्रेन)
१. मौर्य (ई०पू० ४-३ सदी)	०	चिह्न	०	५४,५६,५७,१४४,१४६	
२. कुषाण (१-२ सदी ई०)	ब्राह्मी, ग्रीक	रूप	१२४	३२,६४	
३. गुप्त (४-५ सदी ई०)	ब्राह्मी	"	११६,१२४,१४६	३२	
४. मुस्लिम (१३-१५ ई०)	अरबी	०		५६	५६
५. शेरशाह (१५४०-४५ई०)	"	०	०	१७८	३३०
६. अकबर (१५५६-१६०५ ई०)	अरबी, नस्तालीक	०	१७०	"	"

टकसालें—हमारे यहाँ पुराने चाँदीके सिक्केको टका कहते थे, इसी कारण टंका बनानेवाले स्थानका नाम टंकशाल या टकशाल पड़ा। शेरशाहके समयमें टंकाका नाम हमारे देशसे उठ गया, लेकिन बंगाल और उड़ीसामें आज भी रुपयेको टका कहते हैं। हिन्दी-भाषी पूर्वी क्षेत्रमें टका दो पैसेको कहते थे। तिब्बत और मध्य-एसियामें हाल तक चाँदीके सिक्कोंको तंका कहा जाता रहा है। अकबरने १५७७ ई०के अन्तमें पहलेसे चली आती टकसाल-व्यवस्थाको नये तौरसे संगठित किया। सिक्कोंपर अंकित करनेकेलिये ख्वाजा अब्दुस्समद जैसे मशहूर सुलेखकसे अक्षर बनवाये। अब्दुस्समदको अपने सुन्दर अक्षरोंके कारण "शीरींकलम (मधुलेखनी)" की उपाधि दी गई थी। नये संगठनके अनुसार टकसालोंकी जिम्मेवारी चौधरियोंसे लेकर प्रादेशिक सिपहसालारों (राज्यपालों)को दे दी गई, जैसे—

१. टाँडा या गौड़ (बंगाल)	टोडरमल
२. लाहौर	मुजफ्फर खाँ
३. जौनपुर	ख्वाजा शाहमंसूर
४. अहमदाबाद (गुजरात)	ख्वाजा इमादुद्दीन हुसेन
५. पटना	शायस्ता खाँ

चौकोर सिक्के मीर-बख्शी प्रमुख और प्रभावके कारण

उठ गये, इसके बाद सिक्के गोल बनने लगे। अकबरने कुछ चौकोर और छकोर-
वाले सिक्के भी चलाये। पहले हिन्दुस्तानमें सभी सिक्कोंपर टेढ़ी-मेढ़ी अरबी लिपि
हुआ करती थी। शेरशाहके सिक्कोंमें भी अरबी लिपिको ही रक्खा गया था। तैमूर-
के शासनकालमें अरबी लिपिमें सुधार होकर अत्यन्त सुन्दर नस्तालीक़ लिपिका
आविष्कार हुआ, जो बाबरके साथ भारत आई। सिक्कोंपर इसका उपयोग पहले-
पहल अकबरने ही किया। वैसे अरबी लिपि वाले सिक्के भी अकबरके मिलते हैं।
अकबरके हरेक सिक्केपर टकसालका संकेत रहता है। अबुलफजलने अकबरके २६
प्रकार सिक्कोंका उल्लेख किया है। जिन सिक्कोंपर "अल्लाहु अकबर" और "जल्ल
जलालहु" अंकित रहता, उसे जलाली कहते थे। यह बतला चुके हैं, कि मालगुजारी-
की गिनती रुपयेमें नहीं बल्कि दाममें होती थी, जिसका अभिप्राय शायद यही था, कि
संख्या ४० गुनी बढ़ा दी जाये और लाखके स्थानपर करोड़ कहा जा सके।

—०—

अध्याय २६

कला और साहित्य

गुप्तोंके बाद अकबरके समय ही कला और साहित्य अर्थात् हमारा सांस्कृतिक जीवन उच्चतम स्तरपर पहुँचा; जो बतलाता है, कि अकबरके कालमें राष्ट्रकी चेतना मुक्त जगी।

१. वास्तुकला

अकबरके समयकी इमारतें सीकरीमें अब भी देखी जा सकती हैं। इन इमारतोंके बारेमें हम पहले बतला चुके हैं।* आगरे और इलाहाबादके किले भी अकबरकी कृतियाँ हैं। अकबरकी वास्तुशैलीमें हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्यका सम्मिश्रण है। पहलेपहल अकबरने ही हिन्दू शैलीको दिल खोल कर अपनानेकी कोशिश की। सीकरी की मस्जिदका "बुलन्द दरवाजा" अकबरी इमारतोंका एक बहुत सुन्दर नमूना है। वहाँके दीवानखास, बीरबलका महल, जोधबाईका महल भी अत्यन्त दर्शनीय हैं। ये इमारतें १५७१-८५ ई०के बीचमें बनी थीं। नगरचैन इससे पहले ही बन चुका था, लेकिन उसका अवशेष एकाध मस्जिदोंके सिवा और कुछ नहीं रह गया है। दिल्लीमें हुमायूँका मकबरा अकबरी इमारतका एक बहुत सुन्दर नमूना है, जो १५६६ ई०के करीब बन कर समाप्त हुआ। इसके निर्माणपर समरकन्दमें तेमूरकी कब्र और उसके बनवाये बीबीखानम् (निर्माण १४०३ ई०)का प्रभाव है। सीकरीमें शेख सलीम चिश्तीकी समाधिको यद्यपि अकबरने बनवाया, लेकिन उसमें बहुत-सा परिवर्तन जहाँगीरने किया था। हुमायूँके मकबरेके नमूनेपर ही अब्दुर्रहीम खानखानाका मकबरा उससे थोड़ी ही दूर हट कर बना, जो जहाँगीरके समयकी इमारत है। मानसिंहने वृन्दावनमें गोविन्ददेवका मन्दिर बनवाया, जो कभी पूरा नहीं हो सका। इसे अकबरी कालकी शुद्ध हिन्दू वास्तुकला कहना चाहिये।

अजमेरमें भी अकबरने कई इमारतें बनवाईं, और वहाँके तारागढ़के किलेमें बहुत से परिवर्तन कराये। अटकमें अकबरने किलेकी बुनियाद अपने हाथों हि० ९९० (१५८२ ई०) में रक्खी। इनके अतिरिक्त अकबरने बहुतसे तालाब और सरायें

*अध्याय ५

बनवाईं। अकबरके डेरे और शामियाने भी चलती-फिरती वास्तुकलाके बहुत सुन्दर नमूने होते थे। जिन तम्बुओंमें वह खुद ठहरता था, उसे बारगाह कहते थे। इसमें ४८ हाथ लम्बे, २८ हाथ चौड़े ५४ कमरे होते थे। जिनमें दस हजार आदमी बैठ सकते थे। सारा सामान पहले ही से तैयार रहता था और हजार फर्राश एक घंटेके भीतर उसे खड़ा कर देते थे। दूसरे अमीरों और जेनरलोंके भी अपने-अपने भव्य खेमे होते थे। बेगमोंकी अलग चलती-फिरती हरमसरा (अन्तःपुर) रहती थी, जिसे सजानेमें बहुमूल्य कपड़े और कालीन इस्तेमाल किये जाते थे। आरामगाह मंजिल, जमीनदोज (भुइँघरा) अजायबी, मंडल, अठखम्भा, खरगाह, सरापर्दागुलीन, दौलतखाना खास कलन्दरी, दीवानखाना आम, नक्कारखाना आदि कितनी ही चलती-फिरती इमारतें होती थीं। बीचमें एक आकाशदीया भी खड़ा किया जाता था। पाखानेको सेहतखाना कहते थे। यह अस्थायी या चलती-फिरती इमारतें अत्यन्त सुन्दर होती थीं।

२. चित्रकला

अब्दुस्समद, दसवन्त, फर्रुखबेग जैसे कुछ ही चित्रकारोंके नाम हमारे पास तक पहुँचे हैं। अकबर चित्रकलाका बहुत प्रेमी था। उसे अक्षर पढ़ानेकी बहुत कोशिश की गई, लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई; पर, रेखा खींचनेमें उसे कुछ विशेष आनन्द आता था, जिसे उसने अपने सुलेखक उस्ताद ख्वाजा अब्दुस्समदसे सीखा था। पर, इसका यह अर्थ नहीं, कि वह चित्रकार था। चित्रके साथ उसका बहुत प्रेम था, जिसे बापकी बराबरीमें जहाँगीरने भी पाया था। दसवन्त पालकी ढोनेवाले एक कहारका पुत्र था। खाली समयमें वह दीवार या जहाँ-कहीं भी चित्र बनाता रहता था। संयोगसे एक दिन इन चित्रोंपर अकबरकी नजर पड़ गई। प्रतिभाका पारखी और कदरदान तो था ही, उसने ख्वाजा अब्दुस्समदके पास उसे चित्र-विद्या सीखनेके लिये बैठा दिया। थोड़े ही दिनोंमें वह अकबरका सर्वश्रेष्ठ चित्रकार बन कर चीनी और ईरानी चित्रकारोंका मुकाबला करने लगा। अफसोस यह चित्रकार बहुत दिनों तक अपने जौहर को नहीं दिखा सका। वह पागल हो गया और एक दिन कटार मार कर मर गया। अबुलफजलने "आईन अकबरी" में दसवन्तका उल्लेख किया है। यह दूसरा महान चित्रकार था, जो काबुलसे १५८४ ई०में दरबारमें आया था। अकबरके समयके बनाये हुये चित्र दुनियामें जगह-जगह बिखरे हुये हैं, उनके देखनेसे शायद कुछ और चित्रकारोंका पता लग जाये।

चित्रकारोंके अतिरिक्त बहुतसे सुलेखक अकबरके दरबारमें रहते थे। खतके [illegible] स्थान अब नस्तालीकने ले लिया था। सुलेखक इसी लिपिमें पुस्तकें लिखा करते थे। [illegible] मुहम्मद हुसैनको "जर्री कलम" (सुनहरी लेखनी) कहा जाता था। ख्वाजा अब्दुस्समद "शीरीं कलम" (मधुर-लेखनी) थे, यह पहले कह चुके हैं।

३. संगीत

संगीतका अकबरको बहुत शौक था, और आरम्भिक कालमें ही तानसेनकी कीर्ति सुनकर उसने बघेला राजा रामचन्द्रके दरबारसे इस महान् कलाकारको अपने पास बुलवा लिया, और वह अन्तिम जीवन तक अकबरके दरबारमें रहा। तानसेनके अतिरिक्त और भी कितने ही मशहूर कलावन्त अकबरके पास रहते थे। मंभू कौवाल सूफियोंकी बाणीको बड़े सुन्दर ढंगसे गाता था। मंभूके गानेसे एक बार अकबर इतना प्रसन्न हुआ, कि उसने तानसेन और दूसरे कलावन्तोंको बुला कर उसके गीत सुनवाये। फिर उसने अनूप तलाव को दिखला कर कहा : जा इसे तू उठा ले जा। मंभू बेचारेसे यह रुपये कहाँ उठनेवाले थे। उसने प्रार्थना की, कि दाससे जितना उठ सके, उतना ही उठानेकी आज्ञा मिले। मंभू एक हजार रुपये उठा कर ले गया। अनूप तलावमें १६ लाखसे ऊपर रुपये अकबरने भरवा दिये थे, यह हम बतला चुके हैं।

४. साहित्य

सूर और तुलसी अकबरके कालमें पैदा हुए, यद्यपि इन दोनों महाकवियोंने दरबार का कभी आश्रय नहीं लिया। रहीम तुलसीदासके परिचित और मित्र थे, पर अकबर तक तुलसीदासकी कीर्ति क्यों नहीं पहुँची, यह समझमें नहीं आता। गोस्वामीजी अकबरके समवयस्क से थे, और अकबरके मरनेके चौथाई शताब्दी बाद तक जीते रहे। उनके लिये अकबरी दरबारको श्रेय नहीं दिया जा सकता, लेकिन अकबरी युगके भारतकी वह महान् उपज थे, इसे स्वीकार करनेसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। कहा जाता है, अकबरका पुत्र दानियाल हिन्दीमें कविता करता था, लेकिन उसकी कविताका कोई नमूना हमारे पास नहीं है। अकबरी दरबारके रहीम ही ऐसे रत्न हैं, जो हिन्दीके महान् कवि माने जाते हैं। उनकी कविताके कुछ नमूने हम पहले दे चुके हैं। अकबर भी कभी हिन्दी दोहरे बोलता था, लेकिन प्रामाणिक तौर से उसका कोई संग्रह नहीं है। अकबरकी सरपरस्तीमें जो साहित्य मौलिक या अनुवादके रूपमें निर्मित हुआ, उसके बारेमें कहनेसे पहले हम एक और बात बतलाना चाहते हैं। पुस्तकें टाइपवाले प्रेसमें छापी जा सकती हैं यह अकबरको मालूम था। पोर्तुगीज पादरियोंने बाइबिलकी सुन्दर छपी हुई पुस्तक अकबर को भेंट दी थी। गोआ में टाइपवाला प्रेस कायम हो गया था; और उसमें पुस्तकें छपा करती थी। इन टाइपोंको देखकर अरबी या हिन्दी टाइपोंका ढालना मुश्किल नहीं था, लेकिन उस समय मुद्रणकलाकी हमारे यहाँ कदर नहीं थी। सुलेखकोंकी लिखी पुस्तकोंको ज्यादा सम्मान दिया जाता था। प्रेसके न अपनानेका यह कारण नहीं था, कि मुद्रणकलाके अपनानेसे वह बेकार हो जायेंगे। शिक्षा सार्वजनीन होती, तो प्रेसका महत्व जरूर मालूम होता, पर अभी उस समयके आनेमें बहुत देर थी।

अकबरकी सरपरस्तीमें लिखी गई फैजी, अबुलफजलकी कृतियाँ मौलिक और

हाल, उसके जमा-खर्चका हाल, हरेक कामके कायदा-कानून, साम्राज्यके हरेक सूबेका हाल, उसकी सीमा, क्षेत्रफल इसमें लिखे हैं। पहले हर जगहके ऐतिहासिक हाल, फिर वहाँका आय-व्यय, प्राकृतिक और शैलिक उपज आदि-आदि, वहाँके प्रसिद्ध स्थान, प्रसिद्ध नदियाँ, नहरें, नाले, उनके उद्गम-स्रोत, कहाँसे निकले, कहाँसे गये, क्या लाभ देते, कहाँ-कहाँ खतरा है और कब उनसे नुकसान पहुँचा, आदि-आदि। सेना और सेना-प्रबन्ध अमीरोंकी सूची, उनके दर्जे, नौकरोंके भेद, दरबारी, विद्वानोंकी सूची, आलिम और गुनी, संगीतकार, पेशेवर, महात्मा-साधु, तपस्या करनेवाले एवं मजारों और मन्दिरोंका विवरण, उनकी सूची, हिन्दुस्तानकी अपनी विशेष चीजों, हिन्दियोंके धर्म, विद्या और कितनी ही और बातें इस पुस्तकमें दी हुई हैं। "आईन अकबरी" की भाषा अलङ्कारिक और बहुत कृत्रिम है। लेकिन, इसका दोष अबुलफ़जलको नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उसी भाषाको तत्कालीन विद्वान् पसन्द करते थे।

२. कश्कोल—साधुओं-फकीरोंके भिक्षापात्र, या दरियाई नारियलके खप्परको कश्कोल कहते हैं। रोटी, दाल, सूखा-बासी, मीठा-नमकीन जो भी खानेकी चीज भिक्षामें मिलती है, उसे वह अपने कश्कोलमें डाल लेते हैं। अबुलफ़जलकी यह कृति कश्कोलकी तरह ही है। इसमें उन्होंने किताबोंके पढ़ते वक्त जो-जो बातें पसन्द आईं, उन्हें जमा कर लिया। फारसीमें इस तरहके कश्कोल पहले भी लिखे जा चुके थे, उन्हींकी तरह अबुलफ़जलने अपने कश्कोलको तैयार किया।

४. किताबुल्-अहादीस—हदीस पैगम्बर मुहम्मदकी सूक्तिको कहते हैं। यह पैगम्बर-सूक्तियोंकी पुस्तक है, जिसे लिखकर मुल्ला बदायूँनीने हिजरी ६८६ (१५७८-७६ ई०)में अकबरको भेंट किया। शायद इसे उन्होंने नौकरी शुरू करने (६७६ हिजरी)से पहले लिखा था।

५. खैरुलबयान—इसका अर्थ सुकथा है। इसे कवि पीर रोशनाईने लिखा, जिन्हें पीर तारीकी (अन्धकार गुरु) भी कहते हैं। मुल्ला बदायूँनीके अनुसार "इन्होंने अफ़गानोंमें जाकर बहुतसे बेवकूफोंको चेला मूँड़ा एवं अपनी बेदीनी और बदमज़हबीको रौनक दी।"

६. जामेअ-रशीदी—इतिहासका यह एक बड़ा ग्रंथ था, जिसे संक्षिप्त करके लिखनेकेलिये अकबरने मुल्ला बदायूँनीको कहा। इसमें हजरत आदमसे उमैया, अब्बासी, मिस्री खलीफों तककी बातें लिखी हुई हैं।

७. जोतिश—इस फलित ज्योतिष पुस्तकको अब्दुर्रहीम खानखानाने मसनवी (कथा)के रूपमें पद्यबद्ध लिखा था। हरेक पद्यमें एक चरण फारसीका और एक चरण संस्कृतका है।

८. तबकात-अकबरशाही—इसे "तबकात अकबरी" और "तारीखनिज़ामी"

भी कहते हैं। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद (मृत्यु लाहौर अक्तूबर १५६४)ने इस महत्वपूर्ण इतिहासग्रन्थमें अकबरके ३६ वें सनजलूस (१५६३-६४ ई०)तकका हाल लिखा है। बदायूँनीने अपने इतिहासको चुपचाप लिखते समय इससे बहुत लाभ उठाया।

६. तारीख-अलफी—अलिफ अरबीमें हजारको कहते हैं। हिजरी सन्‌का हजारवाँ साल १६ अक्तूबर १५६१ से ८ सितम्बर में पूरा हुआ था। इसी शताब्दीके उपलक्षमें अकबरने हिजरी सन्‌के आरम्भसे लेकर हजार सालोंका इतिहास लिखवाया। निजामुद्दीन अहमद तथा दूसरे विद्वानोंने इसके अलग-अलग भागोंको लिखा। तीन भागोंमेंसे दोको अहमदने और तीसरेको आसिफ खाँने लिखा। दोहरानेका काम मुल्ला बदायूँनीको दिया गया।

१०. नजातुर्-रशीद—इसे हिजरी ६६६ (१५६०-६१ ई०)में इतिहासकार ख्वाजा निजामुद्दीन अहमदकी फरमाइश पर मुल्ला बदायूँनीने लिखा। अहमद खुद बड़ा इतिहासकार और सल्तनतका बख्शी (सेना वित्त-मन्त्री) भी था। वह दूसरोंको भी ऐसे कामोंकेलिये प्रोत्साहित करता था।

११. नलदमन—कविराज फैजीका यह मौलिक तथा श्रेष्ठ काव्य है, जिसे उन्होंने अकबरके हुक्मपर नल-दमयन्तीके उपाख्यानको लेकर हिजरी १००३ (१५६४-६५ई०)में चार महीनेमें लिखकर समाप्त किया था। अकबर, फैजी, अबुलफजल *अपनी जन्मभूमिको स्वर्गसे भी बढ़कर मानते थे, उसकी मिट्टीको चूमते थे।* भारतकी हरेक चीज उन्हें प्रिय थी। निजामी, जामी आदि फारसी कवियोंने अपने यहाँके कथानकोंको लेकर महाकाव्य रचे। अकबर चाहता था, कि हमारे देशके कथानक पर भी काव्य लिखे जांय। इसीकेलिये फैजीने यह काव्य रचा।*

१२. मर्कज-अदवार—यह फैजीकी अपूर्ण काव्यकृति है। निजामी, जामी खुसरोकी तरह वह पंज-गंज (पंच रत्न) लिखना चाहते थे, जिसे पूरा नहीं कर सके। छोटे-छोटे पद्योंमें उन्होंने इस मनोहर काव्यको गूथना शुरू किया था। एक जगह वह लिखते हैं—

> मन् खमे-दरिया दिले गरदाब जोश।
> बादये मन् लंगर-ो तूफान होश।

(मैं नदीका टेढ़ापन हूँ, दिल जोशवाला भँवर है। मेरा प्याला लङ्गर है और होश तूफान है।)

फैजीकी और कृतियोंके बारेमें पहले* बतलाया जा चुका है।

१३. मवारिदुल्-कलम—यह भी फैजीकी कृति है, जिसमें उन्होंने अपनी

---

*देखो यही पृष्ठ ७४-६०

"सफ्वीर सवाविउल्-अलहाम" की तरह पर छोटे-छोटे सरल वाक्योंमें शिक्षाप्रद बातें लिखी हैं।

१४. समरतुल्-फिलासफा—दर्शनफल या दर्शनसार नामक यह पुस्तक कासिम-पुत्र अब्दुस्सत्तार द्वारा किसी पोर्तुगीजी ग्रंथका स्वतन्त्र अनुवाद है।

१५. सवातिउल्-अलहाम्—इस कुरान-भाष्यको फैज़ीने हिजरी १००२ (१५९३-९४ ई०)में समाप्त किया। इस किताबसे बड़े-बड़े मुल्लाओंमें उनकी धाक जम गई। पुस्तक लिखते वक्त फैज़ीने प्रतिज्ञा की, कि इसमें मैं किसी बिन्दुवाले अक्षर को नहीं इस्तेमाल करूँगा और अरबी लिपिमें आधे के करीब अक्षर बिन्दुवाले होते हैं। यह कोई छोटी-मोटी नहीं, बल्कि विशाल पुस्तक है। पुस्तकमें अकबरकी तारीफ के साथ अपनी शिक्षा और बाप-भाइयोंका भी हाल लिखा है। इसे पढ़कर एक बहुत बड़े ज़बर्दस्त अरबी के आलिम मियाँ अमानुल्ला सरहिन्दीने फैज़ीको "अहरारुस्सानी" (द्वितीय अहरार) कहा। ख्वाजा अहरार समरकन्द-बुखाराके एक अद्वितीय विद्वान् थे।

(२) संस्कृत से अनुवाद

१६. अथर्वन वेद—जैसाकि नामसे मालूम है, इसे अथर्ववेद समझकर फारसी में अनुवाद किया गया। दक्खिनके किसी बहावन ब्राह्मणने मुसलमान बननेके बाद इसका उलथा बदायूँनीको बताया, जिन्होंने उसे फारसीमें लिखा है। पहले फैज़ीसे कहा गया था। अथर्वनवेदको "अथर्व संहिता" नहीं समझना चाहिये। अल्लोप-निषद् जैसी मुसलमान प्रभुओंको खुश करनेकेलिए बनाई गई कुछ जाली कृतियोंका यह अनुवाद था, जिसे हिजरी ९८३ (१५७५-७६ ई०)में समाप्त किया गया, अर्थात् उस समय, जबकि अकबरने इस्लामको छोड़ा नहीं था।

१७. ऐयारदानिश—पंचतंत्रका फारसी (पहलवी) अनुवाद, पहिलेपहिल नौशेरवाके समय "अनवारद सुहेली"के नामसे हुआ था। पहलवीसे अरबीमें होकर इसका नाम कलेलादमना" पड़ा, क्योंकि पंचतंत्रके करटक दमनकका रूपान्तर है। अरबीसे इसके फारसीमें कई अनुवाद हुये। अकबरने उनको सुना था। जब उसे मालूम हुआ, कि यह ग्रन्थ मूल संस्कृतमें मौजूद है, तो अबुलफ़ज़लको हुकुम दिया, कि इसे मूलसे फारसीमें अनुवाद करें। अबुलफ़ज़लने हि० ९९६ (१५८७-८८ई०)में अनुवाद कर समाप्त किया। मुल्ला बदायूँनी इसपर व्यंग करते अकबरकेलिये कहते हैं: "इस्लामकी हर बातसे नफरत है, विद्यासे बेज़ार है, भाषा भी पसन्द नहीं। अक्षर (अरबी) भी बुरे हैं। मुल्ला हुसेन वायज़ने 'कलेलादमना' का तर्जुमा अनवार सुहेली कितना अच्छा किया था। अब अबुलफ़ज़लको हुक्म हुआ, कि उसे सरल, साफ, नंगी फारसीमें लिखो, जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा आदि न हों, अरबी शब्द भी न हों।" अगर अकबरको अपने देशकी भाषा और हरेक चीज प्यारी थी, तो मुल्ला बदायूँनीको उनसे उतनी ही चिढ़ थी।

१८. ताजिक—यह किसी संस्कृतकी ज्योतिष किताबका अकबरके हुक्मसे मुकम्मल खाँ गुजराती द्वारा किया गया फारसी अनुवाद है। ताजिक मध्य-एसियाके फारसी-भाषी एक जातिका नाम है। फारसीके लिये भी ताजी शब्द इस्तेमाल होता था। संस्कृतमें भी इस ज्योतिषकी एक ऊँचे दर्जेकी पुस्तक "ताजिकनीलकंठी" है, जिसके कारण बहुतसे लोग ताजिकको फलित-ज्योतिषका पर्याय समझते हैं। शायद यही भाव इस नाममें भी काम कर रहा हो।

१९. खिरदअफ़्ज़ा—"सिंहासन बत्तीसी" के इस फारसी अनुवादको मुल्ला बदायूँनीने हि० ९८२ (१५७४-७५ ई०)में समाप्त किया जिसका अर्थ है बुद्धिवर्द्धन।

२०. तारीख़ कश्मीर—इसे हि० ९९६ (१५८८-८९ ई०)में मुल्ला बदायूँनीने दो महीनेमें लिखकर समाप्त किया। पहले शाह मुहम्मद शाहाबादी (करनौली)को कश्मीरके इतिहास "राजतरंगिणी" को फारसीमें अनुवाद करनेको कहा गया था, लेकिन अकबरको भाषा नहीं पसन्द आई और उसने मुल्ला बदायूँनीको उसे फिरसे ठीक करनेके लिये कहा।

२१. बहरुल्-असमार—इस कथा-पुस्तकको समाप्ति हि० १००४ (१५९५-९६ ई०)में मुल्ला बदायूँनीने की। बहरुल् असमारका अर्थ नामसागर है। नामका अर्थ यहाँ कथा है। क्या सोमदेवकी कृति "कथा-सरित्सागर" का तो यह फारसी अनुवाद नहीं है? काफी बड़ी पुस्तक थी।

२२. महाभारत—बतला चुके हैं, कि फिरदौसीके "शाहनामा" को सुन कर अकबरको "महाभारत" के नामका पता लगा और उसको अनुवादित देखनेकेलिए इतना अधीर हो गया, कि दो दिन स्वयं फारसीमें अनुवाद बोलता रहा। पीछे मुल्ला बदायूँनी और दूसरे विद्वानोंको यह काम सौंपा गया। फैज़ीने अन्तिम रूपसे भाषाका संशोधन किया। अफ़सोस है, इसके दो ही पर्व समाप्त किये जा सके।

२३. रामायण—मुल्ला बदायूँनीने हि० ९९३-९७ (१५८५-८८ ई०)में वाल्मीकि रामायणके इस अनुवादको समाप्त किया। मुल्लाको काफिरोंकी इस पुस्तकके अनुवाद करनेका अफ़सोस था, लिखा है—"मैं खुदासे माफी माँगता हूँ। कुफ्रका उतारना कुफ्र नहीं है। बादशाहके हुक्मसे लिखा है, और गला घोटनेके कारणही। डरता हूँ, कि इसका फल फटकार न मिले।"

२४. लीलावती—भास्कराचार्यने अंकगणितके इस सर्वप्रिय ग्रन्थको १२वीं शताब्दीमें बहुत सुन्दर पद्योंमें लिखा था, जिसका अनुवाद फैज़ीने किया। फैज़ी, जनकी कलमकी करामात और सुन्दर दिलको देखकर मन पैर चूमनेको करता है। फैज़ीने लिखा—

अव्वल ज्-सनाये-बादशाही गोयम्।
व निगह् ज् सताइशे-इलाही गोयम्।

...ईं उकदये-मानी ब-कलम कुशायम्।
...व्-ीं नुकए सरबस्त क-माही गोयम्।

(पहले बादशाहकी तारीफ बखानता हूँ, भगवान्की स्तुतिको कहता हूँ। इस अर्थ रहस्यको कलमसे खोलता हूँ, बँधी हुई बातको खोलकर रखता हूँ।)

२५. हरिवंश—"महाभारत" के परिशिष्टके तौरपर "हरिवंश" को सभी जानते हैं। अकबरके हुकुमसे कवि शीरीने फारसीमें इसका अनुवाद किया। मुल्ला शीरी पंजाबमें व्यासके किनारे एक गाँवके मद्दूये थे। स्वाभाविक प्रतिभा थी, बढ़ते-बढ़ते अकबरके दरबारमें पहुँचे और अन्तमें दीन-इलाहीमें शामिल होकर महाबलीके चेले भी बन गये।

(३) अरबी आदिसे अनुवाद

२६. तुज़ुक बाबरी—बाबरकी तुर्कीमें स्वलिखित जीवनीका यह अनुवाद अकबरके हुकुमपर रहीमने फारसीमें किया। अकबरको यह पुस्तक बहुत पसन्द आई। अनुवाद समाप्त कर हि० ९९७ (१५८८-८९ ई०)में रहीमने इसे बादशाहको भेंट किया।

२७. मुअजमुल-बलेदान—हि० ९९९ (१५९०-९१ ई०)में हकीम हम्मामसे अरबीकी इस पुस्तककी तारीफ सुनकर अकबरने इस महाग्रन्थको कई विद्वानोंमें बाँटकर अनुवाद करवाया। नाना देशोंकी बहुत-सी विचित्र बातें इसमें लिखी हुई हैं।

२८. हयातुल-हैवान—(प्राणि-जीवनी) अरबीमें पढ़वाकर इस पुस्तकका अनुवाद अकबरने सुना था। हि० ९८३ (१५७५-७६ ई०,में उसने दूसरोंकेलिये भी सुलभ करनेके वास्ते अबुलफजलको इसका फारसीमें अनुवाद करनेकेलिए कहा।

अकबरकी सरपरस्तीमें या उसके दरबारियों द्वारा लिखी गई पुस्तकोंकी संख्या इतनेसे नहीं पूरी हो जाती। उन पुस्तकोंमें कुछ हीने छापेका मुँह देखा है। बाकी हस्तलेखोंके रूपमें एक या अधिक कापियोंमें दुनियाके पुस्तकालयोंमें बिखरी हुई हैं। इनका प्रामाणिक पुस्तकालय-संस्करण निकालनेकी कितनी जरूरत है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। अकबर, अशोक और राष्ट्रपिता गांधीकी श्रेणीका महापुरुष था। उससे सम्बन्ध रखनेवाली हरेक कृतिको रक्षित और प्रकाशित करना हमारा कर्त्तव्य है।

(४) अकबरकी कविता

अकबर काव्य और साहित्यका प्रेमी ही नहीं, बल्कि स्वयं भी कभी-कभी कविता करता था। अबुलफजलने "आईन अकबरी" में अकबरकी बहुत-सी सूक्तियों का संग्रह किया है। उसके दरबारके नौरत्नोंमें तानसेन, टोडरमल, बीरबल हिंदीके कवि थे। हिन्दी कविताकी चर्चा भी अकबरके दरबारमें होती थी, पर फारसी बहुतों की मातृभाषा और चिरप्रचलित राजभाषा थी, इसके कारण हिन्दीको दरबारमें वह

स्थान नहीं मिल सका, जो उसे मिलना चाहिये था। अकबरके मुँहसे निकले कुछ पद्योंको उद्धृत किया जाता है, पर उनकी प्रामाणिकताके बारेमें क्या कहा जा सकता है? उसकी फारसी कविताएँ अवश्य अधिक प्रामाणिक मालूम होती हैं। वह चाहता, तो दूसरे महाकवियोंसे लिखवा कर अपने नामसे प्रकट करवाता, जैसा कि हमारे इतिहासमें अनेक राजाओंने किया है; पर उसको यह बात पसन्द नहीं थी। उसके फारसी पद्योंमें कुछके नमूने देखिये—

गिरिया कर्दम् ज़-ग़मत मूजिबे-खुशहाली शुद्।
रेख्तम् खूने-दिल अज़-दीद दिलम् खाली शुद्।

(तेरे ग़मसे मैं रोया, यह खुशीका कारण हुआ। आँखसे दिलके खूनको बहाया, मेरा दिल खाली हुआ।)

दोशीन ब-कूय मै-फ़रोशां।
पैमानए-मै ब-ज़र खरीदम्।
अकनूँ ज़-खुमार सरगरानम्।
ज़र दादम् व दर्दे-सर खरीदम्।

(रातको शराब बेचनेवालोंकी गलीमें पैसेसे शराबका प्याला खरीदा। अब खुमारसे मेरा सिर चकरा रहा है। पैसा दिया और मैंने सिरका दर्द खरीदा।)

—०—

अध्याय २७

महान् द्रष्टा

अकबरकी और उसके विश्वासपात्र सहायकोंकी जीवनियोंको पढ़ कर मालूम होगा कि अकबर अपने देश और राष्ट्रके लिये बहुत दूर तक सोचता था। वह अपने कामोंके परिणामको अपने काल तक ही सीमित नहीं रखना चाहता था। उसको पक्का विश्वास था, कि भारतके एक राष्ट्र और एक जाति बनानेका जो प्रयत्न, खतरा उठा करके भी वह कर रहा है, वह बेकार नहीं जायगा। बेकार गया, यह हम नहीं कह सकते, यद्यपि हमारा देश उससे उतना लाभ नहीं उठा सका, जितना उठाना चाहिये था। अगर उठाया होता, तो ३४२ वर्षोंकी कालरात्रिसे गुजरना न पड़ता और न देशके दो टुकड़े होते। यही नहीं, बल्कि हमारा देश संसारके महान् राष्ट्रोंमें होता। फिर सारा एशिया यूरोपियनोंकी गुलामी करनेके लिये मजबूर न होता और न एशियाके समुद्रमें खाली पड़े या बसे द्वीप यूरोपियनोंके हाथमें जाते।

१. रूढ़ि-विरोधी

हमारे देशवासी सदियोंसे कूपमंडूक या गूलरके फलके कीड़े बने हुए थे। इसमें शक नहीं, भारतके मुसलमान उतने कूपमंडूक नहीं थे, जितने हिन्दू। वह हज करने मक्का जाते थे, ईरान-तूरान आदिकी भी सैर कर आते थे। लेकिन, हिन्दू अपवादरूपेण ही कोई व्यापार या घुमक्कड़ीके लिये बाहर जाता था और उसकी यात्रासे भी दूसरे लाभ नहीं उठाते थे। अकबरने देख लिया था, भारत और इस्लामिक दुनियासे बाहर भी विशाल जगत् है। चीन ही का नहीं, उसे यूरोपके देशोंका भी पता था। कितने ही युरोपियन दास उस समय भारतके बाजारोंमें बिकते थे। यह बतला चुके हैं, कि अपनी माँके विरोध करनेपर भी अकबरने बहुत से रूसी दास-दासियोंको मुक्त करके उन्हें पोर्तुगीज पादरियों के साथ भेज दिया। पोर्तुगीज पादरियों और दूसरे यूरोपियन यात्रियोंसे उनके देशके बारेमें वह बहुत-सी बातें पूछता रहता था। उसने यूरोपके दरबारोंमें दूतमण्डल भेजनेका प्रयत्न किया था, इसका भी हम उल्लेख कर चुके हैं। उसने तरक्कीके रास्तेके सभी काँटे हटा दिये थे। अब न विचारोंके बन्धन रुकावट डाल सकते थे, न रूढ़ियाँ। पर, जब रास्तेपर काफिलाके चलनेका वक्त आया, तो उसने आँखें मूँद लीं। उसके उत्तराधि-

वारिसोंमें किसीमें वह बुद्धि और दूरदर्शिता नहीं थी, जो अकबरके कामको आगे ले चलता। जहाँगीर शराबी था। उसने सारे कामपर लीपा-पोती कर दी। शाहजहाँ भी मामूली बादशाह था, उसने दादाका अनुसरण करनेकी जगह परदादाकी(?) पसंद किया। शाहजहाँके पुत्र दाराशिकोहको जरूर अकबरका ढंग मिला था, दिमाग नहीं। वह भक्त और विद्वान् हो सकता था, शासक नहीं। यदि उसे औरंगजेबका जिन्दा करके सिंहासनपर बैठनेका मौका मिलता, तो भी वह हिन्दुओंको खुश करनेसे अधिक कुछ नहीं कर सकता था, क्योंकि शासकके समान वह कभी अकबरकी तरह देखना नहीं सीख सकता था। औरंगजेबने तो अकबरकी जहाँ-तहाँ दरगाहें भी बरबाद कर डाला और राष्ट्र-निर्माणमें अकबरको सहायक जो भी पत्थर बन रहे थे, उन्हें भी गिरा डाला।

मीनाबाजार—इसके लिये कट्टरपंथी हिन्दू अकबरकी नीयतपर हमला करनेसे भी बाज नहीं आये। "आईन-अकबरी" से मालूम होता है, कि हर महीनेके तीसरे दिन आगरेके किलेमें एक जनाना-बाजार लगता था, जिसे मीनाबाजार कहते थे। अकबरने चाहा था, कि स्त्रियोंकी तरह हमारे यहाँ भी एक आदमीकी एक ही बीबी हो। कानून बना करके भी बहु-विवाह रोकना उसके लिये मुश्किल हुआ। वह स्त्रियोंकी बीमारियोंकी बात सुनकर चाहता था, कि हमारी स्त्रियाँ भी आजाद हों। आखिर उसने शासनकालमें दुर्गावती और चाँद बीबी जैसी वीरांगनाओंके उसका मुकाबिला हुआ था। इसीलिये इस छिपी और बेकार होती शक्तिको ऊपर लानेकी इच्छा उसे हुई। चाहता था, अन्तःपुरों और हरमसराओंके भीतर घुटती महिलाएँ कमसे कम महीनेमें एक बार एक जगह घुल कर मिलें। मीनाबाजारमें उसके अपने महलकी बेगमें, बेटियाँ, बहुयें, अमीरों और राजाओंके घरोंकी महिलायें आती थीं। स्त्रियोंके उपयोग की हर तरहकी अच्छी-अच्छी चीजें बाजारमें बिकती थीं। दूकानोंपर केवल औरतें बैठती थीं। उन्हींका वहाँ पहरा रहता था। फूल बेंचनेवाले माली नहीं मालिनें होती थीं। जनाना बाजारवाले दिनको "खुशरोज" (सुदिन) कहा जाता था, वह सचमुच खुशरोज था।

बादशाह और दूसरे अमीर भी कभी-कभी आकर बाजारकी सैर करते थे। इसीके लिये पीछे कहना शुरू किया गया : वह लोगोंकी बहू-बेटियोंको देखने आता था। अकबरने अत्यन्त तरुणाईको छोड़ कभी असंयमसे काम नहीं लिया। तरुणाईमें इसके कारण उसे तीर खाना पड़ा था। इसका यह अर्थ नहीं, कि उसकी हरमसरामें सैकड़ों सुन्दरियाँ नहीं थीं। लेकिन, ये सुन्दरियाँ तो उस समय हलाल समझी जाती थीं। सोलह हजार रानियोंवाले हिन्दू राजा भी परमधर्मात्मा माने जाते थे। अकबरके रनमें सुन्दरियोंकी संख्या उतनी नहीं थी। "अकबरको बहुत खुशी होती थी, जबकि उसकी बेगमें, बहनें, बेटियाँ उसके पासमें बैठतीं। अमीरोंकी बीबियाँ आकर सलाम करतीं, नजरें भेंट करतीं, अपने बच्चोंको सामने उपस्थित करतीं। नई पीढ़ीका ब्याह

ठीक करनेमें भी अकबर दिलचस्पी लेता था और उसमें खर्च करता था। मीना-बाजारमें कभी युवक-युवतियोंमें प्रेम भी हो जाता था। जैन खाँ कूकाकी बेटीपर यहीं सलीम आशिक हो गया था। लड़कीकी शादी नहीं हुई थी। मालूम होनेपर अकबरने खुद शादी कर दी।

अकबरने जिसका आरम्भ किया था, उसे आज हमारे देशके शिक्षित तरुण-तरुणियाँ हरेक बन्धनको तोड़कर खुल्लमखुल्ला अपने व्यवहारमें ला रहे हैं। मजहबके नामपर लादा मुस्लिम महिलाओंका पर्दा इस्लामी राज्य पाकिस्तानमें भी टूट रहा है। उस दिन जब पाकिस्तानी पार्लियामेन्टकी मुस्लिम महिलाओंने पुरुषोंसे हाथ मिलाया, तो मुल्ले जल भुन गये। लेकिन, इस्लामी पाकिस्तान मुल्लोंके राज्यको फिरसे कायम नहीं कर सकता, वह दिन लद गया।

अकबर दासताका विरोधी था। उसने अपने दासोंको मुक्त कर दिया था, इसे हम बतला चुके हैं। अबुलफ़ज़लके अनुसार हि० ९९१ (१५८३ ई०) में दासमुक्तिका हुकुम दिया था। लेकिन, यह आशा नहीं करनी चाहिये, कि बादशाहके दासोंको छोड़ कर भारतकी जनतामें जो पंचमांश दास थे, उन्हें भी मुक्त कर दिया गया। सवाल दासोंके रूपमें लगी करोड़ोंकी सम्पत्तिका था।

अकबर धार्मिक रूढ़ियोंपर प्रहार करनेसे बाज नहीं आता था, इसके अनेक उदाहरण हम दे चुके हैं। दाढ़ियोंके साथ रूढ़ियाँ चिपकी हुई थीं, इसलिये वह दाढ़ियोंका शत्रु था। खुद और उसके शाहजादे दाढ़ी नहीं रखते थे। जहाँगीरने जन्म भर दाढ़ी नहीं रक्खी। हाँ शाहजहाँ और उसके बाद लम्बी दाढ़ियाँ जरूर आ गईं। अकबरकी देखा-देखी हजारों लोगोंने दाढ़ियाँ मुँड़ा दीं। प्रिय या सम्बन्धीके मरनेमें भद्र करवाकर दाढ़ीकी सफाई कराना जरूरी था, और हर ऐसे मौकेपर हजारों नई दाढ़ियाँ भी साफ हो जाती थीं।

२. मशीनप्रेम

नये आविष्कारों और नई-नई मशीनोंका सबसे पहले प्रयोग युद्धमें होता है। युद्धके कारण ही आदमीने पत्थरोंकी जगह धातुओंके हथियार, बारूदी हथियार और अन्तमें परमाणु-बमका आविष्कार किया। अकबरका समय बारूदी हथियारोंका था। तोपों और पलीतादार बन्दूकोंका यह जमाना था। उसके दादाने पहलेपहल भारतमें तोपोंका इस्तेमाल किया और इन्हीं तोपोंके बलपर शत्रुकी कई गुनी सेनाको घास-मूलीकी तरह काट दिया। बाबरने इन भयंकर हथियारोंको ईरानके शाह इस्माईलके सम्पर्कसे प्राप्त किया था। शाह इस्माईलने अपने दुश्मन तुर्कोंसे इन हथियारोंके महत्वको समझा और बनवाया। तुर्कोंने स्वयं तोपों और तुफंगोंका आविष्कार नहीं किया, बल्कि यह यूरोपियनोंकी देन थी। यद्यपि हथियारके तौरपर बारूदका इस्तेमाल पहलेपहल चिंगीज खाँ और उसके सेनापतियोंने किया; लेकिन,

धातुकी मजबूत तोपें पुर्तगीजोंने बनाई और इन्होंने ही उनका विकास किया। तोपोंको पहले किश्तीपर, फिर मझोले विशाल जहाजोंके अगले-पिछले हिस्सेमें और बगलपर लगाया गया।* इन्हींके कारण अकबरके जहाज पोर्तुगीजोंका मुकाबिला नहीं कर सकते थे। पोर्तुगीजोंकी शक्ति तोपोंके कारण ही भारतीय समुद्रमें भारी हुई। देरसे और देखनेसे सिलसिलेसे ही अच्छी तोपें और बन्दूकें बनवाई जा सकीं। अकबरसे बढ़कर इन बारूदी हथियारोंके महत्वको कौन समझ सकता था?

उसके पास हथियारके बड़े-बड़े कारखाने थे, जिनमें देश-विदेशके मिस्त्री नये हथियारोंको बनाते थे। अकबर वहाँ सिर्फ तमाशा देखनेके लिये नहीं जाता, बल्कि जैसा जेसुइत पादरी पेरुश्चीके अनुसार—"चाहे युद्ध-सम्बन्धी बात हो या शासन-सम्बन्धी बात हो या कोई यान्त्रिक कला, कोई चीज ऐसी नहीं है, जिसे वह नहीं जानता या नहीं कर सकता था।" अकबरने अपने महलके हातेके भीतर भी कई बड़े-बड़े मिस्त्रीखाने कायम किये थे, जिनमें वह अक्सर स्वयं हाथसे हथौड़ी-छेनी चलानेमें परहेज नहीं करता था। उसने हथियारों और यन्त्रोंमें कई आविष्कार और सुधार किये थे, जिनका उल्लेख "आईन-अकबरी" में अबुलफजलने किया है। विन्सेन्ट स्मिथ कहता है—"उसके जीवनका यह पहलू पीटर महान् जैसा मालूम होता है।" चित्तौड़के घेरेके समय उसने अपनी देख रेखमें आध-आध मनके गोले ढलवाये। बन्दूक चलानेमें वह बड़ा ही सिद्धहस्त था और शायद ही उसका कोई निशाना खाली जाता था।

३. सागर-विजय

अकबरको इसका भान होने लगा था, कि दुनियामें वही राष्ट्र शक्तिशाली होगा, जिसने सागरपर विजय प्राप्त की है। पोर्तुगीजोंके नौसैनिक बलका उसे पता था। उनके तोपधारी जहाजोंके डरसे ही सूरतमें उसने उनकी शर्तोंके साथ लोगोंके साथ सुलहकी थी। अपने सम्बन्धियोंको सुरक्षित हज कराने के लिये उसे दमनके पास एक गाँव पोर्तुगीजोंको भेंट करना पड़ा। उसका राज्य सिन्ध, गुजरात और उड़ीसा-बंगालमें समुद्रके किनारे तक पहुँच गया था; लेकिन, वह समझता था, कि स्थलके बाद ही वह खतम हो जाता है। पानीके साथ फिरंगियोंका राज्य शुरू हो जाता है। फिरंगियोंमें कौन ऐसी बात थी? उनके पास विशाल जहाज थे, जिनके ऊपर उस समयकी सबसे अधिक शक्तिशाली तोपें लगी हुई थीं। अकबरके जेनरलोंको इन्हीं तोपों और जहाजोंके कारण पोर्तुगीजोंके सामने कई बार दबना पड़ा था।

वह जानता था, हम इस बातमें उनसे बहुत पिछड़े हुये हैं। अपने बन्दरगाहों-पर कभी-कभी उसे पोर्तुगीज अफसर नियुक्त करने पड़े, यह हुगलीके बारेमें हम जानते

---

*देखो परिशिष्ट ४

हैं। वह भली प्रकार समझता था, कि पोर्तुगीज चाहे हमसे कितनी ही घनिष्ठता रखना चाहें, पर वह युद्धके सारे रहस्योंको हमें नहीं बतलायेंगे। इसीलिये वह यूरोप-की और शक्तियोंसे भी सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। दरबारमें आये अंग्रेज दूत मिल्डेन हालसे बातचीत करनेके बाद उसे मालूम हो गया था, कि यूरोपियनोंमें आपसमें भयंकर फूट है, इसलिये वह जो बात एकसे नहीं पा सकता, उसे दूसरा बतला सकता है।

सागर-विजय एक पूरे जीवनका काम था और अकबरका सारा जीवन पहले सारे देशको एक छत्रके नीचे लानेमें और अन्तमें नालायक पुत्रके झगड़ेमें लग गया। तो भी उसने अपने इस संकल्पको छोड़ा नहीं। अपनी युद्ध-यात्राओंमें अनेक बार उसने जमुना, गंगा और दूसरी नदियोंमें बड़े-बड़े बजड़ोंका इस्तेमाल किया था। कश्मीरमें ३० हजार नावोंका बेड़ा उसके साथ चला था। लेकिन, यह तोपोंके चलाने या उनका मुकाबिला करनेवाली नावें नहीं थीं। समुद्रके किनारे रहनेका उसे अवसर नहीं मिला। लाहोरमें उसे तेरह साल रहना पड़ा। वहीं उसने एक समुद्री जहाज हि० १००२ (१५९३-९४ ई०)में तैयार करवाया। इस जहाजका मस्तूल १०५ फुट ऊँचा था, २९३६ बड़े-बड़े शहतीर और ४६८ मन २ सेर (अकबरी) लोहा लगा था। उसके बनानेमें २४० बढ़ई और लोहार लगाये गये थे। तैयार हो जानेके दिन अकबर खुद रावीके किनारे गया। हजार आदमियोंने जोर लगा कर उसे पानीमें उतारा, लेकिन रावी बड़ी नदी नहीं थी, पानीकी कमीके कारण जहाजको कई जगह तक खाना पड़ा। तो भी जहाजको लाहरी बन्दर तक पहुँचाया गया। अकबरने हि० १००४ (१५९५-९६ ई०)में एक और जहाज तैयार कराया। पहले जहाजके तजर्बेने बतला दिया था, कि जहाजको कुछ छोटा बनाना चाहिये, नहीं तो नदीमें ले जानेमें दिक्कत होगी। छोटा होनेपर भी वह दो सौसे अधिक टन बोझा उठा सकता था। उसका मस्तूल १११ फुट ऊँचा था। उसके बनानेमें १६३३८ रुपये लगे थे।

अकबर सिर्फ शौकीनीके लिये इन जहाजोंको नहीं बनवा रहा था। समुद्रके किनारे रहनेका यदि उसे मौका मिला होता, तो उसने तोपदार बड़े जहाज बनवाये होते।

४. अकबर और जार पीतर

विन्सेन्ट स्मिथकी पंक्तियोंके पढ़नेसे पहले ही मुझे अकबर और रूसके निर्माता पीतर महान्में विचित्र समानता मालूम हुई थी। मेरे मित्र डा० के० एम० अशरफने इससे मतभेद प्रकट किया है, और जहाँ तक हूबहू समानताका सवाल है, इसे मैं भी नहीं कहता। पर, बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो इस अद्भुत समानताका समर्थन करती हैं। अकबर १५४२ ई०में पैदा हुआ, १५५६ ई०में गद्दीपर बैठा और १६०५ ई०में मरा। अकबरकी मृत्युके ६७ वर्ष बाद १६७२ ई०में पीतर पैदा हुआ, १६९६ ई०में गद्दीपर बैठा और औरंगजेबके मरनेके अठारह साल बाद १७२५ ई०में मरा। पीतरने

के अधिवेशनको भी देखने गया। दो महीने तक देम्स तटपर डेप्टफर्डके कारखानेमें पोत-निर्माणकी कलाको वह व्यावहारिक तौरसे सीखता रहा।

पीटर अपने राष्ट्रको सबल और समुन्नत देखना चाहता था, इसीलिये रूसपर छाये स्वीडनको निकालनेकेलिए अपने योद्धाओंको प्रोत्साहित करते हुये उसने कहा था—

"बहादुरो, वह घड़ी आ रही है, जो हमारे देशमें भाग्यका फैसला करेगी, इसलिए यह मत सोचो, कि तुम पीटरकेलिए लड़ रहे हो। तुम लड़ रहे हो उस राज्यके लिये, जो कि पीटरको सौंपा गया है, तुम लड़ रहे हो अपने परिवारकेलिये, अपनी जन्मभूमिकेलिए। दुश्मनकी अजेयताकी प्रसिद्धिको तुमने कई बार अपने विजयों द्वारा झूठा सिद्ध किया है। जहाँ तक पीटरका सम्बन्ध है, तुम यह गाँठ बाँध लो, कि अपना प्राण उसे प्रिय नहीं है।"

अकबरने अपने राज्यको सूबोंमें बाँटा था, और उसकी व्यवस्थामें कई सुधार किये थे। पीटरने भी इसे किया था :

"पीटरके सैनिक सुधारों और उसके कारण मिली सफलताओंके बारेमें हम देख चुके हैं। पीटरने व्यवस्थित सेनाको कायम किया, जिसमें बाकायदा रंगरूट भर्ती किये जाते, वर्दी और हथियार दे इनको खूब कवायद-परेड कराई जाता। पश्चिमी यूरोपमें तोपोंको खींचनेकेलिए घोड़ागाड़ियोंका इस्तेमाल जब हुआ, उससे पचास वर्ष पहले ही पीटरका तोपखाना घोड़ों द्वारा खींचा जाता था। राज्यप्रबन्धमें भी पीटरने कई बड़े-बड़े परिवर्तन किये। १७०८ ई०में उसने राज्यको आठ गुबर्नियों (सूबों)में बाँट दिया, गुबर्नियाका शासक एक गवर्नर होता था, जो कि सीधे केन्द्रीय सरकारसे सम्बन्ध रखता था। पहले गुबर्नियाँ बड़ी-बड़ी बनाई गईं, जिन्हें १७१६ ई०में बाँट कर पचासी प्रदेशोंके रूपमें परिणत कर दिया गया। प्रदेशोंको फिर कितने ही जिलोंमें विभक्त किया गया। प्रदेशों और जिलोंके शासक गवर्नर (राज्यपाल) और वोयवोद होते थे।"

भारतके मुसलमानोंकी तरह रूसमें भी उस वक्त दाढ़ी और रूढ़िवादका घनिष्ठ सम्बन्ध था। पीटर समझता था, कि दाढ़ी सफा करना रूढ़िवादको खतम करना है। इसलिए खुद कैंची लेकर बैठ जाता, और बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ दममरमें साफ हो जातीं।

परिशिष्ट

१. अकबर-सम्बन्धी तिथियाँ

फारसी इतिहासकार अपनी तिथियाँ हिजरी सन्के अनुसार लिखते हैं, जो कि शुद्ध चन्द्र वर्ष है। इसके महीने हैं क्रमशः—१. मुहर्रम, २. सफर, ३. रबी I, ४. रबी II, ५. जमादी I, ६. जमादी II, ७. रजब, ८. शाबान, ९. शौवाल, १०. रमजान, ११. जुलकद, १२. जुल-हिज्ज। अकबरने सन्-इलाहीके नामसे अपना सन् जारी किया, जो सौर मास था। अकबरके शासनकी महत्वपूर्ण तिथियाँ ईसवी पंचांगके अनुसार निम्न प्रकार मिलती हैं। (विन्सेंट स्मिथकी सूची) :—

ईसवी	हिजरी	घटनायें
१५२६ अप्रैल २१		पानीपतमें इब्राहीम लोदीकी हार
” ” २७		दिल्लीमें बाबर बादशाह
१५२७ अप्रैल १६		कनुवामें राणा सांगा बाबरसे हारे
१५२९ मई		घाघरा युद्धमें अफगानोंकी हार
१५३० दिसम्बर २६		आगरामें बाबरकी मृत्यु, दिल्लीमें हुमायूँ बादशाह
१५३९ जून २६	९४६ सफर ९	हुमायूँ चौसामें शेरशाहसे हारा।
१५४० मई १७	९४७ मुहर्रम १०	हुमायूँ कन्नौजमें शेरशाहसे हार कर भगा
१५४१		हमीदा बानूसे हुमायूँका ब्याह
१५४२ जनवरी २५	९४८ शौवाल ७	शेरशाह गद्दीपर बैठा

जन्मसे अकबरके तख्तपर बैठने तक

ईसवी	हिजरी	घटनायें
१५४२ नवंबर २३	९४९ शाबान १४ बृहस्पति	अमरकोटमें अकबरका जन्म (आयु १)
१५४३ नवबर		अकबर चचा असकरीके हाथमें (आयु २)
१५४४-४५ जाड़ा		अकबर और उसकी बहिन काबुल गये
मई २४ ”	९५२ रबि, १	शेरशाहकी मृत्यु

१५४५ मई २६	९५२ रवि० १७	इस्लाम (सलीम) शाह सूर गद्दीपर बैठा
" नवंबर १५		हुमायूँने काबुलमें पहुँच अकबरको पाया (आयु ४)
१५४६ मार्च १		अकबरका खतना
" अन्त		काबुलके मुहासिरेमें अकबरको तोपके सामने रखवाना (आयु ५)
१५४७ अप्रैल २७		काबुलसे कामरान भागा
" नवबर		अकबरका प्रथम शिक्षक नियुक्त (आयु ६)
१५४८		हुमायूँ और कामरानकी सुलह (आयु ७)
१५४६		बलखमें हुमायूँकी असफलता
१५५०		कामराने काबुल और अकबरको हाथमें किया
" अन्त		हुमायूँने काबुल और अकबरको ले लिया (आयु ८)
१५५१ नवंबर	९५८ ज़िलकद	शाहजादा हिंदाल लड़ाईमें मरा (आयु ६)
" अन्त या १५५२ का आरम्भ		अकबर गजनीका राज्यपाल (आयु १०)
१५५३ अक्तूबर ३०	९६० ज़िलकद २२	इस्लामशाह मरा, आदिलशाह गद्दीपर बैठा
" दिसबर १		कामरा पकड़कर अन्धा बनाया गया (आयु ११)
१५५४ अप्रैल १६	९६१ जमा० I, १५	शाहजादा महम्मद हकीमका जन्म
" अक्तूबर	" का अन्त	मुनअम खाँ, अकबरका अतालीक बना
" नवंबर		हुमायूँने भारतपर चढ़ाईकी (आयु १२)
१५५५ जून २२		सिकन्दरसूरपर सरहिन्दमें हुमायूँकी विजय

१५५५ जुलाई २३		हुमायूँ पुनः भारतका बादशाह
" नवंबर		अकबर पंजाबका राज्यपाल (आयु १३)
१५५५-५६	९६२, ९६३	उत्तर भारतमें भारी अकाल
१५५६ जनवरी २४		हुमायूँकी मृत्यु

अकबरका शासन

१५५६ फर्वरी १४	९६३ रबि, II २-३	कलानूरमें अकबरकी गद्दीनशीनी
" मार्च ११	" " २७-२८	सनजलूस इलाही सम्वत् आरम्भ, (आयु १४)
" नवंबर ५	९६४ मुहर्रम २	पानीपतमें हेमू पराजित
१५५६-५७	९६३ या ९६४	अजमेर (तारागढ़)पर अधिकार
१५५७ मार्च ११	९६४ जमादी I ६	द्वितीय राज्य-संवत् आरम्भ (आयु १५)
" आरंभ		काबुलसे बेगमें आईं
" मई २४	९६४ रमजान २७	मानकोटमें सिकन्दर सूरका आत्मसमर्पण
" जुलाई ३१	" शौवाल २	अकबर लाहौरकी ओर
१५५८ मार्च १०-११	९६५ जमादी I २०	तृतीय राज्यवर्ष आरम (आयु १६)
" अक्तूबर ३०	९६६ मुहर्रम १७	अकबर आगरा (बादलगढ़)में आया
१५५८ या १५५९		पोर्तुगीजोंने दामन ले लिया
१५५९ जनवरी-फर्वरी	९६६ रबि II	ग्वालियरका आत्मसमर्पण
" मार्च १०-१२	" जमादी II २	चतुर्थ राज्यवर्ष आरम्भ (आयु १७)
"		जौनपुरपर अधिकार
१५६० मार्च १०-१२	९६७ जमादी II १३	पञ्चम राज्यवर्ष आरम (आयु १८)
" " १६	" " २०	अकबर आगरासे चला
" " २७	" " २८	अकबर दिल्लीमें आया, बैरमखाँका पतन
५६० अप्रैल ८	९६७ रजब १२	बैरम खाँ अकबरकी ओर गया
" १८	" " २२	अकबरने दिल्लीसे कूच किया
अगस्त २३	" जुलहिज्जा	मुनअम खान वकील और खानेखाना बना
सितंबर १७	" " २६	अकबर लाहौरमें

१५६० अक्तूबर	९६८ मुहर्रम	बैरमने आत्मसमर्पण किया
" नवंबर २४	" रबी I ४	अकबर दिल्ली लौटा
" दिसंबर ३१	" " II १२	अकबर आगरा पहुँचा, शाही और अमीरोंके मकान बनने लगे
१५६१ जनवरी ३१	" जमादी १४	बैरम खाँकी हत्या, अकबरपर चेचक-का प्रकोप (आयु १६)
" आरम्भ		चेचकसे मुक्त हो अकबर राजकाज देखने लगा
" मार्च १०	" " II २४	छठा राज्यवर्ष आरम्भ
" आरम्भ		अदहम खानका मालवामें अत्याचार
" अप्रैल २७	" शाबान ११	अकबर आगरासे मालवा चला
" मई		गागरौन किलेका आत्मसमर्पण
" " १३	" " २७	अकबर सारंगपुर पहुँचा
" " १७	" रमजान २	अकबर आगराकी ओर लौटा
" जून ४	" " ११	अकबरका आगरामें भेस बदलकर घूमना
" जुलाई १७	" जिलकदा ४	अकबर आगरासे पूर्वको चला
" अगस्त २६	" जिलहिजा १७	खानजमाँ और बहादुरखानने आत्मसमर्पण किया
		अकबर लौटा, हवाई हाथीका मदमर्दन (आयु १६)
" नवंबर	९६९ रबी १	शम्सुद्दीन प्रधान-मन्त्री नियुक्त
१५६२ जनवरी १४	" जमादी I ८	अकबर अजमेरकी प्रथम तीर्थयात्रा पर चला
		अकबरका बिहारीमलकी लड़कीसे साभरमें ब्याह और मानसिंह का दरबारमें आना (आयु १६)
" फर्वरी १३	" जमादी II ८	अकबर आगरा पहुँचा
" मार्च ११	" रजब ५	सप्तम राज्यवर्ष आरम्भ
		युद्धमें दास बनाना बन्द
" मार्च		मेड़ताके किलेपर अधिकार
		परोंखमें युद्ध

		पीर मुहम्मदकी मृत्यु, बाजबहादुरका मालवापर अस्थायी अधिकार
१५६२ मई १६	९६९ रमजान १२	अदहम खाँने शम्सुद्दीनकी हत्याकी और स्वयं मारा गया
" नवंबर		अकबरने एतमाद खाँको माल-महकमा सुपुर्द किया
		तानसेन दरबारमें पहुँचे
१५६३ मार्च १०-११	९७० रजब १५	अष्टम राज्यवर्ष आरम्भ
		तीर्थ-कर बन्द (आयु २१)
		अकबर मथुरासे आगरा तक पैदल गया
१५६४ जनवरी ८	९७१ जमादी I २५	अकबरने दिल्लीमें अवैध ब्याह किये (आयु २२)
" " ११	" " २८	अकबरपर घातक आक्रमण
" " २१	" " II ६	अकबर आगरा लौटा
" मार्च ११	" रजब २७	नवम राज्यवर्ष आरम्भ
" आरम्भ		जज़िया उठाया (आयु २२)
" मार्च		ख्वाजा मुअज्जमको दण्ड
" अप्रैल	" रमज़ानईद	शाहमआलीको काबुलमें फाँसी,
		रानी दुर्गावतीपर विजय
" जुलाई २	" ज़िलकदा २१	मालवा-शासक अब्दुल्लाखाँ उज्बेकके खिलाफ अकबर चला, सफल हाथी-खेदा
" अगस्त १०	९७२ मुहर्रम २	अकबर माँडू पहुँचा
" अक्तूबर ६	" रबी० I ३	अकबर आगरा लौटा
		नगरचैनका निर्माण
"		हाजी बेगम हजको चली
" उत्तरार्ध		अकबरके जुड़वा बच्चोंका जन्म और मरण
१५६५ मार्च ११	" शाबान ८	दशम राज्यवर्ष आरम्भ (आयु २३)
"		आगरा किलेकी नींव रखना
		अब्दुन्-नबी सदर नियुक्त

१५६५ पूर्वार्ध		खान आज़म और बहादुर उज़्बेकका विद्रोह
” ”		कामराँ-पुत्र अबुलकासिमका प्राणहरण
” मई २४	९७२ शौवाल २३	अकबर विद्रोहियोंके खिलाफ चला
” जुलाई २	” ज़िल्हिज्जा १४	अकबर जौनपुरमें
” सितंबर १६	९७३ सफ़र २०	आसफ खाँका विद्रोह
” दिसंबर		खानज़माँ और मुनअम खाँकी मुलाकात
१५६६ जनवरी २४	” रजब ३	अकबरका बनारसकी ओर कूच
” मार्च ६	” शाबान ११	अकबरका आगराकी ओर कूच
” ” १०-११	” ” १८	एकादश राज्यवर्ष आरंभ (आयु २४)
” ” २८	” रमज़ान ७	अकबर आगरा पहुँच नगरचैन गया मुज़फ़्फ़र खाँ तुर्बती द्वारा जमाबन्दी दोहराना, मिर्ज़ा हकीमका पंजाबपर आक्रमण
” नवंबर १७	९७४ जमादी I ३	अकबरका उत्तरकी ओर कूच, हुमायूँके अठमास मकबरेका देखना
१५६७ फरवरी	” रजब	अकबर लाहौर पहुँचा
१५६६-६७		मिर्ज़ाओंका विद्रोह
१५६७ मार्च ११	” शाबान २६	द्वादश राज्यवर्ष आरंभ (आयु २५)
१५६७ मार्च		महाशिकार (कमरगा)
” ”		आसफ खाँको क्षमादान
” ” २३	९७४ रमज़ान १२	अकबरका आगराकी ओर कूच
” अप्रैल		थानेसरमें संन्यासियोंकी लड़ाई
” मई ६	” शौवाल २६	उज़्बेक सरदारोंके खिलाफ अकबर चला
” जून ९	” ज़िलहिज्जा १	मनकुवारमें खानज़माँ और बहादुरकी हार
” जुलाई १८	९७५ मुहर्रम ११	कड़ा-मानिकपुर, इलाहाबाद, बनारस, लुटे। जौनपुर होते अकबरका कूच आगराकी ओर

१५७० मार्च ११	९७७ शौवाल २	पंचदश राज्यवर्ष आरंम्भ (आयु २८)
,, अप्रैल		अकबर नवनिर्मित हुमायूँके मकबरेको देखने गया।
१५७० जून ७	९७८ मुहर्रम ३	शाहजादा मुरादका जन्म
,, सितंबर	,, रबीII	अकबर अजमेर गया, यहाँ और नागौरमें इमारतें बनवाईं।
१५७०		बीकानेर और जैसलमेरकी राजकुमारियोंसे अकबरका ब्याह, जंगली गदहोंका शिकार, बाजबहादुर (मालवा) का आत्मसमर्पण।
१५७०-७१		मालगुजारीका पुनः करांकन
१५७१ मार्च ११	९७८ शौवाल १४	षोडश राज्यवर्ष आरंभ (आयु २९)
,, ,,		अकबरने सतलुज-तटपर पाकपट्टनकी जियारत की
,, मई १७	,, जिल्हिज्ञा २२	अकबर लाहौर पहुँचा
,, जुलाई २१	९७९ रबी I १	अकबर वर्षामें यात्रा करते अजमेर पहुँचा।
,, अगस्त ७	,, ,, १७	अकबरने फतेहपुर-सीकरी (फतेहाबाद)के भवननिर्माणको देखा
१५७२ मार्च ११	,, शौवाल २५	सप्तदश राज्यवर्ष आरंभ (आयु३०) समरकन्दके अब्दुल्ला खाँ उज्बेकका दूतमंडल आया, मुजफ्फर खाँ तुर्बती पदच्युत
,, जुलाई ४	९८० सफर २०	अकबर गुजरातकी मुहिमपर चला
,, सितंबर १	,, रबी I २२	अकबरने अजमेर छोड़ा
,, सितंबर ६	,, जमादीII २-३	शाहजादा दानियालका जन्म
,, ,, १७	,, ,, ९	अकबरका पड़ाव नागौरमें,
,, अक्तूबर ११		बंगालके सुलेमान करानीकी मृत्युकी सूचना
,, नवंबर ७	,, रजब १	पाटन (अनहिलवाड़ा)में अकबरकी छावनी

१५६७ अगस्त १०	९७५ सफर २५	अकबर मिर्जाओंके खिलाफ धौलपुर-की ओर चला
" सितंबर		चित्तौड़के विरुद्ध युद्धका निश्चय, कैदी दरबारमें आये
" अक्तूबर २०	" रबी II १६	चित्तौड़के मुहासिरेके लिये बनी
" दिसंबर १७	" जमादी II १५	सुरङ्ग उड़ाई गई
१५६८ फर्वरी २१	" शाबान २५	चित्तौड़का पतन
" " २८	" " २६	अकबर पैदल अजमेर तीर्थया
" मार्च ६	" रमजान ७	अकबर अजमेर पहुँचा
" " १०	" " ११	त्रयोदश राज्यवर्ष आरम्भ (आयु २६)
" अप्रैल १२	" शौवाल १५	बाघका शिकार करते अ आगरा पहुँचा
"		मिर्जाओंने चम्पानेर और सूरत अधिकार किया
" अगस्त	९७६ रबी १	अतकाखेलपर अनुशासन
"		शहाबुद्दीन अहमद खान वित्त-म नियुक्त
१५६९ फर्वरी १०	" शाबान २१	रणथम्भौरका मुहासिरा आरम्भ
" मार्च ११	" रमजान २२	चतुर्दश वर्ष (आयु २७)
" " २१	" शौवाल ३	रणथम्भौरका पतन
" मई ११	" जिलकदा २४	अजमेर दर्शन करते आगरामें आ अकबर बगाली महलमें ठहरा
" अगस्त ११	९७७ सफर २६	कालंजरके आत्मसमर्पणकी सूचना मिली
" " ३०	" रबी I १७	शाहजादा सलीमका जन्म,
"		सीकरीके निर्माणकी आज्ञा
" नवंबर २१	" जमादी II ११	अकबरकी कन्या शाहजादी सुल्तान खानमका जन्म
१५७० मार्च २	" रमजान	आगरासे अजमेर १६ मंजिलकी पैदल यात्रा कर अकबर दिल्ली आया

१५७० मार्च ११	९७७ शौवाल २	पंचदश राज्यवर्ष आरंम्भ (आयु २८)
" अप्रैल		अकबर नवनिर्मित हुमायूँके मकबरे-को देखने गया।
१५७० जून ७	९७८ मुहर्रम ३	शाहजादा मुरादका जन्म
" सितंबर	" रबीII	अकबर अजमेर गया, वहाँ और नागौरमें इमारतें बनवाईं।
१५७०		बीकानेर और जैसलमेरकी राज-कुमारियोंसे अकबरका व्याह, जंगली गदहोंका शिकार, बाजबहादुर (मालवा) का आत्मसमर्पण।
१५७०-७१		मालगुजारीका पुनः करांकन
१५७१ मार्च ११	९७८ शौवाल १४	षोडश राज्यवर्ष आरंभ (आयु २६)
" "		अकबरने सतलुज-तटपर पाकपट्टन-की जियारत की
" मई १७	" जिल्हिज्जा २२	अकबर लाहौर पहुँचा
" जुलाई २१	९७९ रबी I १	अकबर वर्षामें यात्रा करते अजमेर पहुँचा।
" अगस्त ७	" " १७	अकबरने फतेहपुर-सीकरी (फतेहा-बाद)के भवननिर्माणको देखा
१५७२ मार्च ११	" शौवाल २५	सप्तदश राज्यवर्ष आरंभ (आयु३०)
		समरकन्दके अब्दुल्ला खाँ उज्बेकका दूतमंडल आया, मुजफ्फर खाँ वकीली पदच्युत
" जुलाई ४	९८० सफर २०	अकबर गुजरातकी मुहिमपर चला।
" सितंबर १	" रबी I २२	अकबरने अजमेर छोड़ा
" सितंबर ६	" जमादीII २-३	शाहजादा दानियालका जन्म
" " १७	" " ६	अकबरका पड़ाव नागौरमें,
" अक्तूबर ११		बंगालके सुलेमान करानीकी मृत्यु-की सूचना
" नवंबर ७	" रजब १	पाटन (अनहिलवाड़ा)में अकबरकी छावनी

१५७२ नवंबर	९८० रजब		गुजरातके मुजफ्फरशाहकी गिरफ्तारी
" " २०	" "	१४	अकबरका दरबार अहमदाबादमें
" दिसंबर ११	" शाबान	६	अकबर खम्भातमें, पहले सिहर
" " २३	" "	१५-२	सरनालका युद्ध
१५७३ जनवरी ११	" रमजान	७	अकबर सूरतमें, पुर्तगालियोंसे मुला
"	" "		पोर्तुगीजोंसे अकबरकी बातचीत
" फरवरी २६	" शौवाल	२१	सूरतका आत्मसमर्पण, नासिक (बगलाना) के मुजफ्फर आत्मसमर्पण
" मार्च १०	" जिल्कदा	६	अष्टादश राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३१ वर्ष)
" अप्रैल ११	" "	१०	अकबर लौटा
" जून ३	९८१ सफर	२	अकबर सीकरी पहुँचा, शेख मुबारकका मुबारकबादीनामा, मिर्जा बंदियों पर कड़ाई
			गुजरातमें विद्रोह
" अगस्त २३	" रबी I	२४	अकबर गुजरातके लिये सवार हुआ
" " ३१	" जमादी II	२	कालिसनामें सेनाका निरीक्षण किया
" सितंबर २	" "	५	अहमदाबादका युद्ध
१५७३ सितंबर १३	९८१ जमादी I	१६	अकबर लौटा
" अक्तूबर ५	९८१ जमादी II	८	अकबर सीकरी पहुँचा
			गुजरातमें टोडरमल द्वारा माल-बन्दोबस्त
" अक्तूबर २२	" "	२५	तीनों शाहजादोंका खतना
१५७४ मार्च ११	" जिल्कदा	१७	१९ राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३२)
" " ३१			अकबर सीकरी पहुँचा
"			अबुल्फ़ज़ल और बदायूँनी दरबारमें प्रविष्ट
" जून १५	९८२ सफर	२९	अकबरकी पूर्वको नौयात्रा
" अगस्त ३	" रबी II	१५	अकबरका पटनाके सामने ठहरना
" सितंबर	अमरदाद	२५	हाजीपुरपर अधिकार, बंगालके सुल्तान दाऊदका भागना,

१५६० सितंबर	अमरदाद	२६	पटनापर अधिकार
” ”			अफसरोंको बंगाल-विजयका काम देकर अकबरका जौनपुर लौटना
			दाऊद द्वारा मुनअम खाँकी हारकी सूचना। गुजरातमें अकाल
			प्रशासनिक सुधार : (१) दाग, (२) मन्सबदारी दर्जे, (३) जागीरोंका खालसामें परिवर्तन
१५७५ जन०			अकबर सीकरीमें, इबादतखाना निर्माणका हुक्म
” मार्च ३	९८२ जिलकदा	२०	तुकरोई (बालासोर) का युद्ध
” ” १०-११	” ”	२७	२० राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३३)
” अप्रैल १२	९८३ मुहर्रम	१	मुनअम खाँने दाऊदसे सुलह की;
” ग्रीष्म			मुजफ्फर खाँ चौसासे तेलियागढ़ी तकके बिहारका शासक नियुक्त
”			दाग आदि कानूनका लागू करना
” शरद			गुलबदन बेगम आदि हजके लिये गईं
” अक्तूबर २३	” रजब		मुनअम खाँ मरा, महामारी,
” नवंबर १५			खानजहाँ बंगालका राज्यपाल नियुक्त,
१५७५-६			करोड़ी प्रबन्ध आदि
१५७६ मार्च ११	” जिलहिजा	२	२१ राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३४)
” जून			गोगुंडा (हल्दीघाटी) युद्ध
” जुलाई १२			राजमहल-युद्ध, दाऊदकी मृत्यु
” सितंबर			अकबर अजमेरमें
” अक्तूबर			शाह मंसूर दीवान नियुक्त
१५७६			दो जेसुइत मिशनरी बंगालमें
१५७७ मार्च ११	९८४ जिलहिजा	२०	२२ राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३५)
” सितंबर			अकबर अजमेरमें
” नवंबर			धूमकेतु उगा टोडरमल वजीर बने, टकसालका पुनः संगठन
१५७८ मार्च ११	९८६ मुहर्रम	२	२३ राज्यवर्ष आरम्भ (आयु ३६)

१५८० दिसंबर			मिर्जा हकीमके अफसरोंने पंजाबपर आक्रमण किया
१५८१ जनवरी			मिर्जा हकीम स्वयं चढ़ आया
१५८१ जनवरी			अयोध्याके पास बंगालके पठानोंकी हार
" फर्वरी ८			अकबरका उत्तरकी ओर कूच
" " २७	९८९ मुहर्रम	२६	शाह मंसूरको फाँसी
" मार्च ११	" सफर	५	२६ राज्यवर्ष (आयु ३९)
" जुलाई १२ (?)			अकबरने सिन्ध पार किया
" अगस्त १			शाहजादा मुरादकी लड़ाई
" " ९-१०	" रजब	१०	अकबर काबुलमें दाखिल हुआ
" नवंबर			सदर और काजीके विभागोंका पुनरीक्षण
" दिसंबर १	" जिलकदा	५	अकबर सीकरी लौटा
१५८२ जनवरी			हाजी बेगमकी मृत्यु
" आरम्भ			दीन-इलाहीकी घोषणा
" मार्च ११	९९० सफर	१५	२७ राज्यवर्ष (आयु ४०)
" अप्रैल १५			कुतुबुद्दीनका दामनपर आक्रमण
" ग्रीष्म			धार्मिक शास्त्रार्थ मन्द, यूरोप दूत-मंडल भेजना असफल
" अगस्त ५			मोन्सेरेत सूरत आया
"			सीकरीकी झीलका बाँध टूटा
१५८३ मार्च १५	९९१ सफर	२८	२८ राज्यवर्ष (आयु ४१)
" मई			अकविवा गोवामें आया
" जुलाई १५			चुंचोलिममें अकविवा मारा गया
" सितंबर			मुजफ्फरशाह गुजरातका शाह बना
" नवबर			इलाहाबाद किलेकी नींव पड़ी
"			सती होना अकबरने रोका
१५८४ जनवरी	९९२ मुहर्रम		अहमदाबादके पास सरखेजका युद्ध,
" फर्वरी			अकबर सीकरी पहुँचा, सलीमका ब्याह
" मार्च ११	" रबी० I	८	२९ राज्यवर्ष (आयु ४२)

१५९० मार्च ११	९९८ जमादी I १४	३५ राज्यवर्ष (आयु ४८)
"		रहीम मुलतानके सूबेदार नियुक्त
१५९०-१		सिन्ध-विजय
१५९१ मार्च ११	९९९ जमादी I २४	३६ राज्यवर्ष (आयु ४९)
" अगस्त		दक्षिणके सुल्तानोंके पास दूतमण्डल भेजे
१५९१-९२		द्वितीय जेस्वित मिशन
१५९२ मार्च ११	१००० जमादी II ५	३७ राज्यवर्ष (आयु ५०)
		हिजरी हजारसाला स्मरणमें नये सिक्के
" अगस्त		चनाबके किनारे अकबरका शिकार खेलना, कश्मीरकी दूसरी यात्रा
" अन्त		उड़ीसा-विजय
१५९३ मार्च ११	१००१ जमादी II १७	३८ राज्यवर्ष (आयु ५१)
" अगस्त	" जिलकद १७	शेख मुबारककी मृत्यु, निजामुद्दीनके इतिहासका अन्त
" नवं० या दि०	" " II का आरंभ	दक्षिणसे दूतमंडलका लौटना
१५९४ दि० या ९५ फ०		सीवीके किलेपर अधिकार
" मार्च ११	" २ जमादी II २८	३९ राज्यवर्ष, (आयु ५२)
१५९५ " "	" ३ रजब ९	४० राज्यवर्ष (आयु ५३)
१५९५ अप्रैल	१००३ रजब	कन्दहारका आत्मसमर्पण
" मई ५		जेस्वित मिशन लाहौर पहुँचा
" अगस्त		बदायूँनीके इतिहासकी समाप्ति
		जे० जेवियर और पिन्हेरोके पत्र
१५९५-९८	१००४-७	भारी अकाल और महामारी
१५९६ मार्च ११	१००४ रजब २१	४१ राज्यवर्ष (आयु ५४)
" आरम्भ		चाँद बीबीने बरार दे दिया, गोदावरीपर सूपाके पास लड़ाई
१५९७ मार्च ११	१००५ शाबान २	४२ राज्यवर्ष (आयु ५५)
" " २७		लाहौरके महलमें आग लगी, अकबरकी तृतीय कश्मीर यात्रा

१५६७ सितंबर ७			लाहोरमें नये गिर्जेकी प्रतिष्ठा, लाहोरमें महामारी
१५६८	१००६ रजब	२	तूरानके अब्दुल्ला खाँकी मृत्यु
" मार्च ११	१००६ शाबान	१३	४३ राज्यवर्ष (आयु ५६)
" अन्त			अकबरका लाहोरसे दक्खिनकी ओर कूच
१५६६ मार्च १२	" शाबान	२३	४४ राज्यवर्ष (आयु ५७)
" मई १	१००७ शौवाल	१५	शाहजादा मुरादकी मृत्यु
" जुलाई			अकबरने आगरा छोड़ा
१६०० फरवरी			असीरगढ़का मुहासिरा आरम्भ
१६०० मार्च ११	१००८ रमजान	४	४५ राज्यवर्ष (आयु ५८)
" " ३१	" "	२५	अकबरने बुरहानपुर ले लिया,
" मई			बहादुरशाहके साथ समझौतेकी बातचीत
" जून			असीरगढ़पर असफल हमला
" जुलाई			सलीमका विद्रोह
"			बंगालमें उसमान खाँका विद्रोह शेरपुर-अतार्इका युद्ध
" अगस्त १६	१००६ सफर	१८	अहमदनगरका पतन
" " अन्त			बहादुरशाहका हारना
" दिसंबर २५			सलदाना गोवाका उपराज
" " ३१			रानी एलिजाबेथने ईस्ट इंडिया कम्पनीको अधिकार-पत्र दिया
१६०१ जन० १७	" रजब	२२	असीरगढ़का आत्मसमर्पण
	" शाबान	८	अबुलफजल आदिको उपाधि प्रदान
१६०१ मार्च ११	" रमजान	१२	४६ राज्यवर्ष (आयु ५६)
१६०१ मार्च २८			गोवा दूतमंडल भेजा गया
" अप्रैल २१			तीन नये सूबोंका निर्माण, शाहजादा दानियाल उपराज नियुक्त
अप्रैल-मई			अकबर सीकरी होता आगरा लौटा
मई			दूतमंडल गोवा पहुँचा

१६०१			सलीमने बादशाहकी उपाधि धारण की
			"अकबरनामा"का अन्त
			सलीमके समझौतेकी बातचीत
१६०२ मार्च ११	१००६ रमजान	२६	४७ राज्यवर्ष (आयु ६०)
" " २०			डच ईस्ट इंडिया कम्पनी संगठित
" अगस्त १२	" ११ रबी I	४	अबुलफजलकी हत्या
१६०३ मार्च ११	" शौवाल		४८ राज्यवर्ष (आयु ६१)
" आरम्भ			मिल्डेनहाल लाहौर और आगरा पहुँचा
" मार्च २४			रानी एलिजाबेथकी मृत्यु, जेम्स I राजा, सलीमा बेगमने अकबर और सलीमसे सुलह कराई
" नवबर ११			सलीम जमुना पार इलाहाबाद लौटा
१६०४ मार्च ११	" १२ शौवाल	१७	४९ राज्यवर्ष (आयु ६२)
" "			शाहजादा दानियालका ब्याह बीजापुरकी शाहजादीके साथ
" अप्रैल			शाहजादा दानियाल की मृत्यु
" मई २०	" १३ मुहर्रम		
" अगस्त २९			अकबरकी माँका देहान्त
" नवबर ९			सलीमकी आगरामें गिरफ्तारी
१६०५ मार्च ११	" शौवाल	२८	५० राज्यवर्ष (आयु ६३)
" ग्रीष्म			मिल्डेनहाल अकबरके सामने हाजिर
" मई ९			
" सितंबर २१	" ११ जमादी I	२०	अकबरकी बीमारीका आरम्भ
" अक्तूबर १७	" " जमादी II	१४	अकबरकी मृत्यु

परिशिष्ट २. संस्कृतियोंका समन्वय

हर एक जाति लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंसे मिलकर बनी है। व्यक्ति अलग-अलग रहकर जिस जीवन और मनोवृत्तिका परिचय देता है, समष्टिमें वह उसीका हूबहू अनुकरण नहीं करता। एक व्यक्ति अलग रहकर कितना ही निरंकुश हो, लेकिन

परिवारमें अपने ऊबड़-खाबड़ स्वभावको हटाकर परिवारके अनुकूल बनाना पड़ता है। इसी तरह परिवारके व्यक्ति गाँवके लोगोंके सामने अपनी कितनी ही स्वच्छंदताओंको छोड़नेकेलिये मजबूर हो जाते हैं। यदि पुराने आर्थिक ढाँचे हीमें हमारा ग्राम-समाज हो, तो यह बहुत स्वच्छंदता प्रकट करता है। भारतकी तो यह सबसे बड़ी बीमारी रही है, कि यह ग्राम तक अपनी आत्मीयताको अच्छी तरह अनुभव करता रहा, लेकिन उससे आगे "कोउ नृप होहि हमहिं का हानी"का मंत्र जपने लगता और हाथ-पैर ढीले करके भवितव्यताके सामने सिर झुका देता है। यह मनोवृत्ति संगठित आक्रमणकारियोंकेलिये बड़ी अनुकूल साबित हुई। आत्म-रक्षाकेलिए यदि हम कभी भावसे ऊपर भी उठे, तो उसमें हमारी आन्तरिक एकता का गहरापन नहीं था।

तब भी जब एक गाँव दूसरे गाँवपर, एक परगना दूसरे परगनेपर और एक राष्ट्रके सभी व्यक्ति आपसमें एक दूसरेके ऊपर निर्भर रहते हैं, तो कितनी ही बातोंमें उनमें एकताका भाव जरूर पैदा होता है। इस एकताकी जबर्दस्त भावनाका तो उस वक्त पता लगता है, जब एक बोली बोलनेवाले आपसमें पचास कोसकी दूरी पर रहनेवाले भी किसी दूर जगहमें मिलते हैं। भाषा होने मनुष्यको समाजके रूपमें संगठित किया, समाजने ही भाषाको बनाया। भाषा एकताकी जबर्दस्त कड़ी हो, इसमें आश्चर्य क्या! भाषाकी एकता सामाजिक रीतिरिवाजोंकी एकताको साथ लिए चलती है, उसीके भीतर ही विवाह-सम्बन्ध होते हैं। भौगोलिक दूरियोंके कम हो जानेके कारण अब विवाहका क्षेत्र बढ़ गया है। आधुनिक शिक्षाने दायरेको और बढ़ा दिया है, और अब अन्तःप्रान्तीय और अन्तर्जातीय ही नहीं, बल्कि अन्तर्धर्मीय विवाह भी होने लगे हैं। एक पीढ़ी वैयक्तिक रूपसे ७०-८० वर्षकी भी हो सकती है, पर, उसका समय उसी वक्त बीत जाता है, जब दूसरी पीढ़ी पैदा होकर बालिग बन जाती है। २०-२५की उम्र तक दूसरी पीढ़ी आ जाती है और ५० वर्ष बीतते दूसरी पीढ़ी तीसरी पीढ़ीकी बाप बन जाती है। इस प्रकार एक पीढ़ी २०-२५ वर्ष हीकी समझी जानी चाहिए। बेटेके समय तक स्वस्थ पुरुष आत्मावलम्बी रह सकता है, लेकिन पोतेके समय उसकी शारीरिक-मानसिक शक्तियाँ बड़ी तेजीसे क्षीण होने लगती हैं। अपने साथके खेले-खाये उसे छोड़ने लगते हैं। दिनपर दिन उसके सामने अजनबियोंकी दुनिया आती जाती है, जिसमें अगर सुदीर्घजीवी हो, तो वह अधिक एकाकीपन अनुभव करता है। समाजमें अपने अस्तित्वसे कोई प्रभाव डालना उसकेलिए असम्भव हो जाता है और वह माने न माने, परमुखा-पेक्षीसा दीखने लगता है। यदि बुढ़ापेमें बचपन लौटा, तो मुश्किल, क्योंकि, बदलती दुनियाको समझने में वह अपनेको सर्वथा असमर्थ है। यदि और बातोंमें प्रकृतिस्थ हो, तो भी उसकी स्मृति पर तो बड़ा जबर्दस्त प्रभाव जरूर पड़ता है। यह अच्छा भी है, नहीं तो अपने पुराने इतिहासको,

कर उसका अहं प्रचण्ड रूप धारण करता।

हरएक पीढ़ीका एक व्यक्ति बिलकुल दूसरे व्यक्ति जैसा नहीं होता, लेकिन अगली या पिछली पीढ़ीसे मुकाबिला करनेपर उसमें कुछ समान बातें मिलती हैं। ये बातें भाषाके रूपमें भी होती हैं, वेषभूषा, खान-पान, आमोद-प्रमोद तरीकोंमें भी। जीविकाके साधनोंको भी इनमें शामिल कर लीजिए। एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें परिवर्तन सूक्ष्म होता है। चाहे परिवर्तन आमूल होते हों, पर धरातलपर वे बहुत सूक्ष्म दिखलाई पड़ते हैं। छोटे बच्चेको हम देखते हैं। चार महीने बाद कोई आदमी यदि देखता है, तो उसे वह अधिक बड़ा, मोटा और चंचल मालूम होता है। पर चौबीस घंटे देखनेवाली माताकेलिए वह चार महीने पहले हीका बच्चा मालूम होता है। वर्ष बीतने पर तो उसका परिवर्तन साफ दिखाई पड़ता है। भाषाको ले लीजिये। पौने दो सौ पीढ़ी पहले हमारे बाप दादा बहुत-कुछ वही भाषा बोलते थे, जो ऋग्वेद में मिलती है। पचास पीढ़ी और नीचे उतारिए, आजसे सवासौ पीढ़ी पहले बुद्धके समयमें भाषा बदल कर वैसी हो गई, जो अशोकके शिलालेखोंमें मिलती है। २५ पीढ़ी और नीचे आइये। अब ईसवी-सन् शुरू हो रहा है। भारतमें कुषाणोंकी जयदुंदुभि बज रही है। अँग्रेजोंकी तरह मुँह और बाल वाले, पर संस्कृतिमें बर्बर समझे जानेवाले ये लोग टोपियाँ बाँधे उत्तरी भारतमें जहाँ-तहाँ पड़े हैं। लोग उनसे भयभीत हैं, मनुष्य नहीं उन्हें खूंखार प्राणी समझते हैं। इस समय अब पालि नहीं बल्कि प्राकृत भाषा लोग बोल रहे हैं। पाँच सौ वर्ष बीतते हैं। कुषाणों और गुप्तोंकी प्रभुता खतम हो जाती है। कुषाणोंको लोग भूलते भी जा रहे हैं, और लाखोंकी तादादमें वह लोग अपने रंग रूपमें कुछ विशेषता रखते हुए भी भारतीय जन-समुद्र में विलीन हो गये हैं। अब प्राकृत की जगह अपभ्रंश भाषा सर्वत्र बोली जाती है। अपभ्रंशसे मतलब सिर्फ एक भाषासे नहीं, बल्कि, आजकलकी हमारी हिन्दी-यूरोपीय भाषाओंके क्षेत्रोंमें भी जितनी बोलियाँ बोली जाती हैं, उन सबकी माताओंका यह सामूहिक नाम है। आज अगर हम प्राकृत और अपभ्रंशकी पुस्तकोंको देखें समझें तो अन्तर दीखेगा। यही नहीं, शब्दों को समझनेपर भी हम शब्द-रूपों और क्रिया-रूपोंको समझनेमें अपनेको असमर्थ पायेंगे। एक ही प्रदेशमें बोली जानेवाली ये दोनों ही भाषाएँ कालमें एक दूसरीके बाद हैं। प्राकृत शौरसेनी—मध्यदेशीया, पाञ्चाली—की पुत्री अपभ्रंश शौरसेनी थी। प्राकृत शौरसेनी समाप्त हुई और एक मिनिटकेलिए भी जगहको सूना न रखकर अपभ्रंश शौरसेनी उसकी जगहपर आ गई। अपभ्रंश शौरसेनी का शव अभी घरसे उठनेभी नहीं पाया, कि आजकलकी शौरसेनी—ब्रज-कन्नौजी-बुंदेली—तुरन्त अभिषिक्त हो गई। राजाओंको गद्दी देनेमें भी ऐसा ही किया जाता है। पूर्व राजाकी लाशके श्मशानमें पहुँचनेसे पहलेहीं नये राजाके शासनकी घोषणा हो जाती है। भाषाओंके बारेमें यह निश्चय करना तो दूर, समझना भी मुश्किल हो जाता है कि कौन-सा साल एकके अन्त और दूसरेके आरम्भका है। प्राकृ

बिलकुल हमारे ऐतिहासिक युगकी भाषा है। यह ईसवी सन्‌की पहली पाँच शता-
ब्दियोंमें जीवित भाषा थी। बाण छठी शताब्दीके उत्तरार्धमें पैदा हुये थे और सातवीं
सदीके पूर्वार्धमें मौजूद थे। उस समय अपभ्रंश भाषा अस्तित्वमें आ गई थी। छठी
सदीका उत्तरार्ध अपभ्रंशका आदिकाल है। उस सदीका पूर्वार्ध प्राकृतका अन्तिम
काल हो सकता है। यदि ४०-५० सालके अन्तरका कोई ख्याल न करें, तो, बहुत
सम्भव है, ५५० ई० दोनों का संधि-वर्ष था। लेकिन, इतना निश्चित तौरसे कहना
बड़े साहसकी और साथही अविश्वसनीय भी बात है। किसीभी महान् या लघु परि-
वर्तनकी बिलकुल ठीक सीमारेखा खींचना मुश्किल है।

परिवर्तन होते हुए भी हम वैदिक, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक
भाषाओंकी एकताको मानते हैं। वह एक मांकी हैं, एक दूसरेकी उत्तराधिकारिणी
हैं, एकही धाराकी भाषाएँ हैं। परिवर्तनके साथ सदृशताका अटल नियम लागू होता
रहा, अर्थात्, जिस चीजने अपना स्थान हमेशाकेलिए खाली किया, उसका स्थान
लेनेवाली चीज उसीके सदृश होगी। यह सदृशता संस्कृति है। दोनोंका शारीरिक
संबंध नहीं है, एकका सर्वथा विलोप और दूसरीका सर्वथा प्रादुर्भाव एक क्षण में
हुआ। लेकिन, सादृश्यका अटल नियम वहाँ कार्यकारी हुआ। उत्पत्ति सदृश क्यों
होती है! कार्य-कारण दोनों वस्तुओंका जब शारीरिक सम्पर्क नहीं, तब उनमें यह
असाधारण सादृश्य होता क्यों है! तर्कवादकेलिए यह समझना मुश्किल है, लेकिन,
वस्तुवादकेलिए मुश्किल नहीं। "यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयं।" (यदि
वस्तुओंको यही पसन्द है, वह इसी रूपमें परिवर्तित होती हैं, तो कुछ और समझनेके
लिए हम-आप कौन होते हैं!)। उत्पत्ति सदृश होती है। कार्य-कारण एक दूसरेसे
सादृश्य रखते हैं। पुरानी पीढ़ी अगली पीढ़ीसे सादृश्य रखती है, पुरानी भाषाका
स्थान लेनेवाली नई भाषाभी माँके समान होगी। सारी दुनियामें यह नियम लागू है।
इसी सादृश्यको हम मानव-समाजके भीतर संस्कृति कहते हैं। पीढ़ियोंकी आनुवंशि-
कता, दायभाग इसी तरह एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें संक्रमण करता है। संस्कृति उसी
तरह हमारे समाजकी आनुवंशिकता है, जैसे व्यक्ति अपनी शारीरिक और मानसिक
बनावटमें बाप-दादाओंकी आनुवंशिकता लिए पैदा होता है।

एक जगह, एक वातावरणमें, एक बोली बोलनेवाले, एक तरहके रीति-रिवाजों
लोग अपने पूर्वजोंसे दाय-भागमें प्राप्त संस्कृतिके उत्तराधिकारी
उनके जीवनके हरएक अंगमें व्याप्त रहती है। पर, मनुष्य स्थावर प्राणी
घर भी उसको रोकनेमें असमर्थ नहीं हुआ, यद्यपि, पिछले पाँच-छह हजार
वह प्रायः गृहवासी है। कभी उसके अपने भीतरकी महत्वाकांक्षा या साहस जोर
है और वह अपने घोंसलेको छोड़नेकेलिए मजबूर होता है। कभी दूसरी भूमिका

ऐश्वर्य उसके सामने प्रलोभन पेश करता और वह झुण्ड बाँध कर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो जाता। कभी उसकी भूमिमें दाने-दानेके लाले पड़ जाते और वह प्राण बचानेकेलिए दूसरी जगह भागनेके लिए मजबूर होता। हर परिवारमें हर, घरमें, हर पीढ़ी हीमें लड़कियाँ अपने पिताका घर छोड़कर दूसरे घरोंमें चली जाती हैं और सदियाँ पार करतेही वह अपने घरके लिए पराई हो जाती हैं। इस प्रकार पारिवारिक संस्कृतिमें भी परिवर्तन होता है। कभी हमारी जात-पाँतकी प्रथाके कारण यदि विवाहका क्षेत्र संकुचित रहता है, तो कभी वह अंतःप्रांतीय रूप भी धारण करता है। मुर्शिदाबादमें जाकर बस गए अग्रवाल अब बंगाली हैं। वे बंगाली भाषा बोलते हैं, बंगाली वेष रखते हैं और उन्होंने वहाँके रीति-रिवाज भी बहुत-से मान लिए हैं। बनारसकी लड़की उनके घरमें जाकर कुछ ही वर्षोंमें बंगालिन हो जाती है। राजपूत सामंत-परिवारोंमें तो यह अंतःप्रांतीयता और भी व्यापक रूपमें पाई जाती है। बल-रामपुरकी लड़की त्रिपुरामें जाकर बंगाली रानी बन जाती है। कूचबिहारकी बंगालिन राजकुमारी जयपुरमें जाकर मारवाड़िन बन जाती है, जोधपुरकी राजकुमारी पटियालामें जाकर पंजाबी रानी बन जाती है। उसी तरह बड़ौदाकी मराठिन जोधपुरकी मारवाड़ी रानी बन जाती है। सामंत पहले भी "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" वाक्यको मानते रहे हैं। ऐतिहासिक कालमें भी सामान्य वंशके राजवंश और निम्न वर्गके उच्च वर्गमें परिणत हो जानेमें लक्ष्मी और प्रभुता कारण होती रही है। २०वीं सदीमें हमने अपनी आँखोंके सामने ही ऐसा होते देखा, जब कि पहले जाट, गोंड़, कुर्मी, गहरिए आदि कहे जानेवाले सामंत शुद्ध राजपूत बन गए।

इस तरह हम देखते हैं, मनुष्यपर कितनोंही बाहिरोंके रहनेपर भी नए प्रभाव पड़ते हैं और वे नीचेसे प्रवेश करते देखे जाते हैं।

भारतमें बहुसंख्यक विदेशियोंका समागम हमेशासे होता आया है। कुछ दिनों तक वे तिल तंडुलकी तरह अलग-अलग से दीखते रहे, फिर नीर-क्षीरकी तरह मिलकर एक हो गए, यद्यपि कोशिश बहुत की गई कि तिल-तंडुलके रूपहीको स्थायित्व दिया जाये। आर्य आजसे साढ़े तीन हजार वर्ष पहले जब भारतमें आए, उस वक्त उनकी अलग अर्ध-घुमन्तू पशुपालोंकी संस्कृति थी। यहाँ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे भव्य नगरोंको बसाकर ताम्रयुगीन संस्कृतिवाले नर-नारी रहते थे। दोनों का खूनी संघर्ष हुआ। आर्य विजयी हुए। प्रभुताने हाथ बदला। फिर दूसरोंकी संस्कृति ने उन्हें प्रभावित किया। तिल-तंडुल-न्यायका अनुसरण करना आर्योंकी ओरसे कुछ शताब्दियों तक चला। लेकिन, वे अपनी नौकाको जलाकर इस पार आए थे। सप्तसिंधु (पंजाब) की भूमि ही उनकी भूमि थी, उसे छोड़कर और किसी स्थानको वे अपनी जन्मभूमि नहीं बना सकते थे। मनुष्यकी ओरसे उठाई गई रुकावटोंको प्रकृतिने छिन्न-भिन्न कर दिया और आर्य तथा प्राग्-आर्य इस भूमिके रहनेवाले

एक हो गए। यह एकता उनके विचारोंमें हुई, उनके परिधानोंमें हुई, उनके रीति-रवाजोंमें भी काफी प्रविष्ट हुई। फिर रक्त मिले बिना नहीं रहा। देवमाला तो दोनोंकी इतनी एक हुई, कि आर्योंके उत्तराधिकारी होनेका जबर्दस्त दावा होनेपर भी आज हिन्दू-धर्ममें आर्योंके देवता गौण हो गये। नये शास्त्र रचे गए, जो आर्योंके वेदोंके साथ जबानी जमाखर्च भर करते हैं, नहीं तो, उनकी मान्यताएँ या तो शुद्ध प्राग्-आर्य कालकी हैं या दोनोंके मिश्रणसे विकसित हुईं।

भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ शीत और तापकी तरह एक स्थानमें अलग-अलग नहीं रह सकतीं। उबलते दूधकी बोतलको ठंडे पानीके बरतनमें रखनेपर दूधका पारा नीचे उतरने और पानीका पारा ऊपर चढ़ने लगता है। कुछ देरमें दोनोंका ताप एक हो जाता है। मनुष्योंमें तो इस तरहका भी अन्तर नहीं है, क्योंकि वहाँ काँच-जैसा व्यवधान करनेवाली कोई ठोस चीज नहीं होती। वे इकट्ठे होते ही एक होने लगते हैं। जब पहले-पहल सिन्धुके तटपर दो संस्कृतियोंका समागम हुआ, तो दोनोंके मिलनेमें कितनी बाधाएँ थीं! उससे पाँच सौ वर्ष बाद दीवारें कुछ गिरीं, और पुराने देव इन्द्र, वरुणकी जगहपर निराकार ब्रह्म आ उपस्थित हुआ। उसके पाँच सौ वर्ष बाद दीवार धराशायी हुई, जब बुद्धने मानवके एक होनेका नारा लगाया और चांडालसे लेकर ब्राह्मण तकको अपने संघमें समान स्थान दिया; साथ ही पुराने सर्वशक्तिमान् देवताओं और उपनिषद्के आत्मा (ब्रह्म)की महिमाको घटा अपने अनीश्वरवादी अनात्मवादका प्रचार करते हुए संस्कृतियोंके बीचके अन्तरको खत्म करते बहुत जबर्दस्त कदम उठानेके लिए हमारे देशको मजबूर किया। और ढाई सौ वर्ष बीते, हमारे देशका सम्पर्क ग्रीक (यवन) जैसी संस्कृत और वीर जातिसे हुआ। दोनोंमें एक समय संघर्ष हुआ। राजनीतिक संघर्षने सांस्कृतिक संघर्षका भी कुछ रूप लिया। इसी संघर्षका अवशेष है, जो कि 'यवन' शब्द हमारे यहाँ घृणार्थ वाचक माना जाने लगा। लेकिन, यह स्थिति देर तक नहीं रही। हजारों नहीं, लाखोंकी संख्यामें यवन अपनी देनोंको देते हमारी जातिमें विलीन हो गए। उन्होंने ज्योतिषकी कितनी ही बातें हमें दीं। हमारे महान् ज्योतिषी वराहमिहिर (ईसा की छठी शताब्दी)ने खुलकर उनकी प्रशंसा की। केन्द्र उन्हींकी भाषाका शब्द है, जिसे वे केन्त्र कहा करते थे। फलित ज्योतिषमें होराचक्रकी वर्णमाला ग्रीक वर्णमालासे है, यदि उसे अ इ उ ए ओ से शुरू करें। उनकी और हमारी कलाके मिश्रणसे गान्धार कलाका विकास हुआ, जो हमारे लिए अभिमानकी चीज है।

ग्रीक लोगोंके बाद ही शक-कुषाण हमारे यहाँ आए। वे भी अपनी सांस्कृतिक ... साथ हममें विलीन हुए। उनके बाद आनेवाले हेफ्ताल (श्वेतहूण) भी उसी तरह हममें विलीन हुए। ये दोनों अपने साथ सूर्य देवताको लाए थे। वैसे सूर्य देवता

पहलेसे भी हमारे यहाँ थे, पर, वह मध्यएसियाके बूट पहननेवाले नहीं थे। बूटधारी सूर्य आज हजारोंकी तादादमें हमारे देशके कोने-कोनेमें मिलते हैं। इनके पैरोंमें वही बूट है, जिसे मथुरामें मिली कनिष्ककी मूर्तिके पैरोंमें हम देखते हैं। उन्होंने गीत और संगीतमें भी कितनी ही अपनी चीजें दीं, जिन्हें हम रूस और मध्य-एसियाके लोक-गीतोंकी तुलना करनेपर पहचान सकते हैं। उनके बूटधारी देवता हमारे मंदिरोंमें बैठे, यह अनहोनी-सी बात थी। लेकिन, अनहोनी होनी हो गई और हमने हजार वर्ष तक उन बूटोंके सामने सिर झुकाया।

संस्कृतियोंका समागम हमारे देशमें बराबर होता रहा और बराबर वे मिलकर एक होती रहीं, इसे हम अपने इतिहासमें बराबर देखते हैं। ८ वीं सदीमें सिंधपर अरबों, ११ वीं सदीमें पंजाबपर तुर्कोंके शासनके कायम होनेपर एक नई संस्कृतिका हमारे देशसे संपर्क हुआ। यह संस्कृति जातीय नहीं, बल्कि अंतर्जातीय थी। इस्लाम अंतर्जातीय संस्कृति का प्रतीक था। वह जातीय भेद-भावको कमसे कम सिद्धान्तके तौरपर माननेकेलिए तैयार नहीं था। मध्य-एसियाके तुर्क मुसलमान होनेसे पहले कट्टर बौद्ध थे। बौद्धके रूपमें उन्होंने अरब विजेताओंके दाँत खट्टे किए। कुछ दिनकेलिए तुर्कोंकी तलवार ठंडी हुई। इसी बीच वह बौद्धसे मुसलमान हो गए। फिर तलवारमें ज्वाला उठी और ऐसी जबर्दस्त कि उसने अरबोंको हटाकर शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। अरबोंसे हमारा संपर्क थोड़े ही समय तक सिंधमें रहा। उसके बाद इस्लामीकी लहर हमारे देशमें तुर्कोंके रूपमें आई। पंजाबमें प्रथम मुस्लिम शासन स्थापित करनेवाला महमूद गजनवी तुर्क था। गोरी दो भाई चन्द वर्षोंकेलिए बिजलीकी तरह चमके और लुप्त हो गए। फिर उनके सेनापति कुतुबुद्दीनने भारतके शासनकी बागडोर सँभाली। कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्क था और उसका दामाद अल्तमश गर्लोक। गुलाम तुर्क थे, उनके उत्तराधिकारी खलजी तुर्क थे, उनके उत्तराधिकारी तुगलक भी तुर्क थे। उसके बाद अंतिम मुस्लिम राजवंश मुगल मंगोल नहीं बल्कि तुर्क था। इन तुर्कोंको शताब्दियों पीछे जाकर जब हम देखते हैं, तो वे बौद्ध मिलते हैं। अगर उसकी जड़ गहराई तक हो तो, धर्म बदलनेसे संस्कृतिका बिलकुल उच्छेद नहीं होता, जो तुर्क हमारे देशमें आए, वे इस्लामके जहादी झंडेको लेकर आए, लेकिन उनके अवचेतनमें पुराने सस्कार (संस्कृति)का बिलकुल अभाव हो गया, यह आशा नहीं करनी चाहिए।

यदि तुर्कों और मोगलोंके साथ एक जबर्दस्त झंडा न होता, तो शायद हमारे यहाँ यह बिलगाव न होने पाता, जिसे हम अगली सात या नौ शताब्दियोंमें देखते हैं। खुसरो फारसीका अतिमहान् कवि है, उसके तीन-चार सबसे बड़े कवियोंमें से एक है। उसका बाप मध्य-एसियाका तुर्क था, जो चंगेजी मंगोलोंके आक्रमणके समय दूसरे

इस्लामी सल्तनती तुर्क भारतवासी की तरह भारत में बस गया [illegible]। इसकी तो हिंदुओं [illegible] प्रारंभिक शताब्दीके मुसलमान सभी हिंदुस्तानी बातों और रवाजोंको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखते थे। [illegible] भारतीय संस्कृतिके [illegible] [illegible] किया और [illegible] विविध इस्लामी संस्कृति [illegible] हिस्सेदारी [illegible]। उनकी [illegible] तुर्किस्तान है। [illegible] [illegible] निर्णय नहीं किया। [illegible] यह मैत्री [illegible] उसका पुराना आधार बिलकुल बदल ही गई।

दोनों संस्कृतियाँ मिलकर एक-रूप बनने जा रही थीं, पर, तुर्कोंके आ जानेसे वह बात रुक गई। मुसलमान न हिंदुओंकी बातोंको कबूल करते थे, [illegible] लेकिन, [illegible] मुसलमानोंके हाथमें सत्ता भी आनेके लिए तैयार था [illegible] हिन्दू अपना धर्म छोड़कर इस्लाम ग्रहण करता, तो हिंदू बिरादरीसे निकाल दिया जाता। इस्लाम [illegible] मानने [illegible] रहा। [illegible] देनेके बाद सन्तोंके मुसलमान बना गया और ऐसा मुसलमान, जो अपने सगे भाइयोंसे बिछुड़ जाता। दोनों संस्कृतियाँ अलग अलग रहकर विकसित होने लगीं।

विभिन्न संस्कृतियोंका समागम हमेशा शान्तिमय तरीकोंसे नहीं हुआ। दुनियामें बौद्ध धर्म ही इसका अपवाद कहा जा सकता है, कि उसने शान्तिमय तरीकोंको इस्तेमाल कर सफलता पाई। यह बहुत हद तक सच है, लेकिन, फिर भी पराई संस्कृतिका दूसरे देशमें जाकर स्थानीय संस्कृतिके [illegible] बाधाएँ अवश्य उपस्थित हुई हैं। बौद्ध-धर्मने चीन, जापान, तिब्बत, मध्य-एशिया सभी जगह सह-अस्तित्वके सिद्धान्तको माना ही नहीं, बल्कि, वहाँकी संस्कृतियोंकी रक्षाकी भी कोशिश की। वहाँकी कला, वहाँके इतिहास ही नहीं, वहाँके देवताओंको भी बरबाद नहीं होने दिया। इसी कारण, उसे हिंसाका रास्ता नहीं लेना पड़ा। पर, भारतमें तुर्कोंके साथ जो संस्कृति आई, वह सह-अस्तित्वके सिद्धान्तको मानना नहीं चाहती थी। राजनीतिक प्रभुत्वके लिए जो युद्ध हुए, उन्होंने [illegible] रूप धारण किया जो बहुत अधिक दिनों तक जारी रहे। यदि सांस्कृतिक असहिष्णुता साथमें न रहती, तो आक्रामक और प्रतिरोधी जल्द ही किसी निर्णयपर पहुँच जाते। पर, एक भूमिमें जब दो संस्कृतियाँ रहनेके लिए आ पहुँचीं, तो उन्हें समझौता करना ही था। एकके अनुयायियोंके साथ [illegible] लुप्त करना मुश्किल था। ऐसा करनेपर करोड़ों आदमियोंकी प्राणहीन लाशें इतनी बीमारी पैदा करतीं, जिससे विजेताओंका भी जीवन संकटमें पड़ जाता।

इस्लामी और हिंदू संस्कृतियोंके इस भीषण संघर्षको मिटाने या नरम करनेकी तरफसे कोशिश होने लगी। मुसलमानोंमें ऐसे सूफी (सन्त) पैदा हुए, जो [illegible] और उनकी संस्कृतिको स्नेह और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। हिंदुओंमें

नानक और दूसरे सन्त इसी रास्तेपर चलनेकेलिए उपदेश देने लगे। मुसलमान राजनीतिक नेताओंने भी हिन्दू राजनीतिक नेताओंसे मित्रता करनी चाही; लेकिन, वह स्थायी न हो पाई।

विदेशसे आए लोग धीरे-धीरे भारतीय बनते गये। गुलामोंसे तुगलकोंके जमाने तक तुर्कोंकी जन्मभूमि बौद्ध-मंगोलोंके हाथोंमें थी, इसलिए वह उस भूमिसे क्या आशा कर सकते थे या उसका क्या अभिमान उनके मनमें हो सकता था? इससे भी उन्हें समझौतेका हाथ बढ़ानेकेलिए मजबूर होना पड़ा। पर, भारतीय जीवनमें पूरे तौरसे सांस्कृतिक एकता स्थापित करनेका जबर्दस्त प्रयत्न अकबरसे पहले नहीं हो सका। अकबरने एक स्वप्न देखा, जिसको यथार्थ करनेका आरम्भ उसने अपने घरसे किया। जोधाबाई हिन्दू राजपूतनी और अकबरकी रानी थी। मुगल हरममें आकर भी वह मुसलमान नहीं बनी। आज भी फतहपुर-सीकरीमें जोधाबाईका महल मौजूद है। वहीं उसके ठाकुरजी कभी रहते थे, जिसकी वह भक्तिभाव से आरती उतारती थी। उसका पति उस मन्दिरमें उसी तरह श्रद्धा-सम्मान प्रकट करने पहुँचता, जैसे कोई राजपूत। उसी तरह सिरमें टीका लगवाता और झुककर हाथमें पुष्पमाला लेता। मुसलमान हिन्दूकी लड़कीसे ब्याह करे, यह नई बात नहीं थी। बहुतसे मुसलमानोंने हिन्दू लड़कियोंको ब्याहा, लेकिन, वे ब्याह होते ही मुसलमान हो जातीं। अकबरने इससे अपने स्वप्नको पूरा होते नहीं देखा। इसीलिए उसने कहा, ऐसे सम्बन्धमें धर्म न बदला जाय। वह एकही अंशमें सफल हुआ, सो भी सिर्फ अपने घरमें। उसने चाहा कि शाहजादियाँ राजपूतोंसे ब्याह करें और राजपूत महलमें अपनी मस्जिदमें नमाज पढ़ें, धर्म वैयक्तिक हो और भाव दोनोंके एक हों। कितना महान् स्वप्न था और कितना महान था वह पुरुष! उसने आजसे चार शताब्दियों पहले उस कामको करनेकेलिए सक्रिय कदम उठाया, जो आज २०वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें भी बहुतोंका शेखचिल्लीका महल सा मालूम होता है।

साहित्यिक क्षेत्रमें संस्कृतियोंका समागम बल्द फलप्रद हुआ। हिन्दीके प्रथम कवियोंको पैदा करनेका श्रेय न हिन्दुओंको है, न हिन्दू-शासनको। यह श्रेय मुसलमानों हीको देना पड़ेगा। अपवाद सिर्फ विद्यापति हैं, जो जौनपुरकी बादशाहतसे कम प्रभावित नहीं थे। जौनपुरने हिन्दीको महान् कवि जायसीको दिया। कुतबन, मंझन वहींके नवरत्नोंमें हैं। अवधीकी कविताके वैभवशाली महलकी नींव ही रखनेवाले नहीं, बल्कि उसकी नींव तैयार करनेवाले यही मुस्लिम कवि हैं, जिनके ऊपर तुलसीदासने अपना भव्य प्रासाद बनाया। बंगालके भी आदि कवि बंगालके मुस्लिम बादशाहोंके जमाने ही में हुए। यह दुःखकी बात है, कि जौनपुरकी परम्परा मुसलमानोंमें बहुत आगे नहीं बढ़ी। बंगालकी परम्परा आगे बढ़ी और वहाँके मुसलमानोंका सदा अपनी भाषासे पूरा स्नेह रहा। पाकिस्तान बननेपर जब मुस्लिम

लीगने बंगालको अपदस्थ करना चाहा, तब वहांके मुसलमानोंने अपने प्राणोंकी आहुति दी और संविधान-सभाने बँगलाको पाकिस्तान गणराज्यकी एक राष्ट्रभाषा मान लिया।

वर्तमान हैदराबादमें स्थापित बहमनी रियासतोंने हिन्दीकी ओर ध्यान दिया लेकिन, उनकेलिए मुश्किल यह था, कि वह हिन्दी-क्षेत्रसे बाहर अवस्थित थीं और फारसीका पक्षपात उनके रास्तेमें भारी बाधक था। जब हिन्दीको अपनानेमें रुचि भी हुई, तो उन्होंने जौनपुरके कवियोंके रास्तेके महत्वको नहीं समझ पाया। जौनपुरके कवियोंने जब इस्लामके सूफी वेदान्त और प्रेममार्गको अपनी कविताका विषय बनाया, तब भी उन्होंने भाषा, छन्द शुद्ध देशी रखे और कविताकी शिल्प-शैली भी देशकी परम्पराके अनुसार रखा। दक्षिणके कवि ऐसा ही करते, यदि वे मराठी तेलगुके क्षेत्रमें न रहकर हिन्दीके क्षेत्रमें होते। उन्होंने भाषामें अरबी-फारसीके शब्दोंको शुरू किया। पहले दरवाजेको जराही सा खोला, लेकिन, अगली पीढ़ियोंने उसे पूरे तौरसे खोल दिया। इस प्रकार अनावश्यक और अशास्त्रीय विदेशी शब्द भारी संख्यामें हिन्दीमें चले आए। उसे हिन्दीके अपने क्षेत्र (कुरुदेश)के लोग सुनते, वे समझ नहीं पा सकते थे। बीचमें एक जबर्दस्त दीवार खड़ी की गई, जिस दीवारका पता जायसी और कुतुबनमें नहीं मिलता, न बंगालके कवियोंमें। छन्दमें भी उन्होंने अरबीके छन्दों हीको लिया, फारसी नहीं, अरबी छन्द, क्योंकि पुराने फारसी छन्द अरब-विजयके बाद लुप्त कर दिये गये। यही बात उसमानों और कविशिक्षामें भी हुई। फारसीका मोह छोड़कर देशी भाषाकी तरफ बढ़ा कदम था और उसके कदम लाभ भारतके बहुत बड़े क्षेत्रको हुआ, इसका कम महत्व नहीं है। लेकिन, हिन्दी और इस नई शैलीका भेद भी साथ-साथ पैदा हो गया, जो चार-पाँच शताब्दियों बाद आज भी ऐसा रूप लिए हुए है कि समझौतेका कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता : पर, ऐसा समझना गलत है। समस्या जब अनावश्यक और जटिल हो जाती है, तब उसका सुगम हल भी पास ही मिल जाता है।

साहित्य संस्कृतिका एक अंग है। हिन्दी-उर्दू-साहित्यकी समस्या हमारी सांस्कृतिक समस्या भी है। जैसा कि आम तौरसे देखा जाता है, संस्कृतियोंके समागम होनेपर पहले उनमें तीव्र विलगावकी प्रवृत्ति देखी जाती है, जो हमेशा नहीं रहती। इस्लाम और भारतीय संस्कृतियोंके द्वन्द्वका एक रूप हिन्दी-उर्दू-साहित्यके विलगावको मानना है। भारतमें भी सब जगह इस तरहका विलगाव नहीं देखा जाता। बंगालके [illegible] साहित्यमें हिन्दू मुसलमान एक रहे। उनमें [illegible] जाती है। आसाममें मुसलमानी धर्म और जाती संस्कृति [illegible] कुरान और मुहम्मदके अनुयायी, बाबा और [illegible] [illegible] अपने पुराने सांस्कृतिक प्रवाहमें परिचित [illegible] हैं।

महाभारतके वीरोंकी अर्चना कर सकते हैं, अपने नामोंके साथ मुकर्म, शाखामि-त्रिवय आदि गोत्र-नाम रख सकते हैं, अपनी प्राचीन कला और इतिहासका अभिमान कर सकते हैं। भारतमें यदि वैसी भावना रहती, तो कभी झगड़ा ही नहीं पैदा होता। यदि भारतीय मुसलमानोंको अपने भविष्यका मालिक बननेका अधिकार होता, तो यही होता, जैसाकि जावामें हुआ; लेकिन, यहाँ विदेशी शासक आए। वह यहाँ अपने ऐसे अनन्य भक्त पैदा करना चाहते थे, जो दूसरोंके साथ सांस्कृतिक एकता न रखें। हालमें अँग्रेजोंके शासनमें यही देखा गया। पादरी भारतीयोंके नाम जेम्स, मार्टिन, पावल बनानेकी धुनमें थे। हमारे आगराके एक मित्र श्यामलालसे सेमुअल ऐवक बना दिये गये। अब उनके पुत्र, हिन्दी और संस्कृतके विद्वान्, जगदीश-कुमार आइजक हैं।

संस्कृति और धर्म एक चीज नहीं है, इसका उदाहरण मैं स्वयं हूँ। बुद्धके प्रति बहुत सम्मान रखते हुए भी, उनके दर्शनको बहुत हद तक मानते हुए भी मैं अपनेको बौद्ध-धर्मका अनुयायी नहीं कह सकता। अनुयायी होता, तो भी भारतीय संस्कृतिको अपनी प्यारी संस्कृति मानता, पूरा नास्तिक होते हुए भी भारतीय संस्कृतिके प्रति मेरा वैसा ही आदर और अटूट सम्बन्ध है। इसलिए मैं दावेके साथ अपनेको उस संस्कृतिका उत्तराधिकारी मानता हूँ। किसीकी मजाल नहीं, कि मुझे इस हकसे वंचित कर सके, या उस स्वतन्त्र विचारोंकेलिए मुझसे सम्बन्ध-विच्छेद कर सके। जायसीने साहित्यिकके साथ अपनी अभिन्नता रखी और आज जायसी कट्टर हिन्दूकेलिये भी शिरोधार्य हैं।

उर्दूने भारतीय साहित्यिक परम्परासे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहा, किन्तु वह भाषा तो हमारी ही थी, उसका व्याकरण तो हिन्दीका ही था, उसके बोलनेवाले और साहित्यकार तो हिन्दी थे। कितने दिनों तक यह हठधर्मी चलती? आज उस हठधर्मीके हटनेका समय है। इस वक्त मुँह फेर कर हमें अतीतकी ओर नहीं, बल्कि भविष्यकी ओर देखना है। जिस तरह हिन्दीकी लिपि नागरी है, उसी तरह उर्दूकी भी नागरी लिपि हो जाय—इसका हर्गिज यह मतलब नहीं, कि उर्दू वाले अरबी लिपिका उसी तरह बहिष्कार करें, जैसे मध्य-एसिया और तुर्कीकी भाषाओंने किया है। अरबी अक्षरोंमें भी उर्दूकी पुस्तकें छपें, नागरी अक्षरोंमें भी छपें, जो जिस लिपिमें चाहे उसमें उसे पढ़े।

भारतमें बहुत-सी संस्कृतियाँ समय-समय पर आईं। उन्होंने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया। गंगामें गंगोत्रीसे निकलनेके बाद बहुत-सी नदियाँ आकर मिलीं। जान्हवी, मन्दाकिनी, अलकनन्दा धौली आदि पहाड़ी नदियाँ ही नहीं, बल्कि, मैदानमें यमुना, रामगंगा, गोमती, सरजू, सोन, गंडक, कोसी जैसी विशाल नदियाँ भी आकर मिलीं और सबने गंगाको प्रभावित किया। लेकिन, सब मिलकर गंगा बन गईं। इसी

मानना चाहिये। कुरु और पंचालके जोड़े जनपद थे, जिनमें आपसमें कितनी ही घनिष्ठता और समानता थी, जिसके कारण वे जुड़वा माने गये। सारे हिन्दू कालमें हमारे राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र यही दोनों जनपद रहे, यह तो नहीं कह सकते, क्योंकि बीचमें बुद्ध-कालसे गुप्त काल (ईसा के पूर्व और पश्चिमकी पाँच शताब्दियों-कुल मिलाकर हजार वर्ष) तक मगध केन्द्र रहा। सबसे प्रबल और प्रभावशाली केन्द्रकी भाषाका महत्व अधिक होना यह स्वाभाविक है।

सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानता आदिम कालमें रही, द्वितीय कालमें पालीकी, तृतीय कालमें मगधकी भाषा और संस्कृतकी, अन्तिम कालमें पंचालकी भाषा और संस्कृतकी। आदिम कालमें सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानताका अवशेष हमारे सामने वेद और ब्राह्मणके रूपमें है। उपनिषद् काल हीमें सप्तसिन्धु अब प्रसिद्धि नहीं रखता था। उसकी जगह अब कुरु, पंचाल, विदेह, काशी आदि जनपद प्रसिद्ध हुए। सप्तसिन्धुका सबसे पूर्वी भाग अर्थात् जमुना और सतलुजके बीचका भाग कुरुजांगलके नामसे प्रसिद्ध था। यह इलाका जांगल क्यों कहा जाता था? क्या यहाँ खाडव वन आदि जैसे वन ज्यादा थे, अथवा गंगा-जमुना के बीचके मुख्य कुरु देशकी अपेक्षा यह अधिक जंगलप्राय था। यह तो निश्चित ही था, कि कुरु और कुरु जांगल एक ही लोगों के देश थे और इन दोनोंमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि जमुना उसमें विभेद नहीं डाल सकती थी। अधिक आबाद न होनेके कारण ही दुर्योधनने युधिष्ठिरको इस भागको देकर टरकाना चाहा था और यहीं पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्लीका प्राचीनतम नाम)को बसाया।

बुद्ध-कालमें अब संस्कृत नहीं बल्कि पालियोंको जीवित प्रचलित भाषा होनेका मौका मिला। पालि आजकल यद्यपि एक खास भाषाका नाम पड़ गया है, पर हम इस उस भाषा-जातिका नाम भी दे सकते हैं, जोकि बुद्ध-कालमें उत्तरी भारतके भिन्न-भिन्न जनपदोंमें बोली जाती थी और जिनमेंसे मागधीका ही कुछ थोड़ा-सा परिवर्तित रूप पालि त्रिपिटकमें मिलता है। इस समय कुरु देशकी कौरवी पालि भाषा थी। पर पालि ही क्या प्राकृत और अपभ्रंश कालके भी कौरवीके नमूने हमारे पास तक नहीं पहुँचे हैं। केवल तुलनासे ही हमें मानना पड़ता है कि पालियोंके कालमें कुरु जनपदमें कौरवी पालि रही होगी। प्राकृतोंके कालमें कौरवी प्राकृत और अपभ्रंशों के कालमें कौरवी अपभ्रंश थी।

उपनिषद्-कालके सबसे महान् ऋषि प्रवाहण जैवलि, सत्यकाम जाबाल, याज्ञवल्क्य कुरु-पंचालके रहने वाले थे। ब्रह्मज्ञानके अखाड़ेमें कुश्ती मारनेकेलिए कुरु पंचालके मल्ल विदेह तक पहुँचते थे, यह हमें उपनिषद् बतलाते हैं। कुरुपंचाल उपनिषदोंकी भूमि थी। बुद्ध-कालमें भी कुरुकी महिमा घटी नहीं थी। अब भी वह प्रतिभावानोंका देश माना जाता था, बुद्धने अपने "महासतिपट्ठान", "महानिदान"

तरह प्राचीन कालमें आई हुई संस्कृतियाँ एक होकर भारतीय संस्कृतिके रूपमें प्रवाहित होने लगीं। इस्लामके साथ मध्य-एसियाकी संस्कृति हमारे देशमें आई। उसका भी उसी प्राचीन कालसे चली आई सांस्कृतिक गंगाका अभिन्न अंग बनना अनिवार्य था। कितने ही बिलगावके भाव पैदा करनेपर भी वह बहुत-कुछ एक हो गई। शक अपने लम्बे चोगे और घुटनों तकके बूटके साथ हिन्दुस्तानमें आए थे। उसी मध्य-एसियासे आनेवाले तुर्क भी लम्बे चोगे और लम्बे बूटवाले थे। मुगल—जो वस्तुतः तुर्क थे—भी बहुत-कुछ उन्हींके जैसे लिबासमें आये थे। लेकिन, अकबर, जहाँगीर और उनके वंशजोंने चौबन्दी पहनी। भारतीय सामन्त गुप्तकाल हीसे शकोंकी पोशाकको अपनाते हुये पाजामा पहनने लगे थे। मुगल बेगमें पाजामेके ऊपर पेशवाज पहनती थीं, जो कुर्ती और घाघरेका एकमें सिला हुआ रूप था। पिछली शताब्दी तक राजपूतानेकी रानियाँ उसी पोशाकमें रहती थीं, जिसमें मुगल बेगमें। खानेकी बहुत-सी चीजें हमारे लोगोंने बाहरवालोंसे सीखीं और कुछको बाहरवालोंसे मिलकर स्वयं बनाया। कला, साहित्य सभीपर कितने ही बाहरी प्रभाव हमने आत्मसात् कर लिये। भारतीय संस्कृति गंगाके प्रवाहकी तरह ही बाहरी कभी निश्चल नहीं रही, कभी विलग नहीं रही। वह सदा देने और लेनेकेलिये तैयार रही। अकबरने राजनीतिक एकता ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक समन्वयका भी महान् काम किया।

परिशिष्ट ३. भाषाका भाग्य

आदमीके भाग्यकी तरह भाषाका भाग्य भी खुलता है। किसी भाषाका भाग्य जगता है और फिर सो जाता है। कभी-कभी किसीका सोया भाग्य भी फिरसे जाग उठता है। हमारे यहाँकी भाषाओंमें सबसे प्राचीन वह है, जोकि ऋग्वेदके रूपमें हमारे सामने है। वैदिक आर्योंसे पहले ही सभ्यताके मध्याह्नमें पहुँचे लोगोंकी भाषाकी ही सन्तानें दक्षिणकी भाषायें हैं, जिनमें सबसे पुराने नमूने तमिलके मिलते हैं, पर वह ईसवी-सन् से पहलेके नहीं हैं। ऋग्वेदकी भाषा यद्यपि अपने उसी रूपमें अक्षुण्ण नहीं है, जैसीकि वह सप्तसिन्धु (यमुनासे खैबर, हिमालयसे मरुभूमि तक)में ईसा-पूर्व ११ वीं-१२ वीं शताब्दी-में बोली जाती थी, क्योंकि शताब्दियों तक वह कंठाग्र करके रखी गई। जब कागजपर उतारनेमें भाषामें क्षेपक और परिवर्तन हो जाते हैं, तो शताब्दीमें पाँच पीढ़ी बदलने वाले कंठ कैसे उसे अक्षुण्ण रख सकते थे।

सप्तसिन्धुकी भाषाका सर्वश्रेष्ठ माना जाना स्वाभाविक था, क्योंकि यही आर्योंकी वह पवित्र भूमि था, जिसकी नदियों और कूपों तकका यश पाणिनिके समय (ई० पू० ४थी सदी) तक गाया जाता था। वेद कालमें सप्तसिन्धु हमारे देशका सबसे बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र रहा। उपनिषद् कालमें वह जमुनासे ही नहीं गंगासे भी पूर्व बढ़कर कुरु-पंचाल देश तक पहुँच गया और सांस्कृतिक हीरे तो विदेह (तिरहुत) तक पड़ चुके थे। कुरु-पंचाल सप्तसिंधुसे बहुत नजदीक था, बल्कि उसे सप्तसिन्धुका ही बढ़ा हुआ भाग

मानना चाहिये। कुरु और पंचालके जोड़े जनपद थे, जिनमें आपसमें कितनी ही घनिष्ठता और समानता थी, जिसके कारण ये जुड़वा माने गये। सारे हिन्दू कालमें हमारे राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र यही दोनों जनपद रहे, यह तो नहीं कह सकते, क्योंकि बीचमें बुद्ध-कालसे गुप्त काल (ईसा के पूर्व और पश्चिमकी पाँच शताब्दियों—कुल मिलाकर हजार वर्ष) तक मगध केन्द्र रहा। सबसे प्रबल और प्रभावशाली केन्द्रकी भाषाका महत्व अधिक होना यह स्वाभाविक है।

सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानता आदिम कालमें रही, द्वितीय कालमें पालीकी, तृतीय कालमें मगधकी भाषा और संस्कृतकी, अन्तिम कालमें पंचालकी भाषा और संस्कृतकी। आदिम कालमें सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानताका अवशेष हमारे सामने वेद और ब्राह्मणके रूपमें है। उपनिषद् काल हीमें सप्तसिन्धु अब प्रसिद्धि नहीं रखता था। उसकी जगह अब कुरु, पंचाल, विदेह, काशी आदि जनपद प्रसिद्ध हुए। सप्तसिन्धुका सबसे पूर्वी भाग अर्थात् जमुना और सतलुजके बीचका भाग कुरुजांगलके नामसे प्रसिद्ध था। यह इलाका जांगल क्यों कहा जाता था? क्या यहाँ खाडव वन आदि जैसे वन ज्यादा थे, अथवा गंगा-जमुना के बीचके मुख्य कुरु देशकी अपेक्षा यह अधिक जंगलप्राय था। यह तो निश्चित ही था, कि कुरु और कुरुजांगल एक ही लोगों के देश थे और इन दोनोंमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि जमुना उसमें विभेद नहीं डाल सकती थी। अधिक आबाद न होनेके कारण ही दुर्योधनने युधिष्ठिरको इस भागको देकर टरकाना चाहा था और यहाँ पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्लीका प्राचीनतम नाम)को बसाया।

बुद्ध-कालमें अब संस्कृत नहीं बल्कि पालियोंको जीवित प्रचलित भाषा होनेका मौका मिला। पालि आजकल यद्यपि एक खास भाषाका नाम पड़ गया है, पर इसे हम उस भाषा-जातिका नाम भी दे सकते हैं, जाकि बुद्ध-कालमें उत्तरी भारतके भिन्न-भिन्न जनपदोंमें बोली जाती थी और जिनमेंसे मागधीका ही कुछ थोड़ा-सा परिवर्तित रूप पालि त्रिपिटकमें मिलता है। इस समय कुरु देशकी कौरवी पालि भाषा थी। पर पालि ही क्या प्राकृत और अपभ्रंश कालके भी कौरवीके नमूने हमारे पास तक नहीं पहुँचे हैं। केवल तुलनासे ही हमें मानना पड़ता है कि पालियोंके कालमें कुरु जनपदमें कौरवी पालि रही होगी। प्राकृतोंके काममें कौरवी प्राकृत और अपभ्रंशों के कालमें कौरवी अपभ्रंश थी।

उपनिषद् कालके सबसे महान् ऋषि प्रवाहण जैवलि, सत्यकाम जाबाल, याज्ञवल्क्य कुरु-पंचालके रहने वाले थे। ब्रह्मज्ञानके अखाड़ेमें कुश्ती मारनेके लिए कुरु पंचालके मल्ल विदेह तक पहुँचते थे, यह हमें उपनिषद् बतलाते हैं। कुरुपंचाल उपनिषदोंकी भूमि थी। बुद्ध-कालमें भी कुरुकी महिमा घटी नहीं थी। अब भी वह प्रतिभावानोंका देश माना जाता था, बुद्धने अपने "महासतिपट्ठान", "महानिदान"

तरह प्राचीन कालमें आई हुई संस्कृतियाँ एक होकर भारतीय संस्कृतिके रूपमें दवा-हित होने लगीं। इस्लामके साथ मध्य-एसियाकी संस्कृति हमारे देशमें आई। उसको भी उसी प्राचीन कालसे चली आई सांस्कृतिक गंगाका अभिन्न अंग बनना अनिवार्य था। कितने ही बिलगावके भाव पैदा करनेपर भी वह बहुत-कुछ एक हो गई। शक अपने लम्बे चोगे और घुटनों तकके बूटके साथ हिन्दुस्तानमें आए थे। उसी मध्य-एसियासे आनेवाले तुर्क भी लम्बे चोगे और लम्बे बूटवाले थे। मुगल—जो वस्तुतः तुर्क थे—भी बहुत-कुछ उन्हींके जैसे लिबासमें आये थे। लेकिन, अकबर, जहाँगीर और उनके वंशजोंने चौबन्दी पहनी। भारतीय सामन्त गुप्तकाल हीसे शकोंकी पोशाकको अपनाते हुये पजामा पहनने लगे थे। मुगल बेगमें पाजामेके ऊपर पेश-वाज पहनती थीं, जो कंचुकी और घाघरेका एकमें सिला हुआ रूप था। पिछली शताब्दी तक राजपूतानेकी रानियाँ उसी पोशाकमें रहती थीं, जिसने मुगल ... खानेकी बहुत-सी चीजें हमारे लोगोंने बाहरवालोंसे लीं और कुछको बाहर मिलकर स्वयं बनाया। कला, साहित्य सभीपर कितने ही बाहरी प्रभाव हमने आत्मसात् कर लिये। भारतीय संस्कृति गंगाके प्रवाहकी तरह ही बाहरी कभी निश्चल रही, कभी विलग नहीं रही। वह सदा देने और लेनेकेलिये तैयार रही। अ... राजनीतिक एकता ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक समन्वयका भी महान् काम किया।

परिशिष्ट ३. भाषाका भाग्य

आदमीके भाग्यकी तरह भाषाका भाग्य भी खुलता है। किसी भाषाका जगता है और फिर सो जाता है। कभी-कभी किसीका सोया भाग्य भी फिरसे उठता है। हमारे यहाँकी भाषाओंमें सबसे प्राचीन वह है, जोकि ऋग्वेदके रूपमें सामने है। वैदिक आर्योंसे पहले ही सभ्यताके मध्याह्नमें पहुँचे लोगोंकी भाषा सन्तानें दक्षिणकी भाषायें हैं, जिनमें सबसे पुराने नमूने तमिलके मिलते हैं, पर ईसवी-सन् से पहलेके नहीं हैं। ऋग्वेदकी भाषा यद्यपि अपने उसी रूपमें ... रहा है, जैसोंकि वह सप्तसिन्धु (यमुनासे लेकर, हिमालयसे मरुभूमि तक)में ... पूर्व ११ वीं-१२ वीं शताब्दी-में बोली जाती थी, क्योंकि शताब्दियों तक वह ... करके रखी गई। जब कागजपर उतारनेमें भाषामें क्षेपक और परिवर्तन हो ... तो शताब्दीमें पाँच पाठ बदलने वाले कंठ कैसे उसे अक्षुण्ण रख सकते थे।

सप्तसिन्धुकी भाषाका सर्वश्रेष्ठ माना जाना स्वाभाविक था, क्योंकि यही आर्य ... वह पवित्र भूमि था, जिसकी नदियां और कूपों तकका यश पाणिनिके समय (ई० पू० ... सदी) तक गाया जाता था। वेद कालमें सप्तसिन्धु हमारे देशका सबसे बड़ा सांस्कृ-तिक केन्द्र रहा। उपनिषद् कालमें यह जमुनासे ही नहीं गंगासे भी पूर्व बढ़कर ... पंचाल देश तक पहुँच गया और सांस्कृतिक दृष्टिसे तो विदेह (तिरहुत) तक था ... कुरु-पंचाल सप्तसिन्धुसे बहुत नजदीक था, बल्कि उसे सप्तसिन्धुका ही बढ़ा हुआ ...

मानना चाहिये। कुरु और पंचालके जोड़े जनपद थे, जिनमें आपसमें कितनी ही प्रतिस्पर्धा और समानता थी; जिसके कारण ये जुड़वा माने गये। सारे हिन्दू कालमें हमारे राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र यही दोनों जनपद रहे, यह तो नहीं कह सकते, क्योंकि बीचमें बुद्ध-कालसे गुप्त काल (ईसा के पूर्व और पश्चिमकी पाँच शताब्दियों-कुल मिलाकर हजार वर्ष) तक मगध केन्द्र रहा। सबसे प्रबल और प्रभावशाली केन्द्रकी भाषाका महत्व अधिक होना यह स्वाभाविक है।

सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानता आदिम कालमें रही, द्वितीय कालमें पालीकी, तृतीय कालमें मगधकी भाषा और संस्कृतकी, अन्तिम कालमें पंचालकी भाषा और संस्कृतकी। आदिम कालमें सप्तसिन्धुकी भाषाकी प्रधानताका अवशेष हमारे सामने वेद और ब्राह्मणके रूपमें है। उपनिषद् काल होमें सप्तसिन्धु अब प्रसिद्ध नहीं रखता था। उसकी जगह अब कुरु, पंचाल, विदेह, काशी आदि जनपद प्रसिद्ध हुए। सप्तसिन्धुका सबसे पूर्वी भाग अर्थात् जमुना और सतलुजके बीचका भाग कुरुजांगलके नामसे प्रसिद्ध था। यह इलाका जांगल क्यों कहा जाता था? क्या यहाँ खांडव वन आदि जैसे वन ज्यादा थे, अथवा गंगा-जमुना के बीचके मुख्य कुरु देशकी अपेक्षा यह अधिक जंगलप्राय था। यह तो निश्चित ही था, कि कुरु और कुरुजांगल एक ही लोगों के देश थे और इन दोनोंमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि जमुना उसमें विभेद नहीं डाल सकती थी। अधिक आबाद न होनेके कारण ही दुर्योधनने युधिष्ठिरको इस भागको देकर टरकाना चाहा था और यहीं पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्लीका प्राचीनतम नाम)को बसाया।

बुद्ध-कालमें अब संस्कृत नहीं बल्कि पालियोंको जीवित प्रचलित भाषा होनेका मौका मिला। पालि आजकल यद्यपि एक खास भाषाका नाम पड़ गया है, पर इस हम उस भाषा-जातिका नाम भी दे सकते हैं, बाकि बुद्ध-कालमें उत्तरी भारतके भिन्न-भिन्न जनपदोंमें बोली जाती थी और जिनमेंसे मागधीका ही कुछ थोड़ा-सा परिवर्तित रूप पालि त्रिपिटकमें मिलता है। इस समय कुरु देशकी कौरवी पालि भाषा थी। पर पालि ही क्या प्राकृत और अपभ्रंश कालके भी कौरवीके नमूने हमारे पास तक नहीं पहुँचे हैं। केवल तुलनासे ही हमें मानना पड़ता है कि पालियोंके कालमें कुरु जनपदमें कौरवी पालि रही होगी। प्राकृतोंके कालमें कौरवी प्राकृत और अपभ्रंशों के कालमें कौरवी अपभ्रंश थी।

उपनिषद्-कालके सबसे महान् ऋषि प्रवाहण जैवलि, सत्यकाम जाबाल, याज्ञवल्क्य कुरु-पंचालके रहनेवाले थे। ब्रह्मज्ञानके अखाड़ेमें कुश्ती मारनेके लिए कुरुपंचालके मल्ल विदेह तक पहुँचते थे, यह हमें उपनिषद् बतलाते हैं। कुरुपंचाल उपनिषदोंकी भूमि थी। बुद्ध-कालमें भी कुरुकी महिमा घटी नहीं थी। अब भी वह प्रतिभावानोंका देश माना जाता था, बुद्धने अपने "महासतिपट्ठान"

व्यवहारकी भाषा रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। शुंगोंके बाद आन्ध्रभृत्य भी मगधके सांस्कृतिक गौरवको कम नहीं कर सके।

ईसवी-सन्‌के आरम्भके साथ शकोंकी प्रभुता सारे भारतमें छा गई। इस समय कुछ समयके लिए मगध राजनीतिक केन्द्र नहीं रहा, लेकिन बौद्ध-धर्मका केन्द्र होनेके कारण उसका सांस्कृतिक महत्व इस समय घटा नहीं बल्कि बढ़ा। ईसवी-सन्‌के आरम्भके साथ ही पालियोंका स्थान प्राकृतोंने लिया।

शकोंकी शक्तिके ह्रासके साथ फिर मगधको धीरे-धीरे ऊपर उठनेका मौका मिला। लिच्छवि—विशेष कर नेपाल प्रवासी—अपने प्रभावको बढ़ाते रहे। लिच्छवि दौहित्र समुद्रगुप्त चौथी शताब्दीके मध्यमें सारे उत्तरी भारतको एकताबद्ध करनेमें सफल हुआ। इसके उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके समय कालिदास जैसा कविताका महान सूर्य प्रकट हुआ। यह प्राकृतकेलिए आगे बढ़नेका अच्छा समय था, लेकिन अब "लौटो गुहा मानवकी ओर" का नारा लगा था—शिलालेखों, ताम्रशासनों और दूसरे इस तरहके अभिलेखोंमें संस्कृतका प्रयोग होने लगा। सिक्कोंपर भी सुन्दर संस्कृत पद्य उत्कीर्ण होते थे। लेकिन, संस्कृत बोल-चालकी भाषाका रूप नहीं ले सकी और न साधारण लोगोंके सम्पर्ककी भाषाका रूप ही। जिस वक्त दिल्ली-दरबार और सरकारमें फारसीका बोलबाला था, उस समय भी राजकाजका मौखिक और चिट्ठी-पुर्जेवाले हजारों काम लोगोंकी भाषामें होते थे। प्राकृत-कालमें भी यही बात रही। इस वक्तकी सर्वमान्य प्राकृत मागधी थी। नाटकोंमें उत्तम पात्रोंकी भाषा मानकर उसके इसी महत्त्वको प्रकट किया गया है। प्राकृतके अन्तके साथ अब मागधी भाषाका महत्व भी घटने लगा। प्रायः हजार वर्ष तक भारतकी महाराजधानी होनेके बाद पाटलिपुत्रने अब कान्यकुब्जकेलिए अपना स्थान छोड़ दिया।

गुप्त साम्राज्यको हेफ्तालों (श्वेत हूणों)ने लगातार प्रहार करके जर्जर कर दिया। और इसीलिए उनके सामन्तोंमें प्रधान मौखरियोंने हूणोंके मुकाबिलाकेलिए कन्नौजमें सैनिक अड्डा बना कर पहले गुप्तोंका स्थान लिया। कन्नौजको ही उन्होंने अपनी राजधानी बनाई, सम्भव है, वह स्वयं मगधके रहे हों। अब ५०० ई०से १२०० ई०के करीब तक कन्नौजने वह स्थान लिया, जो इससे पहले पाटलिपुत्र (पटना)का था। इसे संयोगही कहना चाहिये, जो राजधानी-परिवर्तनके साथ भाषा-परिवर्तनका समय आ गया, और कन्नौजकी प्रधानताके समय प्राकृत नहीं, बल्कि अपभ्रंश बोल-चालकी भाषा थी। बोल-चालकी सम्भ्रांत भाषाके साहित्यिक भाषा होनेमें देर नहीं लगती। संस्कृतके जोर होनेपर भी प्राकृतको वैसा होते हमने देखा। कान्यकुब्ज-कालमें भी सांस्कृतिक और बहुत हद तक राजकीय भाषा संस्कृत थी। पर, यह आशा नहीं की जा सकती, कि गाँवों और विषयों (जिलों)के नहीं, बल्कि भुक्तियों (प्रदेशों)के दफ्तरोंका

सब काम संस्कृतमें होता रहा होगा। लेकिन, शासक वर्गके दिमागमें यह ख्याल बड़ी
मजबूतीसे बैठ गया था, कि किसी अभिलेख का स्थायित्व (अमरत्व) तभी कायम हो
सकता है, यदि वह संस्कृतमें हो। शायद यह विचार किसी एक आदमीके दिमागसे
नहीं पैदा हुआ, बल्कि जातीय तजर्बेने इसे बतलाया। पालियोंके समय देशमें भिन्न-
भिन्न जगहोंकी अलग-अलग उसी जातिकी अपनी-अपनी बोलियाँ थीं, लेकिन संस्कृत
सभी जगह एक तरहकी थी। प्राकृतोंके समय पहलेकी बोली (पालियाँ) अब लुप्त हो
चुकी थीं, लेकिन संस्कृत उसी तरह मौजूद थी। अपभ्रंशोंके समय अब प्राकृतें नाम
शेष रह गई थीं, लेकिन संस्कृत अपने स्थानपर उसीतरह बैठी थी। यह भावना हमारे
अवचेतनमें अब भी पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है, इसीलिए कुछ लोग चाहते हैं कि
संस्कृत नवीन भारतकी सम्मिलित और राष्ट्रभाषा हो। लेकिन, किसी भाषाका सरकार-
दरबारमें चाहे जितना ही महत्व हो, पर उस समयकी बोल-चालकी भाषाको वह
नगण्य नहीं कर सकती थी। खास कर उस जगहकी भाषाको जहाँ देशका सबसे बड़ा
सांस्कृतिक और राजनीतिक केन्द्र हो।

पालि-युगमें मागधी-पालिको, प्राकृत-युग में मागधी-प्राकृतको हम प्रधान
स्थान पाते देखते हैं, और आदके उदाहरणसे हम समझ सकते हैं कि संस्कृतसे
अपरिचित लोगोंकेलिए—जिनकी ही संख्या सबसे अधिक थी—ये भाषाएँ अपने
समयमें अन्तर्प्रान्तीय भाषाएँमानी जाती होंगी। भिन्न-भिन्न जगहोंके भिन्न-भिन्न भाषाभाषी
व्यापारी आपसमें मिलनेपर पालि-कालमें मागधी-पालिका, प्राकृत-कालमें मागधी-
प्राकृतका व्यवहार करते थे। कान्यकुब्जकी प्रधानताके साथ अब कान्यकुब्ज
अपभ्रंशने वह स्थान लिया। बोलीमें अपनी कृतिकी भंगुरताके डरसे महाकवियों
अपनी कृतियाँ उसमें नहीं प्रस्तुत कीं। जो संस्कृत या प्राकृतपर अधिकार रखते
वह अपभ्रंशमें कविता क्यों करने लगे! लेकिन बोल-चालकी भाषाकी उत्कृष्ट कवि-
नि‍री रसगुल्ला होती है—ऊपर-नीचे-भीतर एक-एक अङ्गमें मिठाससे भरी होती
जब किसी लोक-कविने अपने श्रोताओंको मस्त किया होगा, तो दूसरे अवश्य इस
निगाहमें उसको तरफ देखनेकेलिए मजबूर थे। बाण संस्कृतके अत्यन्त महान्
थे, इसमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। अपनी तरुण घुमक्कड़-मण्डलीमें
स्वद संस्कृतके कवि मौजूद थे। प्राकृतके कवि अलग थे और इनके साथ "भा
ईशान" भी थे। ईशान अपभ्रंशके आदि कवि हैं, जहाँ तक हमें ग्रन्थोंसे
होता है। ना मौखरियोंके पूज्य थे। सुबन्धु-दण्डीसे लेकर
। ना कवि अपभ्रंश कालमें पैदा हुये। यदि कोशा
हतियाँ नवाल और विध्वंसमें मुसलिम न रक्खी हो
हैं, पुष्पदन्त, कनकामर आदिको भरने दिया होता
है कि अपने कालमें अपभ्रंश बड़ी समृद्ध भाषा रही।

अपभ्रंश-काल कान्यकुब्जकी प्रधानताका काल है। हम देखते रहे हैं कि देशके सबसे बड़े सांस्कृतिक और राजनीतिक केन्द्रकी भाषा अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और साहित्यकी भाषा होती आई है। चाहे पूर्वी भारतके सिद्धोंकी अपभ्रंश हो या मुलतान-के कवि अब्दुर रहमानकी, अथवा वर्तमान् हैदराबाद (मान्यखेत)के कविकी, सबकी भाषाओंमें नाम मात्रका अन्तर देखा जाता है। साहित्यिक अपभ्रंशकी यह एकता इसी कारण हुई, कि वह एक राजनीतिक-सांस्कृतिक केन्द्र-स्थानकी भाषा थी; और यह केन्द्र-स्थान कान्यकुब्ज (कन्नौज) और उसकी भूमि इस कालमें थी। यही मौख-रियोंके, यही हर्ष-वर्धनके विशाल साम्राज्यकी राजधानी रही। भारतके सबसे अन्तिम विशाल साम्राज्य गुर्जर-प्रतिहारकी राजधानीभी कन्नौज ही रहा। उनके उत्तराधिकारी गहडवार यद्यपि गुर्जर-प्रतिहार-शासित सारी भूमिके स्वामी नहीं थे, पर दिल्लीके पास यमुनासे लेकर पूर्वमें बिहारमें गण्डक तक और हिमालयसे लेकर विन्ध्यके पास तककी सम्पत्ति, जन-संख्या और दूसरी बातोंमें बहुत महत्त्व रखनेवाले भू-भागके यह स्वामी थे। इसलिए मुसलमानोंके हाथमें भारतके जानेसे पहले कन्नौज भारतका सबसे बड़ा राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र था, यह कहना अत्युक्ति नहीं है। साहित्यिक अप-भ्रंश कन्नौजकी भूमिकी भाषा थी, यह कहना बिल्कुल युक्तियुक्त है।

इस अपभ्रंशको क्या नाम देना चाहिये? मध्यदेशका केन्द्र कन्नौज था, इस-लिए मध्यदेशीय अपभ्रंश भी इसे कह सकते हैं। पर मध्यदेशमें एकही अपभ्रंश नहीं रही होगी। आजकल भी हम देखते हैं, मध्यदेश (उत्तर प्रदेश)में भोजपुरी जैसी कुछ पूर्वी बोलियाँ बोली जाती हैं। फिर हिमालयके चरणसे लेकर छत्तीसगढ़ तक अवधी है, उसके बाद उसीके समानांतर हिमालयसे लेकर सागर-होशंगाबाद तक फैली एक भाषा है, जिसमेंही कन्नौज आता है। इसके पश्चिम कौरवी या खड़ी बोली है, जिसकी भाषाका उपनिषद्-काल तक हम महत्त्व देख चुके हैं। यह आजकल प्रायः सारी मेरठ और अम्बाला कमिश्नरियोंकी बोली है। हम और पश्चिम नहीं जाते, लेकिन यह देखना चाहते हैं, कि कौरवीका जिस भाषासे सबसे अधिक घनिष्ठ संबंध है, वह उसकी पूर्वी और दक्षिणी पड़ोसी भाषाएँ नहीं हैं, बल्कि पंजाबी हैं, अर्थात् पुराने सप्तसिंधुकी भाषाकी आजकलकी प्रतिनिधि भाषा। कन्नौजकी अपभ्रंशको क्या नाम देना चाहिये? कुछ लोग उसे सौरसेनी प्राकृतकी संतान होनेसे, इसे सौरसेनी अपभ्रंश भाषा कहते हैं, जो गलत नहीं है। लेकिन हमें यह देखना होगा, कि पुराने सूरसेन जनपद तक ही यह भाषा सीमित नहीं थी। आज भी "ब्रजभाषा" नामसे एक संकुचित अर्थ हमारे सामने आता है, वस्तुतः एक-डेढ़ जिले छोड़ ब्रजभाषा सारे रूहेलखंड, सारी आगरा कमिश्नरी, मेरठ कमिश्नरीके भी डेढ़ जिले, भरतपुर-धौलपुरके जिलों, सारे बुन्देलखण्ड (मध्य-भारत, मध्य-देश और विन्ध्य प्रदेशमें बँटे)की एकही भाषा है, जिसमें उतना ही स्थानीय अन्तर है, जितना कि अवधी, भोजपुरी या मैथिलीकी भिन्न-भिन्न बोलियोंमें। कान्यकुब्ज पुराने दक्षिण पञ्चालमें पड़ता था। उत्तर पञ्चाल

भाग्य सुला। कुछ भूमिने इतिहासमें अपने अस्तित्वको फिरसे स्थापित किया। मुस्लिम शासक अंग्रेजोंकी तरह ही अपनी भाषाको प्रधानता देना चाहते थे। वह यवनों-शकोंकी तरह भारतकी संस्कृतिके सामने आत्मसमर्पण करने वाले नहीं थे, बल्कि उससे आत्मसमर्पण कराना चाहते थे। ऐसी स्थितिमें वह न यहाँकी भाषा और साहित्यको, न यहाँकी विद्या और इतिहासको महत्त्व प्रदान कर सकते थे। पहले तीन मुस्लिम राजवंश तुर्क थे—गुलाम वंश कई तुर्की कबीलोंका भानमतीका कुनबा था। खलजी और तुगलक तुर्कोंके कबीले थे। तुर्कोंके मध्य-एसियामें आनेके पहले वहाँकी बोली पारसी थी। तुर्क शताब्दियोंसे वहाँ बस गये थे, इसलिए पारसीको भी उन्होंने कुछ हद तक अपनाया। अपनानेमें दिक्कत भी नहीं थी, क्योंकि पारसी-भाषी लोग पहले ही मुसलमान हो चुके थे। भारतमें आनेवाले तुर्क दु-भाषी थे—अपनी तुर्की भी बोलते थे और पारसी भी। यहाँ आकर तुर्कीको सरकार-दरबारकी भाषा बनाना उन्होंने पसन्द नहीं किया, जिसका रास्ता पहलेही लाहौरने बन्द कर दिया था।

फारसी सरकार-दरबारकी भाषा मानी गई, लेकिन दिल्लीके आस-पास अर्थात् कुरुदेशके लोगोंसे शासकोंको हर वक्त काम पड़ता था, इसलिए कौरवीको बिल्कुल उपेक्षित नहीं किया जा सकता था। अगर-तुर्क मध्य-एसियामें रहते दुभाषी हो गये थे, तो अब उन्हें तुर्कीका मोह छोड़कर फिर दुभाषी बनना पड़ा। यह दूसरी भाषा दिल्लीके आस-पासकी कौरवी (खड़ीबोली) हुई। कौरवीका भाग्य इस तरह पूरी तौरसे नहीं जगा, क्योंकि सरकार-दरबारमें फारसीकी कदर थी। जबानी कामकेलिए जरूर अब कौरवीकेलिए रास्ता खुल गया। दिल्लीवाले बड़े-बड़े शासक और सेनापति बन कर भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें गये, वह कौरवी भाषाको बोल-चालके कामकेलिए साथ ले गये। धीरे-धीरे मध्यदेशीया (कनौजी) भाषाका स्थान कौरवीने लिया और वह अन्तर्प्रान्तीय भाषा बन गई। उसके पक्षमें शासक वर्ग ही नहीं रहा, बल्कि साधारण लोग भी जो अपने प्रान्तोंकी सीमाके बाहर पैर रखते थे इसे अपनाने लगे। हो नहीं सकता था, कि मुस्लिम शासकोंके साथ अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारकेलिए वह कौरवीको स्वीकार करते और अपने वास्तविक कामोंकेलिए मध्यदेशीया—ग्वालेरी या ब्रज—को। यह सम्मान कौरवीको मिला। इस बड़भागिनीके दिनोंके लौटनेका अभी यह आरम्भ था।

मुस्लिम-शासनका स्थान अंग्रेजी शासनने लिया, उसने भी बोलचालके तौर पर कौरवीके महत्त्वको माना, लेकिन हिन्दुओंसे ज्यादा खतरा होनेके डरसे कौरवीके उस रूप या शैलीको पसन्द नहीं किया, जिसको आज हम हिन्दी कहते हैं। उन्होंने उसके उस रूपको प्रोत्साहन देना चाहा, जिसे विदेशी मुस्लिम शासकोंने अपनी आसानीकेलिए अपने शब्द शब्दोंकी भरमार करके बनाया था, जिसे पहले हिन्दी या हिन्दवी कहा जाता था, लेकिन आज हम उर्दूके नामसे जानते हैं।

लोहेकी तोप—जैसे-जैसे गंधक और शोरा अधिक शुद्ध और स्फटिकके रूप-र होने लगे, वैसे-वैसे बारूदकी शक्ति बढ़ती गई। १२वीं-१३वीं सदीमें किन्-वाङ् हो-उत्पत्कामें शासन था। दक्षिणमें सुङ्-वंशकी हकूमत थी। दोनोंमें ा। उस वक्त आग लगानेकेलिये बारूदका उपयोग किया गया। जो लोह-स समय बनाई गईं, वह वस्तुतः दो खोलोंवाला बारूद भरा बम था। १२५७ सुङ्-सरकारी सूचनासे मालूम होता है, कि क्वाङ्-सिङ् (हू-पे प्रदेशमें) एक ो दो हजार "लोह-तोपें" बनाई जा सकती थीं।

११३२ ई०में चेन गुयेइने एक दूसरा नलीवाला हथियार बनाया, जिसका तो-चियाङ् था। यह बन्दूक और तोपकी तरफ बढ़नेका पहला कदम था। लिये बाँस इस्तेमाल करते थे, जिसका अर्थ है, कि वह एक ही बार छोड़ा सा था। यह वस्तुतः ज्वालाक्षेपक यन्त्र था। १२५६ ई०में तू हुवो-चियाङ् अग्निनलिका का आविष्कार हुआ, जिसमें बारूदके साथ कंकड़-पत्थर भी डाले । इसके छूटते समय तोप जैसी आवाज होती थी। बाँसकी नलीकी जगह लोहेकी नली लगाना उसे तोप-बन्दूकमें परिणत करना था, जिसका आरंभ चौदहवीं सदीमें हुआ। बड़े अकबरकी हुवो चुन् अग्नि-बन्दूकमें पत्थर या गोलियाँ डाली जाती थीं।

खेल-तमाशेकेलिये बारूदका इस्तेमाल सातवींसे तेरहवीं सदी तक होता रहा। सौदागर चीनके प्रधान नगरोंमें व्यापारकेलिये पहुँचते थे। वही इसे अपने गये और शोराको ईरानी "चीनी बर्फ" कहते थे। उसीका अनुवाद अरबी-"सल-सीन" था। अरब चिकित्सक भी शोराको इस्तेमाल करते थे। अरब तेरहवीं सदीके आरम्भमें आतिशबाजीके तौरपर बारूदको चीनसे ले इतः अरबों द्वारा ही चीनसे बारूदका ज्ञान अरब और पश्चिमके देशोंमें गोल इसे ले जानेमें प्रथम नहीं थे। पर, जहाँ तक शक्तिशाली बारूदी ा सम्बन्ध है, उसे यूरोपवालोंने ही बनाया।

परिशिष्ट ५. स्रोत ग्रंथ

अबुलफजल—आईन अकबरी अँग्रेजी अनुवादक-ब्लाकमैन, (जेरेट, कलकत्ता १८९१ ई०)

" " —अकबरनामा " बेवरिज, (कलकत्ता १८९७-१९०७ ई०)

इनायतुल्ला इलाही—तकमील-अकबरनामा " बेवरिज (?)

बदायूनी—मुन्तखबुत्-तवारीख " रैंकिंग, (लो)

३१. टेरी—वायेज टु ईस्ट इण्डिया (लन्दन १६५५ ई०)
३२. टामस रो—दि एम्बेसी टु दि कोर्ट आफ ग्रेट मोगल (हेक्लियट सोसायटी १८६६ ई०)
३३. डिलेट—दि एम्पेरियो मग्नी मोगोलिस...(इंडियन एंटिक्वेरी १६१४ नवम्बर)
३४. हरबर्ट, टामस—सम यर्स ट्रेवल ...
३५. मेनरिक—...ला मिशान्स...
३६. मन्देलस्लो—वायज एण्ड ट्रेवलस...
३७. बेर्नियर—ट्रेवल्स इन दि मोगल इम्पायर (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६१४ ई०)
३८. मनुची, निकोला—स्तोरिया दी मोगोर (लन्दन १६०७-८ ई०)
३९. ग्लेडविन, फ्रांसिस—दि हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान...(कलकत्ता १७८८ ई०)
४०. मोदी, जे० जे०—दि पारसीज ऐट दि कोर्ट आफ अकबर... (बम्बई १६०३ ई०)
४१. लतीफ, सैयद मुहम्मद—आगरा .. (कलकत्ता १८९६ ई०)

अन्य ग्रंथ—

४२. अबुलफजल—रुकआत (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
४३. फैजी—नलदमन (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ १६३० ई०)
४४. आजाद, शमशुलउल्मा मुहम्मद हुसेन—दरबार-अकबरी (लाहौर)
४५. हरिहरनिवास द्विवेदी—मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियर १६५५ ई०)
४६. राहुल सांकृत्यायन—मध्य एसिया का इतिहास २ जिल्द (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १६५६ ई०)

परिशिष्ट ६. समकालीन चित्र

१. ब्रिटिश म्यूजियम—हस्तलेख १८८०१ (पर्शियन हस्तलेख सूचिपत्र पृष्ठ ७७८—अकबर) बच्चा सलीमके साथ। ८२४७० अकबर सिंहासनपर, आयु ६० के करीब।

२. इंडिया आफिस लाइब्रेरी—जान्सन कलेक्शन संग्रह (जिल्द १८ में) तरुण अकबरके दो चित्र। वहीं जिल्द ५७में ५१ व्यक्तिचित्र हैं, जिनमें अबुलफजल, बीरबल, मानसिंह आदि चित्रित हैं।